हीरसौभाग्य-लघुवृत्तिसमेतं

श्री हीरसुन्दर महाकाव्यम्

(सटिप्पणीकम्)

कर्ता : पण्डित श्रीदेवविमलगणि

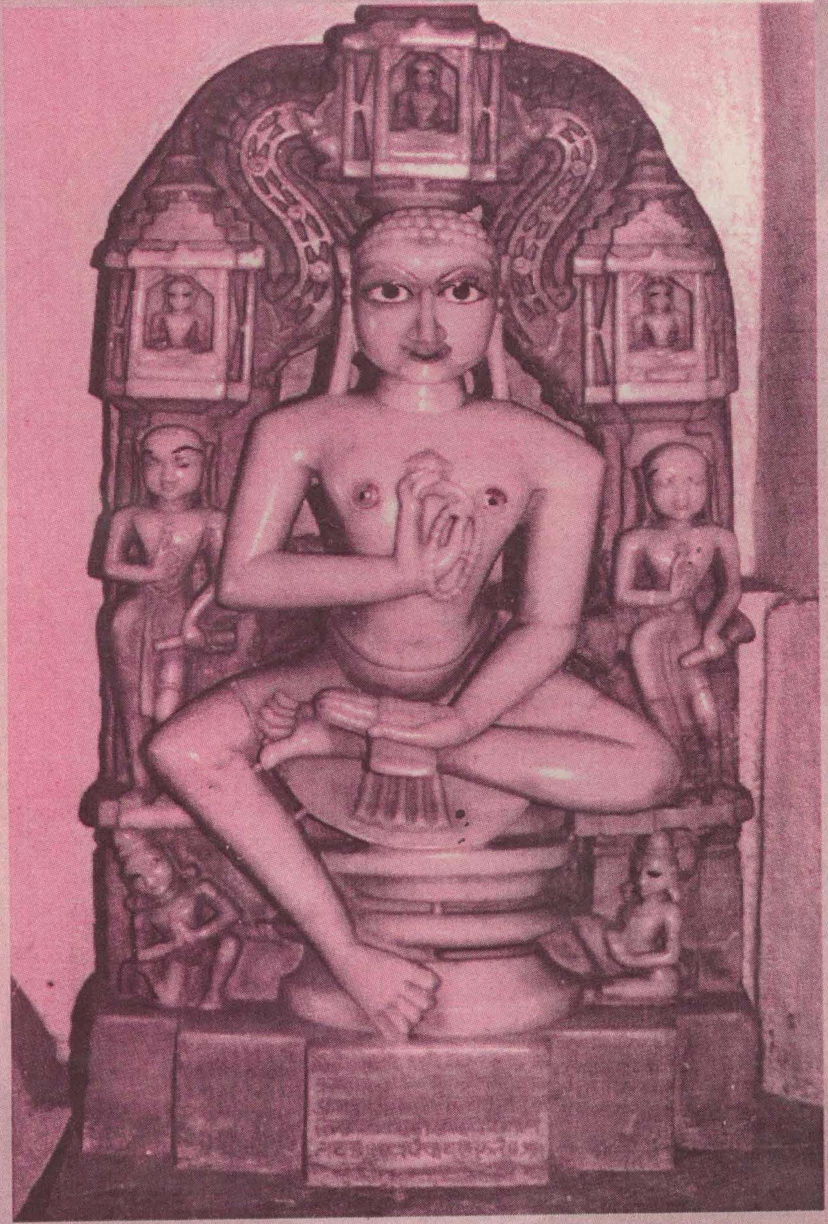

प्रकाशक :

श्री जैन ग्रन्थ प्रकाशन समिति

खम्भात

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जगद्‌गुरु-हीर-स्वर्गारोहण-चतुःशताब्दी ग्रन्थमाला-४

अर्हम् ॥

पण्डित श्रीदेवविमलगणिविरचितं

श्रीहीरसुन्दर-महाकाव्यम् ॥

सटिप्पणीकं

'हीरसौभाग्य' उपरि-लघुवृत्तिसमेतम् ॥

प्रथमो भागः

संपादक :
श्रीविजयशीलचन्द्रसूरिकृतमार्गदर्शनानुसारेण
मुनि रत्नकीर्तिविजयः

प्रकाशक :
श्री जैन ग्रन्थप्रकाशन समिति
खम्भात

ई. १९९६ सं. २०५२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीहीरसुन्दरमहाकाव्यम्-सटिप्पणीकं
(हीरसौभाग्योपरि लघुवृत्तिसमेतम्) ॥
कर्ता : पं. देवविमलगणि ॥
संपादन : मुनि रत्नकीर्तिविजयः

आवरण-चित्र-परिचय : देलवाडा-विमलवसही चैत्यस्थित जगद्गुरु श्रीहीरविजयसूरिनी सं. १६६१नी प्रतिमा तथा ईडरना भंडारनी प्रतिना अंतिम पृष्ठनो अंश.

प्रकाशक : श्री जैन ग्रंथप्रकाशन समिति,
शाह शनुभाई कचराभाई
जीराला पाडो, खंभात, ३८८६२०

© **सर्वाधिकार सुरक्षित**

ई. १९९६ वि.सं. २०५२ **प्रति** : ५००

आर्थिक सहयोग : श्री हीरालाल परसोत्तमदास श्रोफ-परिवार, खंभात.

प्राप्तिस्थान : सरस्वती पुस्तक भंडार
११२, हाथीखाना, रतनपोळ,
अहमदाबाद-३८०००१

मूल्य : रू. १२०-००

मुद्रक : हरजीभाई एन. पटेल
क्रिश्ना प्रिन्टरी
९६६, नारणपुरा जूना गाँव, अमदावाद-१३
(फोन : ७४८४३९३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

सम्राट् अकबर प्रतिबोधक, कलिकालगौतमावतार, जगद्गुरु श्रीहीरविजयसूरिदादाना ४००मा स्वर्गारोहणना वर्षे, तेमना भव्य जीवनचरित्रने वर्णवतो आ महान ग्रंथ प्रकाशित करवानुं सौभाग्य अमोने प्राप्त थयुं छे, ते बदल अमो अनहद धन्यतानो अनुभव करीए छीए. आ लाभ खंभातने मळे तेमां औचित्य ए छे के जगद्गुरुनो खंभात साथे गाढ अने ऐतिहासिक महत्त्व धरावतो संबंध हतो. तेमनो रास खंभातना ज श्रावक कवि ऋषभदासे रच्यो छे.

आ पूर्वे, आ ग्रंथमालाना प्रथम ग्रंथ तरीके मुनि विद्याविजयजीकृत "सूरीश्वर अने सम्राट" ए ग्रंथना तथा तृतीय ग्रंथ तरीके "श्रीशांतिचन्द्रवाचककृत कृपारसकोश" ए ग्रंथना प्रकाशननो लाभ आ समितिने मळ्यो हतो. प्रसंगोपात्त जणाववुं जोईए के आ ग्रंथमालाना द्वितीय ग्रंथ "अमारिघोषणानो दस्तावेज" ना प्रकाशननुं श्रेय गोधराना श्री भद्रंकरोदय शिक्षण ट्रस्टने फाळे छे. ए पछी, आ ग्रंथमाळाना चतुर्थ ग्रंथ तरीके आ महाकाव्यना प्रथम खण्डनुं प्रकाशन करवानो लाभ अमने मळे छे, तेनो अमने आनंद छे. आनी पाछळ, पूज्य आचार्य श्री विजयसूर्योदयसूरीश्वरजी म. तथा तेमना शिष्य आ. श्री विजयशीलचन्द्रसूरिजीनी कृपानो मुख्य फाळो छे.

आ प्रकाशन माटे, खंभातना श्रीस्तंभतीर्थ तपगच्छ जैन संघना आगेवान शेठ श्री हीरालाल परसोत्तमदास श्रोफ-परिवारे, सद्गत श्री रमेशचंद्र हीरालाल श्रोफना स्मरणार्थे, ग्रंथ प्रकाशननो सघळो खर्च अर्पण करीने श्रुतभक्तिनो, गुरुभक्तिनो तेम ज सुकृतना मार्गे धन केम वपराय ते माटेनो एक उमदा दाखलो पूरो पाड्यो छे, ते बदल ते परिवार लाख लाख धन्यवादनो अधिकारी छे.

पुस्तकना रूडा मुद्रणकार्य बदल क्रिश्ना प्रिन्टरी-अमदावादना हरजीभाई पटेलनो आ तके अमे आभार मानीए छीए.

प्रांते, जगद्गुरुनो आ जीवनचरित्र ग्रंथ, जगद्गुरुनी ४००मी स्वर्गारोहणतिथि भा.सु.११, २०५२ ना पावन दिने, पूज्य गुरुभगवंतोनी निश्रामां, जैन संघना अग्रणी शेठ श्री श्रेणिकभाईना हस्ते, श्री भावनगर जैन श्वे. मू. तपासंघना आश्रये, विमोचन पामे छे, ते पण एक चिरस्मरणीय घटना छे.

आवो लाभ अमारी समितिने वारंवार मळतो रहे तेवी भावना सह-

लि. **जैन ग्रन्थप्रकाशन समिति-खंभात वती**

शनुभाई के. शाह **बाबुलाल परसोत्तमदास कापडिया**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्मरणांजलि

अमारा लाडीला भाई सद्गत रमेश श्रोफनी
पुण्यस्मृतिमां
सम्यग् ज्ञाननी उपासनास्वरूप
आ ग्रन्थ-प्रकाशननो उत्तम लाभ
मळवाथी
अमारो परिवार परम धन्यता
अनुभवे छे.
स्व. रमेशने आ प्रकारनी स्मरणांजलि
अर्पीने अमे अमारा भ्रातृप्रेमनी
सार्थकता पण अनुभवी रह्या छीए.

लि.
शेठ हीरालाल परसोत्तमदास श्रोफ-परिवार
खंभात

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

શેઠ શ્રી હીરાલાલ પરસોત્તમદાસ

શ્રી કમળાબેન હીરાલાલ શ્રોફ

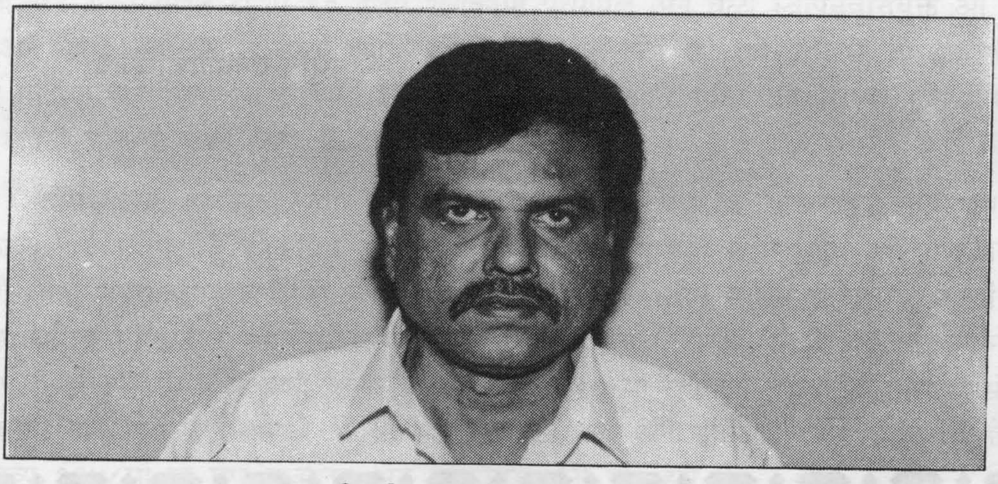

શ્રી રમેશચંદ્ર હીરાલાલ શ્રોફ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समर्पणम् ॥

यैः पूज्य**सूर्योदयसूरि**वर्यै-रनादिसंसारमहाटवीतः ।
भ्रमन्महाऽज्ञानतमोभरेषु, चारित्रदानादहमुद्धृतोऽस्मि ॥१॥

स्वकीयवात्सल्यसुधाभृताङ्के, यैः संस्कृतो निर्गुणशेखरोऽहम् ।
मातृत्व-कारुण्यपरीतचित्तैः, **श्रीशीलचन्द्राभिधसूरिराजैः** ॥२॥

दुष्कर्मविच्छेदकरी प्रव्रज्या, कृपादृशा भागवती च येषाम् ।
लेभे मया **दर्शन-चन्द्रकीर्त्ति-मुनीश्वरा**णामुपकारकाणाम् ॥३॥

तेषां समेषां गुरुपुङ्गवानां, स्मृत्वोपकारं हृदि नैकवारम् ।
भक्त्या मुदा ग्रन्थमिमं हि तेभ्यः, सद्भावयुक्तोऽहकमर्पयामि ॥४॥

-मुनि रत्नकीर्त्तिविजयः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तावना

जगद्गुरु अने 'हीरसौभाग्य'

जगद्गुरु श्री हीरविजयसूरीश्वरजी महाराज, ए १६मा शतकना एक प्रभावक धर्मपुरुष अने प्रतिभासम्पन्न जैनाचार्य छे. तेओना अहिंसापरायण, करुणा छलकता, अने विश्वकल्याणनी उदात्त भावनाथी मघमघता जीवन अने जीवनकार्यो विशे तेमनी विद्यमानतामां अने त्यार पछी आज सुधीमां अनेक ग्रन्थो रचाया छे. जैन संघना अने विशेषे तपगच्छना इतिहासमां आवी प्रशस्ति भाग्ये ज कोई गच्छनायकने सांपडी छे. तेमना जीवननो ऊंडाणथी अभ्यास करतां अने तेमना विशे जे लखायुं छे तेनुं अवलोकन करतां सहेजे समजाय छे के जगद्गुरु साचा स्वरूपमां लोकवल्लभ युगपुरुष हता. तेओनी सिद्धान्तनिष्ठा, विद्याध्ययन, तपश्चर्या, चरित्ररमणता, प्रतिभा, हृदयनी विशाळता, गच्छनी तथा शासननी धुरानुं संचालन करवानी निपुणता, स्वपक्ष अने परपक्षनो सुमेळ तथा संकलन साधवानी कुनेह, गंभीरता, समय आवे गच्छपति तरीके कडक अथवा मक्कम रीते काम लेवानी दृढता वगेरे विशिष्टताओ परत्वे तेमना विरोधीओमां पण बे मत नहोता. बल्के, आ बधी विशिष्टताओने लीधे ज तेओश्री स्वपरपक्षमां तेमज भक्तो अने विरोधीओमां पण मान्य अने आदरपात्र बनी गया हता. तेमना विशे रचायेली कृतिओमां–श्री जगद्गुरुकाव्य, श्रीहीरविजयसूरि रास जेवी प्रगल्भ रचनाओ उपरान्त हीरसूरि स्वाध्याय, अनेक सज्झायो, सलोका, मांडवणा (वहाण), प्रबन्ध, वगेरे विविध प्रकारनी अढळक रचनाओनो समावेश थाय छे. आ रचनाओ जोतां जगद्गुरुनी लोकवल्लभतानी प्रतीति अनायास थई जाय छे.

आ बधी रचनाओमां शिरमोर समी रचना एटले–**हीरसौभाग्य महाकाव्य.** श्री जगद्गुरुना गुरुभगवंत तपगच्छनायक श्री विजयदानसूरीश्वरजी दादानी शिष्यपरंपरामां ऊतरी आवेल पंडितश्री सिंहविमलगणिना शिष्य पंडितश्री देवविमलगणिए जगद्गुरुनी हयातीमां ज रचेल आ महाकाव्य प्राचीन संस्कृत महाकाव्योनी परंपराने अनुसरतुं एक समृद्ध अने प्रतिभासंपन्न महाकाव्य छे. महाकाव्यनां तमाम लक्षणो धरावतुं, सत्तर सर्गोमां अने टीका सहित आशरे १० हजार श्लोकोमां पथराएलुं अने वळी स्वोपज्ञवृत्तियुक्त आ महाकाव्य माघ अने नैषध जेवां प्राचीन महाकाव्योनी हरोळमां निःशंक ऊभुं रही शके तेम छे; तो आ महाकाव्यना प्रणेता श्रीदेवविमलगणिनी आ काव्यमां ऊपसती कविप्रतिभा तेओने पूर्वना प्रतिभासम्पन्न महाकविओ तेमज टीकाकारोनी पंक्तिमां मूकी आपे छे.

हीरसौभाग्य महाकाव्य तेना काव्यनायक महापुरुषना जेवुं ज सौभाग्यशाळी जणाय छे. आ महाकाव्य जेवुं रचायुं तेवुं लोकप्रिय अने लोकप्रसिद्ध बनी गयुं हतुं. महोपाध्याय श्री धर्मसागरजीगणिए पोतानी रचना–**तपगच्छपट्टावली**–नी स्वोपज्ञवृत्तिमां श्री हीरविजयसूरिनुं संक्षिप्त चरित्रवर्णन करतां नोंध्युं छे के '**तद्व्यतिकरो विस्तरतः श्रीहीरसौभाग्यकाव्यादिभ्योऽवसेयः**'. अर्थात्, श्री जगद्गुरुना चरित्रनो अधिक वृत्तान्त श्री हीरसौभाग्य वगेरे थकी जाणी लेवो. संवत् १६४८ मां रचायेली पट्टावलीमां पण हीरसौभाग्यनो, एक वरिष्ठ अने वृद्ध उपाध्यायजी भगवंत द्वारा, उल्लेख थाय अने हवालो अपाय ते सूचवे छे के आ महाकाव्य १६४८मां तो घणुं प्रचलित अने लोकप्रिय बनी गयुं हशे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो के, (भारत ना) अन्यान्य अनेक ग्रन्थभंडारोमां तपास करवा छतां हीरसौभाग्यनी सांपडती अति अल्पसंख्यक प्रतिओ जोतां पाछळथी आ महाकाव्यनुं अध्ययन घटी गयुं हशे, तेम मानी शकाय. परंतु, तेनुं कारण पाछळना सैकाओमां संस्कृतनुं घटी गयेलुं अध्ययन-अध्यापन ज गणवुं जोइए, नहि के आ काव्य के तेना कथानायकनी लोकप्रियतानी ऊणप.

परंतु, छेल्लां थोडां वर्षोमां आ काव्यनुं पठन-पाठन पुनः विपुल प्रमाणमां थतुं जोवा मळे छे. रघुवंश, किरात, माघ, जेवां महाकाव्यो, व्याकरणना तथा संस्कृतना बोधने दृढ/स्फुट करवा माटे जाणवां जोइए तेवी एक परंपरा आपणे त्यां छे, अने वर्षोथी ते प्रमाणे थतुं पण आव्युं छे. पण, निर्णयसागर प्रेसे सर्वप्रथम हीरसौभाग्य तथा विजयप्रशस्ति वगेरे काव्योनुं मुद्रण कर्युं, ते पछी विद्वद्वर्गने अहेसास थवा लाग्यो के पंचमहाकाव्योनी हरोळमां के बराबरीमां ऊभां रही शके तेवां आ काव्यो पण छे, तो तेमनुं अध्ययन संघमां थाय तो शुं खोटुं ? आ रीते धीमे-धीमे आ काव्योनुं अध्ययन संघमां प्रचलित थतुं गयुं, जे आजे तो व्यापक अने विपुल बन्युं छे. हीरसौभाग्यनो अनुवाद पण थयो छे, अने तेनुं पुनर्मुद्रण पण थई चूक्युं छे.

हीरसुन्दर : हीरसौभाग्यनो पूर्वावतार

'हीरसौभाग्य, ए, खरी रीते, ए महाकाव्यनो बीजो अवतार छे. आ काव्यनो पहेलो अवतार तो छे. 'हीरसुन्दर' महाकाय. एम समजाय छे के श्रीदेवविमलगणिए, आ काव्य रचनानो उपक्रम सर्वप्रथम हाथ धर्यो हशे त्यारे तेमणे आ काव्यने 'हीरसुन्दर काव्य' लेखे रचवानुं विचार्युं हशे. आनुं प्रमाण एटले :-

(अ) 'हीरसौभाग्य' नी हीरसुन्दर काव्यना नामे उपलब्ध थती विभिन्न प्रतिओ, तेमज, (ब)'हीरसुन्दर' ना रूपमां कर्ताए करवा धारेला काव्यना काचा आलेख(Draft)नी हीरसौभाग्य करतां भिन्न पाठ धरावती-प्रतिओ. अलबत, आ (अ) अने (ब) बन्ने विभागनी जूज प्रतिओ ज मळे छे; तेमांये (ब) विभागनी उपलब्ध प्रतिओ एकाद सर्ग जेटला अंशने ज समजावनारी छे. परंतु, ते प्रतो उपरथी एटलुं स्पष्ट थई शके छे के कर्त्ताए पहेलां 'हीरसुन्दर' नामे काव्य सर्जवानुं विचार्युं हशे, अने पाछळथी 'सोम सौभाग्य'ना अनुकरणरूपे होय, नाममां वधु सौन्दर्य लाववानी अभिलाषाथी होय के कर्त्तानां माता 'सौभाग्यदे' नुं नाम अमर करवानी भावनाथी होय-गमे ते कारणे कर्त्ताए नाममां परिवर्तन कर्युं छे; एटलुं ज नहि, पण (ब) विभागनी प्रतिओ तपासतां, तेमणे काव्यना पद्योनी वाचनामां पण महदंशे शाब्दिक-परिवर्तन कर्युं छे.

'हीरसुन्दर' काव्यनी जे प्रतिओ अत्यारे अमारी समक्ष छे, ते आ प्रमाणे छे :

१. शेठ डोसाभाई अभेचंद पेढी-भावनगर जैन तपा संघना ज्ञानभंडारनी प्रति.

२. श्री जैन आत्मानंद सभा-भावनगर ना भंडारनी प्रति.

३. ईडर-जैन संघना ज्ञानभंडारनी प्रति.

प्रस्तुत प्रकाशनमां मुख्यत्वे क्रमांक १ प्रतिनो ज उपयोग थयो छे. क्रमांक २ प्रति ते क्रमांक १नी नकल होवा उपरान्त अशुद्धिनो भंडार छे तेथी तेनो उपयोग करवो मुनासिब नथी मान्यो. क्र. ३ नी प्रति मात्र एक ज सर्ग धरावती प्रति छे. अने तेनी प्रतिलिपि आ पुस्तकमां परिशिष्ट-१ तरीके मूकी छे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आ प्रतिनी नकल प्रकाशन कार्य दरम्यान छेक छेल्ले मळी होई तेनो उपयोग आ रीते ज थई शक्यो छे.

आमां क्र. १ वाळी प्रतिमां १५-१६ ए बन्ने सर्गोने पंदरमा सर्ग तरीके ओळखाव्या होई, कुल १६ सर्ग ज होवानु समजाय छे, पण वस्तुत: १७ सर्गो ज छे. क्र. १ प्रतिनी वाचनामां तथा मुद्रित हीरसौभाग्यनी वाचनामां केटलेक स्थळे तफावत मळे छे, ते तमाम स्थळो तथा तफावतोनो निर्देश जे ते स्थळे पाठनोंधो(Foot notes)मां दर्शावेल छे.

मुद्रित हीसौ० मां केटलेक स्थळे टीका होवा छतां पद्यो नथी. ए पद्यो हीसुं० नी प्रति क्र.१मां अकबंध जळवायां छे. ए उपरान्त, मुद्रित हीसौ० मूळ तथा वृत्तिमां घणी अशुद्धिओ जोवा मळे छे, तेनुं मार्जन हीसुं० द्वारा महदंशे थई शके तेम छे : आ बे बाबतो हीसुं० द्वारा थती उपलब्धि गणाय.

क्र. ३ नी प्रति ए शुद्धरूपेण हीरसुन्दर काव्यनो खरडो जणाय छे. खरडो एटला माटे के तेना प्रथम सर्गनी मुख्य वाचनानी साथे ज, ते ज प्रतिमां, हांसियामां ते वाचनागत घणां पद्योनां के पद्यांशोना पाठान्तरो पण आलेखायां छे. ईडरनी प्रतिमां मार्जिनमां जोवा मळतां सूक्ष्म अक्षरो ते पादटीप नथी, पण पद्य-पद्यांशना, कर्त्ताना मनमां उद्भवेलां पाठान्तरो छे, ते नोंधवुं जरूरी छे. अने आज कारणे, ईडरनी प्रति ते काव्यना कर्त्ता पं. श्री देवविमलगणिना स्वहस्ताक्षर छे एवुं विधान जरा पण अंदेशा विना कही शकाय तेम छे. शुद्ध पाठ अने मूळपाठनां ज फेरफारोनी नोंध-आ लक्षणो 'कर्त्तानो स्वहस्त' होवा बाबते नक्कर आधार बनी शके. कर्त्ता सिवाय मूळपाठमां फेरफार कोण करे ? कोण करी शके ?

सारांश ए के, कर्त्ता ए प्रथम हीसुं० रच्युं, ते पण तेना विविध आकार-प्रकारो बदलतां-बदलतां. छेल्ले एक आकारमां स्थिर कर्युं हशे, अने ते पछी हीसुं० नुं हीसौ०मां रूपांतर सूझ्युं हशे. तेथी आपणने हीसौ०नुं मळतु स्वरूप सांपड्युं.

हीरसौभाग्य/हीरसुन्दरनी टीकाओ

जेवुं मूळ हीसुं०/हीसौ० काव्य माटे, तेवुं ज तेनी टीका परत्वे पण छे. कर्त्ताए पोताना आ काव्यनी एक नहि, त्रण-त्रण वृत्तिओ रची छे, जे साहित्यना इतिहासमां एक विरल के अजोड घटना गणाय.

तेमणे पहेलां हीसुं० पर टिप्पणी रूप साव नानी टीका लखी. आपणे सगवड खातर तेने 'हीसुं०' नो पर्याय एवुं नाम आपी शकीए. ए पछी तेमणे हीसौ०नी लघुवृत्ति रची, जेनी एकमात्र प्रति अमदावाद - डेलाना उपाश्रयना भंडारमांथी उपलब्ध थई शकी छे, अने जेनी संपादित वाचना आ प्रकाशनमां आपी छे. अने त्यार पछी तेमणे हीसौ० नी बृहद्वृत्ति बनावी, जे मुद्रित हीसौ०मां उपलब्ध छे.

एक ग्रन्थकारना, एक सर्जकना मनोव्यापारो केवी रीते सतत पलटाता रहे छे, अने पोताना सर्जनमां केवा अने केवी रीते सुधारा-वधारा-उमेरा-परिवर्तन करता रहे छे-तेनुं आ एक श्रेष्ठ दृष्टान्त गणी शकाय.

हीसुं० के हीसौ० नी आम तो अढळक विशेषताओ अने लाक्षणिकताओ छे. अने ए बधी विशेताओनो ताग मेळववा माटे आ काव्यनो अनेक दृष्टिए अभ्यास थवो अत्यन्त जरूरी छे. आ काव्यमां धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक, भाषाशास्त्रीय, तुलनात्मक, अलंकारिक, साहित्यिक-एम अनेक प्रकारे अध्ययन करवाजोगी सामग्री मळी शके ज. आम छतां, प्रथम नजरे आंखे ऊडीने वळगती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बे विशेषताओ ते आ :

(१) आमां कर्त्ताए टांकेलां अनेक ग्रन्थोनां अढळक उदाहरणो-अवतरणो.

(२) आमां मळता देश्य तेमज कर्त्ताना समकालीन व्यवहारोपयोगी भाषाकीय शब्दप्रयोगो.

थोडुं फुटकळ काम आ दिशामां थयुं छे खरुं. पण नक्कर काम हजी सन्निष्ठ-रसिक अभ्यासीनी प्रतीक्षामां ऊभुं ज छे. हीसुं० ना द्वितीय भागमां आवा शब्दो तथा उदाहरणोनी एक नोंध मूकवानी धारणा छे, ए आशाए के कोई अभ्यासी तेनो उपयोग करी शके.

प्रस्तुत प्रकाशन/संपादन परत्वे

संवत् २०४८मां ऊनाक्षेत्रनी स्पर्शना थई, त्यारे जगद्गुरुनी अंतिम भूमि रूप "शाहबाग" नी पण यात्रानो योग बन्यो. जगद्गुरुना स्पृहणीय जीवन-कार्य प्रत्येनो अहोभाव ते पळे प्रबळपणे अभिव्यक्त थतो अनुभवायो. तेओश्रीनी जीर्ण थएल समाधिनो पुनरुद्धार २०५२ सुधीमां करावvो - एवो एक संकल्प पण सहजभावे मनमां जाग्यो.

सं. २०५०मां जगद्गुरुनी जन्मभूमिना क्षेत्र 'पालनपुर'मां चातुर्मासनो योग बन्यो. अपिरिचित क्षेत्र, पण एकमात्र आकर्षण ए के त्यां हजी जगद्गुरुनुं जन्मस्थान गणातुं मकान उपाश्रयरूपे मोजूद छे. चोमासामां पण आ सिवाय कोई ज बाबत एवी न मळी के जे त्यां अजाण्याने जवा के रहेवानुं आकर्षण बनी शके.पण ए चोमासामां जगद्गुरुना जन्मस्थान '**नाथीबाईना उपाश्रय**' ना नित्यदर्शननो सरस लाभ थयो, ए ज महत्वनुं गणाय. हुं एम विचारुं छुं के जेमना जन्मनुं तथा स्वर्गारोहणनुं - आ बन्ने स्थानो आजे पण मोजूद होय तेवा ऐतिहासिक पुरुष मात्र जगद्गुरु ज छे.

पालनपुरना वर्षावासमां 'हीरसौभाग्य' नुं वांचन करवुं आरंभ्युं. तो मुद्रित प्रतिमां आव्या करती क्षतिओ बहु खटकवा मांडी. शोधकवृत्तिनी प्रेरणाथी हीसौ०नी हस्तप्रतिओ मेळववा प्रयास कर्यो, तो हीसौ० नी बे त्रण ज प्रतिओ मळी, अने वधुमां हीसुं० तथा हील० नी कुल त्रणेक प्रतिओ सांपडी. ए बधी सामग्री तपासतां हीसुं० तथा हील०नी सामग्री हजी अप्रगट होवानुं जणातां तेनुं संपादन तथा प्रकाशन, चतुर्थ शताब्दीना अवसरने अनुलक्षीने, करवानो निश्चय कर्यो; अने मुनि श्रीरत्नकीर्तिविजयजीने ए काम भळाव्युं. तेमणे पण उल्लासभेर ए काम करवानुं स्वीकार्युं; अने तेमणे करेली दोढ वर्षनी महेनतनुं परिणाम आ ग्रंथरूपे आजे प्रगट थई रह्युं छे.

आ संपादनमां प्रथम हीसुं० काव्यनो मूळपाठ, तेनी नीचे तेनी टिप्पणी, अने ते पछी हील० (हीरसौभाग्य परनी लघुवृत्ति)नो पाठ-आ क्रमे वाचना आपवामां आवी छे. हील० प्रतिमां पण मूळ-काव्य पाठ छे ज; परंतु ते हीमु० (हीरसौभाग्य-मुद्रित)ने सर्वांशे मळतो ज पाठ छे, तेथी ते पाठ अत्रे आपेल नथी. ज्यां ज्यां हीसुं० अने हील० प्रति के हीमु० वाचनाना पाठमां फेरफार आवे छे त्यां ते पाठ योग्य सूचनपूर्वक मूळमां के पादनोंधरूपे मूकेल छे. पद्योना क्रममां फेरफार होय, कोई पद्यो/पद्य हीसुं० मां न होय एवे स्थळे ते अंगेनी नोंध के पाठ मूकवामां आवेल छे. आवां स्थानोनी तालिका बीजा खण्डमां आपवानी धारणा छे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम खण्डरूप आ प्रकाशनमां हीसुं० ना १ थी ८ सर्गो समाव्या छे. ९ थी १६/१७ सर्गो बीजा भागमां समावाशे. प्रांते आपेलां बे परिशिष्टोमां प्रथममां हीसुं०नी ईडर-भंडारनी प्रतिनी वाचना छे. ए प्रति हीसुं० ना प्रथम सर्गात्मक छे, तेमज तेमां कर्ताए स्वयं तेना पाठांतरो के रूपांतरो नोंधेलां छे. ए अक्षरो झेरोक्स नकलमां जेटला उकेली शकाया तेटला अहीं आप्या छे. परंतु, आ प्रतिनो पाठ अहीं प्रथम वखत प्रकाशमां आवे छे, जे अभ्यासीओ माटे खूब उपयोगी थशे तेवी श्रद्धा छे. द्वितीय परिशिष्टमां ८ सर्गोमां पद्योनी अकारादि-सूचि आपी छे.

आ कार्य माटे पोताना भंडारोनी प्रतिओनी झेरोक्स नकलो आपवा बदल १. डहेलानो उपाश्रय-अमदावाद, २.शेठ डो. अ. पेढीनो भंडार-भावनगर, ३. श्री जैन आत्मानन्दसभा-भावनगर, ४. ईडर-संघ भंडार-आ बधाना कार्यवाहकोनो ऋणस्वीकार करीए छीए. ईडरनी प्रतिनी नकल माटे पन्यास श्रीमुनिचन्द्रविजयजी गणि (झींझुवाडा)नो पण आभार मानवो जोईए.

आ ग्रंथनुं संपादन मुनि रत्नकीर्तिविजयजीए खूब रस अने खंतथी कर्युं छे. संपादन-संशोधन माटेनो तेमनो आ प्रथम ज प्रयास होवा छतां आ कार्यमां तेमणे प्रशस्य गति अने निपुणता दाखवी छे, ते ग्रंथनुं अवलोकन करनारने अवश्य जणाई आवशे. आम छतां 'गच्छतः स्खलनं क्वापि' ए न्याये, तेमनो आ प्रथम ज अनुभव तथा प्रयास होई क्यांय पण क्षति जणाय तो सुज्ञ जनो ध्यान दोरे तेवी तेमनी प्रार्थना, अहीं मारा द्वारा तेओ प्रगट करे छे.

ग्रंथना प्रूफवाचन तथा अन्यान्य कार्योमां मुनिश्रीविमलकीर्तिविजयजी, मुनि श्री धर्मकीर्तिविजयजी तथा मुनि श्री कल्याणकीर्तिविजयजीनो भरपूर साथ मळ्यो छे, ते पण अहीं नोंधवुं जोईए.

प्रांते, जगद्गुरुनी ४००मी स्वर्गारोहण-तिथि उजवणीरूपे अने आराधनारुपे आ ग्रंथनुं प्रकाशन थई रह्युं छे, तेनी पाछळ श्री गुरुभगवंतनी कृपा ज महत्त्वपूर्ण परिबळ छे, अने ते सदाय वरसती ज रहो तेवी प्रार्थना साथे-

भावनगर **-विजयशीलचन्द्रसूरि**

पर्युषणमहापर्व-सं. २०५२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रमः

जम्बूद्वीप-देश-नगर-नृपादिवर्णनो नाम प्रथमः सर्ग १

कुंरा-नाथी-गजस्वप्न-स्वप्नजागरिका-सखीगोष्ठ्यादिवर्णनो नाम द्वितीयः सर्गः ३६

गर्भधारण-दोहदोत्पादकथन-गर्भसमय-लक्षणाविर्भावन-जन्म-तन्महोत्सव -बालक्रीडा-
पठन-सर्वाङ्गलक्षणरूपवर्णनो नाम तृतीयः सर्गः ७२

श्री महावीरजिनेन्द्रमारभ्य श्रीविजयदानसूरीन्द्रं यावत्पट्टपरंपराप्रादुर्भावनो नाम चतुर्थः सर्गः १०९

हीरकुमारप्रतिबोध-स्वजनकृतमहोत्सव-पुराङ्गनाचेष्टित-तत्सङ्कथा-दीक्षाग्रहणो नाम पञ्चमः सर्गः १४६

दक्षिणदिग्गमन-द्विजसमीपपठन-गुरुसमीपागमन-पण्डितवाचकाचार्यपदप्रदान-
नन्दिभवन-श्रीविजयसेनसूरिजन्मदीक्षादिवर्णनो नाम षष्ठः सर्गः १९५

वर्षा-शरत्-सूर्यास्त-सन्ध्याराग-तिमिर-तारक-चन्द्र-चन्द्रिका-वर्णनो नाम सप्तमः सर्गः २३६

शासनदेवतासमागमन-तत्सर्वाङ्गवर्णनो नामाष्टमः सर्गः २५८

परिशिष्ट-१ ईडरसत्कहीरसुन्दरप्रतेर्वाचना २९७

परिशिष्ट-२ हीरसुन्दरकाव्यस्य १-८ सर्गगतपद्यानामकरादिसूचिः ३१३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

॥ श्री चिन्तामणिपार्श्वनाथाय नमः ॥

पण्डितश्रीदेवविमलगणिविरचितम्

'श्री हीरसुन्दर' महाकाव्यम्

सटिप्पणीकम् ॥

हीरसौभाग्यमहाकाव्योपरिलघुवृत्तिसमेतम् ॥

ऐँ नमः

॥ अथ प्रथमः सर्गः ॥

हीसुं० **श्रियं स पार्श्वाधिपतिः [१]प्रदिश्यात्[२]सुधाशनाधीशवतंसितांह्रिः ॥**
[३]जगन्निदिध्यासुरिव त्रिमूर्त्तिर्यत्कीर्तिरासीत्त्रि[४]दशस्रवन्ती ॥ १ ॥

श्रीपार्श्वनाथाय नमः ॥

(१) लक्ष्मीं ददातु । (२) देवेन्द्रशेखरितक्रमः । (३) त्रैलोक्यदिदृक्षुः । (४) गङ्गा ॥१॥

हील० श्रीचिन्तामणिपार्श्वाधिपतये नमः ॥

स्वोपज्ञहीरसौभाग्यकाव्यस्याव्यासशालिनीम् ।
कुर्वे वृत्तिं विदग्धानां [1]झटित्यर्थावबोधिकाम् ॥

इह हि ग्रन्थारम्भे ग्रन्थकर्त्ता स्वाभिमतार्थसिद्धये शिष्टाचारपरिपालनाय च सकलविघ्नविघातकं विशिष्टेष्टदेवतानमस्कारलक्षणं मङ्गलमाचरति । शिष्यशिक्षायै सूत्रान्तर्लिवीकरोति । तदेव सूत्रम्-

श्रियमिति - सः अद्वैतमहिमा श्रिया चतुस्त्रिंशदतिशयरूपया युक्तः । पार्श्व एवाधिपतिस्त्रिजगदीश्वरः । यद्वा-पार्श्वनामा यक्षाना(णा)मष्टचत्वारिंशत्सहस्राणां नायकः पार्श्वनामा यक्षस्तस्याधिपतिः । लक्ष्मीं प्रदेयादित्याशीः । किंलक्षणः पार्श्वाऽधिपतिः ? । सुधाममृतमश्नन्तीति, सुधा अमृतमशनं येषां वा । सुधा पीयूषमश्यते एभिरिति सुधाशना देवाः । तेषामधीशैर्वतंसितौ । 'तत्करोति तदाचष्टे' इतीनक्तप्रत्यये 'अवाप्यो' रित्यकारे लुप्ते वतंसिताविति सिद्धौ । अवतंसौ कुर्वन्तीत्यवतंसयन्ति, अवतंस्येते स्मेत्यवतंसितौ । तादृशौ चरणौ यस्य । स कः ? यत्कीर्त्तिर्निध्यातुमिच्छुरिव गङ्गा आसीत् ॥१॥

हीसुं० **[१]प्रीणाति या प्राज्ञदृशश्चकोरीर्वि[२]भावरीवल्लभमण्डलीव ।**
[३]तमस्तिरस्कारकरीं सुरीं तां [2]न[४]मस्कृतेर्गोचरयामि वाच[५]म् ॥२॥

(१) आह्लादयति । (२) चन्द्रबिम्बम् । मण्डलशब्दस्त्रिलिङ्गः । (३) तमः अज्ञानमन्धकारं च तस्य भेत्रीम् । (४) नमस्करोमि (५) भारतीम् ॥२॥

---

1. झगित्य० हीमु० । 2. भक्तेर्नते० हीमु०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० गोचरां करोमीति गोचरयामीति । 'ञिङि्त्करणे' इति ञिः । प्रणमामीत्यर्थः ॥२॥*

हीसुं० [१]यच्चक्षुषा [२]मातृमुखोऽप्यशे[३]षविशेषवित्शेखरतानुषङ्गी ।
[४]गुरुं सुराणाम[५]धरीकरोति भवन्तु ते मे[1] गुरवः प्रसन्नाः ॥३॥

(१) यत्सौम्यनयननिरीक्षणात् । (२) मूर्खोऽपि (३) निखिलविशेषज्ञोत्तंसभावसङ्गी । (४) बृहस्पतिम् (५) पराजयति ॥३॥

हील० ते गुरवः प्रसत्तिभाजो भवन्तु । यद्दृष्टिपाते तु जडोऽपि अशेषविशेषविदां शेखरतां प्राप्तः सन्बृहस्पतिं हीनीकरोति ॥३॥*

हीसु० कवित्व[१] निष्कं [२]कषितुं कवीनां येषां [३]मनीषा [४]कषपट्टिकेव ।
सन्तः प्रसन्ना मयि सन्तु [५]शुद्धाशयाः प्रवाहा इव [६]जाह्नवीयाः ॥४॥

(१) सुवर्णम् । (२) सम्यक्परीक्षितुम् । (३) मतिः (४) स्वर्णपरीक्षणपाषाणशिलेव । (५) निर्मलचित्तमध्याश्च । (६) गङ्गासम्बन्धिनः ॥४॥

हील० काव्यनिष्कं सुवर्णं परीक्षितुं येषां मतिः कषपट्टिकास्ति ते सन्तः शुद्धाशयाः शुद्धाभिप्रायाः निर्मलमध्या गङ्गाप्रवाहा इव मयि भवन्तु ॥४॥

हीसुं० [१]अमन्दगन्धैरिव [२]गन्धसारो दिशो यशोभिस्सु[३]रभीकरोति ।
[४]वृत्तं [५]व्रतीन्द्रस्य [६]तनोमि तस्य [७]कुरान्ववायाम्बरपद्मबन्धोः ॥५॥

(१) प्रचुरपरिमलैः । (२) चन्दनतरुः । (३) वासयति । (४) काव्यम् । (५) सूरीश्वरस्य । (६) करोमि । (७) कुंरासाधुवंशाकाशभास्करस्य ॥५॥

हील० अमन्दैर्बहुलैर्गन्धैश्चन्दनद्रुमो दिशः सुरभीकरोति तद्वद्यशोभिर्दिशः सुरभयति । तस्य वृत्तं तनोमि । करोमीत्यर्थः ।

"कथिताः करणे तनने ग्रथने चोत्पादने च ये पूर्वम् ।
ते धातवः स्पृशन्ति प्रायस्तुल्यार्थतामेव ॥१॥"

किं च वृत्तनायकाश्चतुर्विधा वर्ण्यन्ते । धीरोदात्ताः, धीरोद्धताः, धीरललिताः, धीरप्रशान्ताश्चात्र धीरप्रशान्तत्वेन वृत्तकरणं युक्तमित्यर्थः ॥५॥

हीसुं० [१]पारे गिरां [२]वृत्तमिदं [३]क्व [४]सूरेस्तनुप्रकाशा क्व च शेमुषी मे ।
[५]प्रक्रम्य [६]मोहादहमङ्गुलीस्त[७]त्प्रमातुमीहे चरणं मुरारेः ॥६॥

(१) पारे गिराम् वाचामगोचरं वक्तुमशक्यमित्यर्थः । (२) चरितम् । (३) कुत्र । (४) स्वल्पविषया मतिः । (५) प्रारभ्य । (६) अज्ञानात् । (७) तत्-तस्मात्कारणात् ।

★ एतच्चिह्नाङ्किताः श्लोका हीलप्रतौ हीमुवद्दृश्यन्ते । 1. श्रीगुरवः हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(८) विष्णोः पदम्-गगनम्। (९) प्रमातुमिच्छुरस्मि अङ्गुलीभिर्व्योमप्रमाणं कर्त्तुमना वर्त्ते ॥६॥

हील० गिरां पारे वाचामगोचरमिदं वृत्तं क्व, मे स्वल्पा बुद्धिः क्व । तत्तस्मात्कारणादहमङ्गुलीः प्रारभ्य विष्णुपदं मातुमिच्छामि । कश्चिदनन्तं नभः स्वाङ्गुलीर्मण्डयित्वा प्रमातुमारभते, न पुनः प्रभवति, तदज्ञानादेव ॥६॥

हीसुं० [१]यो [२]वालुका [३]हैमवतीप्रतीरे [४]प्रमाति संख्याति च [५]विप्लुषोऽब्धेः[६] ।
ताराः पुनः [७]पारयति प्रमातुं गुणान्ग[८]णेन्दोर्गणयेन्न[९] सोऽपि ॥७॥

(१) यः पुमान् । (२) गङ्गातटे । (३) सिकताकणान् । (४) प्रमाणीकरोति । (५) बिन्दून् । (६) समुद्रस्य । (७) समर्थीभवति । (८) गच्छनायकस्य । (९) इयत्तावच्छिन्न-संख्यागोचरीकुर्यात् ॥७॥

हील० यः गङ्गातटे वालुकाः प्रमाति । अब्धेर्जलबिन्दून् उत च ताराः सङ्ख्याति । सोऽपि सूरेर्गुणान्न गणयेत् ॥७॥

हीसुं० वृत्तं [१]विभोर्भा[२]षितुम[३]प्रभुर्यज्ज[४]म्भारिसूरिस्तदहं[५] [६]किमीशे ।
यः [७]शृङ्गिशृङ्गाग्रगतैर्दुरापः[८] किं [९]भूमिगस्तं विधुमा[१०]ददीत ॥८॥

(१) सूरीन्द्रस्य । (२) वक्तुम् । (३) असमर्थः । (४) बृहस्पतिः । (५) तच्चरितं भाषितुम् । (६) कथमहमीशीभवामि । (७) गिरिशिखरोपरिगतैः । (८) दुष्प्राप्य । (९) पृथ्वीस्थः । (१०) गृह्णीयात् ॥८॥

हील० विभोर्हीरविजयसूरीश्वरस्य यद्वृत्तं वक्तुं बृहस्पतिरसमर्थः तर्हि तद्वृत्तं वक्तुं अहं कथमीशे-समर्थीभवामि । अपि तु न । उक्तमर्थमर्थान्तरेण द्रढयति - यश्चन्द्रः शैलशिखरस्थैर्दुःप्रा(र्दुष्प्रा)पः तं भूचरः कथं गृह्णीयात् ॥८॥

हीसुं० [१]प्रभोः [२]प्रभावादथवा[३] कथं न प्रभुर्भवामि [४]प्रविधातुमेतत्[५] ।
[६]स्वस्सत्प्रसादा[७]त्रिदशाचलस्य [८]शिखासु [९]खेलायति किं न [१०]खञ्जः ॥९॥

इति पीठपद्धतिः ॥

(१) सूरिः(रेः) । (२) माहात्म्यात् । (३) अथवेति स्मरणगर्भे पक्षान्तरे वा । (४) कर्त्तुम् । (५) एतच्चरितम् । (६) देवताप्रसत्त्याः । (७) मेरोः (८) चूलासु । (९) क्रीडति । (१०) चरणविकलः ॥९॥

हील० तर्हि कथं करिष्यते । तत्सामर्थ्यमाह- प्रभो० अहं प्रभुप्रभावात्क्षमः । स्वःसद्देवस्तदनुग्रहान्मेरुशृङ्गे खञ्जष्कि(ञ्जः किं) न खेलति । अपि तु खेलतीत्यर्थः ॥९॥

हीसुं० [१]सुपर्वभिर्भो[२]गिभिरङ्गि[३]संघैर्लीलां स्वयं बि[४]भ्रदिव त्रि[५]लोक्याः ।
[६]प्रेयानिव स्त्रीभिरिहास्ति[७]जम्बूद्वीपोऽब्धिवेलाभिरु[८]पास्यमानः ॥१०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) देवैः पक्षे शोभनानि पर्युषणा-दीपालिकादिपर्वाणि येषाम् । (२) नागकुमारैः पक्षे भोगो राज्यादिसुखमस्त्येषामिति । (३) जनसार्थैः । (४) दधत् । (५) त्रिभुवनस्य । (६) पतिः । (७) पार्थिवः रजत-हिमरत्नमयोऽनादृताभिधानद्वीपाधिदेवावासभूतोत्तर-कुरुवर्त्तिजम्बूवृक्षेनो(णो)पलक्षितः (७) सेव्यमानः ॥१०॥

हील० सुप० । इह जम्बूद्वीपोऽस्ति । तैस्तैस्त्रिजगत्या लीलां दधत् । अब्धिवेलाभिः संसेव्यो यथा प्रियः स्त्रीभिर्निषेव्यते ॥१०॥

हीसुं० [१]नीराजयन्तीष्विव [२]चित्रभानुमादाय [३]दिग्वारविलासिनीषु ।
[४]संवर्धयन्तीषु [५]पयःपृषद्भिर्वेलासु कान्तास्विव [६]मुक्तिकाभिः ॥११॥
यं [७]शंभुशैलच्छविरोमगुच्छचन्द्रातपत्रोद्धत[९]वाहिनीकम् ।
वार्द्धेस्तरङ्गा [१०]मगधा इवोर्वीधवं स्तुवन्तीव गभीररावैः ॥१२॥ युग्मम् ॥

(१) आरात्रिकं कुर्वतीष्विव । (२) सूर्यो वह्निश्च । (३) दिग्वाराङ्गनासु । (४) वर्द्धापयन्तीषु । (५) जलकणैः (६) लघुमुक्ताफलैः । (७) कैलाशः । (८) चामरम् । (९) सेनानद्यौ । (१०) बन्दिनः । (११ । १२) युग्मम् ॥

हील० यं जम्बूद्वीपम् । अब्धिकल्लोलाः । स्तुतिकारिण इव स्तुवन्ति । किंभूतो जम्बूद्वीपः ? । कैलास-कान्तिरेव, तद्वद्वा उज्ज्वला रोमगुच्छा यस्य । तथा चन्द्रतुल्यं, स एवातपत्रं यस्य । तथोद्धता वाहिन्यः सेना नद्यो यस्य । पश्चात्कर्मधारयः । कासु सतीषु ? दिग्वाराङ्गनासु सतीषु । किंभूतासु दिग्वाराङ्गनासु ? नीराजनां कुर्वन्तीति नीराजयन्ति । नीराजयन्तीति नीराजयन्त्यस्तासु । चित्रभानुं वह्निं अर्थात्सूर्यं गृहीत्वा । पुनः कासु ? वेलासु । किंभूतासु ?। अवकिरन्तीषु । कैः ? । पयोबिन्दुभिः । यथा अन्याः कामिन्यः क्षमाकान्तं लाजैर्वर्द्धापयन्ति तद्वत् ॥११-१२॥

हीसुं० चन्द्रार्कचक्रद्वयभृत्प्र[१]भूतक्षेत्रप्रभू [२]रत्ननिधानवार्द्धिः ।
यः [३]कोऽपि चक्रीव चकास्त्यसंख्यद्वीपा[४]वनीपैः स समुपास्यमानः ॥१३॥

इति जम्बूद्वीपः ॥

(१) क्षेत्राणि भरतादिवर्षाणि कृषिभूमयश्च । (२) मणीनां निधीनां च वार्द्धिनामधेया संख्या यत्र, यद्वा रत्नोपलक्षितनिधानानि वार्द्धिः सगरचक्रिवचसा सुस्थितसुरानीतसागरो यत्र । (३) कोऽप्यद्भुतवैभवः । (४) राजभिः ॥१३॥

हील० चन्द्रा० । यः जम्बूद्वीपः चक्रीवासङ्ख्यैर्द्वीपावनीपास्तैः संसेव्यः शोभते । चन्द्रार्कयोः चक्ररूपयो-र्द्वयं बिभर्त्तीति । अथ प्रचुराणां क्षेत्राणां निधीनां प्रकर्षेणोत्पत्तिस्थानं चाथवा मणीनां निधानानां वार्द्धिः संख्या यत्र ॥१३॥

हीसुं० [१]यत्रोल्लसद्दौरिम[२]तुङ्गिमश्रीर्झरप्र[३]वृत्तिः [४]स्फुटभद्रशालः[1] ।
[५]रवीन्दुघण्टाग्रहघर्घरीको विभाति[६] हेम्नश्शिखरी करीव[3] ॥१४॥

---

1. ०शाली हीमु० । 2. करीव हेम्नः शिखरी विभाति रवीन्दुघण्टाग्रहघर्घरीमान् हीमु० । 3. हीलप्रतौ हीमु० चैते १४-१५-१६ श्लोकाः १६,१४,१५, एवं क्रमेण दृश्यन्ते ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) यत्र- जम्बूद्वीपे । (२) गौरः श्वेतपीतयोः श्वेतिम्नः पीतिम्नश्च तुङ्गत्वस्य च शोभा यत्र । (३) निर्झराणां प्रवर्त्तनं यत्र पक्षे झरवत्प्रवृत्तिर्मदप्रवाहो यत्र । (४) भद्रत्वेन भद्रजातित्वेन शोभते पक्षे वनम् । (५) सूर्याचन्द्रमसावेव घंटे तथा ग्रहा उपलक्षणान्नक्षत्र-तारा एव किङ्किण्यो यत्र । (६) मेरुः ॥१४॥

हील० यत्र द्वीपे सुवर्णगिरिर्विभाति । क इव ? करीव । किंभूतः करी मेरुश्च ? । उल्लसन्ती गौरिम्नः तुङ्गिम्नः श्रीर्यत्र । पुनर्झराणां प्रवर्त्तनं झरवत्प्रवृत्तिर्मदो यत्र अथवा स्फुटं विकसितं भद्रशालाख्यं वनं यत्र। स्फुटं प्रकटं भद्रजातित्वेन शालते शोभते । तथा सूर्याचन्द्रमसौ घण्टे ग्रहा घर्घर्यो यस्मिन् ★॥१६॥

हीसुं० [१]अन्तःस्फुरन्मौक्तिकरत्नराजीविराजिकूल्येशदुकूलभाजः ।
[२]भास्वज्जगत्यर्जुनमेखलाया [३]निशावशाऽहर्म्मणिक[1]र्णिकायाः ॥१५॥

[१]संध्यारुचीकुङ्कमपङ्किलाङ्कप्राची[2] प्र[३]तीचीक्षितिभृत्कुचायाः ।
द्वीपश्रियास्ता[२]रकतारहारे [३]किंनायको राजति [४]रत्नसानुः ॥१६॥ युग्मम् ॥

(१) मध्ये द्योतमानमुक्ताफलमणिश्रेणिशोभनशीलसमुद्र एव वसनवत्याः । (२) कपिशीर्षक-वर्जितप्राकारभित्तिः । (३) निशावशश्चन्दः "भूवलयोर्वशीवश" इति नैषधे, रविकुण्डलम् ॥१५॥

(१) सन्ध्यारागघुसृणपङ्कयुक्तउदयास्ताद्रिस्तनायाः । (२) "तारो निर्मलमौक्तिके"[4] हारे । (३) मध्यमणिः । (४) मेरुः ॥१६॥ युग्मम् ॥

हील० यत्र मेरुर्विराजते । किमुत्प्रेक्ष्यते । द्वीपलक्ष्म्यास्तारका एव तारा निर्मलमौक्तिकानि तेषां हारे मध्यमणिः । किंभूताया द्वीपश्रियाः ? अन्तर्मध्ये स्फुरतां मौक्तिकानां रत्नानां राज्या श्रेण्या विराजते इत्येवंशीलो यः कुल्येशोऽब्धि स एव दुकूलं भजतीति तस्याः । दीप्यमाना जगती एव सुवर्णमेखला यस्याः । निशा वशा यस्यैतावता चन्द्रसूर्यौ कुण्डले यस्याः । संध्याराग एव कुङ्कुमं तेन पङ्किलौ व्याप्तावङ्कौ ययोस्तादृशावुदयास्ताचलौ कुचौ यस्याः ॥१४-१५॥ युग्मम् ॥

हीसुं० यत्रार्थिनो[१]ऽर्थेशमिव प्रसार्य [२]करान्सुवर्णं [३]विवरीषवः किम् ।
[४]प्रदक्षिणागोचरतां नयन्ति [५]ज्योतिर्गणा गैरिकसा[६]नुमन्तम् ॥१७॥ इति मेरुः ॥

(१) धनवन्तम् । (२) किरणान् हस्तांश्च । (३) याचितुमिच्छवः । (४) प्रदक्षिणीकुर्वन्ति । (५) ग्रहनक्षत्रताराव्रजाः । (६) मेरुः ॥१७॥

हील० यत्रा० । यत्र द्वीपे ग्रहनक्षत्रतारासमूहाः सुमेरुं प्रदक्षिणयन्ति । किमुत्प्रेक्ष्यते । किरणान्प्रसार्य सुवर्णं वरीतुमिच्छवः । यथार्थिनो याचका धनिनं अनुकूलयन्ति ॥१७॥ इति मेरुः ॥

---

1. ०कुण्डलायाः हील० । 2. पूर्व उदयाचल इति प्रतिपार्श्वे टि० । 3. आथमणोऽगस्ताचल इति प्रतिपार्श्वे टि० ।
4. लमौक्तिके इत्यनेकार्थः हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]सवेशकेशायितकूलिनीशो [२]ललामलीलायितसिद्धशैलः ।
[३]द्वीपा[1]वनीन्दोरिव भालपट्टो यस्मिन् व्यभाद्भारतनाम वर्षम् ॥१८॥

(१) समीपे केशपाशवदाचरितो लवणसमुद्रो यस्य । (२) तिलकलीलावदाचरितः शत्रुञ्जयो यस्य । (३) द्वीपराजस्य ॥१८॥

हील० सवे०। यस्मिन्द्वीपे भरतक्षेत्रं शोभते स्म । इवोत्प्रेक्ष्यते । द्वीपलक्ष्मीभालपट्टः । किंभूत ?। समीपे केशसमूह इवाचरितः सरिदीशो यत्र । तिलकशोभया चरितः शत्रुञ्जयो यत्र ॥१८॥

हीसुं० [१]पराजितद्वीपततिप्रतीष्टचिरत्नरत्नाद्युपदागणेन ।
द्वीपेन पृथ्वीपतिनेव [२]वर्षं व्यधायि धामो[३]पनिधेरिवैतत् ॥१९॥

(१) निर्जितद्वीपावलीभ्यो गृहीतचिरकालोत्पन्नमणिप्रमुखप्राभृतप्रकरेण 'प्रतीष्टकामज्वलदस्त्रजकं'[६] चिरत्नरत्नाकि(चित)मुच्चित' मिति नैषधे । (२) क्षेत्रं । (३) निक्षेपस्य ॥११॥

हील० परा० जम्बूद्वीपेन एतद्भरतक्षेत्रं उपनिधेर्न्यासस्य धाम गृहं व्यधायि चक्रे । इव यथा पृथ्वीपतिना राज्ञा निक्षेपस्य निकेतनं क्रियते । किंभूतेन द्वीपेन ? । पराजिता द्वीपानां ततिः श्रेणी तस्याः सकाशात्प्रति(ती)ष्टो गृहीतश्चिरत्नानि चिरकालोत्पन्नानि रत्नानि तदादिरुपदाप्रकरो येन स तेन ॥१९॥

हीसुं० वैताढ्यशैलो [१]विपुलां [२]द्विफालां विनिर्मिमीते स्म [३]निजेन यस्य ।
[४]यमीभ्रमीभङ्गिविभूष्यमाणां [५]स्त्रैणस्य सीमन्त इव [६]प्रवेणीम् ॥२०॥

(१) भूमीम् । (२) द्विभागाम् । (३) आत्मना । (४) यमुनाजलभ्रमणीरचनया मन्द्यमानां 'अपि भ्रमीभङ्गिभिरावृताङ्ग' मिति नैषधे, भ्रमीशब्दो दीर्घः । (५) स्त्रीगणस्य । (६) कबरी ॥२०॥

हील० वैता० । वैताढयगिरिभूमिं द्विभागां कृतवान् । केन । निजेनात्मना । किंभूतां विपुलां प्रवेणीं च । यस्या यमुनाया भ्रमणं तस्या भङ्ग्यो विलासास्ताभिस्तद्वद्वालङ्क्रियमाणाम् । यथा स्त्रीणां समूहस्य कबरीं द्विभागां कुरुते । 'केशवेषे सीमन्तः' सिद्धान्तकौमुद्यां शकन्ध्यादिमध्ये पाठात् । अन्यत्र सीमान्त इत्येव स्यात् ।

हीसुं० वैताढयशैलेन विभ[१]ज्यमानावुभौ विभागौ भरतस्य भातः ।
[२]द्वीपावनीपं किमु[३]पेत्य भूत्या जितौ [४]भजन्तौ [५]फणिनाकिलोकौ ॥२१॥

[2]इति भारतम् ॥

(१) विभागीक्रियमाणौ । (२) द्वीपराजम् । (३) आगत्य । (४) सेवमानौ । (५) पातालस्वर्गौ ॥

हील० वैताढयशैलेन० इति सुगमम् ॥२१॥

---

1. द्वीपेन्दिराया इव हीमु० । द्वीपेन्दिराया इत्यपि पाठः इति हीलप्रति पार्श्वे टि० । 2. इति भरतक्षेत्रस्य द्वौ भागौ हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]स्वच्छन्दकेलीतरलीभवन्त्याः [२]स्रस्तं [३]शिरस्तो भुवि वर्षलक्ष्म्याः ।
किमुत्तरीयं [४]मरुतोत्तरङ्गीकृतं सितं यत्र [६]बभस्ति गङ्गा ॥२२॥ [1]इति गङ्गा ।

(१) स्वैरक्रीडया चपलीभवन्त्या 'केलीषु तद्गीतगुणान्निपीये'ति नैषधे, केलीशब्दः दीर्घः । (२) पतितम् । (३) मस्तकात् । (४) वायुना । (५) चञ्चलीकृतम् । (६) भाति ॥२२॥

हील० **स्वच्छन्द०** । यत्र भरतक्षेत्रे गङ्गा भासते । किमुत्प्रेक्ष्यते । स्वेच्छया क्रीडाभिश्चञ्चलाजायमानायाः । क्षेत्रलक्ष्मीमस्तकात्पतितम् । मरुता तरङ्गयुक्तं कृतं प्रावरणम् ॥२२॥

हीसुं० तद्द[१]क्षिणार्द्धे [२]सुरगेहगर्व्वसर्व्वंकषो [३]गूर्ज्जरनीवृदास्ते ।
श्रियेवरन्तुं [४]पुरुषोत्तमेन [५]जगत्कृताकारि [६]विलासवेश्म ॥२३॥

(१) दक्षिणभरते (२) स्वर्गाभिमानसर्वापहारी । (३) गूर्जरनामा देशः सत्तायामस्त्यास्ते इति । (४) पुरुषेषु श्रेष्ठेन- नारायणेन च । (५) धात्रा । (६) क्रीडागृहम् ॥२३॥

हील० **तद्द०** । तस्य भरतस्य दक्षिणपार्श्वे । स्वर्गगर्वसर्वापहारी गुर्ज्जर इति नाम्ना नीवृद्देशो वर्तते । इवोत्प्रेक्ष्यते । सृष्टिकर्त्रा विभुना सह रहः क्रीडितुं लक्ष्म्या केलिगृहं कृतम् ॥२३॥

हीसुं० अशेषदेशेषु [१]विशेषितश्रीर्यो [२]मञ्झिमानं वहते स्म देशः ।
[३]आक्रान्तदिक्चक्र इवाखिलेषु [४]वसुंधराभर्तृषु [५]सार्वभौमः ॥२४॥

(१) विशेषप्रकारं प्राप्ता श्रीर्लक्ष्मीः शोभा वा यस्य । (२) मनोहरताम् । (३) स्वभुजबलविजितदिग्निकरः । (४) राजसु । (५) चक्रवर्त्ती ॥२४॥

हील० यो गूर्जरमण्डलः । अशेषदेशेषु विशेषयुक्ता श्रीः सम्पच्छोभा वा यस्य स । अत्र समासान्तविधेरनित्यत्वात्कप्रत्ययाभावः । एतादृशो मञ्जुनो भावं वहते स्म । इव यथा भूपेष्वखिलेषु सार्वभौमः चक्रवर्त्ती । किंभूतो गूर्जरः सार्वभौमश्च ? । आक्रान्तं महत्वान्महिम्ना वा व्याप्तं चर्तुदिङ्मण्डलं येन स ॥२४॥

हीसुं० [१]सुस्वामिभाजो [२]विबुधाभिरामास्सजिष्ण[३]वो यत्र पुरः स्फुरन्ति ।
धृता दधानेन [४]दिवाभ्य[५]सूयां येनामरा[६]वत्य इवाऽप्रमे[७]याः ॥२५॥

(१) स्वामी-राजा कार्त्तिकेयश्च । (२) विबुधाः पण्डिता देवाश्च । (३) जयनशील इन्द्रश्च । (४) स्वर्गेण । (५) ईर्ष्याम् । (६) इन्द्रपुर्यः । (७) असंख्याः ॥२५॥

हील० **सुस्वा०** यत्र देशे पुरः नगर्यः राजन्ति । इवोत्प्रेक्ष्यते । दिवा स्वर्गेन सहेर्ष्यां दधता येन गूर्जरेणेन्द्रनगर्यो धृताः । किंभूता नगर्यः इन्द्रपुर्यश्च ?। सुशोभनं स्वामिनं राजानं पुरन्दरं स्वामिकार्त्तिकं वा भजन्तीति । विशेषेण बुधैर्विबुधैर्देवैर्वा रम्याः । तथा सह जिष्णुभिर्जयनशीलैर्जिष्णुना शक्रेणं कृष्णेन च वर्त्तन्ते यास्ताः ॥२५॥

---

1. इति गङ्गा । इति भरतक्षेत्रम् हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० **शत्रुञ्जयाद्रेस्तलहट्टिकायां यदा[१]र्षभिर्वास[२]यति स्म पूर्वम् ।**
[३]द्विषन्निव क्षोणिभृतां विनीतां यस्मिंस्तदानन्दपुरं समस्ति ॥२६॥

(१) भरतचक्री (२) स्थापयामास । (३) इन्द्रः ॥२६॥

शत्रुं० । भरतचक्री यन्नगरं पूर्वं वासयति स्म । यथा गिरिरिपुर्विनीतां वासितवान् । धनदेनेति शेषः । तत् **आनन्दनाम्ना पुरम्** । इदानीं **बृहन्नगरनाम्ना** पुरम् । यस्मिन्गूर्जरमण्डले विभाति ॥२६॥

हीसुं० **यत्तुङ्गतारङ्गगिरौ [१]गिरीशशैलोपमे कोटिशिला समस्ति ।**
स्वयंवरोर्वीव [२]शिवाम्बुजाक्षीपाणिग्रहे [३]कोटिमुनीश्वराणाम् ॥२७॥

(१) कैलाशसदृशे । (२) सिद्धिवधूविवाहे । (३) कोटिसंख्यानां साधूनाम् ॥२७॥

हील० **यतुङ्ग०** । कैलाशोपमे यस्य देशस्याभ्रंलिहे **तारङ्गनाम्नि** पर्वते **कोटिशिला** विद्यते । इवोत्प्रेक्ष्यते कोटियतीनां मुक्तिमानिनीविवाहे स्वयंवरमण्डपमेदिनी ॥२७॥

हीसुं० **यत्पर्व्वते [१]कल्पितसप्तभूमी [२]राजर्षिणाकार्यत [३]जैनगेहः ।**
इवाधिरोढुं [४]शिवचन्द्रशालां निश्रेणिकारोहण[५]सप्तकाङ्का ॥२८॥

(१) रचिताः सप्तक्षणा भूमयो यत्र । (२) कुमारपालेन । (३) प्रासादः । (४) मुक्तिरूपोपरि-गृहम् । (५) सोपानसप्तकमङ्के क्रोडे यस्याः ।

हील० **यत्प०**। यस्मिन्पर्वते **तारङ्गे कुमारपालेन** रचितसप्तभूमीकः जैनप्रासादः शिल्पिभिरकार्यत निर्मापितः । इवोत्प्रेक्ष्यते । शिवशिरोगृहं चटितुम् । आरोहणानां सोपानानां सप्तकमङ्के यस्यास्तादृशी अधिरोहिणी कारितेव ॥२८॥

हीसुं० **[1]ग[१]म्भीरताधःकृतवार्द्धिनेवे(वो)[२]पदीकृतं [३]दन्तिनमुद्वहन्तम् ।**
राजर्षिरस्मिन्वि[४]जयाङ्गजातं तीर्थाधिपं स्थापयति स्म चैत्ये ॥२९॥

(१) गाम्भीर्यजिनसागरेण । (२) ढौकितम् । (३) गजम् । (४) अजितनाथम् ॥२९॥

हील० **गम्भी०। कुमारपालः** अस्मिन्तारङ्गचैत्ये**ऽजितनाथं** निवेशयामास । किंकुर्वन्तम् । लाञ्छनगजं उद्वहन्तम् । किमुत्प्रेक्ष्यते । गाम्भीर्येण पराभूतेन समुद्रेण ढौकितम् ॥२९॥

हीसुं० **चैत्येन चूडामणिनेव [१]शीर्षं विभूष्य राजर्षिर[२]मुष्य शृङ्गम् ।**
[३]सिद्धाचलस्येव [४]सुमङ्गलाभूस्तीर्थत्वमुर्व्यां [५]प्रथयाञ्चकार ॥३०॥ इति तारङ्गगिरिः ॥

(१) मस्तकम् । (२) तारङ्गगिरेः । (३) शत्रुञ्जयस्य । (४)भरतचक्री । (५) विस्तारयामास ॥३०॥

हील० **चैत्ये०** राजर्षिरमुष्य तारणगिरेस्तीर्थत्वं पृथिव्यां विस्तारयामास । यथा **भरतचक्री शत्रुञ्जयस्य**

---

1. गम्भीर० हीमु० ।

तीर्थत्वं विस्तारयति । किं कृत्वा ? । चैत्येन शृङ्गं विभूष्य । मुकुटेन शीर्षं भूष्यते तथैव ॥३०॥

हीसुं० **देशे पुनस्तत्र समस्ति शंखेश्वरोऽन्तिक[१]स्थायुकनाग[२]नाथः ।**
[३]धात्रा [४]धरित्र्यां जगदि[५]ष्टसिद्ध्यै मेरोरिवा[६]दाय सुरद्रुरुप्तः ॥३१॥

(१) तिष्ठतीत्येवंशीलः । (२) धरणेन्द्रः । (३) ब्रह्मणा । (४) भूमौ । (५) ईहितपूरणाय । (६) उत्खाय ॥३१॥

हील० गूर्जरदेशे धरणेन्द्रसेव्यः **शङ्खेश्वरो** जागर्त्ति । इवोत्प्रेक्ष्यते । मेरोः सकाशात्लात्वा । विधिना । कल्पतरुः प्ररोपितः । किमर्थम् ? जगदिष्टसिद्ध्यै । तात्स्थात्तद्व्यपदेश इति न्यायाज्जगज्जनानामभिलषितपूर्त्तये ॥३१॥

हीसुं० **विद्याधरेन्द्रौ [१]विनमिर्नमिश्च [२]यद्वं(द्विं)बमभ्यर्चयतः स्म पूर्वम् ।**
स्वर्गे ततोऽपूजि [३]बिडौजसा [य]त् [४]स्वधाम्न एव स्पृहयेव सिद्धेः ॥३२॥

(१) ऋषभजिनसेवासन्तुष्टधरणेन्द्रदत्तगौरी-प्रज्ञप्तीप्रमुखविद्या-वैताढ्यदक्षिणोत्तरश्रेणिद्वयैश्वर्यौ नमि-विनमिनामानौ खेचरेन्द्रौ । (२) पार्श्वप्रतिमाम् । (३) इन्द्रेण । (४) स्वर्गादेव ॥३२॥

हील० **विद्या०**। नमिविनमिराजानौ **श्रीशङ्खेश्वरपार्श्वनाथ**प्रतिमां पूजयतः स्म । तदनन्तरमिन्द्रेण पूजितम् । ईवोत्प्रेक्ष्यते । स्वर्गादेव, मनुष्यावतारं विनैव वैक्रियशरीरेणैव मुक्तेर्वाञ्छयेव ॥३२॥

हीसुं० **तेनाथ मुक्तं [१]गिरिनारिशृङ्गेऽधि[२]गम्य [३]माणिक्यमिवामराणाम् ।**
नीत्वात्मधाम्नो[४]र्विधुपद्मपाणी यदार्चतां [५]निर्वृतिमीहमानौ ॥३३॥

(१) काञ्चनबलानकनाम्नि । (२) ज्ञात्वा । (३) चिन्तामणिमिव । (४) चन्द्ररविमण्डले रविः (?) । (५) मुक्तिम् ॥३३॥

हील० **तेना०**। अथ तेन शक्रेण कियत्कालं गिरिनारिगिरेः **काञ्चनबलानकाख्यशृङ्गे** यत्बिम्बं मुक्तं सत् चन्द्रार्कौ चिन्तारत्नमिव प्राप्य पुनरात्मगृहयोरानीय आर्चताम् ॥३३॥

हीसुं० **[१]ताभ्यां [1]पुनः स्थापितमुज्जयन्ते पार्श्वं स्वसर्वस्वमिवा[२]वसाय ।**
[३]आखण्डलः कुण्डलिनां क्रमेण [४]सभाजनायान[२]यति स्म वेश्म ॥३४॥

(१) शशिसूर्याभ्याम् । (२) ज्ञात्वा । (३) नागेन्द्रः । (४) पूजनाय ॥३४॥

हील० **ताभ्यां०** । नागेन्द्रः पार्श्वनाथमात्मगृहे अर्चनाय आनयति स्म । किं कृत्वा ? । चन्द्रार्काभ्यां स्थापितं स्वकीयनिधिमिव पार्श्वं ज्ञात्वा ॥*३४॥

हीसुं० **गिराथ नेमे अ[र[१]]विन्दनाभिरु[२]पास्य [३]पद्माप्रियमष्टमेन ।**
आनाययत्तेन जिनं तमा[३]त्मद्विषज्जयं मूर्तिमिवाश्रयन्तम् ॥३५॥

---

1. **ततः** हीमु० । 2. **नयदात्मधाम्नि** हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) नारायणः कातन्त्रवार्त्तिकेऽप्युक्तम्, 'अरविन्दनाभि' रित्यादयो माघादिकाव्योक्ताः प्रयोगाः शिष्टैरभ्युपगम्याः । (२) संसेव्य । (३) धरणेन्द्रं पूर्वव्यावर्णितस्वरूपम् । (४) जरासन्धजयमिव ॥३५॥

हिल० गिरा० । अरविन्दनाभिर्नारायणो नेमिनाथवाचाऽष्टमभक्तेन धरणेन्द्रमाराध्य तेन धरणेन्द्रेन(ण) तं पूर्वव्यावर्णितं पार्श्वजिनमानाययत् । उत्प्रेक्ष्यते । मूर्त्तिमन्तं स्ववैरिणां विजयमिव ॥३५॥

हीसुं० ततो जरा येन [1]यदु(दू)द्वहानां न्यवारि [2]वारा [3]स्नपनोद्भवेन ।
[4]बाणस्य कुष्ठं वपुषस्त्वि[5]षेव [6]राजीविनीजीवितवल्लभेन ॥३६॥

(१) यादवानाम् । (२) जलेन । (३) स्नपनजनितेन । (४) बाणनाम्नः कवेः । (५) किरणेन । (६) रविणा ॥३६॥

हील० ततो० ततोऽत्रागमनानन्तरं येन श्रीपार्श्वदेवेन स्नात्रोत्पन्नेन जलेन यदुनन्दनानां जरा निवारिता । यथा कमलिनीपतिना निजकान्त्या बाणकवेः शरीरात्कुष्टरोगो निराकृतस्तद्वत् ॥३६॥

हीसुं० यत्रा[1]र्हताध्मायि[2] [3]निजध्वजिन्यास्त्रा[4]णाय कम्बुर्भ्रमता समन्तात् ।
[5]तत्राच्युतेनारिजयप्रशस्तिरिवात्मजः शंखपुरं [6]न्यधायि ॥३७॥

(१) अरिष्टनेमिना । (२) वादितः । (३) स्वसेनायाः । (४) रक्षणाय । (५) कृष्णेन । (६) वासितम् ॥३७॥

हील० यत्रा० । यत्र स्थाने श्रीनेमिनाथेन सेनासमन्ताद्भ्रमता सता निजसेनारक्षणाय शङ्खो वादितः तत्र स्थाने विष्णुना शङ्खपुरं वासितम् । उत्प्रेक्ष्यते । निजवैरिणां जयस्य प्रशस्तिर्लिखिता ॥३७॥

हीसुं० [1]वसुन्धरायामिव [2]वैजयन्तं निर्म्माप्य चैत्यं [3]सुरगोत्रमित्रम् ।
निवेशयामास [4]सुवर्णबिन्दुरा[5]नन्दसान्द्रोऽत्र[6] जिनेन्द्रबिम्बम् ॥३८॥

(१) स्वर्गे यथा इन्द्रप्रासादस्तथा भूमाविव । (२) इन्द्रगृहम् । (३) मन्दरोत्तुङ्गम् । (४) नारायणः (५) प्रमोदपल्लवितः । (६) शङ्खपुरे ॥३८॥

हील० वसु०। सुवर्णबिन्दुर्नारायणः अत्र चैत्ये पार्श्वप्रतिमां स्थापितवान् । किं कारयित्वा ? मेरोर्मित्रं सादृश्येन चैत्यं विधापयित्वा । इवोत्प्रेक्ष्यते । पृथिव्याः इन्द्रप्रासाद इव । किंभूतः सुवर्णबिन्दुः । ? प्रमोदमेदुरः ॥३८॥

हील०→ स्वकारितेशाचलचारुचैत्ये निवेशितः सज्जनमन्त्रिणा यः ।
स रोपितः स्वःशिखरीव सौधाङ्गणेऽस्य जज्ञेऽखिलसिद्धिदायी ॥३९॥

स्व० । आत्मकारिते कैलाशसुन्दरे चैत्ये सज्जननाम्ना मन्त्रिणा स्थापितम् । शङ्खेश्वरपार्श्वनाथः । अस्य मन्त्रिण एव । सिद्धिं ददातीत्येवंशीलो । जज्ञे जातः । यथा गृहाङ्गणद्वारे केनचित्प्ररोपितसुरतरुस्तस्यैव समस्तवाञ्छितार्थप्रदाता भवति तथैव । 'प्ररोपित' इत्यपि पाठे तात्पर्यार्थः ॥३९॥←

→← एतदन्तर्गतः पाठो हीसुंप्रतौ नास्ति ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

हील० →निःस्वादिवैश्वर्यमनाप्य झंझूपूरार्कतो दुर्जनशल्यभूमान् ।
रूपं यतः स्मारमिवाप्य देवसद्मेव यच्चैत्यमचीकरच्च ॥४०॥

निःस्वा०। निःस्वाद्यथा एश्वर्यं नाप्यते तद्वज्**झंझूपुरे** ग्रामे सूर्यतः रुपं अप्राप्य । यतः पार्श्वनाथात्स्मरसदृशं रुपं प्राप्य **दुजणसाल**नामा भूपः देवविमानमिव श्रीपार्श्वचैत्यं शिल्पिभिः कारयमास । च पुनरर्थार्थः ॥४०॥←

हीसुं० [१]पद्मावतीप्राणपतिः [२]प्रसूनाशनीभविष्णुश्चरणारविन्दे ।
[४]तन्तन्यते यन्महिमानमुर्व्यां [५]सरोजसौरभ्यमिवाहिकान्तः ॥३९॥

(१) धरणेन्द्रः । (२) भ्रमरीभवनशीलः । (३) पदपद्मे । (४) अतिशयेन तनोति । (५) कमलपरिमलम् । (६) वायुः ॥३९॥

हील० **पद्मा०**। क्रमकमले प्रसूनाशनो भृङ्गः स भविष्णुर्भवनशील एतादृशधरणेन्द्रः पृथिव्यां यस्य महिमानमतिशयेन विस्तारयति । यथा सर्पवल्लभो वायुः कमलसौगन्ध्यं विस्तारयति, तद्वत् ॥४१॥

हीसुं० यो [१]ध्वंसतेऽष्टापि [२]दरान्नराणां [३]व्यालान्ववायानिव [४]वैनतेयः ।
[५]शयेशयालूः पुनरष्टसिद्धीः [६]प्रणेमुषां यः [७]प्र[1]थयाम्बभूव ॥४०॥

(१) नाशयति । (२) भयानि । (३) नागकुलानीव (४) गरुडः । (५) पाणिपद्मस्था । (६) नमतां जनानाम् (७) विस्तारयति स्म ।

हील० यः **शङ्खेश्वरपार्श्वनाथः** नराणां मनुष्यानां(णां) अष्टावपि भयानि नाशयति । यथा गरुडः व्यालकुलानि वासुकि१ अनन्त२ तक्षक३ कर्क्कोलक४ पद्म५ महापद्म६ शङ्ख७ कुलीशशि८नामानि विध्वंसते । पुनर्यो दयावान्निजपादाब्जे नम्रीभूतानां अष्टसिद्धीः करे शयनशीला हस्तस्थिताः कुरुते सम्पादयति ॥*४२॥

हीसुं० [१]ऊर्ज्जस्वलत्वं [२]कलयन्कलौ यो निधिर्महिम्नां महसामिवांशुः[३] ।
जागर्त्ति शंखेश्वरपार्श्वनाथः [४]श्रेयःपुरीप्रस्थितपांथसार्थः ॥४१॥

इति शंखेश्वरपार्श्वनाथः ॥

(१) स्फूर्त्तिमत्ताम् । (२) धारयन् । (३) सूर्यः (४) मुक्तिनगरीं प्रति चलितपथिकानां सार्थ इव ॥४१॥

हील० **ऊर्ज्जस्व०** । यः **शङ्खेश्वरपार्श्वनाथः** स्फूर्तिमत्तां धारयन्सन् जागर्त्ति । किंभूतः ? । माहात्म्यानां स्थानं । यथा सूर्यः प्रतापानां निधानं भवति । पुनः किंभूतः ?। श्रेयःपुरी मुक्तिनगरी तत्र चलिता ये पान्था भव्याध्वगास्तेषां सार्थ इव सार्थः ॥४३॥

→← एतदन्तर्गतः पाठो हीसुंप्रतौ नास्ति । 1. कुरुते कृपालुः हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]तत्रापि च स्फूर्त्तिमियर्त्त्यऽपूर्वां श्रीस्थंभने स्थम्भनपार्श्वदेवः ।
[२]व्यध्वंसि [३]धन्वन्तरिणेव येन [४]कुष्टोपतापोऽभयदेवसूरेः ॥४२॥

(१) अपि च पुनः तत्र गूर्जरमण्डले । (२) निवारितः (३) धन्वन्तरिनामा वैद्यः । (४) कुष्टरोगः ॥४२॥

हील० **तत्रा०**। तत्र गूर्जरमण्डले **श्रीस्थम्भने स्थंभनपार्श्वः** असाधारणीं स्फूर्त्तिं प्राप्नोतीति । येन पार्श्वनाथेन नवाङ्गीवृत्तिविधातुरभयदेवसूरेः कुष्टोपद्रवः निरस्तः । यथा धन्वन्तरिवैद्येन कुष्टादिरोगो विध्वंस्यते ॥४४॥

हीसुं० [१]स्वक्षारतां [२]सूनुकलङ्किता च [३]मार्ष्टुं क्रमाम्भोजरजोमृतेन ।
[४]वेलाछलाद्यं जलधिर्द्विवेल[५]मुत्कण्ठितो[६] नन्तुमिवाभ्युपैति[७] ॥४३॥

[1]इति स्थम्भनपार्श्वः ।

(१) आत्मनो लवणत्वम् । (२) चन्द्रस्य कलङ्कमत्वम् । (३) स्फेटयितुम् । (४) जलवृद्धिव्याजात् । (५) द्विर्वारम् । (६) उत्सुकितः । (७) समायाति । ४३॥

हील० **स्वक्षार०**। समुद्रः उत्कण्ठितः सन् वारिवृद्धिव्याजाद्द्विवारं यं **स्थंभनपार्श्वनाथं** नन्तुं आगच्छति । किंकर्त्तुम् ? । क्रमकमलरजोऽमृतेन कृत्वा स्वलवणभावं अपि च चन्द्रकलङ्कं अपनेतुमिव ॥४५॥

हीसुं० तीर्थानि [१]तीर्थाधिपपावितानि [२]परस्सहस्राण्यपराण्यपीह ।
स्फूर्तिं परां बिभ्रति पूर्वदेशे [३]जिनेशकल्याणकशालिनीव ॥४४॥[2]

(१) जिनेन्द्रैः पवित्रीकृतानि । (२) सहस्रात्पराणि । (३) तीर्थकृतां च्यवन-जन्म-दीक्षा केवल-सिद्धिगमनस्थानकरूपैः कल्याणकैः शालते इत्येवं शीले ॥४४॥

हील० **तीर्था०**। इहं देशे अपि पुनः अन्यानि अपराणि सहस्रात्पराणि अनेक सहस्रसङ्ख्यानि तीर्थानि पुण्यस्थानानि महिमानं कलयन्ति । किंभूतानि ? । जिनप्रतिमाभिः पावितानि । पवित्रितानीत्यर्थः । कस्मिन्निव । पूर्वदेश इव । यथा पूर्वदेशे सहस्रसङ्ख्याकानि तीर्थानि स्फुरन्ति । किंभूते पूर्वदेशे ?। जिनेशानां कल्याणकैः शालते शोभते इत्येवंशीलस्तस्मिन् ॥४६॥

हीसुं० [३]नवोदयं[१] हीरकुमारचन्द्रं निरीक्षितुं कौतुकिनीसमेता ।
स्वयं [१]स्वयंभूतनया किमेषा सरस्वती यत्र विभाति सिन्धुः ॥४५॥

(१) उदयो जन्म-उद्गमनं च । (२) विधातुः पुत्री ॥४५॥

हील० **नवोदयं०**। यत्र देशे सरस्वती नदी विभाति । किमुत्प्रेक्ष्यते । नवो नूतनो, भाविनि भूतोपचारादुदयो यस्य तं तथोक्तं **हीरनामा** कुमारेषु कुमाराणां मध्ये दीप्यमानत्वाच्चन्द्रम् । तं निरीक्षितुम् । कौतुकं विद्यते यस्या सा कौतुकिनी कुतूहलाकलिता समेता । एषा किं स्वयंभुवो ब्रह्मणस्तनया पुत्री सरस्वती समागतेव । अन्यापि पुरन्ध्री कुतूहलान्नवोदयं चन्द्रं प्रेक्षितुं समेति ॥४७॥

---

1. इति स्थम्भनपार्श्वदेवः हील० । 2. इति पुण्यस्थानानि हील० । 3. अथ क्रीडास्थानानि । नवोदयं० हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]कपोलपालीमृगनाभिपत्रलताङ्कितैश्च [२]द्विजचन्द्रिकाङ्कैः ।
[३]क्रीडन्मृगाक्षीवदनैर्बभू(भौ) या सहस्रचन्द्रेव विरञ्चिपुत्री ॥४६॥

(१) गल्लस्थलेषु-कस्तूरिकापत्रवल्लिरेव अन्तश्चिह्नं जातमेष्विति । (२) दशनकान्तियुक्तैः, द्विजाश्चन्द्रिका च क्रोडे येषां ते । (३) जलकेलिकुर्वन्ती(ती)नां कान्तानां वदनैः ॥४६॥

हील० कपो० या विरञ्चिसुता नदी सहस्रचन्द्रा इव जाता । कैः कृत्वा ? । गल्लस्थलेषु कस्तूरिकापत्रलताकलितैः पुनर्दन्तकान्तिसहितैश्चन्द्रवदनानां वदनैः कृत्वा ॥४८॥

हीसुं० [१]यूनो [२]रिरंसोपगतान्स[३]कान्तान्हंसस्वनैः [४]स्वागतमुच्चरन्ती ।
तरङ्गहस्तस्थितपङ्कजैर्या विश्राणयामास [५]किमर्थमर्घ्यान्[६] ॥४७॥

सरस्वती नदी । (१) तरुणान् । (२) रन्तुमिच्छया । (३) समेतान्-स्त्रीयुतान् । (४) सुखेनागमनं-कुशलप्रश्नम् । (५) पूजाम् । (६) पूजार्हान् ॥४७॥

हील० या सरस्वतीनदी । स्वकल्लोला एव हस्तास्तेषु स्थितैः पङ्कजैः कृत्वा । किमुत्प्रेक्ष्यते । रन्तुमिच्छया आगतान् । पुनः स्त्रीसहितान् । पुनः पूजायोग्यान् । एतादृशान्यूनः प्रतिहंसशब्दैः सुखेनागतमिति उच्चरन्ती सती कमलैः कृत्वा पूजाविधिं दत्ते स्म ॥४९॥

हीसुं० [१]विधोर्धिया मन्दमरन्दलीनशिलीमुखोन्मीलितपुण्डरीकम्[२] ।
वीक्ष्याभितो यत्र चकोरिकाभिरभ्रामि[३] [४]पीयूषरसाभिकाभिः ॥४८॥[1]

(१) बहुलपरिमलपानार्थं मध्यलीनमधुकरम् । (२) स्मेरश्वेतकमलम् । (३) भ्रान्तम् । (४) सुधारसकाङ्क्षिणीभिः ॥४८॥

हील० विधोर्धि०। व्याख्या । यत्र सरस्वत्यां सरिति अमन्दमकरन्दार्थं लीना भ्रमरा यत्रैवंविधं विकसितं सिताम्भोजं विलोक्यामृतरसकामुकाभिर्ज्योत्सनाप्रियजायाभिश्चन्द्रबुद्ध्या समन्तात् भ्राम्यते स्म ॥५०॥

हीसुं० [१]मुक्तालताङ्केव [२]निजोपकण्ठश्रेणीभवल्लक्ष्मणपक्षिलक्षैः ।
[३]शिञ्जानमञ्जीरवतीव [४]कूलानुकूलकूजत्कलहंसिकाभिः ॥४९॥
[१]शि[2]लीमुखाश्लेषिसरोरुहेव सनेत्रवक्त्रश्रियमाश्रयन्ती ।
[२]रथा[3]ङ्गनामद्वितयेन तुङ्गपीनस्तनद्वन्द्वमिवोद्वहन्ती ॥५०॥
[१]रोमावलीं [२]शैवलवल्लीभिरिवादधानापि[३] च यत्र देशे ।
[४]स्वकेलिलोलान्वरवर्णिनीव[५] युवव्रजान्साभ्रमती[६] तनोति ॥५१॥ त्रिभिर्विशेषकम् ।
[4]इति नदी ।

(१) हारयुक्तेव । (२) तटे पङ्क्तिभूतसारसैः । (३) शब्दायमाननूपुरयुक्तेव । (४) तटे कर्णसुखकृत्क्वणन्मरालीभिः ॥४९॥

1. इति सरस्वती नदी हील० । 2. भ्रमर इति प्रतिपार्श्वे टि० । 3. चक्रवाकस्तन इति प्रतिपार्श्वे टि० । 4. इति साभ्रमती हील०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) भ्रमरयुक्तपद्मनेव । (२) चक्रवाकमिथुनेन ॥५०॥

(१) रोमराजीः । (२) शेवालमालाभिः । (३) अपि चे'ति पुनरर्थे-एका सरस्वती नदी अपरा साभ्रमतीति । (४) स्वस्यां विषये क्रीडायां लालसान् (५) प्रधानस्त्री । (६) नामनदी ॥५१॥

हील० मुक्ताल०। अपि च। यत्र देशे साभ्रमती नदी प्रधानस्त्रीव तरुणगणान्स्वस्मिन्विषये क्रीडाचपलान्करोति। किंभूता साभ्रमती ?। निजतटवर्त्तिनो लक्ष्मणाः सारसविहङ्गमास्तेषां लक्षैः। मुक्तालताङ्केव मुक्ताहारः पूर्वभागे यस्याः सा। पुनः किंभूता साभ्रमती ? तटेऽनुकूलं शब्दायमानाभिर्हंसीभिः रणज्झणिति निक्वणायमाननूपुरमण्डितेव। पुनः किंभूता साभ्रमती ?। नेत्रेण सहितं यद्वक्त्रं तस्य श्रियमाश्रयन्तीव। केन ?। भ्रमरं आश्लिषति आलिङ्गतीत्येवंशीलं यत्सरोरुट्पद्मं तेन। पुनः किंभूता साभ्रमती ?। रथाङ्गनाम्नोर्युगलेन कृत्वा उत्तुङ्गौ पुष्टौ यौ स्तनौ तयोर्द्वन्द्वं दधतीव। पुनः किंभूता साभ्रमती ? शेवाललताभिः कृत्वा रोमश्रेणिमादधानेव। वरमहेलाप्येतादृशी भवति ॥५१- ५२ ५३॥

हीसुं० [१]यत्रोन्नमद्वारिदवर्म्मिताङ्गास्त[२]डिल्लतोपात्तनिशातशस्त्राः ।
[३]आखण्डलेन द्विषतेव रोषाद्योद्धुं [४]व्यवस्यन्ति विलासशैलाः ॥५२॥

(१) नम्रीभूतघनेन सन्नाहयुक्तशरीराः। (२) विद्युदेव गृहीततीक्ष्णायुधाः। (३) इन्द्रेण। (४) उद्यमं कुर्वन्ति ॥५२॥

हील० यत्रोन्न०। यत्र देशे विलासशैलाः शक्रेण द्विषता वैरिणा सह रोषात्स्ववंश्यलक्षपक्षछेदोद्भूतात्कोपाद्योद्धुं सङ्ग्रामं कर्तुं प्रगल्भन्ते। किंविशिष्टाः ?। उन्नमन्तमेघास्तैर्वर्मितं सन्नाहयुक्तं जातमङ्गं येषां ते। पुनः विद्युद्वितानान्येव गृहीतानि शाणोत्तेजिता[नि] शस्त्राणि यैस्ते ॥५४॥

हीसुं० [१]इयत्तयानन्तमपि प्रमातुं [२]प्रगल्भमाना इव कौतुकेन ।
शैलाः [३]कृतव्योमवहावगाहा जगाहिरे [४]निर्ज्जरराजमार्ग्गम् ॥५३॥

(१) एतावत्परिमाणत्वेन अन्तरहितमपि। (२) उद्यमं कुर्वाणा। (३) विहितस्वर्गगङ्गाजल-विलोडनाः। (४) आकाशम्। "सुरेश्वराध्व" इति नैषधे ॥५३॥

हील० इय०। यत्र दे[शे] शैलाः पर्वताः कृतस्वर्गङ्गाप्रवेशाः निर्जरराजमार्गं आकाशं अवगाहते स्म। इवोत्प्रेक्ष्यते। एतावत्प्रमाणेनाकाशमिति मातुं कौतुकेन उद्यमं कुर्वाणा इव। कौतुकिनो हि निर्विचारं यत्र तत्राप्युत्सहते ॥५५॥

हीसुं० [१]सवाहिनीकाः [२]स्मितनूतचूतच्छत्रा झरन्निज्झररोमगुच्छाः ।
[३]अनिह्नुवाना [४]धरणीधरत्वमिवात्मनो यत्र बभुर्गिरीन्द्राः ॥५४॥

(१) नदी सेना च। (२) नवसहकारछत्राः। (३) प्रकटीकुर्वाणाः (४) राजतां शैलत्वं च ॥५४॥

हील० सवा०। यत्र पर्वतपतयः भासिरे। इवोत्प्रेक्ष्यते। भूभृद्भावं स्वकीयं प्रकटीकुर्वाणाः। किंभूता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गिरीन्द्राः ? । सह नदीभिः सेनाभिश्च वर्त्तन्ते । पुनर्विकसिता नवीनाः आम्रा एवातपत्राणि येषां ते । पुनः किंभूता गिरीन्द्राः ? । झरन्तो वहन्तो ये निर्झरास्त एव रोमगुच्छाश्चामराणि येषां ते । उत च राजानोऽपि छत्रचामरसेनायुक्ताः स्युः ५६॥

हीसुं० [१]विद्युन्मणी भूषणभूष्यमाणा [२]मिलद्बलाकाघनपुष्पनद्धा ।
कादम्बिनी बद्धशिखानुषङ्गा [1]यद्गोत्रलक्ष्म्याः[३] [2]कबरीव[४] रेजे ॥५५॥

(१) विशेषेण द्योतमाना मणयः पक्षे विद्युदेव मणिभूषणानि । (२) मिलन्त्य आश्लिषन्त्यो या बकाङ्गनास्ता एव प्रचुराणि कुसुमानि तैर्व्याप्ता पक्षे बलाकावदुज्ज्वलैर्मेघमालया रचितश्शूलायां संगो यस्याः (३) गिरिलक्ष्म्याः । (४) वेणी ॥५५॥

हील० यत्र देशे शैलोपरि मेघमाला भाति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । गूर्जरपर्वतानां लक्ष्म्या वेणी । किंभूता ? । कृतशिखरप्रसङ्गा । किंभूता ?। विद्युदेव रत्नभूषणं, तेन शोभिता । पुनः मिलन्तीभिर्बलाकाभिर्घन-पुष्पैर्जलैर्नद्धा पक्षे शुभ्रत्वाद्बलाकातुल्यैः सान्द्रपुष्पैर्गुम्फिता ॥५७॥

हीसुं० **[१]नित्यातिवाहाद्विगतावलम्बाम्बरेम्बरद्वीपवती विखिन्ना ।**
[२]प्रोत्तुङ्गयद्भूधरनिर्झराणां निभेन भूभागमिवाभ्युपैति[३] ॥५६॥ इति गिरयः ॥

(१) सदातिशयेन प्रवहनात् निरालम्बा स्वर्गगङ्गा । (२) अम्बरालम्बिगूर्जरगिरिनिर्झरव्याजेन । (३) समेति ॥५६॥

हील० **नित्या०**। अम्बर-नदी-गङ्गा-पर्वत-निर्झरकपटेन । इवोत्प्रेक्ष्यते । पृथ्वीं आयाति । किम् ? निराश्रये आकाशे अतिवहनात् खिन्ना इव ॥५८॥

हीसुं० **[१]कै[७]दार्यमुज्जृम्भितशालि[२] [३]यस्मिन्विहङ्गवृन्दैर्व्यरुचच्चरद्भिः ।**
[५]महीन्दिराया [६]मणिगुम्फगर्भो नीलीविनीलः किमयं [७]निचोलः ॥५७॥

(१) केदारनिकरः । (२) विकसितकलमम् । (३) शुशुभे । (४) शालिकणानी(नि) स्वादयद्भिः विचरद्भिश्च । (५) भूमिलक्ष्म्याः । (६) रत्नरचनामध्यः । (७) निचोलः ॥५७॥

हील० **कैदा०**। यस्मिन्देशे केदारसमूहः भाति स्म । इवोत्प्रेक्ष्यते । रत्नरचनागर्भितः । किंभूतः ? गलीव नीलः । कञ्चुकोऽसौ ॥५९॥

हीसुं० **कैदारिकं क्वापि समञ्जरीकशालि [१]व्यलासीन्नदसन्निधाने[२] ।**
रोमावली [३]नाभिविभासिमध्यदेशे किमेषा [४]विषयेन्दिरायाः ॥५८॥

(१) बभौ । (२) इह समीपे । (३) नाभिना शोभनशील उदरभागे । (४) देशलक्ष्म्याः ॥५८॥

---

1. गिरि इति प्रतिपार्श्वे टि० । 2. वेंण इति प्रतिपार्श्वे टि० । 3. क्यार्या यत्र इति प्रतिपार्श्वे टि० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० कै०। क्वापि झरसमीपे । समञ्जरीका शालयो यत्र । तादृशं कैदारिकं शोभते स्म । उत्प्रेक्ष्यते । देशलक्ष्म्याः, नाभिना विभासिमध्यप्रदेशे रोमश्रेणीव ॥६०॥

हीसुं० [१]उत्तालतालं [२]करतालिकाभिः सृजन्ति गीतीरिह [३]शालिगोप्यः ।
[४]श्रिया [५]समग्रान्विषया[६]न्विजित्य [७]कीर्त्तीः स्थितानामिव [८]गूर्ज्जराणाम् ॥५९॥

इति केदाराः ॥

(१) शीघ्रं तालो यत्र । (२) हस्तद्वयवादनैः । (३) शालिरक्षिकाः (४) स्ववैभवेन । (५) समस्तदेशान् (६) परिभूय । (७) सुखं स्थितानाम् । (८) गूर्जराणां यशांसीव ॥५९॥

हील० उत्ता०। उत्तालस्त्वरितवादिनस्ताला यत्रैव स्यात्तथा क्रियाविशेषणम् । तालिकाभिः शालिरक्षिका गीतिभिर्गायन्ति । उत्प्रेक्ष्यते । सम[स्त] प्रदेशान्निर्जित्यैकस्थानस्थायुकानां गूर्जराणां गूर्जरस्य वा । "देशानामग्रे बहुत्वमेव वाच्यम्" । कीर्त्तीर्यशांसीव गायन्तीव ॥६१॥

हीसुं० [1]कुत्रापि [१]दम्यैरनुगम्यमानाः [२]सरिद्वरायाः सखितां दधाना ।
[३]यद्गोचरे[2] [४]द्रोणदुघाश्चरन्ति मूर्त्ताः [५]समाज्ञा इव [६]मण्डलस्य ॥६०॥

(१) वत्सतरैः प्रौढतर्ण्णकैः । (२) गङ्गायाः । (३) यद्देशस्य गवां चरणस्थाने । (४) द्रोणप्रमाणं दुग्धं यासाम् । (५) कीर्त्तय इव । (६) गूर्जरदेशस्य ॥६०॥

हील० कुत्रा० । कुत्रापि स्थाने वत्सतरैः सेव्यमानाः । पुनः श्वैत्याद्गङ्गासादृश्यं दधानाः । पुनर्द्रोणपरिमाणं दुग्धमासां ता गावो गवां चरणस्थाने चरन्ति । इवोत्प्रेक्ष्यते । गूर्जरस्य मूर्त्तिमत्यः कीर्त्तयः ॥६२॥

हीसुं० गावः क्वचिद्भान्ति [१]सुधामुधाकृत्पयःस्त्रवन्त्यः प्रविभाव्य वत्सान् ।
[२]यदीर्ष्यया [३]निष्ठितनाकभाग्यैः[3] स्वर्धेनवः[४] क्षोणिमिवावतीर्ण्णाः ॥६१॥

(१) अमृताधरीकरिष्णुदुग्धम् । (२) गूर्जरदेशेन सममसूयया (३) निःशेषेण गतैः स्वर्भाग्यैः । (४) कामगव्यः ॥६१॥

गाव० । गावो भान्ति । किंभूता गावः ? । वत्सान्दृष्ट्वा सुधानिष्फलकृद्दुग्धं क्षरन्त्यः । उत्प्रेक्ष्यते । यद्गूर्जरदेशेन समं ईर्ष्यापापेन क्षीणदेवलोकभाग्यैः कृत्वा पतिताः कामगव्यः ॥६३॥

हीसुं० [१]ब्रह्माण्डभाण्डोपरिभित्तिभागप्रोत्तानयानोद्भवदर्त्तिभाजः ।
सातं चरन्त्यः किमुपेत्य धात्र्यां स्वर्धेनवो यत्र विभान्ति गावः ॥६२॥

इति गावः ॥

(१) ब्रह्माण्डं लोक एव भाण्डं भाजनं गोपालकाकारविशेषस्तस्य ऊर्ध्वभित्तिसूत्रप्रोत्तानं ऊर्ध्वाः पादा अधः शरीरमिति यद्यानं गमनं तेन प्रकटा भवन्ती अर्त्तिः मानसा-शारीरकीव्यथा तां भजन्तीति ॥६२॥

१. गायवर्णनम् इति प्रतिपार्श्वे टि० । २. ०चरद्रोण० हीमु० । ३. ०यैरिवावतीर्ण भुवि देवगावः हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० **ब्र०**। यत्र गावः शोभन्ते । उत्प्रेक्ष्यते । स्वर्धेनवः । किंभूताः स्वर्धेनवः ? ब्रह्मा[ण्ड]भाण्डस्योपरितन-भित्तिभागे अम्बुप्रतिबिम्बवदूर्ध्वपादमधोवपुरेवंविधं यद्गमनं तेनोद्भवन्तीं अर्त्तिं पीडां भजन्तीति । तादृशः सत्यः भूमौ आगत्य सुखं चरन्त्यः गच्छन्त्यः । 'चर गतिभक्षणयो' रिति धातोर्गमनभक्षणार्थत्वात् ॥६४॥

हीसुं० **[1]यस्मिंश्च [1]राजर्षियशोम[2]रन्दवृन्दारविन्दैः [3]पुटभेदनान्तः ।**
द्वात्रिंशता [4]श्रीऋषभादिसार्वचैत्यैर्विलेसे [5]दशनैरिवास्ये ॥६३॥

(१) कुमारपालः (२) मकरन्दः ॥ (३) अणहिल्लपत्तनमध्ये (४) ऋषभप्रमुखतीर्थ-कृद्द्वात्रिंशद्विहारैः । (५) दन्तद्वात्रिंशिकानामभिः ॥६३॥

हील० यस्मिन्देशे । **पत्तनान्तः राजर्षि**निर्मितैर्द्वात्रिंशत्सङ्ख्याकैर्जिनचेत्यैर्विलसितम् । इवोत्प्रेक्ष्यते । वदने रदनैः ॥६५॥

हीसुं० **श्रीस्त(स्थ)म्भतीर्थं [1]पुट[1]भेदनं च यत्रोभयत्र[2] स्फुरतः पुरे द्वे ।**
अहम्मदावादपुराननायाः किं कुण्डले गूर्ज्जरदेशलक्ष्म्याः ॥६४॥

(१) पत्तनम् । (२) द्वयोः पार्श्वयोः ॥६४॥

हील० **श्रीस्थं०**। यत्र देशे उभयोः पार्श्वयोः द्वे पुरे स्फुरतः शोभते । एकं **स्तंभ**तीर्थं अन्यच्च **पत्तनम्** । किमुत्प्रेक्ष्यते । **अहम्मदावादपुर**मेवाननं यस्या गूर्जरदेशलक्ष्म्याः किं कर्णाभरणे ॥६६॥

हीसुं० **[1]विभूतिभाक्का[2]लभिदङ्क[3]दुर्गः [4]क्रीडत्कुमारः सकलाधरश्च[5] ।**
[6]अहीनभूषः स[7]वृषः सु[8]पर्व्वसरस्वतीभृद्भव[9]वद्भभौ यः ॥६५॥

(१) लक्ष्मीर्भस्म च । (२) कलियुगं दैत्यश्च । (३) उत्सङ्गे समीपे च पार्वती गिरि-शिखरस्थप्राकारश्च । (४) बालकः कार्त्तिकेयश्च । (५) शिल्पिनः सूत्रधारादयः शशिमश्च(ना च) तैः सहितः (६) सम्पूर्णा शेषनागेन च शोभा यस्य । (७) धर्म्मो वृषभश्च । (८) शोभनानि पर्युषणा-दीपालिकादिपर्वाणि सरस्वती नाम्नी नदी च पक्षे गङ्गा । (९) ईश्वर इव ॥६५॥

हील० **विभु०** । विभूतिं सम्पदं भस्म वा भजतीति । कालं कलिकालं, कालनामानं दैत्यं वा भिनत्ति । अङ्के दुर्ग्गः कोट्टः पार्वती वा यस्य । तथा क्रीडन्तः कुमाराः कुमारः स्वामिकार्त्तिको वा यत्र । सह कलाधरैः स्त्रीपुरुषैः चन्द्रेण वा वर्त्तते सः । तथा न हीना भूषा वा अहीनामिनः शेषः स एव भूषा यस्य । तथा सह वृषेण धर्मेण वा बलीवर्देन वर्त्तते । तथा सुशोभनानि पर्वाणि सरस्वतीनाम्नीं नदीं अथवा देवनदीं गङ्गां बिभर्त्ति इति । एतादृशो यो देशः शंकरेण सह साम्यं करोति ॥६७॥

हीसुं० **[3]तत्रैकदेशे[1] वपुषीव वक्त्रः श्रीधानधाराभिधमण्डलोऽस्ति ।**
[2]स्वर्लोकजैत्रैर्विभवैरिव [3]स्वैरधःकृतो येन [4]भुजङ्गलोकः ॥६६॥ इति देशवर्णनम् ॥

1. पटणदेसवर्णन इति प्रतिपार्श्वे टि० । 2. पटण इति प्रतिपार्श्वे टि० । 3. यत्रैक० हीमु ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) एकत्र प्रदेशे उत्तरस्यां उत्तरपूर्वस्यां वा । (२) जयनशीलैः । (३) तिरस्कृतो नीचैः कृतश्च । (४) नागगृहम् ॥६६॥

हील० **यत्रै०**। यत्र गूर्जरदेशे । एकस्मिन्प्रदेशे नागलोकाभिधः **धानधारदेशो** विद्यते । यथा वपुषि वक्त्रः । अस्य पुंनपुंसकत्वात् ॥★६८॥

हीसुं० [1] [१]सवाडवे [२]श्रीपुरुषोत्तमाङ्के [३]नाथे नदीनामिव तत्र देशे ।

प्रह्लादनं नाम पुरं चकास्ति पुरः [४]प्रतिच्छन्द [५]इवाद्रिदस्योः ॥६७॥

(१) वडवानलो ब्राह्मणश्च । (२) शोभायुक्ताः पुरुषेषु श्रेष्ठा लक्ष्मीकलितो विष्णुश्च । (३) समुद्रे । (४) प्रतिबिम्बम् । (५) इन्द्रस्य ॥६७॥

हील० **सवा०**। सह वाडवेन वडवानलेन विप्रैर्वा वर्त्तते, तस्मिन् । तथा श्रीकृष्णौ अङ्के श्रीमहिताः पुरुषा अङ्के यस्य तादृशे समुद्रसदृशे देशेऽमरावतीसदृशं **प्रह्लादनपुरं** शोभते ॥६९॥

हीसुं० [१]इदं [२]पुरा [३]सारदलैः [४]प्रणीय [५]त्वष्ट्राव[६]शिष्टैरिव तद्दलांशैः[७] ।

[८]दृक्कर्णगीर्व्वाणपुरे [९]प्रणीते न चेत्किमा[१०]भ्यामतिरिच्यते[११] तत् ॥६८॥

(१) प्रह्लादनपुरम् । (२) पूर्वम् । (३) प्रधानांशैः । (४) कृत्वा । (५) विधात्रा । (६) उद्धृतैः । (७) सारांशैः । (८) नागदेवनगरे । (९) कृते । (१०) नागनाकिपुराभ्याम् । (११) अधिकीभवति ॥६८॥

हील० इदं **प्रह्लादनपुरं** पूर्वं निष्पाद्य नागनाकिपुरे निर्मिते । न चेत्ताभ्यां तत्कथमधिकम् ॥७०॥

हीसुं० [१]रघूद्वहोपक्रमम[२]ब्धिमध्यस्थायीव सेतुः[३] [४]शशिकान्तक्लु(क्लृ)प्तः ।

[५]चन्द्रार्चिराश्लेषविनिर्यदर्ण्णःपूर्णान्तिकः क्वापि चकास्ति यस्मिन् ॥६९॥

(१) रामेणादौ उपक्रान्तः । (२) समुद्रजलान्तस्तिष्ठतीत्येवंशीलः । (३) पद्या । (४) चन्द्रकान्तमणिनिर्मितः । (५) चन्द्रकिरणसङ्गमनिर्गच्छत्पयःपूरितसमीपः ॥६९॥

हील० क्वापि चन्द्रकान्तरचितसेतुः शोभते । किंभूतः ? चन्द्रकिरणेन निर्यत्पानीयपूरितसमीपः । उत्प्रेक्ष्यते । रघुनन्दनेनादावुपक्रान्तः सेतुरिव ॥७१॥

हीसुं० क्वचित्पुरं [१]प्रत्यफलत्तटा[२]कोदरे जगत्पत्तनजित्वरश्रि[३] ।

येनाभिभूतिं [४]गमिता [५]महेन्द्रपुरीव दुःखादिह [६]दत्तझम्पा ॥७०॥

(१) प्रतिबिम्बति स्म । (२) सरोजलमध्ये । (३) त्रिभुवननगरजयनशीललक्ष्मीकम् । (४) प्रापिता । (५) अमरावती । (६) सम्पातपाटवं झम्पा अधःपतमिति यावत् ॥७०॥

हील० क्वचित्तटाके **प्रह्लादननगरं** प्रतिबिम्बति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । येन पराभूतिं प्रापिता सती तदुदितदुः-

1. पालणपुरवर्णन इति प्रतिपार्श्वे टि० । अथ प्रह्लादपुरवर्णनावसरः हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खाज्जगत्समक्षस्वविजयकरणजातासातात्तटाकस्यागाधजलमध्ये दत्ता झंपा सम्पातपाटवं यया तादृशीन्द्रनगरी अमरावतीव दृश्यते ॥७२॥

हीसुं० [१]कपालिमित्रं [२]त्रिशिराः कुबेरः[३] पिशाचकी पुण्यजनः पतिर्मे ।
[४]तन्नाभिगम्यः किमिती[५]त्वरीव त्यक्त्वा तमागादलकेयमुर्व्याम् ॥७१॥

(१) योगिविशेषः ईश्वरश्च । (२) त्रिमस्तकः कुत्सितवपुः । (३) पिशाचाः सन्त्यस्येति राक्षसो यक्षश्च (४) तस्मादभिगन्तुं न अर्हः । (५) व्यभिचारिणी ॥७१॥

हील० कपा०। यत्पुरं भातीति सम्बन्धः । कपालिनो रुद्रस्य योगिनो वा मित्रम् । पुनस्त्रीणि शिरांसि यस्य । कुत्सितं बेरं शरीरं यस्य । पिशाचा विद्यते यस्य । पुनः राक्षसः मे ईशस्तेन न सेव्यः । इति कारणात्तं धनदं त्यक्त्वा ऊर्व्यां अलका आगता ॥७३॥

हीसुं० [१]रामायुतैस्ता[२]र्क्ष्यशतै [३]रमाभिः [४]प्रद्युम्नकोट्या [५]शतशूरवंशैः ।
जितेन कृष्णेन [६]पुरी स्वकीयोपदीकृतेयं किमु मण्डलस्य ॥७२॥

इति [1]पुरवर्णनं समुदायेन ।

(१) स्त्रीर्बलभद्रश्च । (२) दशसहस्त्राणि अश्वो गरुडश्च । (३) लक्ष्मीभिः । (४) प्रकृष्टद्युम्नं द्रव्यं कामश्च । (५) शतसंख्या शूराणां वीराणां शूरनाम्नो राज्ञश्च । वशाः [?] । (६)द्वारिका ॥७२॥

हील० रामा०। पुरं भातीति सम्बन्धः । किमु ? कृष्णेन । जितेन । निजपूर्ढौकिता । रामाणां अङ्गनानां अयुतैर्दशसहस्त्रीभिस्तत्र तु एक एव बलभद्रः । तार्क्ष्याणां वाजिनां शतैस्तत्र एक एव गरुडः । पुना रमाभिः सम्पद्भिः । तत्रैका लक्ष्मीः । प्रकृष्टानां द्युम्नानां द्रव्याणां कोट्या । तत्र एक एव मदनः । शतैः शूराणां सुभटानां अन्वयैः । तत्र तु शूरनामा यादवपूर्वजहरिवंश्यनृपः । कृष्णस्य तु एते सर्वेऽप्येकैके इति पराजयः ॥७४॥

हीसुं० अथ पृथकवर्णनम्-[2]
[१]प्रह्लादनाच्चन्द्र इवाङ्गभाजाम[२]न्वर्थनामाजनि यो जगत्याम् ।
प्रह्लादनः पार्श्वपतिः स तत्र [३]प्रह्लादनाह्वे व्यलसद्विहारे ॥७३॥

(१) आनन्दोत्पादनात् । (२) सत्यार्थः (३) प्रह्लादननामप्रासादे ॥७३॥

हील० प्रह्लाद०। प्रह्लादनः पार्श्वनाथः शोभते स्म । शेषं सुगमम् ॥७५॥

हीसुं० यदीयमूर्त्तिर्निरमापि भक्त्या [१]प्रह्लादनाम्ना पुरि राणकेन ।
तस्याप्यजस्येव [२]नृपस्य पार्श्वो [3]गदापहः[३] स्नात्रजलेन [४]जज्ञे ॥७४॥

---

1. इति समुदयेन प्रह्लादनपुरवर्णनम् हील० । 2. विहारवर्णनम् इति प्रति पार्श्वे टि० । अथ प्रह्लादनपार्श्वनाथवर्णनम् हील० ।
3. प्यामापहः स्नान० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) प्रह्लादननामराणकेन । (२) प्रह्लादनराणकस्य । (३) रोगनाशकः । (४) जातः । ॥७४॥

हील० यदी० । प्रह्लादराणकेन प्रह्लादनपार्श्वबिम्बं कारितम् । सोऽपि स्नात्राभिषेकजलेन भस्मकुष्ठापहो जातः । यथा अजयराज्ञः दशरथपितुः सप्तोत्तरशतरोगापहन्ता जातः तद्वत् ॥*७६॥

हीसुं० प्रदेहि नः [१]साक्षरतामबाह्यां[२] बाह्यामिवा[३]ख्यातुमितीव पार्श्वं ।
[४]भोगैर्निदैष्य(जैः प)ञ्चशतीमिता[1]भिः संसेव्यते [५]विश्वलयुक्पुरीभिः ॥७५॥

(१) ज्ञानिताम् । (२) आन्तराम् । (३) वक्तुम् । (४) पूजादिभिः । (५) विश्वलपुरीनाम नाणकं 'पञ्चशती भोगो जिनस्य प्रह्लादविहारे' इति श्रुतिः ॥७५॥

हील० प्रदेहि० । यः पार्श्वः विशलपुरी नाणकैः पञ्चशतैः कृत्वा भोगैः सेव्यते । इवोत्प्रेक्ष्यते । नः अस्माकं बाह्यामिव अबाह्यां प्रदेहि । इति वक्तुम् ॥७७॥

हीसुं० [१]स्वचोक्षभावेन जिता जिनेन [२]निर्मातुकामा इव [३]तत्प्रसत्तिम् ।
यत्राक्षता [४]मूढकसंमिता यच्चैत्येऽनिशं[५] [६]प्रागुपजग्मिवांसः ॥७६॥

(१) निजनिर्मलाशयत्वेन । (२) कर्त्तुमनसः । (३) जिनस्य प्रसादम् । (४) मूढकप्रमाणाः । (५) अहर्निशम् अक्षता आयान्ति प्रह्लादविहारे इति श्रुतिः । (६) आगत्तुं(च्छन्ति) स्म ॥७६॥

हील० स्वचो० । यस्मिन्नगरे पार्श्वचैत्ये मूढकप्रमाणा अक्षता निस्तुषाः कलमा आगच्छन्तो अभूवन् । उत्प्रेक्ष्यते । जिनेनात्मीयनिर्मलाशयत्वेन जिताः सन्तस्तत्सेवां निष्पादयितुकामा इव ॥७८॥

हीसुं० [१]उद्वेगभावं स्वमिवापकर्तुं श्रीपार्श्वभर्तुः [२]परिशीलनाभिः।
[2]चैत्ये [३]कलासंख्यमणप्रमाणान्यस्मिन्पुनः[४] पूगफलान्युपेयुः ॥७७॥

(१) विषादितां पूगत्वं च । (२) सञ्चाभिः । (३) षोडशमानः । (४) प्रह्लादविहारे षोडशमणप्रमाणानि क्रमुकफलानि नित्यमायान्ति स्मेति श्रुतिः ।

हील० उद्वे० । अस्मिंश्चैत्ये षोडशमणप्रमाणानि पूगफलान्यागच्छन्ति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । पार्श्वनाथस्य सेवाभिर्निजं उद्वेगत्वं निर्वेदत्वं निराकर्त्तुमिव । "पूगे क्रमुकगूवाकौ तस्योद्वेगं पुनः फलम्" ॥*७९॥

हीसुं० [१]अशीतिरस्मिन्नधिकाश्चतुर्भिर्महेभ्यमुरव्याः [२]श्रितशीकरीकाः ।
सुरा विमानैरिव [३]याप्ययानैः स्मागत्य श्रृण्वन्ति गिरं गुरूणाम् ॥७८॥

[4]इति प्रह्लादविहारः ।

(१) चतुराशीतिमहेभ्याः । (२) श्रीकरिकलिताः (३) शिबिकारूढाः पार्श्वं प्रणिपत्य

---

1. ०भिर्यः सेव्यते हीमु० । 2. नित्यं कला० हीमु० । 3. याप्ययानं-शिबिका । हीमु० तु याप्यमानैः इति अशुद्धः पाठो दृश्यते । 4. इति प्रह्लादनपार्श्वनाथः हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरुव्याख्यानं श्रृण्वन्तीति श्रुतिः ॥७८॥

हील० अशी० । अस्मिन्नगरे चतुरशीतिर्महेभ्याः शिबिकाभिः समागत्य वाचंयमानां वाचं श्रृण्वन्ति स्म। किंभूता महेभ्याः ?। श्रिताः श्रीकर्यः महेभ्यताया वा राजमात्यताया वा छत्राकृतयो यैस्ते । यथा सुरा आगच्छन्ति ॥८०॥

हीसुं० [1][1]वपुःश्रिया [2]भर्त्सितमत्स्यकेतुर[3]द्वैतवैराग्यरसाम्बुराशिः ।
लब्धीर्दधानो विविधाश्च वज्रस्वामीव [4]विश्वागमपारदृश्वा ॥७९॥
[1]सोमादिमः सुन्दरसूरिसिंहः [2]प्राग्वाटवंश्यो निजजन्मना यत् ।
[3]सा[2]केतमिक्ष्वाकुकुलावतंसो महोक्षलक्ष्मेव [5]पुराऽपुनीत ॥८०॥ युग्मम् ॥

इति रत्ननरभूमिः ॥

(१) तनुलक्ष्म्या । (२) जितस्मरः । (३) असाधारणः । (४) समस्तशास्त्रपारगामी ॥६९॥
(१) श्रीसोमसुन्दरसूरिः । (२) प्राग्वाटान्वयजन्मा । (३) अयोध्याम् । (४) ऋषभजिनः । (५) पवित्रीकरोति स्म पूर्वम् ॥८०॥

हील० वपु० । प्राग्वाटवंशे भवः श्रीसोमसुन्दरसूरीन्द्रः स्वोत्पत्त्या यत्पुरं पूर्वं पवित्रीचकार । यथा ऋषभनाथः अयोध्यां पावनीकरोति स्म । किंभूतः ?। स्वशरीरसौन्दर्येण जितमदनः । असाधारणो यो वैराग्यरसस्तस्य समुद्रः । लब्धीर्दधानः । पुनर्विश्वशास्त्राणां पारं दृष्टवान् इति पारदृश्वा । क इव ? वयरस्वामीव ॥८१-८२॥

हीसुं० [3]विभाति [1]यत्रोपवनं विनिद्र[त्] [2]सान्द्रद्रुमद्रोणिमिलद्विहङ्गम् ।
[3]भूवास्तुपौलस्त्यपुरीभ्रमेण [4]तामन्वितं [5]चैत्र[4]रथं किमेतत् ॥८१॥

(१) प्रह्लादनपुरे । (२) स्निग्धतरुश्रेणीसमागच्छत्खगम् । (३) भूमिनिकेतन अलकाधिया धनदपुरी । (४) पृष्टे समायातम् । (५) वनम् ॥८१॥

हील० विभा० । यत्र विनिद्रन्तः सान्द्रा ये द्रुमास्तेषां द्रोणीषु मिलन्तो विहङ्गा यत्र तत्तादृशं वनं भाति। उत्प्रेक्ष्यते । भुवि पृथिव्यां वास्तुगृहं यस्यास्तादृशी धनदनगरी तस्या भ्रमेण शङ्कया तां पुरीं अनु पृष्टे समेतं एतच्चक्षुर्गोचरतां(ताम)गच्छत् । चैत्ररथं वैश्रवणोद्यानमिव ॥८३॥

हीसुं० [1]आमुष्मिकामैहिकवत्समीहां[3] [4]निर्माहि नः [5]पूरयितुं [6]प्रभूष्णून् ।
[7]विज्ञीप्सवः पार्श्वमितीव [8]यत्र प्राप्ता द्रुमाङ्गा[9] इव कल्पवृक्षाः ॥८२॥

(१) परलोकसम्बन्धिनी । (२) इहलोकसम्बन्धिनी । (३) वाञ्छा । (४) कुरु । (५) दातुम् । (६) समर्थान् । (७) विज्ञप्तिं कर्तुमिच्छवः । (८) यन्नगरोपवने । (९) तरुदेहाः ॥८२॥

---

1. नररत्नवर्णन इति प्रतिपार्श्वे टि० । अथ रत्नपुरुषोत्पत्तिस्थानं दर्शयति हील० । 2. अयोध्या इति प्रतिपार्श्वे टि० ।
3. वनखण्डवर्णन इति प्रतिपार्श्वे टि० । अथ नगरे वर्णने उपवनं वर्ण्यते हील० । 4. चित्र. हीमु०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० **आमुष्मि०** । यत्रोपवने द्रुमा वृक्षास्त एव शरीरं येषां ते । कल्पवृक्षाः समेताः । इवोत्प्रेक्ष्यते । विज्ञप्तिकां कर्त्तुमिच्छवः । इति किम् ?। हे पार्श्वनाथप्रभो ! त्वं नोऽस्मान् । ऐहिकवत् इहलोक-सम्बन्धिनीमिव । आमुष्मिकां परलोकसम्बन्धिनीं वाञ्छां पूरयितुं समर्थान्निर्माहि ॥८४॥

हीसुं० **[१]श्री[1]नन्दनं [२]हीरकुमाररूपं यस्यां भविष्यन्त[३]मवेत्य मन्ये ।**
[४]साहायकायास्य समं [५]समेत्य सर्वर्त्तवस्तद्विपिनं भजन्ते ॥८३॥

(१) कामदेवम् । (२) <u>हीरकुमार</u> एव रूपं यस्य । (३) ज्ञात्वा । (४) साहाय्याय । (५) आगत्य ॥८३॥

हील० **श्रीनं०** । मदनसदृशं **हीरकुमारं** यस्यां नगर्यां भाविनं ज्ञात्वाहमेवं मन्येऽस्य मदनस्य साहाय्याय समं समकालं आगत्य षड्ऋतवस्तद्वनं श्रयन्ते ॥८५॥

हीसुं० **[१]यत्रभ्रमद्भृङ्गरसालमाला विलोक्य [२]कूजत्कलकण्ठबालाः ।**
[३]रतीशवीरस्तृणवत्त्रिलोकीम[४]जीगणन्निस्तुलशस्त्रलाभात्[५] ॥८४॥

(१) मकरन्दपानाम(र्थं) पर्यटन्तो मधुकरा यत्र तादृशीर्माकन्दमण्डलीः । (२) पञ्चमरागं कुर्वन्त्यः पिकाङ्गना यासु । (३) स्मरसुभटः । (४) गणयति स्म । (५) असाधारणा-युधलब्धः ॥८४॥

हील० **यत्र०** । भ्रमन्तो भृङ्गा यस्यां सा चाम्रश्रेणी । विलोक्य । मदनशूरः जगत्त्रयीं तृणमात्रां गणयति स्म । कस्मादमूल्यशस्त्रप्राप्तेः ॥८६॥

हीसुं० **[१]चूतप्ररोहायुधकिंशुकार्द्धचन्द्राशुगानां [२]दलवर्म्मितानाम् ।**
यद्भूरुहां [३]स्वर्द्रुजयोद्यतानामदु[४]न्दुभीयन्त पिकाः [५]क्वणन्तः ५॥८५॥[2]

(१) माकन्दाङ्कुरा एव शस्त्राणि तथा किंशुककुसुमान्येवार्द्धचन्द्रनामानो बाणा येषाम् । (२) पत्रैः कृत्वा सन्नाहयुक्तानां कटकैः साकं वा कवचकलितानाम् । (३) कल्पवृक्षाणां विजयार्थं प्रगल्भमानानाम् । (४) दुन्दुभय इवाचरन्ति स्म । (५) पञ्चमस्वरमालपन्तः ॥८५॥

हील० **चूत०** । सुरद्रुमाणां जयने प्रगल्भमानानाम् । यस्य वनस्य भूरुहां तरूणाम् । क्वणन्तः कूजन्तः । कोकिलाः । अदुन्दुभीयन्त दुन्दुभय इवाचरन्ति स्म । किंभूताः ?। चूतानामङ्कुरा एवायुधानि येषां ते । तथा पलाशकुसुमान्येवार्द्धचन्द्राकारा बाणा येषां तेषाम् । पुनर्दलैः पत्रैः सन्नाहितानां, कवचयुक्तानाम् ॥८७॥

हीसुं० **बभे [१]नभस्याम्बुधरायमाणतमालधारागृहधोरणीभिः ।**
[२]तपर्त्तुताम्यत्तनुकुञ्जलक्ष्म्याः [३]सुसीमतायै किमनुष्ठिताभिः ॥८६॥[3]

(१) भाद्रपदमेघायमानतमाला एव धारागृहाणि येषु केनापि शिल्पेन स्तोकाः स्तोका

1. <u>अथ ऋतवः</u> हील० । 2. <u>इति वसन्तः</u> हील:० । 3. <u>इति ग्रीष्मः</u> हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जलकणवृष्ट्यो जायन्ते तानि तमालधारागृहाणि तेषां श्रेणीभिः । (२) ग्रीष्मेण ग्लानिं प्राप्नुवद्वनश्रियाः । (३) शीतलताकृते । (४) कृताभिः ॥८६॥

हील० **बभे०** । भाद्रपदस्याम्बुधरो मेघस्तद्वदाचरन्तीभिस्तापिच्छतरूणां धाराभिर्यत्रविशेषकृतजलधाराभिरु-पलक्षितानां गृहानां(णां) धोरणीभिः रेजे । उत्प्रेक्ष्यते । तपर्त्तुना ताम्यन्ती ग्लानिं गच्छन्ती तनुः शरीरं यस्यास्तादृश्या वनश्रियाः शीतलताकृते । कृताभिरर्थाज्जनैस्तया वा ॥८८॥

हीसुं० **[१]श्रीहीरवीक्षोत्सुकिता इवान्तर्नेत्राणि विस्मेरमणीचकानि ।**
[२]धाराकदम्बा दधतेऽत्र [३]सत्रा [४]सान्द्रापनिद्रत्कुटजावनीजैः[1] ॥८७॥

(१) श्री हीरकुमारं द्रष्टुमुत्कंठिताः । (२) ये जलधरधारासारमधिगम्य प्रफुल्लन्ति ते धाराकदम्बाः । (३) साद्‌र्धम् । (४) स्निग्धविनिद्रवगिरिमल्लिकातरुभिः "कुडउ" इति प्रसिद्धाः ॥८७॥

हील० **श्रीहीर०** । स्निग्धा विकसन्तो ये कुटजा गिरिमल्लिका एवावनीजास्तैः सत्रा सह धाराभिराहताः कदम्बाः विकचानि मणीचकानि कुसुमानि धारयन्ति । उत्प्रेक्ष्यते । अन्तश्चित्ते **श्रीहीरकुमारस्य** दर्शने उत्कण्ठिताः सन्तो नेत्राणीव दधते ॥८९॥

हीसुं० **[१]सप्तच्छदान्स्य[२]द्धितदानगन्धानो[३]लम्ब[२]रोलाकुलितान्विलोक्य ।**
[४]विरोधिकुम्भिभ्रममा[५]दधाना धावन्ति मुग्धा इह सिन्धुरेन्द्राः ॥८८॥[3]

(१) सप्तपर्णान् द्रुमविशेषान् । (२) स्पद्‌र्धायुक्तः कृतः गजगण्डस्थलगलन्मदजलपरिमलो यैः । (३) भृङ्गध्वनिभिर्व्याकुलीकृतान् । (४) प्रतिगजबुद्धिम् । (५) धारयन्तः कुर्वन्तो वा । 'भूयो बभौ दर्पणमादधाना' तद्वत्तौ बिभ्राणेति कुमारसंभवसप्तमसर्गषड्विंशतितमवृत्तें(त्तौ) ॥८८॥

हील० **सप्त०** । स्पर्द्धाविषयीकृतो मदगन्धो यैस्तादृशान् । पुनः भ्रमरगुञ्जितैः सशब्दान् । तादृशान्सप्त-पर्णवृक्षान्दृष्ट्वा वैरिकिरिभ्रान्तिं कुर्वाणा मदोद्धततया मूर्खाः सन्तो यन्निकुञ्जे हस्तिनो धावन्त्यभिमुखं गच्छन्ति ॥*९०॥

हीसुं० **[१]शाखाविशेषोन्मिषितप्रसूनान् [२]शार्दूलबालानि[व] लोद्रसालान् ।**
दृष्ट्वा [३]हृदुत्पिञ्जलितैर्निकुञ्जे [४]ललङ्घिरे [५]तत्ककुभः [६]कुरङ्गैः ॥८९॥[4]

(१) शिखाग्रेषु स्मितकुसुमानि । (२) व्याघ्रडिम्भान् । (३) हृदये भृशमाकुलितैः । (४) उल्लङ्घिताः । (५) वनदिक्प्रदेशाः । (६) भयात्पलायितैः ॥८९॥

हील० **शाखा०** । तेषां लोद्रद्रुमाणां दिशो मृगैरुल्लङ्घिताः । पलायितैरित्यर्थः । किंभूतैः कुरङ्गैः ?। शाखाग्रेषु विकसितानि पुष्पानि(णि) येषां तादृशान्लोद्रवृक्षान् सिंहशावकान् इव दृष्ट्वा हृदि आकुलितैः ॥९१॥

हीसुं० **[१]पङ्क्तिप्ररुढैः [२]प्रचलत्पतङ्गपोतैः [३]प्रियङ्गुप्रकरैर्बभेऽस्मिन् ।**
वनश्रियाः प्रावरणैरिवान्त[४]र्विच्छित्तिमद्भिस्तुहिनद्विषद्भिः ॥९०॥

1. इति वर्षा हिल० 2. ०बरावकुलि० हीमु० । 3. इति शरत् हील० । 4. इति हेमन्तः हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) श्रेण्या उद्गतैः । (२) चलद्विहङ्गमबालैः । (३) फलिनीपटलैः । (४) रचनायुक्तैः । (५) हिमनिवारकैः ॥९०॥

हील० **पङ्क्ति०** । श्रेणीभूतैः । पुनरन्तःसञ्चरन्तः विहङ्गमाना बालका येषु ते । तादृशैः फलिनीपटलैः शोभितम् । उत्प्रेक्ष्यते । रचनाञ्चितैः शीतशत्रुभिर्वनलक्ष्म्याः प्रच्छादनैरिव ॥९२॥

हीसुं० **[1]दृग्दानदासीकृतदेववन्या [2]प्रगल्भसे त्वं पुरतः कियन्मे ।**
वनश्रियाश्चैत्ररथं किमित्थं दन्ता हसन्त्या इव भान्ति कुन्दाः ॥९१॥[1]

(१) विलोकनमात्रेणैव किङ्करीकृतनन्दनवनया । (२) उत्साहं कुरुषे ॥९१॥

हील० **दृग्दा०** । किमुत्प्रेक्ष्यते । चैत्ररथं प्रति इत्थं हसन्त्या वनश्रिया दन्ता इव कुन्दा भान्ति । इत्थमिति किम् ?। हे चैत्ररथ ! सम्मुखावलोकनेनैव दासीकृता देवानां वन्यो यया तादृश्या मम पुरस्तात् त्वं कियदुत्सहसे । मत्पुरस्त्वं न किमपीत्यर्थः ॥९३॥

हीसुं० **[1]क्रीडत्तुरङ्गद्विपपद्मनेत्राः [2]क्रीडासरस्यो विपिने विरेजुः ।**
[3]उच्चैःसृ(श्र)वः स्वर्द्विरदाप्सरस्काः [4]सुधापयोधेः [5]प्रतिमा इवैताः ॥९२॥

(१) जले विलसद्धयगजवर्जि(वाजिः) ताः । (२) कि(के)लिकृते महासरांसि महत्सरः । (३) इन्द्रस्याश्व-करि-इभप्रमुखदेव्यः । (४) क्षीरसमुद्रस्य । (५) प्रतिबिम्बानीव ॥९२॥

हील० **क्रीड०** । जलकेलिं कुर्वन्तः । अश्वा हस्तिनः विलासवत्यो यासु ताः । क्रीडार्थं सरस्यः सरांसि भान्ति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । क्षीराब्धेः प्रतिबिम्बानि इन्द्राश्व-ऐरावण-अप्सरःसहितानि ॥९४॥

हीसुं० **[1]मधुप्रधावन्म[2]धुकृन्निरुद्धै[3]र्जाम्बूनदैर्यत्र बभेऽरविन्दैः ।**
सरःश्रियामाभरणैरिवान्तःस[4]न्दर्भगर्भीभवदश्मगर्भैः ॥९३॥

(१) मकरन्दकृते धावद्भिः शीघ्रमागच्छद्भिः । (२) भृङ्गैर्व्याप्तैः । (३) स्वर्णसम्बन्धिभिः । (४) मध्ये रचनाया गर्भे अन्तराले भवन्तः अश्मगर्भा मरकतमणयो येषु ॥९३॥

हील० **मधु०** । मध्वर्थं प्रधावद्भिर्भ्रमरैर्व्याप्तैः । पुनः सौवर्णैः कमलैर्बभासे । उत्प्रेक्ष्यते । अन्तर्मध्ये सन्दर्भो येषां तादृशा गर्भीभवन्तः कुक्षौ सम्पद्यमाना अश्मगर्भा मरकतश्रेणयो येषु तैस्तादृशैराभूषणैः ॥९५॥

हीसुं० **[1]पत्रान्तराजज्जलबिन्दुवृन्दैः सरस्सु यस्मिन्स्मितपुण्डरीकैः ।**
अदीपि मुक्ताकलितातपत्रैर्न[2]न्दीसरः श्रीजयिनामिवैषाम् ॥९४॥[2]

(१) पर्णप्रान्ते शोभमानपयःकणगणैः । (२) देवतडागलक्ष्मीजैत्राणाम् ॥९४॥

हील० **पत्रान्त०** । यस्मिन्वने सरस्सु कमलैः शोभितम् । उत्प्रेक्ष्यते । शक्रसरोजेतृणामेषां सरसां मौक्तिकछत्रैरिव ॥९६॥

---

1. इति शिशिरः । इति षडपि ऋतवः हील० । 2. इति क्रीडातडागाः हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]दृक्कर्णवेणी [२]कलकण्ठकण्ठी [३]बिम्बाधरा [४]सिन्धुरराजयाना ।
[५]प्रसूननेत्रा [६]स्तबकस्तनी च भुक्ता वनश्रीरिह [७]गन्धवाहैः ॥९५॥ [1]इति वनम् ॥

(१) भुजङ्गरूपा वेणी यस्या पक्षे तत्तुल्या । (२) कोकिलकण्ठ एव कण्ठो यस्या मध्यपदलोपीसमासः पक्षे तद्वत् । (३) गोह्लक एव तद्वच्च ओष्ठो यस्या । (४) गजेन्द्राणां तद्वच्च गमनं यस्यां यस्या वा । (५) पुष्पाण्येव तत्तुल्यानि नयनानि यस्या । (६) गुच्छा एव तत्तुल्या कुचा यस्या । (७) पवनैः गन्धधारिभिर्भोगिजनैः ॥९५॥

हील० दृक्क० । इह वने वायुभिर्वनश्रीर्भुक्ता । किंच । गन्धं चन्दनादिकं वहन्ति तैर्गन्धवाहैर्युवभिरन्यापि स्त्री भुज्यते । किंभूताः ? भुजङ्गा एव वा भुजङ्गतुल्या वेणी यस्याः । पुनः कोकिलानां कोकिलवद्वा ध्वनिर्यस्यां यस्या वा सा । बिम्बमेव बिम्बसदृशो वा ओष्ठो यस्याः । गजेन्द्राणां गमनं तद्वच्च गतिर्यस्याः । पुष्पमेव तत्समानं च नयनं यस्याः । कुसुमगुच्छौ एव तत्सरूपौ स्तनौ यस्याः सा ॥९७॥

हीसुं० [१]स्वर्[२]जिष्णुपुर्याः [२]परिखाप्र[३]वङ्गरावैरुद[३]स्यात्मतरङ्गहस्तान् ।
अदःपुरस्ते कियती विभूतिर्व[४]स्वोकसारामिति [५]गर्हतीव ॥९६॥

(१) स्वर्गजैत्रायाः । (२) दर्दुरशब्दैः । (३) ऊर्ध्वीकृत्य । (४) अलकाम् । (५) निन्दति ॥९६॥

हील० कम्रे० । वनश्रीः पुरस्य परिखां दूतीं कर्त्तुमिच्छुः सती प्रतिबिम्बेन स्थिताऽर्थात् प्रतिबिम्बिता । किं कुर्वती ?। कोट्टेन सह सङ्गं कर्त्तुमिच्छुः । यथाऽसती स्त्री यूना सङ्गं कर्त्तुकामा कामपि दूतीं कर्त्तुमिच्छन्ती तद्गृहे समेत्य तिष्ठन्ति । किंभूतेन यूना वप्रेण च ?। कम्रेण स्वकामुकेन कमनीयेन वा वसुभिर्द्रव्यैर्भातीति वा वसुनां मणीनां प्रभा यत्र ॥९८॥

हीसुं० [१]पिपासितं [२]रोचकितं च [३]रङ्कुं [४]वाष्पा[५](वाः पा)यितुं चारयितुं च[६] शष्पान् ।
चन्द्रः किमागात्परिखे[७]न्दुबिम्बपश्यैर्व्यमर्शीति जनै रजन्याम् ॥९७॥[4]

(१) तृषितम् । (२) क्षुधितम् । (३) मृगम् । (४) पानीयम् । (५) स्वादयितुम् । (६) नीलतृणान् । (७) चन्द्रप्रतिबिम्बविलोककैः ॥९७॥

हील० स्व० । स्वर्गजैत्र्याः प्रह्लादनपुर्याः खातिका स्वकल्लोलरूपान्हस्तानुद्यम्योर्ध्वीकृत्य अलकामिति निन्दति । इति इति किम् ?। अस्या अग्रे ते ऋद्धिर्न किमपि ॥९९॥

हीसुं० [१]कम्रेण [२]वप्रेण [३]वसुप्रभेणासतीव[४] यूना सह [५]संसिसृक्षुः ।
दूतीं चिकीर्षुष्प(: प)रिखामि[5]वास्याः स्थितानुबिम्बेन निकुञ्जलक्ष्मीः ॥९८॥

इति परिखा ।

---

1. इति प्रह्लादपुरोपवनम् हील- । 2. पालणपुर खाइ वर्णन इति प्रतिपार्श्वे टि० । 3. ०खाप्लवङ्ग० हीमु० । 4. इति परिखा हील० । 5. ०मिवास्य स्थिता० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) अभिलाषुकेण। (२) प्राकारेण। (३) सुवर्णकान्तिना द्रव्येन(ण) प्रकर्षेण भातीति वा (४) व्यभिचारिणीव। (५) संसर्गकर्त्तुमिच्छुः ॥९८॥

हील० **पिपा०**। परिखायामिन्दुबिम्बं प्रतिबिम्बितं पश्यन्ति। तादृशैर्नरैर्नक्तं तर्कितम्। चन्द्रः तृषितं पुनः क्षुधितं मृगं प्रति नीरं पायितुं तृणाश्च चारयितुं इहागतः ॥१००॥

हीसुं० [1][१]नभःपरीरम्भणलोलुभैर्यद्वप्रो [२]मणिश्रेणिमहः प्ररोहैः।
घनान्विना[३]खण्डलधन्वदण्ड[४]मकाण्डमाड[५]म्बरयन्निवास्ते ॥९९॥

(१) आकाशालिङ्गनलालसैरभ्रंलिहैरित्यर्थः। (२) रत्नकिरणाङ्कुरैः। (३) इन्द्रचापचक्रम्। (४) असमये (५) प्रकटीकुर्वन् ॥९९॥

हील० **नभ०**। आकाशे आलिङ्गनलालसै रत्नकिरणैः कृत्वा कोट्टः अकाण्डमिन्द्रधनुरारम्भयन्दृश्यते ॥१०१॥

हीसुं० सालोऽ[१]दसीयः ससना[२]तनश्रीः कपाट[३]पक्षश्च सुवर्ण[४]कायः।
विगाहमानो गगनं कथं न लभेत तार्क्ष्येन[५](ण)[2]समानभावम् ॥१००॥

(१) एतस्याः सम्बन्धी। (२) सदा विष्णुना च शोभा यस्य। (३) कपाटा एव पक्षा यस्य। (४) स्वर्णेन निर्मितः कायः स्वरूपं भित्तिलक्षणं यस्य। पक्षे गरुडः उच्चैस्त्वेन व्योमस्पृशन् गरुडपक्षे गत्या गगनं गाहमानः। (५) गरुडेन तुल्यत्वम् ॥१००॥

हील० **सालो०**। अस्याः कोट्टः। गरुडेन सह साम्यं किं न प्राप्नुयादपि तु प्राप्नोत्येव। किंभूतः प्राप्नुयात्?। सह सनातनया नित्यस्थायुकया श्रिया वर्त्तते वा। सनातनः कृष्णः श्रीश्च ताभ्यां सहितः। "सदा सनानिशं शश्व" दिति हैम्याम्। कपाटावेव तत्तुल्यौ पक्षौ यस्य। तथा सुवर्णस्य कायोऽङ्गं यस्य। गगनं गाहमानः उच्चैस्त्वेन भ्रमणेन च अत एव गरुडसदृशः ॥१०२॥★

हीसुं० [१]मणीघृणिश्रेणिधुतान्धकारैरभ्रङ्कषैर्यत्कपिशीर्ष्य(र्ष)कौघैः।
[२]यानश्वरोदी(दि)त्वरकर्म्मसाक्षिलक्षेव [३]पूर्दक्षजनैरलक्षि[४] ॥१०१॥

(१) रत्नरुचिराजीनिहतध्वान्तैः। (२) शाश्वता उदयनशीलाः सूर्यलक्षा। (३) पण्डितैः। (४) ज्ञाताः ॥१०१॥

हील० **मणि०**। रत्नकान्तिदलितान्धकारैः। पुनर्गगनोल्लेखिभिः। अट्टालकानां उच्चैः कृत्वा या नगरी। शाश्वता। उदयनशीलाः कर्मसाक्षिणो भास्करास्तेषां लक्षा यस्यां तादृशीव। पण्डितैर्दृष्टा ॥१०३॥

हीसुं० [१]चन्द्राश्मवेश्मस्मितमुद्वहन्ती [२]कटाक्षयन्ती [३]सितकेतनैश्च।
युवेव [४]जायां नगरीमिवैतां [५]क्रोडीकरोति [६]प्रणयेन वप्रः ॥१०२॥

इति प्राकारः ॥

(१) चन्द्रकान्तमणिनिर्मितगृहाण्येवोज्ज्वलत्वात् हसितम्। (२) कटाक्षान् कुर्वन्ती(ती)व।

---

1. पालनपुरगढवर्णन इति प्रतिपार्श्वे टि०। 2. सदृक्षभावम् हीमु०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(३) धवलध्वजैः । (४) प्रियाम् । (५) आलिङ्गति । (६) स्नेहेन ॥१०२॥

हील० चन्द्रा० । कोट्टः पुरीं आलिङ्गतीत्यर्थः। "परीरम्भः क्रोडीकरोति" रिति हैम्याम् । यथा युवा पत्नीं स्नेहेन क्रोडीकुरुते । किंभूतां पुरीं जायां च? । चन्द्रकान्तघटितगृहाणि तान्येव तत्तुल्यं हास्यं बिभ्रती । उज्जवलकेतुभिः कटाक्षान्कुर्वन्ती(ती) ॥१०४॥

हीसुं० [1][1]स्वर्व्यालवेश्मावनिवास्तुशस्तवस्तुव्रजात्मम्भरिगर्भगेहैः ।
[2]यत्रापणैः कुत्रितयापणानां[3]वंश्यैरिवावाप्यत कापि लक्ष्मीः ॥१०३॥

(१) स्वर्गे नागलोके भूलोके च स्थानं येषां ते प्रशस्तपदार्थसार्थैर्भृतमध्यानि गर्भागाराणि येषां । (२) हट्टैः । (३) कुत्रिकापणानां वंशे अन्वये भवानि वंश्यानि तैः ॥१०३॥

हील० स्वः । स्वर्गे नागलोके अवनौ वास्तुस्थानं येषां तादृशा वस्तुव्रजास्तैरात्मम्भरयो भृतमध्या गर्भगेहा येषां तादृशैर्हट्टैः शोभा(भां) आप्ता ॥१०५॥

हीसुं० [1]बाह्लीककालागुरुगन्धसारसारङ्गनाभीहिमवालुकाभिः ।
[2]सद्भिस्समाज्ञाभिरिवादसीयापणैरवास्यंत दिशोऽप्यशेषाः ॥१०४॥

(१) केसर-कृष्णागरु-चन्दन-कस्तूरिका-कर्पूरैः "गोरोचनाचन्दनकुङ्कुमैणनाभीविलेपा" दिति नैषधे कस्तूरिकायामपि नाभीशब्दो दीर्घः । (२) यशस्विभिः । (३) कीर्त्तिभिः । (४) पुरीसम्बन्धिभिः । (५) सुगन्धीक्रियन्ते स्म ॥१०४॥

हील० बाह्ली० । कुङ्कुमकृष्णागुरुचन्दनकस्तूरिकाकपूरैः कृत्वा हट्टैर्दिशः सुरभीक्रियन्ते स्म । यथोत्तमैः कीर्त्तिभिर्दिशो वास्यन्ते ॥१०६॥

हीसुं० यदापणश्रेणिषु [1]सान्द्रचान्द्रक्षोदेषु गाङ्गास्विव वालुकासु ।
[2]मौग्ध्येन नीलैरिव काचगोलैः क्रीडन्ति [3]डिम्भाः स्फुरदिन्द्रनीलैः ॥१०५॥

इति हट्टाः ॥

(१) कर्पूरसम्बन्धिरेणुषु । (२) अज्ञानभावेन । (३) बालाः ॥१०५॥

हील० यदा० । प्रह्लादनपुरी हट्टेषु स्निग्धकर्पूरक्षोदेषु काचगोलैरिव मरकतरत्नैः कृत्वा रमन्ते । यथा वालकासु अज्ञानाद्बालकाः खेलन्ति । एतावता मणिरत्नकर्पूरादिबाहुल्यमपि प्रतिपादितम् ॥१०७॥

हीसुं० [2][1]यच्चान्द्रचामीकरवेश्मचन्द्रचण्डार्चिषौ [2]गर्भगताङ्गिरावैः ।
मिथः किमु[3]त्य(मित्यु)न्त्रयतोऽभि[4]या(घा)तिर्जेयः कथं राहुरजय्यवीर्यः ॥१०६॥

(१) चन्द्रकान्त-कनकगृहावेव विधुभानू । (२) मध्यगतजनशब्दैः । (३) मन्त्रयतः । (४) वैरी । (५) जेतुम(श)क्यः पराक्रमो यस्य ॥१०६॥

हील० यश्चा० । यस्याः पुर्याः । चन्द्रकान्तैः सुवर्णैर्घटितगृहे एव चन्द्रसूर्यौ मध्यवर्ति मनुष्यशब्दैः कृत्वा

1. हाटवर्णन इति प्रतिपार्श्वे टि० । 2. घरवर्णन इति प्रतिपार्श्वे टि० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथो विचारयत इव । यद्राहुर्वैरी कथं जेतव्यः ॥१०८॥

हीसुं० [1]शशाङ्कबिम्बं [2]कुलिशाङ्गणान्तर्दृष्ट्वा [3]वृणानानिह मुग्धडिम्भान् ।
[4]वि[1]लोभ्य केलीकलहंसबालैराश्वा[5]सयन्ति स्म कथञ्चि[6]दम्बाः ॥१०७॥

(१) चन्द्रप्रतिबिम्बम् । (२) हारकरचितगृहप्राङ्गणमध्ये । (३) याचमानान् । (४) लोभयित्वा । (५) श्वसीकुर्वन्तिस्म (६) जनन्यः ॥१०७॥

हील० **शशा०** । इह पुरे मुग्धान्बालकान् केल्यर्थं राजहंसबालकैर्लोभयित्वा मातरः कञ्चिन्महता कष्टेनास्वा(श्वा)सयन्ति । किं कुर्वाणान्बालान् ?। वृणानान्याचमानान् । हीरकनिबद्धेऽङ्गणमध्ये बिम्बितमिन्दुबिम्बं विलोक्य ॥१०९॥

हीसुं० [2]चैत्येऽ[1]श्मगर्भाङ्कसिताश्मकुम्भं [2]निभाल्य [3]मुग्धाभ्रधुनीरथाङ्ग्यः ।
शशी स [4]विश्रे(श्ले)षयिता [5]द्विषन्नः[6] क्रुधेति तं घ्नन्ति किमङ्घ्रि[7]घातैः ॥१०८॥

(१) मरकतमणिशिल्पं मध्ये यस्य तादृशं स्फटिकरत्नकलशम् । (२) वीक्ष्य । (३) स्वर्गगङ्गाचक्रवाक्यः । (४) वियोगोत्पादयिता । (५) शत्रुः । (६) अस्माकम् । (७) चरणप्रहारैः । (८) ताडयन्ति ॥१०८॥

हील० **वेश्म०** । यद्वेश्मनि क्वापि गृहे अश्मगर्भाणां मरकतरत्नानामङ्को मध्यं यस्य तादृशं सिताश्मनां स्फटिकरत्नानां कलशं निभाल्य दृष्ट्वा मूर्खा आकाशगङ्गाया चक्रवाक्यः अङ्घ्रीणां प्रहारैर्घ्नन्ति-प्रहरन्ति । नो अस्माकं वियोगकारकः स प्रसिद्धः शत्रुर्मृगाङ्कोऽयमिति चेतसि रुषा ॥११७॥

हीसुं० [1]अर्कांशुसंपर्क्कचयार्ककान्तोद्धूतानलोमावनसन्निभस्य ।
[3]चैत्या[2]ग्रशृङ्गस्थगजद्विषद्भिर्द्वै[3]ष्यैर[4]धृष्यस्य कथंचनापि । १०९॥
भिया[1]भ्रमूवल्लभवाहनारेः प्रणश्य शङ्के शरणं श्रयन्तः ।
[2]लघूभवन्मन्दरमुख्यशैलाः पुरस्य रेजुर्मणिहेमगेहाः ॥११०॥ युग्मम् ॥

(१) सूर्यकिरणसंयोगात्प्राकारकल्पितसूर्यकान्तरत्नप्रकटीभूतवह्निभिरभितो । बाणासुरनगरतुल्यस्य, 'बाणपुरे हि अग्निप्राकार आसी'दिति श्रुतिः ॥ (२) प्रासादोपरि शृङ्गे स्थितकेसरिभिः । (३) वैरिभिः । (४) अनाकलनीयस्य ॥१०९॥

(१) ऐरावणयानस्य शत्रोः इन्द्रस्य । 'अभ्रमू' दीर्घोऽप्यस्ति-यथा काव्यकल्पलतायां 'गजानामभ्रमूपति' रिति । (२) वपुषाऽल्पीभवन्तो मेरुप्रमुखा गिरयः ॥११०॥

हील० **अर्कां०** । **भ्रिया०** । जिनगेहा रेजुरुत्प्रेक्ष्यते । ऐरावणं वाहनं यस्य स इन्द्रः । स एव वैरी । तस्य भयेन नंष्ट्वा पुरीशरणं कुर्वतः । लघूभवन्तः मेरुप्रधानाः पर्वता इव । किंभूतस्य अभ्रमूवल्लभवाहनारेः ?। सूर्यकिरणसङ्घट्टेन च यस्य वप्रस्यार्ककान्तेभ्यः उद्धूतो योऽनलोवह्निस्तेन बाणासुरपुरसदृशस्य । पुनः

1. व्यालोक्य हीमु० । 2. वेश्माश्म० हीमु० । 3. गेहाग्रशृ० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शिखरस्थसिंहैः कृत्वा शत्रुभिरनाकलनीयस्य । गजयानस्य हि सिंहाश्रितमार्गे दुष्करम् । कृशानौ तु सर्वदाप्यशक्यम् ॥११८-११९॥

हीसुं० **चन्द्रोदये [१]चन्दिरकान्तगर्भसन्दर्भशृङ्गस्त्रवदम्बुपूरैः ।**
[२]शिरःस्फुरत्सिद्धधुनी [३]धरेन्द्रो यत्रानुचक्रे कलधौतसौधैः ॥१११॥

(१) चन्द्रकान्तमणीनामन्तराले रचना येषां तथाविधानि शिखराणि तेभ्यो गलज्जलस्त्रवैः । चन्दिर इति शेषनाममालायां चन्द्राभिधानं माकन्दवत्प्रसिद्धम् । (२) मूर्द्धनि वहन्ती गङ्गा यस्य । (३) तादृक्षहिमाद्रिः । (४) रजतगृहैः ॥१११॥

हील० **चन्द्रो०** । यत्र पुरे चन्द्रोदये जाते रूप्यमन्दिरैः, शिरसि स्फुरन्ती गङ्गा यस्य तादृशो हिमाचलः सदृशीकृतः । किंभूतैः कलधौतसौधैः ?। चन्द्रकान्तानां गर्भे मध्ये सन्दर्भो रचना येषाम् । तादृशेभ्यः शृङ्गेभ्यो निस्सरन्तः स्त्रवन्तोऽम्बुपूराः पयःप्रवाहा येषु तैः । चन्दिर इति चन्द्रः शेषनाममालायाम् ॥११०॥

हीसुं० **[१]वातातिवेल्लद्ध्वजपल्लवाग्रकरेण रावेण च किङ्कणीनां ।**
या वैभवस्पर्द्धितया मघोनः [२]पुरीं [३]स्मयादा[४]ह्वयतीव योद्धुम् ॥११२॥

(१) पवनेनाधिकं कम्पमानकेतुवसनप्रान्तपाणिना । (२) अमरावतीम् । (३) गर्वात् । (४) आकारयति ॥११२॥

हील० **वाता०** । या पुरी इन्द्रपुरीं । स्मयादहङ्काराद्योद्धुं सङ्ग्रामं कर्तुं आकारयतीव । केन ? । वायुनातिशयेन वेल्लन्तश्चञ्चलीभवन्तो ये ध्वजपल्लवाः पताकावस्त्राणि तेषामग्रं स एव करो हस्तस्तेन । पुनः क्षुद्रघण्टिकानां शब्देन ॥१११॥

हीसुं० **[१]श्रीवत्सरामाङ्गजकम्बुताक्ष्र्यचक्राङ्कितै[२]र्मारकतैर्निकेतैः[३] ।**
जज्ञे [४]मुकुन्दैरिव यत्र चित्रमेतत्परं [५]धेनुकमद्विषद्भिः ॥११३॥

(१) लक्ष्मी-तर्णक-वनिता-पुत्र-शङ्खा-ऽश्वसमूहकलितैः, हृदयलक्षण-बलभद्र-कन्दर्प-पाञ्चजन्यशङ्ख - गरुड - सुदर्शनचक्रयुतैः । (२) मरकतरत्नसम्बन्धिभिः (३) गृहैः । 'शङ्के स्वसंकेतनिकेतमाप्ताः' इति नैषधे । (४) कृष्णैः । (५) दैत्यं धेनुसमूहं च ॥११३॥

हील० **श्रीव०** । मरकतरत्नघटितगृहैः कृष्णैरिव जातम् । बहुवासुदेवापेक्षया बहुत्वम् । किंभूतैः गृहैः कृष्णैश्च ?। श्रीर्लक्ष्मीर्वत्सास्तर्णकाः श्रीवत्सो हृदयचिह्नम् । रामाः स्त्रियः, अङ्गजा नन्दना रामाङ्गजः कामः । कम्बवः शङ्खाः पाञ्चजन्यश्च । ताक्ष्र्या अश्वा गरुडश्च । तेषां चक्राणि समूहाः, चक्रं सुदर्शनम् । तैः सहितैः । परमिदमाश्चर्यम् । यद्धेनूनां समूहं गोकुलं पालयद्भिः । स तु धेनुकासुरद्विट् ॥११२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]एतज्जगज्जित्वरलक्ष्मिवीक्षाक्षणोदिताद्वैतकुतूहलेन ।
शङ्के त्रिदश्यः स्ति[२]मितीभवन्त्यो विभान्ति यद्वेश्मसु [३]शालभञ्ज्यः ॥११४॥

(१) पुर्या जगन्नगरजयनशीलश्रिया दर्शनोत्सवेनोद्भूतासाधारणकौतुकेन । (२) निश्चला भवन्त्यः । (३) पुत्रिकाः ॥११४॥

हील० एत० । पुरीगृहेषु पुत्रिका भान्ति । तत्रैवं शङ्के-मन्ये । एतस्याः पुर्याः जगज्जेतृशोभाया या वीक्षालोकनं तदेवोत्सवस्तेनोद्भूतं यत्कुतूहलं तेन निश्चला जायमानाः ॥११३॥

हीसुं० विष्णोर्निहन्तुं[१] नरकं गतस्यौ[२]त्सुक्यात्क्र[३]मान्नि[४]र्गलितेव गङ्गा ।
[५]ज्यौत्स्नीषु यच्चान्द्रगृहच्युताम्भोधारा भुवं भूषयति स्म यस्मिन् ॥११५॥

(१) नरकासुरम् । (२) राभस्यात् । (३) पदात् । (४) पतिता (५) पूर्ण्णिमारात्रिषु । (६) चन्द्रकान्तमणिनिर्मितभवननिष्पतत्पयःप्रवाहः ॥११५॥

हील० विष्णो० । यस्मिन्पुरे पूर्णिमासु चन्द्रकान्तगृहेभ्यो निःसृता वारिधारा भूमीमलङ्कुरुते स्म । उत्प्रेक्ष्यते । राभस्यान्नरकनामानं दैत्यं मारयितुं गतस्य कृष्णस्य चरणान्निर्गत्य पतिता गङ्गा भूमीमभ्येतीव ॥११४॥

हीसुं० [१]ज्योतिस्तरङ्गीकृतयन्निकेतहरिन्मणीशालिशिखा चकासे ।
[२]इदंपदव्येव [३]पतङ्गपुत्री नभः प्रयान्ती मिलितुं [४]स्वतातम् ॥११६॥

(१) कान्तिप्रतापैर्मिलज्जलकल्लोलकलितेव यद्भवनानां नीलरत्नशोभायमानशिखरम् । (२) एतद्गृहमार्गेण । (३) यमुना (४) भास्करं पितरम् ॥११६॥

हील० ज्यो० । कान्तिभिः कल्लोलीकृतानां पुरीगृहाणां नीलरत्नशालिनी शिखा उपरितनप्रदेशं शुशुभे । उत्प्रेक्ष्यते । एतन्नगरमन्दिरशिखरमार्गेण स्वतातं सूर्यं मिलितुं गच्छन्ती सूर्यपुत्री यमीव ॥११५॥

हीसुं० [१]गाङ्गेयगारुत्मतपद्मरागचन्द्राश्मवेश्मावलिरुल्ललास ।
[२]प्रेयांसमुद्दिश्य [३]महीमहेन्द्रं पुरश्रिया [४]क्लृप्त इवाङ्गरागः ॥११७॥

(१) सुवर्ण-हरिन्मणि-रक्तरत्न-चन्द्रकान्तनिर्मितभवनपङ्क्तिः । (२) कान्तम् । (३) राजानम् । (४) रचितः ॥११७॥

हील० सुवर्णहिरण्मयरक्तोपलचन्द्रकान्तघटितगृहश्रेणिः दिदीपे । उत्प्रेक्ष्यते । राजानं प्रत्युद्दिश्य पुरलक्ष्म्या विलेपनं कृतम् ॥११६॥

हीसुं० [१]बालारुणज्योतिरखर्व्वगर्व्वनिर्वासिमाणिक्यनिकाय्यकोटिः ॥
व्यक्तीभवन्भात्यनुभूपकान्तं पुरश्रियोद्गीर्ण इवानुरागः ॥११८॥

(१) उदयन् रविररुणः बालश्च उच्यते, लघुभास्करप्रभाणां समग्राभिमानस्य धिक्काराणां माणिक्यानां गृहकोटिः, माणिक्यानि पद्मरागा उच्यन्ते । यथा नैषधे 'शिशुतरमहोमाणिक्यानाम-हर्मणिमण्डली' ति । प्रत्यग्रकिरणपद्मरागाणां रविबिम्बमिति तद्वृत्तिः ॥११८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० बालसूर्यकान्तीनामतिगर्वं निर्नाशयन्तीत्येवंशीलानि माणिक्यानि । तेषां कोटिर्भाति । भूकान्तमनुलक्षीकृत्य पुरश्रिया उद्गीर्णः । अत एव प्रकटीभवन्स्नेह इव ॥१२०॥

हीसुं० [1]प्रीतादु[2]पास्त्या[3]धिगता [4]गिरि(री)शान्नि[5]रङ्कनैकाङ्गविधानविद्या ।
[6]प्रपञ्चिता कौतुकिना किमेषा चन्द्रेण [7]यच्चान्द्रगृहच्छलेन ॥११९॥ इति गृहाः ॥

(१) सन्तुष्टात् । (२) सेवया । (३) प्राप्ता । (४) ईश्वरात् । (५) निर्गतलाञ्छनं येभ्यस्तादृशानामनेककायानां निर्माणस्य कारणं विद्या । (६) विस्तारिता । (७) चन्द्रकान्तमणिभवनव्याजेन ॥११९॥

हील० प्री० । सेवया प्रीतादीश्वरात् निःकलङ्कअ(ङ्का)नेकरूपकरणविद्या प्राप्ता सती चन्द्रेण चन्द्रकान्तरत्नघटितगृहमिषाद्विस्तारिता किं एषा ॥१२१॥

हीसुं० [1]यस्मिन्दिदीपे [1]मधुदीपरूपश्रीगर्व्वनिर्व्वासिविलासिवृन्दैः ।
रूपस्मयं वीक्ष्य [2]जयस्य तस्य मदच्छिदे किं विधिना [3]प्रणीतैः ॥१२०॥

(१) स्मररूपशोभाभिमानप्रवासकारिभिस्तर(रु)णगणैः (२) इन्द्रपुत्रस्य (३) कृतैः ॥१२०॥

हील० यस्मिन्पुरे माररूपसम्पन्निर्दलननिपुणव्यवहारिव्यूहैर्भ्राजितम् । उत्प्रेक्ष्यते । जयस्येन्द्रसुतस्य रूपाहङ्कार दृष्ट्वा तन्निराकृतेर्धात्रा विहितैः ॥१२२॥

हीसुं० मेरोः [1]शिखाग्रावसथव्यथाभिरुत्तीर्य सात[2]स्थितिमीहमानाः ।
यस्मिन्समेताः किमु [3]नाकिशाखिव्रजा [4]वदान्या व्यलसन्युवानः ॥१२१॥

(१) अत्युच्चचूलोपरि निवसनकष्टैः । (२) सुखस्थानम् । (३) कल्पतरुनिकराः । (४) दानशीलाः ॥१२१॥

हील० मेरो० । शिखरोपरि आवसथो वसतिस्तेनोद्भवन्तीभिः पीडाभिष्कृ(: कृ)त्वा मेरुपर्वतादुत्तीर्य सुखनिवासमीहमानाः यस्मिन्पुरे समागताः देवतरुव्रजा इव दानशीलास्तरुणाः स्वच्छन्दं शुशुभिरे ॥१२३॥

हीसुं० जितस्मरान्पौ[1]रजनान्निपी[2]य मा [3]तद्भूषस्यन्त्यसती [4]सती [2]स्यात् ।
इतीव योषावपुषा [5]स्ववर्ष्म द्विषा[7] मखस्य[8] व्यतिसीव्यते स्म ॥१२२॥ [3]इति नागराः॥

(१) नागरजनान् । (२) सादरमवलोक्य । (३) तेषां कामुकी तदभिलाषिणी । (४) पार्वती । (५) स्त्रीशरीरेण (६) स्वशरीरम् । (७) शंभुना । (८) परस्परं स्यूतम् ॥१२२॥

हील० जित० । मखनाम्नो दैत्यस्य वैरिणा शंभुना । उत्प्रेक्ष्यते० । इति हेतोः पार्वतीशरीरेण समं स्ववर्ष्म निजशरीरं व्यतिसीव्यते स्म परस्परं स्यूतं योज्यते स्म । इतीति किम् ?। यत् जितः स्मरो यैस्तादृशान्तरुणान् सादरमवलोक्य सती पार्वती तद्भूषस्यन्ती रागोद्रेकात्कामातुरा तेषां कामुकी भवन्ती

1. नगरजनवर्णनमाह इति प्रतिपार्श्वे टि० । 2. स्तात् हीमु० । 3. इति पौराः हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सती, सती पतिव्रता असती व्यभिचारिणी मा स्ताद्भवतात् ॥१२४॥

हीसुं० [1]यस्मिन्विभान्ति स्म विलासवत्यः [१]स्मरावरोधभ्रममुद्वहन्त्यः ।
किं शक्तयो [२]मन्मथमेदिनीन्दोरमूरमोघास्त्रिजगद्विजेतुः ॥१२३॥

(१) रतिभ्रान्तिं "स्मरावरोधभ्रममावहन्ती"ति नैषधे । (२) स्मरराजस्य । (३) सफलाः अप्रतिहतवीर्याः ॥१२३॥

हील० यस्मिन्० । यस्मिन्पुरे प्रमदा भान्ति स्म । किंभूताः ?। कन्दर्पान्तःपुरं रतिस्तस्य भ्रान्तिं बिभ्रन्त्यः । उत्प्रेक्ष्यते । त्रिभुवनजेतुः कामभूपस्यामूः प्रत्यक्षाः अवन्ध्याः शक्तयः प्रहरणविशेषाः ॥१२५॥

हीसुं० त्य[१]क्ताश्र[२]वः [३]कञ्चुकिकामुकाभिः[४] सकर्णयन्नागररागिणीभिः ।
स्वमन्दिरात्कु[५]ण्डलिनीभिरस्मिन्किमीयुषीभिः शुशुभेऽङ्गनाभिः ॥१२४॥

(१) उज्झिताः । (२) अकर्णा बधिराः । (३) सौविदल्लाः कञ्चुकयुक्ता वा अभिलाषिणः कान्ता वा यकाभिः । (४) कर्णयुक्ताः पण्डिता वा यस्या नागरिकास्तेषु रागिणीभिः रक्ताभिः । (५) कुण्डलं कर्णवेष्टिका तद्युक्ताभिः नागाङ्गनाभिर्वा ॥१२४॥

हील० त्यक्ता० । स्त्रीभिः शुशुभे । उत्प्रेक्ष्यते । निजमन्दिरान्नागलोकादीयुषीभिरस्मिन्नगरे आगताभिर्नागाङ्गनाभिः । किंभूताभिः ?। त्यक्ता अश्रवसः । अकर्णाः, बधिरा इत्यर्थः । कञ्चुकिनः सौविदल्लाः कुब्जवामना इत्यर्थः । कृत्रिमक्लीबा वा कामयितारो याभिस्ताभिः । पुनः किंभूताभिः ?। सकर्णाः प्राज्ञाः श्रोतारः यस्याः पुर्याश्छेकास्तेषु रागिणीभिः ॥१२६॥

हीसुं० भान्ति स्म यस्मिन् [१]सुमनोभिरामा रामा [२]रमाधःकृतकामरामाः ।
स्वस्पर्द्धिनं [३]येन रुषेव देव[४]गृहं [५]निगृह्याप्स[६]रसो गृही[७]ताः ॥१२५॥

(१) सुमनस्त्वेन-विशुद्धचित्तत्वेन पातिव्रत्येन सतीत्वेनेत्यर्थः, पुष्पैर्वा मनोज्ञाः । (२) स्वलक्ष्म्या तिरस्कृतरतयः । (३) नगरेण । (४) स्वर्गम् । (५) निग्रहं कृत्वा-पराजित्य । (६) रम्भा-घृताचीप्रमुखाप्सरसः (७) हठादुपात्ताः ॥१२५॥

हील० भान्ति० । यस्मिन्पुरे निष्पापत्वेनाभिरामाः । पुना रमया शोभयाधःकृते कामस्य रामे रतिप्रीत्यो(ती) याभिस्तादृश्यः रामा भान्ति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । येन पुरेण स्वेन सह स्पर्द्धाकारिणं देवलोकं बन्दीकृत्य गृहीताः स्वर्गिवध्वः ॥१२७॥

हीसुं० किमग्रदूत्यो[१] मदनावनीन्दोः सख्योऽथ वा [२]स्वर्वरवर्णिनीनाम् ।
[2]नागाङ्गनानां किमुता[३]नुवादा यत्राब्जनेत्रा मदयन्ति चेतः ॥१२६॥ इति स्त्रियः ॥

इति पुरवर्णनम् ।

1. नगरस्त्रीवर्णनमाह हील० । 2. भुजङ्गमीनां हीसु०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) प्रथमाः शासनहारिकाः । (२) देवीनामप्सरसां वा । (३) अनुकाराः ॥१२६॥

हील० किम० । यत्र पुरे कमललोचना मनो मदयन्ति । अर्थाद्यूनां मदयुक्तं कुर्वन्ति । शेषं सुगमम् ॥१२८॥

हीसुं० [1]तत्रास्ति [१]भूमान्महमुन्दनामा [२]स्थामैकभूर्भूव[३]लयैकवीरः ।
वधूर्नवोढेव[४] दिने दिने भूः [५]श्रियं दधौ [६]यत्करपीडितापि ॥१२७॥

(१) पातिसाहिः । (२) बलानामद्वैतस्थानम् । (३) भूमीमण्डलाद्वैतसुभटः । (४) नवपरिणीतेव । (५) लक्ष्मीं शोभां च । (६) करो राजदेयांशः । पक्षे आलिङ्गनादिभिः ॥१२७॥

हील० तत्रा० । तत्र देशे महमुन्दपातिसाहिरस्ति । किंभूतः ?। स्थाम्नां पराक्रमाणामेकाद्वितीया भूः-स्थानम् । यत्करेण देयांशेन पीडिता सती नवोढेव भूः शोभां धत्ते स्म ॥१२९॥

हीसुं० प्रजां [१]द्विजिह्वैरिव पीड्यमानां कलेर्विलासैरव[२]साय [३]विश्वाम् ।
तां [४]शासितुं [५]दाशरथिः[2] [६]किमात्तजन्मा स्वयं साहिरसौ बभासे ॥१२८॥

(१) दुर्जनैः । (२) ज्ञात्वा । (३) भुवम् । (४) पालयितुम् । (५) रामः । (६) गृहीतजन्मा ॥ १२८॥

हील० प्रजां० । पातिसाहिर्भाति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । कलिविलासितैर्विश्वां पृथ्वीं पीडयमानां ज्ञात्वा तां पृथ्वीं पालयितुं गृहीतावतारो रामः किमयम् । यथा खलैः पीड्यमानां प्रजां कश्चित्प्रशास्ति ॥१३०॥

हीसुं० [१]निस्तृं(स्त्रिं)शमन्थानगमथ्यमानमहाहवक्षीरधिजन्मना यः ।
वव्रे [२]बलिध्वंशी(सि)विधानधुर्यो जयश्रिया शत्रुरिवा[३]सुराणाम् ॥१२९॥

(१) खड्ग एव क्षुब्धाचलो मेरुस्तेन मथ्यमान आलोड्यमानो यो महासङ्ग्राम एव दुग्धसमुद्रः तस्माज्जन्म यस्याः । (२) बलिर्दैत्यो बलवांश्च तद्घातकरणे गृहीतव्रतः । (३) कृष्णः ॥१२९॥

हील० निस्त्रिंशं खड्गः स एव मन्थापर्वतो मेरुस्तेन मथ्यमानो यो महासङ्ग्रामसमुद्रस्तस्मादुत्पन्नया जयश्रिया स वव्रे । किंभूतः सः ? । बलिनां बलवतां बले दैत्यस्य वधकरणसमर्थः । उत्प्रेक्ष्यते । दैत्यानां शत्रुः कृष्णः जयेनोपलक्षितया लक्ष्म्या व्रियते । बलं-सैन्ये पराक्रमे च ॥१३१॥

हीसुं० [१]अश्यामितास्यं [२]कमलातिदानैर्जितैः प्रसत्तिप्रणिनीषयास्य ।
[४]अभ्रैरिवाभ्राद्ध्रुवमभ्युपेतैर्यद्भूभुजो गन्धगजैर्विरेजे ॥१३०॥

(१) न कृष्णं कृतं मुखं येन । (२) जललक्ष्म्योरतिशयविश्रा[म]णनैः । (३) प्रसादं कर्त्तुमिच्छया। (४) मेघैः । (५) गगनात् । (६) आगतैः ॥१३०॥

हील० अश्या० । यस्य राज्ञो गन्धहस्तिभिः शोभितम् । उत्प्रेक्ष्यते । उज्ज्वलवक्त्रं यथा स्यात्तथा । लक्ष्मीदानैर्जितैः । अस्य राज्ञः प्रसादस्य कर्त्तुमिच्छया गगनादागतैर्वर्द्दलैः ॥१३२॥

---

1. देशाधिराजावरणन इति प्रतिपार्श्वे टि० । 2. प्रजापालनार्थं रामावताशे गृह्यः इति प्रतिपार्श्वे टि० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]विश्वैकधन्वी [२]शरसान्नृपोऽसौ मा क्वापि कुर्या[३]त्परराजवन्माम् ।
[४]जिजीविषुर्भीत इतीव [५]राजा नभो [६]भ्रमीगोचरयाञ्चकार ॥१३१॥

(१) भुवने पार्थ इवाद्वैतधनुर्धरः । (२) बाणायत्तं बाणहतमित्यर्थः । (३) अन्य राजमिव । यथा अन्यं राजानं रणे बाणायत्तं करोति तथा राजशब्दधारिणं मामपि मा शरसात्करोतु । (४) जीवितुमिच्छुः। (५) चन्द्रः । (६) गोचरं करोति इति गोचरयति, गोचरयति स्म इति गोचरयाञ्चकार, भ्रमण्या गोचरयाञ्चकार, "विधेः कदाचित् भ्रमणीविलासे" इति नैषधे ॥१३१॥

हील० विश्वै० । इति अमुना प्रकारेण भीतः सन्राजा चन्द्रः गगनं भ्रम्या भ्रमणस्य गोचरयाञ्चकार। इतीति किम् ?। विश्वेऽद्वितीयधन्वी असौ नृपः परे ये राजानस्तानिव मां राजानमपि क्वापि स्थाने शरसाद्बाणविद्धं मा कुर्यात् ॥१३५॥

हीसुं० [१]जम्बालयद्भिर्जलदैरिवोर्वीं मदाम्बुभिर्यस्य बभे द्विपेन्द्रैः ।
[२]दिग्जैत्रयात्रासु जितैर्दिगीशै[३]र्दिग्वारणेन्द्रै[४]रुपदीकृतैः किम् ॥१३२॥

(१) कर्दमयुक्तां कुर्वद्भिः । (२) दिशां जयनशीलेषु प्रयाणेषु । (३) दिग्गजैः । (४) ढौकितैः ॥१३२॥

हील० जम्बा० । जम्बालान्कुर्वन्तीति जम्बालयन्ति। जम्बालयन्तीति जम्बालयन्तस्तैर्जम्बालयद्भिरुर्वीं कर्दमयुक्तां कुर्वद्भिर्यस्य गजन्द्रै राजितम् । कैः ?। मदपानीयैः । यथा जलदैर्मेघैः पृथ्वी जम्बालकलिता विधीयते । उत्प्रेक्ष्यते । जितैर्दिक्पालैर्ढौकितैर्दिग्गजेन्द्रैः ॥१३४॥

हीसुं० [१]अजय्यवीर्यं [२]निजनिर्जयायोद्यतं[३] यमालोक्य विपक्षलक्षैः ।
[४]स्वक्षत्रवृत्तीरपहाय[५] भेजे क्षेत्रस्य [६]वृत्तिः [७]कृषिकैरिवात्र ॥१३३॥

(१) जेतुमशक्यः पराक्रमो यस्य । (२) स्वपराभवनाय । (३) प्रादुर्भूतम् । (४) वीरव्यापारं । रणकर्मपारीणतां शस्त्रग्रहणात्मिकां वृत्तिम् । (५) त्यक्त्वा । (६) आजीवम् । (७) कर्षुकैः ॥१३३॥

हील० अज० । अजेयपराक्रमम् । पुनरन्यजयायोद्यतं यं भूपं दृष्ट्वा वैरिलक्षैः स्वक्षत्रस्य आजीविका विहाय कृषिकारकैरिव केदारैर्जीवनोपायो भेजेऽङ्गीकृतः ॥१३३॥

हीसुं० यस्य [१]द्वेषिनिषूदनव्रतजुषः [२]प्रत्यर्थिपृथ्वीभुजां
[३]सन्त्रासेन [४]कलिन्दभूधरगुहागर्भं किमा[५]सेदुषाम् ।
[६]स्त्रैणस्याञ्ज[७]ननीलिमाङ्कितपतद्बाष्पाम्बुपूरैरिव
[८]क्ष्मापीठप्रसरद्भिरावि[९]रभवत्पाथोजबन्धोः सुता ॥१३४॥

(१) वैरिणामुन्मूलनमेव व्रतभाजः । (२) वैरिनृपाणाम् । (३) अत्याकस्मिकभयेन (४) कलिन्दनामा गिरिस्तस्य कन्दरमध्योत्सङ्गम् । (५) प्राप्तवताम् (६) स्त्रीसमूहस्य (७) कज्जलकालिमकलितनिर्गलद्रोदनजलप्लवैः । (८) भूमण्डले विस्तरद्भिः (९) प्रकटीभूता यमुना ॥१३४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० **यस्य०** । द्वेषिणां मूलादुन्मूलनव्रतं जुषते-सेवते । तस्य सन्त्रासेनाकस्मिकभयेन कलिन्दपर्वत-मध्यप्रविष्टानां वैरिराज्ञां स्त्रीसमूहस्य पृथ्वीतलविस्तृतैः कज्जलनीलिम्नाङ्कितैः पतद्भिर्बाष्पाम्बुपुरैः कृत्वा पद्मबन्धोः सूर्यस्य सुता यमुनाविरभवत्प्रकटीभूता ॥१३६॥

हीसुं० **[१]सुत्रामाम्बुधिधामदिग्गिरिकुचद्वन्द्वाब्धिनेमीधवः**
पृथ्वीपालललाटचुम्बितपदप्रोद्दामकामाङ्कुशः[२] ।
[३]द्यां [४]स्वर्णाचलसार्वभौम इव यो निश्शेषविश्वम्भरां
शासत्शा[५]त्रवगोत्रजिद्विजयते [६]श्रीगूर्ज्जरोर्व्वीपतिः ॥१३५॥[1]

इति पण्डितदेवविमलगणिविरचिते हीरसुन्दरनाम्नि महाकाव्ये प्रथमप्रारम्भे जम्बूद्वीप-देश-नगर-नृपादिवर्णनो नाम **प्रथमः सर्गः** ॥

(१) प्राचीप्रतीचीशैलावेव स्तनद्वयं यस्यास्तादृग्भूमेः पतिः । (२) नखः । (३) स्वर्लोकम् । (४) इन्द्रः "जाम्बुनदोर्व्वीधरसार्वभौम" इति नैषधे । (५) वैरिणां वंशं जयतीति शत्रव एव गोत्राः । (६) महमुन्दपातिसाहिः ॥१३५॥

इति प्रथमसर्गावचूरिः ॥

हील० **सूत्रा०** । श्रीगूर्जरोर्वीपतिर्विजयति(ते) । किंभूतः ? सुत्रामा शक्रः अम्बुधिधामा वरुणस्तयोर्दिशोर्गिरी पर्वतौ उदयास्ताचलाभिधानौ, तावेव कुचद्वन्द्वं यस्यास्तादृश्या अब्धिनेमेर्मेखलाया भूमेर्धवो भर्ता । पुनः किंभूतः?। पृथ्वीपालानां ललाटैश्चुम्बिताः पदयोः प्रकृष्टाः कामाङ्कुशा नखा यस्य । किं कुर्वन् ? । निःशेषपृथ्वीं शासत् पालयन् । यथा स्वर्णाचलसार्वभौमश्चक्रवर्ती द्यां दिवं शास्ति । "जाम्बूनदोर्वीधरसार्वभौम" इति नैषधे । राजा इन्द्रश्च किंभूतः ?। शात्रवाणां गोत्राणि-वंशान् । शात्रवा रिपव एव गोत्राः-पर्वतास्तान् जयतीति ॥१३५॥

हील० **→यं प्रासूतशिवाह्वसाधुमघवा सौभाग्यदेवी पुनः**
श्रीमत्कोविदसिंहसी(सिं)हविमलान्तेवासिवास्तोष्पतिम् ।
तद्ब्राह्मीक्रमसेविदेवविमलव्यावर्णिते हीरयु
क्सौभाग्याभिधहीरसूरिचरिते सर्गोऽयमाद्योऽभवत् ॥१३८॥←

इति पण्डितश्रीसी(सिं)हविमलगणिशिष्यपं.देवविमलगणिविरचिते हीरसौभाग्यनाम्नि महाकाव्ये प्रथम प्रारम्भे जम्बूद्वीप-भरतक्षेत्र-गूर्जरदेश-प्रह्लादनपुर-महमुन्दपातिसाहिवर्णनो नाम **प्रथमः सर्गः** ॥

हील० **→यं प्रा०** । हीरशब्देन युनक्ति इति हीरयुक्तादृशं सौभाग्यमित्यऽभिधा यस्य तावता हीरसौभाग्यकाव्ये अयं प्रत्यक्षलक्षः प्रथमः सर्गः बभूव । किंभूतेन ? । स पूर्वोक्तश्चासौ ब्राम्याः क्रमौ सेवत इत्येवंशीलश्च । तादृशेन देवविमलेन व्यावर्णिते । स कः ? । पं.देवविमलं शिवा इत्याह्वा यस्य तादृशः साधुः । साधुरिति वणिजां नाम । प्राकृते तु साहा, तेषु मघवा । पुनः सौभाग्यदेवी जनयामास । पुनः किंभूतः?। श्रीमत्कोविदशार्दूलसी(सिं)हविमलस्य शिष्याणां मध्ये अग्रणी प्रथमशिष्यत्वेन प्रधानम् ॥१३८॥

इति प्रथमः सर्गः ॥

---

1. इति नृपवर्णनम् हील०- । →← एतदन्तर्गतः पाठो हीसुं प्रतौ नास्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐँ नमः

अथ द्वितीयः सर्गः ॥

हीसुं० [1] [१] पुरेऽथ तस्मिन्व्यहारि[२] पुङ्गवो बभूव कुंरा इति नाम धामवान् ।
महीरुहां [३] स्वःशिखरीव विश्रुतो[४] रसा[५] स्पृशां न्यक्कृतविश्वनिःस्वतः ॥१॥

(१) प्रह्लादनपुरे । (२) श्रेष्ठः वृषभो वा । (३) कल्पतरुः । (४) द्रुमाणां विख्यातः । (५) जनानाम् । (६) निराकृतजगद्दरिद्रभावः ॥१॥

हील० न्यक्कृता विश्वस्य निःस्वता येन सः । तादृशः कुंराश्रेष्ठी बभूव । अन्यत्सुबोधम् ॥

हीसुं० [१] अरिष्टकेतुं [२] नवभोगसङ्गिनं [३] त्रिरेखपाणिं [४] पुरुषोत्तमं पुनः ।
[५] भ्रमाद्विवोढुर्जलधेरिवोद्वहा[६] महेभ्यमभ्येत्य[७] बभाज यं मुदा ॥२॥

(१) उपसर्गे दैत्ये च धूमकेतुः । (२) विलासः सर्पकायश्च तत्सङ्गोऽस्त्यस्य । (३) आकृतिशङ्खः पाञ्चजन्यश्च हस्ते यस्य । (४) पुरुषेषु श्रेष्ठः कृष्णश्च । (५) भर्त्तुः । (६) लक्ष्मीः । (७) आगत्य ॥२॥

हील० **अरि०** । जलधेरुद्वहा पुत्री लक्ष्मीः स्वपतिभ्रमात्कुंरासाधुं बभाज । किंभूतम् ? । अरिष्टेषु उपद्रवेषु अरिष्टनाम्नि वृषभरूपे दैत्ये धूमकेतुम् । नवभोगस्य सर्पस्य वा सङ्गिनम् । त्रिरेखः शङ्खः आकृत्या पाणौ यस्य तम् । पुनरुत्तमम् ॥२॥

हीसुं० [2] [१] कुबेर [२] इत्यात्म[३] जनावमाननां [४] व्यपोहितुं [५] किंपुरुषेश्वरः स्वयम् ।
[६] वितीर्णसौवर्णमणीगणोऽर्थिनां [७] प्रणीय [८] यन्मूर्त्तिमिवावतीर्णवान् ॥३॥

(१) कुत्सितदेहः (२) इत्यमुना प्रकारेण । (३) स्वस्य लोके अवहेलनाम् । (४) निराकर्त्तुम् । (५) धनदः । (६) याचकानां दत्तकनकरत्ननिकरः । (७) कृत्वा । (८) कुंरासाधुरूपम् ॥३॥

हील० **कुबे०** । कुत्सितवपुरित्यात्मनां जनेऽवगणनां अपकर्त्तुम्, प्रदत्तसुवर्णसमूहः रत्नगणः सन् यन्महेभ्यमूर्त्तिं निष्पाद्य स्वयं धनदो वसुन्धरायां अवतीर्णवान् ॥३॥

हीसुं० [१] तमःसपत्नः [२] श्रितशम्भुशीलनः [३] कुमुद्विकासी[3] [४] वचनामृतं [५] किरन् ।
शशीव योऽशीलि [६] कलाभिरिभ्यराड् [७] विमुक्तदोषः स तदत्र [4] कौतुकम् ॥४॥

(१) अज्ञानस्यान्धकारस्य च शत्रुः । (२) शंभोस्तीर्थकृत ईश्वरस्य च सेवा येन (३) पृथिव्याः प्रमोदं कैरवाणि च विकासयतीत्येवं शीलः । (४) वचनमेवरूपं वा अमृतम् ।

1. हीरपिता 'कुंरा' वर्णनम् इति प्रतिपार्श्वे टि० । 2. धनदावतार इति प्रतिपार्श्वे टि० । 3. ०काशी हेमु० । 4. शिवावतार इति प्रतिपार्श्वे टि० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(५) किरति विस्तारयतीति । (६) [1]द्वासप्ततिमिताभिः उदयांशैश्च सेवितः । (७) त्यक्तापगुणः । सरानिकः (?) ॥४॥

हील० **तमःस०** । यो व्यवहारी ७२कलाभिः शशीव सेवितः । किंभूतः स इभ्यः शशी च ?। तमसोऽज्ञानस्य ध्वान्तस्य च वैरी । पुनः श्रितं शंभोर्जिनस्य शिवस्य च शिरःस्थायुकत्वाच्छीलनं सेवनं येन । कौ पृथिव्यां मुदं कुमन्दि विकाशयति । पुनर्वचनमेव तत्तुल्यममृतं वर्षन् । परमेतच्चित्रं यन्मुक्ता दोषा अपगुणा येन । शशी तु सह दोषया रात्र्या वर्त्तते स सदोषः ★॥४॥

हीसुं० **[१]अलम्भि [२]दम्भोलिशयेभशालिनी न कीर्त्तिरेतस्य परःशतैष्य(: प)रैः ।**
[३]शरत्प्रसन्नीकृतचन्द्रगोलिका सुधामरीचेर्ग्रहतारकैरिव ॥५॥

(१) प्राप्ताः । (२) वज्रपाणिस्तस्य गजस्तद्वत् श्वैत्यात् शोभते इत्येवंशीला । (३) घनात्ययेन निरभ्रीकृता चन्द्रचन्द्रिका । (४) चन्द्रस्य ॥५॥

हील० **अ०** । ऐरावणनिभा एतत्कीर्त्तिः परैर्नाप्ता । यथा ग्रहैश्चन्द्रिका नाप्यते ॥५॥

हीसुं० **[१]वहन्सुपर्व्वद्रुमरामणीयकं [२]सनन्दनो [३]गोत्रपराध्र्यतां दधत् ।**
[४]सुजातरूपः सुमनोमनोरमोऽ[५]नुयाति यः स्वेन [६]सुपर्वपर्वतम् ॥६॥

(१) कल्पतरुरिव वपुषा रमणीयतां कल्पद्रुमैश्च चारुत्वम् । (२) भाविनि भूतोपचारात्सह पुत्राभ्यां हीरजी—श्रीपालाभ्यां वर्तते यः । पक्षे-वनम् । (३) वंशे शैलेषु च प्रकृष्टताम् । (४) शोभनमुत्पन्नं रूपं यस्य पक्षे स्वर्णम् । (४) सुमनोभिर्हारादिकुसुमै रम्यः निष्पापं मनसां सतां मनसि सुगुणधर्मित्वेन रमते वा । सुमनस्त्वेन मनोरमः सुमनसां मध्ये मनोज्ञः । पक्षे-दैव्यै रम्यः । (५) अनुकरोति । (६) मेरुम् ॥६॥

हील० **वह०** । कल्पवृक्षास्तद्वत्तैश्च रम्यभावं वहन् । पुनः सह नन्दनाभ्यां **हीरकुमारश्रीपालाभ्यां** नन्दनवनेन [वा] वर्त्तति(ते) तथा गोत्रे वंशेऽचलेषु प्रकृष्टतां दधत् वा सुशोभनं जातं रूपं वा सुष्ठु जातरूपं स्वर्णं यत्र। सुमनसां सुमनस्त्वेन रम्यः । एतादृशो य इभ्यः मन्दरमनुकरोति ॥६॥

हीसुं० **[१]जगज्जनावाङ्मनसावगाहिना [2]गभीरभावेन जितेन साधुना ।**
[२]सुधास्त्रवन्तीपतिना हृदा दधे किमेष रोषो [3]वडवानलोपधेः[३] ॥७॥

(१) विश्वलोकस्य वचनमनोगोचरातीते । (२) क्षीरसमुद्रेण । (३) कपटात् ॥७॥

हील० **जग०** । जगज्जनानां न वाङ्मनसौ अवगाहते इत्येवंशीलस्तेन वक्तुमशक्येनेत्यर्थः । गम्भीरस्त्वेन कृत्वा इभ्येन जितेन क्षीराब्धिना वडवाग्निरूपः । किमु कोपः धृतः ★॥७॥

---

1. कला-७२ । इति प्रतिपार्श्वे टि० । 2. गम्भीर० हीमु० । 3. वडवार्चिषो मिषात् हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]समाप्य [२]कामान्मरुतां[३] [४]स्वदारुतां [५]निरस्य तेषां च वरात्प्रसेदुषाम्[६] ।
मिषादमुष्ये[७]प्सितदित्सया 1विशां [८]मरुत्तरुः क्षोणिमिवावतीर्णवान् ॥८॥

(१) सम्पूर्णीकृत्य । (२) मनोरथान् । (३) देवानाम् । (४) निजकाष्ठत्वम् । (५) अपाकृत्य । (६) प्रसन्नीभूतानाम् । (७) नराणां कामितानां दातुमिच्छया कुंरारूपेण । (८) कल्पद्रुमः ॥८॥

हील० देवानामभिलाषान्पूरयित्वा । पुनस्तेषां देवानां वरात्काष्ठत्वमपास्य । विशां नराणामीहित दातुमिच्छया एतदिभ्यमिषात्किं कल्पतरुरागतः *॥८॥

हीसुं [१]अतिस्मरै[स्त]त्तनुकामनीयकैस्सहाभ्यसूयां[२] दधतौ निजश्रियाम् ।
[३]अनौचितीक्रुद्धजगत्कृतार्कजावकारिषातां [४]वडवासुताविव ॥९॥

(१) अतिक्रान्तः स्मरो यैः स्मरपराभविष्णुभिः कुंरारारीरस्य कमनीयताभिः । "कामनीयकमधः कृतकाम" मिति नैषधे । (२) ईर्ष्याम् । (३) योग्यत्वाभावेन कुपितेन विधिना । (४) अश्वौ कृतौ शब्दच्छलादिति, तत्त्वतस्तु अश्विनीसुतौ ॥९॥

हील० अतिक्रान्तः स्मरो यैस्तादृशैस्तस्य शरीरसौन्दर्यैः सहेर्ष्यां दधतौ प्रति अनौचित्या क्रुद्धेन धात्रार्कजौ हयासुतावश्वौ कृतौ ॥९॥

हीसुं० मिथः परिस्पर्द्धितया [१]वदान्यतागुणैर्विजित्य व्यवहारिणामुना ।
इमार(अ)रक्ष्यन्त [२]सुधाशधेनवः [३]स्वगोधनस्योपधिनेव धामनि ॥१०॥

(१) दानशीलत्वगुणैः । (२) कामगव्यः । (३) निजगोकुलकपटेन ॥१०॥

हील० मिथः० । अमुना व्यवहारिणा स्वगोकुलमिषेण धामनि गृहे सुरधेनवः रक्षिताः । शेषं सुगमम् ॥१०॥

हीसुं० [१]सुपात्रसस्नेहगुणाग्र्यवृत्तिभृत्तमःप्रतीपः[२] [३]स्वकुलप्रकाशकृत् ।
प्रदीपदेश्योऽपि परं न [४]धूमभाक्कुलं न [५]चाध्यामलयत्कदापि यः ॥११॥

(१) शोभनानि पात्राणि चतुर्विधसंघो यस्य । पक्षे-अमत्रं शरावकं प्रीतिस्तैलं च औदार्यादिगुणैर्मुख्यां वृत्तिं बिभर्त्तीति । (२) अज्ञानध्वान्तयोः शत्रुः । (३) स्वस्य कुले-गोत्रे गृहे च प्रकाशकर्त्ता । (४) कोपः (५) मलिनीचकार न ॥११॥

हील० सु० । सुशोभनानि पात्राणि यस्य, स्नेहेन सहितः । पुनर्गुणैरौदार्यादिभिर्मुख्यां आजीविकां बिभर्त्ति तादृशः । पुनस्तमःशत्रुम् । स्वस्य कुलस्य-वंशस्य गृहस्य वा प्रकाशकः । अत एव प्रदीपसमानोऽपि परं धूमं कोपं भजति तादृशो न । पुनर्यः कुलं वंश गृहं कदापि नाध्यामलयत् न मलिनीचकार ।

---

1. विशामिवावनौ स्वःफलदोऽवतीर्णवान् हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रदीपस्तु धूमभाक् कुलं चाध्यामलयति । "कुलं कुल्यगणे गेहे देहे जनपदेऽन्वये" इत्यनेकार्थः ॥

हीसुं० [१]धुनीधवं येन [२]गभीरनिःस्वेनैर्विजित्य मुक्तामणिविद्रुमावली[1] ।
ततः समग्रा जगृहे तदाद्यसौ बभूव किं [३]निःस्थि(स्व)तया [४]जडाशयाः ॥१२॥

(१) समुद्रम् । (२) गम्भीरध्वनिभिः । (३) दरिद्रत्वेन । (४) जडः ॥१२॥

हीलo **धुनी०** । येन व्यवहारिणा गम्भीरशब्दैर्नदीपतिं जित्वा ततः समुद्रान्मुक्तादिगृहीतम् । उत्प्रेक्ष्यते । तदादि तद्दिनमारभ्य निःस्वतया दरिद्रत्वेन आशयो यस्य । अथ किं करिष्यते, क्व गमिष्यते, क्व पूत्करिष्यते । डलयोरैक्यादियं घटना ॥१२॥

हीसुं० [१]व्यमोचि नामुष्य कदाचिदन्तिकं [२]रथाङ्गपाणेरिव [३]पद्मसद्मना ।
[४]गुणव्रजेनेव [५]नियन्त्र्य मुक्तया [६]वितीर्णवाचेव [७]यदृच्छयाथ वा ॥१३॥

[2]इति कुंरावर्णनम् ॥

(१) मुक्तम् । (२) विष्णोरिव । (३) लक्ष्म्या । (४) औदार्यादयो रज्जवश्च (५) बध्वा । (६) दत्तवाग्बन्धयेव (७) स्वेच्छया ॥१३

हील० **व्य०** । चक्रपाणेरिवास्य समीपं पद्मवासिन्या लक्ष्म्या न मुक्तम् । उत्प्रेक्ष्यते । स्वगुणेन निबद्धयाथवा स्वैरं दत्तवाचया इव ॥१३॥

हीसुं० [3]मनः [१]समुत्कण्ठयतस्तनूमतां[२] पयःप्लवं [३]शैवलिनीपतेरिव ।
अमुष्य नाथी सुमुखी [४]बभूवुषी [५]कुमुद्वतीव [६]द्विजचक्रवर्त्तिनः ॥१४॥

(१) उत्सुकं कुर्वतः । उत्प्राबल्येन कण्ठं तटं नयतः । (२) जनानाम् । (३) समुद्रस्य वारिपूरम् । (४) जाता । (५) कैरविणी । (६) चन्द्रस्य ॥१४॥

हील० **मनः** । शरीरिणां चित्तमुत्कण्ठयतोऽस्य **नाथी** पत्नी बभूवुषी जाता । यथा नदीपतेष्प(ः प)यःपूरं कण्ठादूर्ध्वं नयतो द्विजराजस्य कुमुदिनी पत्नी भवति ॥१४॥

हीसुं० [१]चलेति विश्वे [२]वचनीयताश्रुतेः प्रियेण [३]बाणद्विषता [४]तिरस्कृता ।
[५]उदीतदुःखादिदमात्मना[६] [4]परं जनुः प्रपेदे किमु [७]पद्ममन्दिरा ॥१५॥

(१) इयं चपला, अस्थिरा, न कस्यापि गृहे स्थिरीभवतीति । (२) अपवादश्रवणात् (३) कृष्णेन । (४) धिक्कारिता । (५) उत्पन्नदुःखात् । "उदीतमातङ्कितवानशङ्कित्" ति नैषधे (६) नाथीस्वरूपेण । (७) लक्ष्म्याः(लक्ष्मीः) ॥१५॥

---

1. वलिः हीमु० । 2. इति कुंरासाहः हील० । 3. हीरमाता 'नाथी' वर्णनम् इति प्रतिपार्श्वे टि० । 4. जनुः परंप्रपे० हीपु०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीलo **चलेo । नाथी** भातीति सम्बन्धः । उत्प्रेक्ष्यते । इयमस्थिरेत्यपवादश्रवणात् । प्रियेण कृष्णेन तिरस्कृता सती उत्पन्नदुःखादस्याः शरीरेण किं लक्ष्मीरन्यजन्म प्रपेदे-प्रपन्ना *॥१५॥

हीसुंo [१]ततं वचो [1]यस्य [२]घनं [३]पदाङ्गदध्वनिश्च [४]काञ्च्याः [५]सुषिरं [2]पुनः स्वनः ।
तया बभे [६]जङ्गमरङ्गशालया किमत्र शृङ्गारनटस्य नृत्यतः ॥१६॥[4]

(१) ततं वीणाप्रभृतिकम् । (२) तालप्रभृतिकम् । (३) नूपुर[र]वः । (४) मेखलायाः । (५) वंशादिकं सुषिरम् । (६) चलन्नर्त्तनस्थानम् ॥१६॥

हीलo **ततंo**। तया बभे । उत्प्रेक्ष्यते । शृङ्गारनटस्य जङ्गमया चलन्त्या रङ्गशालया यत्र वीणाप्रभृतिकं ततं वचनम् । पुनर्यत्र घनं तालादिकम् । पदाङ्गदानां नूपुराणां ध्वनिः । काञ्च्या रवः । सुषिरं वंशादिकं भाति ॥१६॥

हीसुंo 4[१]जगत्त्रयीजन्मजुषां मृगीदृशां विजित्य राजीर्निजजित्वरश्रिया[२] ।
अधारि किं मूर्द्धनि [३]पद्मचक्षुषा [४]जयाङ्कबालव्यजनं [५]कचच्छटा ॥१७॥

(१) त्रैलोक्योद्भूतानां । (२) जयनशीलशोभया । (३) <u>नाथीदेव्या</u> । (४) विज[य]सूचकं चामरम् । (५) केशपाशः । छटाशब्दः समूहवाची ''तटान्तविश्रान्ततुरङ्गमच्छटा'' इति नैषधे ॥१७॥

हीलo **जगo** । त्रिजगति उत्पन्नानां स्त्रीणां श्रेणीर्निजस्यात्मनो जित्वर्या श्रिया कृत्वा विजित्वा(त्य) ।अनया केशपाशः जयसूचकं बालव्यजनं चामरं धृतम् । छटाशब्दः श्रेणीवाचकः । ''तटान्तविश्रान्त-तुरङ्गमच्छटा''इति नैषधेऽपि ॥१७॥

हीसुंo विधुं [१]द्विधाकृत्य विधिर्व्यधत्त[य]ल्ललाटमर्द्धेन[२] शिवे न्यधात्परम् ।
न [३]चेन्मृगाङ्कार्द्धधरः कथं हरः [४]किमर्द्धचन्द्रोप[5]मितिं[६] च तद्वहेत ॥१८॥

(१) द्वौ भागौ । (२) भालम् । (३) अर्द्धचन्द्रधरः । '' लब्धार्द्धचन्द्र ईश'' इति चम्पूकथायाम् । (४) अर्द्धचन्द्रसाम्यम् ॥१८॥

हीलo **विधुंo** । विधाता चन्द्रं द्विधा कृत्वार्द्धेन यस्या भालं चक्रे । अन्यदर्द्धं शिवे । उपलक्षणाच्छिवशिरसि स्थापयामास । एवं तस्मात्तदा लब्धार्द्धचन्द्रो हरः कथं तल्ललाटं अर्द्धचन्द्रोपमानं अष्टमीचन्द्रोपमानं, कथं-कया रीत्या, वहेद्धरेत् ॥१८॥

1. <u>**यत्र**</u> हीमुo । 2. <u>**स्वनः पुनः**</u> हीमुo । 3. <u>इति नाथी</u> हीलo । 4. <u>अथ नाथीसर्वाङ्गवर्णनावसरः</u> हीलo । 5. <u>**मितं च**</u> हीमुo ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

हीसुं० मृगीदृशो [१]हेलितकेलतीश्रियो ललाटपट्टे [२]कुरलेन निर्बभे ।
स्मितारविन्दस्य धियेव तस्थुषा यदानने पौष्प[३]पिपासयाऽलिना ॥१९॥

(१) अवगणितरतिशोभायाः "केलतीमदनयोरुपाश्रये" इति नैषधे । (२) भ्रमरालकेन भ्रमराकारेणालकनिकरेण । (३) मकरन्दपानस्पृहया ॥१९॥

हील० मृगी०। हेलितावगणिता केलत्याः कन्दर्पपत्न्या रत्याः श्रीः शोभा यया । तादृश्यास्तत्याः कुरलेन भ्रमरालकेन निर्बभे शोभितम् । उत्प्रेक्ष्यते । यदानने पौष्पं मरन्दं पातुमिच्छया तस्थुषा विकसितकमलबुद्ध्या स्थितेन भ्रमरेण ॥१९॥

हीसुं० [1][१]अमूदृशाम्[२]भोजदृशा स्म भूयते न [३]जातुचिद्यौवत[४]निर्म्मितौ मम ।
[५]इतीव रेखेय[६]मिदंमुखे [७]मषेर्मिषाद्भ्रुवोर्नाभिभुवा व्यधीयत ॥२०॥

(१) ईदृशया । (२) स्त्रिया । स्त्रिया [?] (३) कदाचिदपि । (४) युवतीसमूहनिर्माणे । (५) इति हेतोः । (६) अस्या वदने । (७) भ्रुवोः । (८) कपटेन । मषे रेखा नाभिभुवा विहिता "इदं यशासि द्विषतः सुधामुच" इति नैषधे ॥२०॥

हील० अमू०। अस्या मुखे भ्रुवोर्दम्भाद्धात्रा । इयं मषेः कज्जलस्य रेखा विहिता । इतीति किम् ?। मम युवतीनिकरनिर्माणे एतत्सदृशया पद्मनेत्रया जातुचित्कदाचिदपि न जातम् ॥२०॥

हीसुं० [१]स्वकामिनी कैरविणी तनूभवे [२]विरञ्चिना लो[च]नताम[३]वायिते ।
विधातुमङ्के किमु लोलके(कै)रवे [४]यदास्यभावः [५]शरदिन्दुना [६]दधे ॥२१॥

(१) स्वप्रियायाः कुमुद्वत्याः शरीरादुत्पन्ने कैरविणीपतिश्चन्द्रः । (२) धात्रा । (३) नाथीनयनीकृते । (४) नाथीवदनभावः । (५) शारदशशिना । शरदि कमलकुमुदानामुद्भवात् शरच्चन्द्रेणेति सार्थकविशेषणम् । (६) धृतः ॥२१॥

हील० स्वपत्न्याः कुमुद्वत्याः अङ्गजाते । धात्रास्या नेत्रभावं प्रापिते । लोलकैरवे प्रति किमूत्सङ्गे कर्त्तुम् । शरच्चन्द्रे[ण] यन्मुखत्वं धृतम् ॥२१॥

हीसुं० [2]विभाति यद्भ्रू[१]युगभासिनासिका विजित्य विश्वत्रितयं [२]मनोभुवा ।
[३]यदङ्गरु[3]क्पूरपयोधिसन्निधौ कृतो [४]यशस्तम्भ इव [५]ध्वजाङ्कितः ॥२२॥

(१) उपरि पार्श्वद्वयविलसद्भ्रूयुगलशोभनशीला नासिका । (२) स्मरेण । (३) नाथीशरीररुचिनिचयसमुद्रसमीपे । (४) कीर्तिस्तम्भ इव । (५) ध्वजकलितः ॥२२॥

हील० विभा०। यस्या भ्रुवोर्युगेन भासते इत्येवंशीला नासिका भाति । उत्प्रेक्ष्यते । मनोजेन जगज्जित्वा ।

1. वदनवर्णन इति प्रतिपार्श्वे टि० । 2. नेत्रनासीकावर्णन इति प्रतिपार्श्वे टि० । 3. ०रुक्पुञ्ज० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यस्या अङ्गस्य रुचां कान्तीनां पुञ्ज एव जलधिस्तन्निकटे पताकाञ्चितः कीर्त्तिस्तम्भः कृतः ॥*२२॥

हीसुं० **[१]वि[1]डम्बिताखण्डमृगाङ्कमण्डले कपोलपाली स्फुरतः तदानने ।**
[२]मणीमये [३]दर्प्पणिके [४]यदोकसोरिमे रतिप्रीतिमृगीदृशोरिव ॥२३॥

(१) स्वश्रिया अनुकृतं पूर्ण चन्द्रबिम्बं याभ्याम् । (२) रत्ननिर्मिते । (३) आदर्शिके "यन्मतौ विमलदर्प्पणिकाया" मिति नैषधे । (४) नाथीदेव्येव गृहं ययोः ॥२३॥

हील० **विड०**। विडम्बितं अनुकृतं वा सम्पूर्णचन्द्रमण्डलं याभ्यां तादृशे गल्लस्थले तस्या मुखे लसतः । उत्प्रेक्ष्यते । या **नाथी** एवौको गृहं ययोस्तादृश्योः कामकान्तयोः इमे दृग्लक्ष्ये रत्नरचिते आदर्शिके इव ॥२३॥

हीसुं० **[2]किमिच्छता [१]पाशयितुं [२]जगत्त्रयीयुवव्रजान्वा[३]गुरिकेन(ण) [४]रङ्कुवत् ।**
स्मरेण [५]यादष्प(:प) तिपाशजित्वरी दधे [६]द्विपाशी सुदृशः श्रुतिद्वयी ॥२४॥

(१) पाशपतितान् कर्त्तुम् । (२) त्रैलोक्यतरुणगणान् । (३) जालिकेन । (४) मृगानिव । (५) वरुणपाशस्य जयनशीला । (६) पाशद्वयम् ॥२४॥

हील० **किमि०** । सुनयनायाः श्रुतिद्वयी भाति । उत्प्रेक्ष्यते । जगत्तरुणव्रजान्पाशयितुं कामेन याद:पतिपाशवरुणपा[श]जैत्री । द्वयोः पाशयोः समाहारो, द्विपाशी धृता ॥२४॥

हीसुं० **[3][१]वियोगवत्योषधि[4]योषया [२]यदाननीभवत्कान्तसितद्युतिं प्रति ।**
स्थितस्त[३]दङ्के प्रहितस्त[४]नूजवत् [५]प्रवाल [६]आह्वातुमिवाधरोपधेः ॥२५॥

(१) नाथीदेव्याः विरहिण्या औषधिरेव कान्ता तया । (२) नाथीवदनरुपजातं स्ववल्लभं चन्द्रम् । (३) वदनचन्द्रोत्सङ्गे । (४) पुत्र इव । (५) पल्लवः प्रकृष्टबालश्च बवयोरैक्यात् । (६) आकारयितुम् ॥२५॥

हील० **वियो०** । वियोगो विरहः । वीनां भृङ्गखगादीनां योगस्सम्बन्धो यस्यास्तादृशी औषधिरेव योषा स्त्री तया। यदाननी भवन्तं नाथीवक्त्रं सम्पद्यमानं स्वभर्त्तारं चन्द्रं प्रति आकारयितुं प्रेषितस्तनूजवत्पुत्र इव। प्रवालः प्रकृष्टे दक्षो बालः-शिशुः पल्लवश्च । उत्प्रेक्ष्यते । ओष्ठमिषाच्चन्द्रोत्सङ्गे स्थित इव बालः-सुतः पितुरुत्सङ्गे तिष्ठतीति स्थितिः ॥२५॥

हीसुं० **नि[१]पातुकेन द्विज[२]कान्तिमिश्रितस्मितेन यस्या [३]रदनच्छदे बभे ।**
जलेन [४]वातूलतरङ्गितात्मना [५]सुधापयोधेरिव हेम[६]कन्द[5]लः ॥२६॥

(१) पतनशीलेन । (२) दन्तद्युतिमिलित । (३) अधरे । (४) वायुसमुहेन कल्लोलित

---

1. कपोलस्थलवर्णन इति प्रतिपार्श्वे टि० । 2. मस्तककेसवर्णन इति प्रतिपार्श्वे टि० । 3. **होठवर्णन** इति प्रतिपार्श्वे टि० ।
4. ०**वत्यौ**० हीमु० । 5. ०दुले हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वभावेन । (५) क्षीरसमुद्रस्य । (६) [1]विद्रुमः ॥२६॥

हील० नि० । यस्या दन्तवस्त्रे पतनशीलेन दन्तकान्तिमिश्रितेनेषद्धसितेन बभे । उत्प्रेक्ष्यते । क्षीरसमुद्रस्य प्रवाले निपातुकेन पुनर्वातव्रजेन तरङ्गयुक्तीकृतं स्वरूपं यस्य तादृशेन जलेन शोभितम् ॥२६॥

हीसुं० [१]स्वकान्तवक्त्रामृतकान्तिदर्शनात् [२]हृदन्तरुद्वेलितरागसागरात् ।
[३]निरी(रि)त्वरी विद्रुमकन्दलीव[2] यद्वि[४]लासवत्या [५]दशनच्छदो बभौ ॥२७॥

(१) निजकुंरा[?]भिधवल्लभवदनचन्द्रवीक्षणात् । (२) मनोमध्ये वेलामतिक्रान्तादनुराग-समुद्रात् । (३) निर्गमनशीला । (४) नाथीदेव्याः । (५) अधरे ॥२७॥

हील० स्वका० । यस्या विभ्रमवत्या ओष्ठो बभौ । उत्प्रेक्ष्यते । स्वभर्त्तुर्यो मुखचन्द्रस्तस्य दर्शनात् मनोमध्ये वेलामतिक्रान्त उद्वेलः उद्वेलत्वं सञ्जातमस्मिन्स तस्मादुद्वेलिताद् रागसमुद्रान्निर्गमनशीला प्रवाललतेव ॥२७॥

हीसुं० [१]द्विजाधिपत्यं मुख एव [२]मुख्यतो मृगीदृशो[3] यो न[३] कुमुद्वतीपतौ ।
[४]द्विजैरमीभिर्यदसौ दिवानिशं निषेव[4]णागोचरतां[५] स्म नीयते ॥२८॥

(१) द्विजानां राजता । (२) प्राधान्यतः । (३) न चन्द्रे । (४) दशनैः । (५) सेव्यते ॥२८॥

हील० द्विजा० । अस्या मुखे द्विजानामाधिपत्यं न चन्द्रे । मुख शब्दः पुंनपुंसके । यस्मादसौ मुखः दन्तैः सेवाया गोचरं प्रापितः ॥★२८॥

हीसुं० [5][१]यदाननान्तर्वसतेः सुधारसादिवो[२]द्गतः पाटल एष कन्दलः ।
विलासदोलेव निखेलितुं [४]गिरोऽथवा [५]मृगाक्षीरसना स्म [6]भासते ॥२९॥

(१) यद्वक्त्रमध्ये । (२) प्ररूढः । (३) रक्तः । (४) सरस्वत्याः । (५) नाथीजिह्वा ॥२९॥

हील० यदा० । तस्या जिह्वा शोभते स्म । उत्प्रेक्ष्यते । यदाननमध्ये वसितात्सुधारसा–प्ररूढो रक्त एषोऽङ्कुरः वाथवा सरस्वत्याः प्रेङ्खेव ॥*२९॥

हीसुं० [१]यदीयवाचं विधिना [२]विधित्सुना [३]सुधामुपात्तामधि[४]गत्य[8] [५]निस्तुषाम् ।
[६]सुधाशना [७]अध्वरभोजिनस्तदादितो[८] बभूवुस्तद[९]भावतः किमु ॥३०॥

(१) नाथीवाणी । (२) कर्त्तुकामेन । (३) गृहीताम् । (४) ज्ञात्वा । (५) समग्राम् । (६) देवाः । (७) यज्ञभुजः । (८) तद्दिनादारभ्यः । (९) सुधाया अभावात् ॥३०॥

हील० यदी० । यद्वाचं विधातुमिच्छुना धात्रा सुधां समग्रां गृहीतां ज्ञात्वा देवा यज्ञांशभोज्यकारकाः किं तत्प्रभृति जाता ॥३०॥

---

1. प्रवाल इति प्रतिपार्श्वे टि० । 2. च हीमु० । 3. ०शोऽस्या न० हीमु० । 4. ०वणाया विषयं हीमु० । 5. जिह्वावर्णन इति प्रतिपार्श्वे टि० । 6. शोभते हीमु० । 7. नाथीवाणीवर्णन इति प्रतिपार्श्वे टि० । 8. ०गम्य हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [1][१]कुशेशयादर्शसुधांशुजित्वरं विधाय वेधा [२]इदमीयमाननम् ।
इदं दृशा मा कुदृ[३]शां प्रदुष्यतादितीव चक्रे [2]चिबुकेन [४]दन्तुरम् ॥३१॥

(१) कमल-दर्पण-चन्द्रजयनशीलम् । (२) नाथीसम्बन्धिमुखम् । (३) क्षुद्रदृष्टीनां दृष्ट्या मा दुष्यतात्, दृष्टिदोषो मा स्तादित्यर्थः । (४) विषमोन्नतम् ॥३१॥

हील० कु० । कमलदर्पणचन्द्रजैत्रं मुखं निष्पाद्य दुर्ज्जनानां दशा मा विकृतिं गच्छतादिति चिबुकेन विषमोन्नतं चक्रे ॥३१॥

हीसुं० विजित्य [१]कान्त्या जगृहे क्रुधा यदाननेन लक्ष्मीः [२]क्षणदापतेस्तथा ।
हृदस्फुटच्चेन्न कुतस्ततस्सुधा निरी(रि)त्वरी [३]क्षुद्रतदङ्करन्ध्रतः ॥३२॥

(१) शोभया । (२) चन्द्रस्य । (३) लघुचन्द्रवक्षछिद्रतः लाञ्छनरूपं वा छिद्रम् ॥३२॥

हील० विजि० । यस्या मुखेन निशापतेश्चन्द्रस्य श्रीस्तथा गृहीता यथा तस्य हृदयं स्फुटितम् । इति चेन्न तर्हि तस्य क्षुद्रलघुकलङ्करन्ध्रात् ततश्चन्द्रात्सुधा कुतो निर्गच्छति ॥३२॥

हीसुं० समं यदास्येन [१]मृधे [२]महौजसा [३]निरोजसा[४]ऽभाजि किमेण[५]लक्ष्मणा ।
यतोऽमुनाऽद्यापि[६], तदङ्कबोधिका [७]व्यमोचि ना[८]भ्रभ्रमणी कदाचन ॥३३॥

(१) सङ्ग्रामे । (२) अतिबलवता । (३) निर्बलेन । (४) पलायितम् । (५) चन्द्रेण । (६) तस्य भङ्गस्य चिह्नस्य ज्ञापयित्री । (७) मुक्ता । (८) गगनपर्यटनम् ॥३३॥

हील० समं० । महाबलेन यन्मुखेन सह मृधे रणे निर्बलेन मृगाङ्केन भग्नम् । यत अमुना चन्द्रेण तस्य भङ्गस्य चिह्नज्ञापयित्री अभ्रभ्रमणी अद्यापि न मुक्ता ॥३३॥

हीसुं० [१]त्रिनेत्रनेत्रानलभस्मितात्मभूप्रभोर्जग[२]न्निर्जयवादनोचितः ।
[३]जगत्कृतादाय [४]यदङ्गनिर्म्मितौ किमेष [५]कम्बुर्गलकन्दलीकृतः ॥३४॥

(१) ईश्वरभाललोचनवह्निना भस्मीभूतमकरध्वजराजस्य । (२)त्रिभुवनविजयं कृत्वा वादनयोग्यः । (३) विधिना । (४) नाथीशरीरनिर्माणे । (५) स्मरशङ्खः कण्ठपीठः कृतः ॥३४॥

हील० त्रिनेत्र० । ईश्वरनेत्राग्निदग्धकामनृपस्य जगज्जये वादनार्हः एषः शङ्खः । अस्यास्तनुनिष्पादने कण्ठपीठतां धात्रा प्रापितष्कि(: कि)मु ॥३४॥

हीसुं० [3]स्फुर[१]त्प्रभापूगतरङ्गचङ्गतां [२]नितम्बलीलापुलिनं च बिभ्रती ।
धुनीव [३]रोधौ[धो]विहसन्मृणालिकां भुजाद्वयीं या बिभ[४]राम्बभूवुषी ॥३५॥

(१) दीप्यमानकान्तिप्रतानकल्लोलच्चारुताम् । (२) नितम्ब एव क्रीडाकरणार्थं जलोज्झिततीरम् । (३) नदीतटे विकसन्त्यौ मृणालिके यस्याः । (४) दधौ ॥३५॥

1. गलस्थलवर्णन इति प्रतिपार्श्वे टि० । 2. त्राजुर्याच्छूदांच्छे (?) इति प्रतिपार्श्वे टि० । ३. अनन्यलावण्यतर० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० **अनन्य०** । या बाहुयुगलीं बिभर्त्ति स्म । यथा धुनी नदी उन्मिषन्तीं बिसलतां धत्ते । या किं कुर्वती ? । असाधारणलावण्यतरङ्गाणां चारुतां पुनर्नितम्बावेव लीलातटं बिभ्रती ॥*३५॥

हीसुं० [१]सकुङ्कुमैतद्वदनेन[२] निर्जितं [३]जिगीषया [४]तच्छलदर्शनोत्सुकम् ।
किमागतं को[५]कनदं तदन्तिके चकास्ति तस्या नवपाणिपल्लवः ॥३६॥

(१) घुसृणयुक्तम् । (२) नाथीवक्त्रपराभूतम् । "अयमुदयति घुसृणारुणतरुणीवदनोपमश्चन्द्रः" इति विदग्धमुखमण्डने । (३) जेतुमिच्छया । (४) नाथीमुखच्छिद्रान्वेषणे उत्कण्ठितम् । (५) रक्तकमलम् ॥३६॥

हील० तस्या नवनं नवः स्तुतिः । तद्युक्तो यः करपल्लवश्चकास्ति । उत्प्रेक्ष्यते । सकुङ्कुमेन निर्जितं सत् जेतुमिच्छया मुखछलालोकनोत्कं मुखपार्श्वे आगतं रक्तोत्पलम् ॥३६॥

हीसुं० [१]पृथक्पृथक्पञ्चमुखद्विषन्मुखान्निहन्तुकामेन रुषा मनोभुवा ।
[२]शराश्रये [३]यत्करनाम्नि [४]कल्पिता अमी शराः पञ्च [५]किमङ्गुलीमयाः ॥३७॥

(१) ईश्वर एवारिस्तस्य पञ्चापि मुखानि पृथक् पृथक्छेत्तुकामेन । । (२) तूणीरे । (३) नाथीहस्ताभिधाने । (४) निर्मिताः । (५) नाथीदेव्याः पञ्चाङ्गुलिरूपाः ॥३७॥

हील० **पृथ०** । क्रुधा भिन्नानि भिन्नानि कृत्वा शंभुमुखान् छेत्तुमिच्छता कामेन यस्याः कर एव नाम यस्य तादृशे तूणीरे अङ्गुलीरूपाः किं एते बाणाः ॥३७॥

हीसुं० [१]यदीयपृष्ठे कनकत्विषि [२]स्मितप्रसूनशून्येतरकुन्तलच्छटा ।
[४]शिलातले [३]स्वर्गिगिरेरिव [५]ग्रहाङ्किताभ्रवीथी प्रतिबिम्बिता व्यभात् ॥३८॥

(१) तनोश्चरमे भागे वंशके इत्यर्थः । (२) विकचत्कुसुमकलितकेशपाशः । (३) मेरोः । (४) शिलोत्सङ्गे । (५) तारकयुक्तं गगनस्थलम् । "स्वःसोपानपरंपरामिव वियद्वीथीमलङ्कुर्वते" इति चम्पूकथायाम् ॥३८॥

हील० **यदी०** । यस्याः पृष्ठभागे विकसितपुष्पभृता केशश्रेणिर्भाति स्म । इवोत्प्रेक्ष्यते । मेरोः शिलातले ग्रहयुक्ता प्रतिबिम्बिता गगनपद्धतिरिव । किंभूते पृष्ठे शिले ? । कनकत्विषि कनकेन कनकत्वेन त्विषते दीव्यते इति काञ्चनत्विट् । तस्मिंस्तादृशे ॥३८॥

हीसुं० [१]परानवाप्यान्निजवारापत्तना[२]न्मनोभिधानान्मदनावनीभुजः ।
जगद्विजेतुं चलितस्य [३]हृत्सुमस्रजा पुरो [४]वन्दनमालिकायितम् ॥३९॥

(१) अन्यनरैः प्राप्तुमशक्यात्तस्याः सतीत्वेन आत्मनः कन्दर्पस्य वसनार्थं पत्तनात् । (२) मनोनामनगरात् । (३) वक्षःस्थलस्थायुककुसुमहारेण । (४) मङ्गल्यमालेवाचरितम् ॥३९॥

हील० **परा०** । परैर्वैरिभिष्का(: का) मुकैर्वा नावाप्तुं योग्यात्नाथीचित्तनाम्नः जगज्जेतुं चलितस्य प्रस्थितस्य कामराज्ञः पुरस्तात् हृदि पुष्पमालया मङ्गलाय जातम् । परानवाप्येति पदेन सतीत्वमुद्भाव्यते ॥३९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]यदीयहृत्केलिनिकेतखेलिनं [२]झषाङ्कमाकारयितुं [३]सुहृत्तया ।
[४]सितांशुनेव प्रहितोडु[५]मण्डली विभाति यद्वक्षसि मौक्तिकावली ॥४०॥

(१) नाथीहृदयं एव क्रीडागृहे लीलायमानम् । (२) स्मरम् । (३) मित्रत्वेन । (४) शशिना । (५) नक्षत्रश्रेणिः ॥४०॥

हील० यदी० । यस्या हृदि हारलता भाति । उत्प्रेक्ष्यते । यदीयहृदेव क्रीडानिकेतं तत्र खेलते इत्येवंशीलं कामं सुहृत्तया आह्वयितुं प्रेषिता तारकश्रेणिरिव । झषाङ्कं मकरध्वजमिति ॥४०॥

हीसुं० [१]रथाङ्गलीलां दधतौ [२]प्रभाम्भसि स्तनौ तदीयौ स्फुरतः सचूचुकौ ।
[३]मरन्दलुभ्यद्भ्रमराभिषङ्गिनौ(णौ) [४]सुवर्णपङ्केरुहकुड्मलाविव ॥४१॥

(१) चक्रवाकशोभाम् । (२) शरीररुचिजले । (३) मकरन्दपानार्थं लोलुपीभवतां भ्रमराणां संयोगयोः । (४) कनककमलकोशौ ॥४१॥

हील० प्रभानीरे चक्रवाकयोर्लीलां धारयन्तौ तदीयौ स्तनौ स्फुरतः । उत्प्रेक्ष्यते । मकरन्देषु लुभ्यतां लोलुपीभवतां भ्रमराणां सङ्गो ययोस्तादृशौ कनककमलकोशौ इव ॥४१॥

हीसुं० [१]तनूलतागाधतरङ्गितप्रभाप्रतानपाथोधिपयस्तितीर्षया ।
[२]हरिन्मणीसेतुरिवात्म[३]जन्मना व्यधायि रोमावलिरेणचक्षुषः ॥४२॥

(१) नाथीदेवीशरी(र)यष्टेः अतिशायिकल्लोलयुक्तं जातं यत्कान्तिकदम्बकं तदेव समुद्रस्तज्जलस्य तरीतुमिच्छया । (२) मरकतमणिमया पद्या । (३) स्मरेण ॥४२॥

हील० तनू० । मृगदृशः लोमा श्रेणी भाति । उत्प्रेक्ष्यते । स्मरेण नीलरत्ननिबद्धः सेतुर्विहितः । परं किमर्थं कामयष्टेरगाधं तरङ्गितं यत्कान्तिवितानं स एव समुद्रस्तस्य पयसां तरीतुमिच्छया ॥४२॥

हीसुं० द्रवीभवद्भूरिसिताभ्रचन्दनप्रगल्भवाह्लीककुरङ्गनाभिभिः ।
विलिप्य काचित्कुतुकात्पृथग्वलीः कदाचिदेतामिदमूचुषी सखी ॥४३॥
त्वया स्वकीर्त्या सुमनस्त[१]रङ्गिणी [२]वचोविलासेन पुनः [३]सरस्वती ।
[४]यमस्वसा [५]कुन्तलभङ्गिभिर्जिता [६]भजन्त्युपेत्य [७]त्रिवलीच्छलादिव ॥४४॥युग्मम्॥

(१) जलीभवन्त्यः बहुलं कर्पूरं यत्र तादृक् श्रीखण्डं तथा प्रकृष्टं यत्कुङ्कुमं तथा कस्तूरिकास्ताभिः । (२) उदरे मांससङ्कोचलक्षणाः । (३) भाषितवती ॥४३॥

(१)गङ्गा । (२) वाक्चातुर्येन(ण) । (३) वाग्वादिनी । (४) यमुना । (५) केशरचनया । (६) गङ्गा-सरस्वती-यमुनाः सेवन्ते । (७) त्रिवलीकपटेन ॥४४॥

हील० द्रवी० । द्रवीभवन् । भूरिः कर्पूरो यत्र तादृक्चन्दनं पुनर्मनोज्ञं कुङ्कुमं च कस्तूरिका च ताभिः कृत्वा । भिन्ना भिन्ना वली(र्वि)लिप्य सिताभ्रेण चन्दनेन प्रथमां, कुङ्कुमेन द्वितीयां, कस्तूरिकया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृतीयां लिप्त्वा सखीदमूचुषी ब्रुवास(णा) । हे सखि ! त्वया कीर्त्या गङ्गा, वाचा सरस्वती, केशरचनाभिर्यमी जिता एता त्रिवलीमिषादेत्य त्वां सेवन्ते ॥४३-४४॥

हीसुं० **निरीक्ष्य लक्ष्मीं [१]निजभर्तुमातरं स्थितां सदाध्यास्य [1]विकासि [२]पङ्कजम् ।**
इवानुकर्तुं रतिरा[३]त्मनापि तां[४] यदी[५]यनाभीनलिने [६]निषेदुषी ॥४५॥

(१) निजभर्तुः कामस्य जननीं तस्य श्रीनन्दनत्वात् । (२) स्मेरकमलम् । (३) स्वेन । (४) श्रियम् । (५) नाथीनाभिकमले । "नाभीमथैष श्लथवाससा नुतिः" नैषधे (६) स्थिताः ॥४५॥

हील० **निरी०** । रतिः कामपत्नी यन्नाभिकमले निषेदुषी स्थितवती । किंकृत्वा ? । निजभर्तुः कामस्य जननीं विकसितपुष्पमाश्रित्य स्थितां दृष्ट्वा तां स्वेन सदृशीभवितुम् ॥*४५॥

हीसुं० **[१]अगण्यलावण्यतरङ्गचङ्गिमानुषङ्गिशोचिःसुरसिन्धुसन्निधौ ।**
[२]निखेलितुं किं [३]पुलिनं [४]स्मराभ्रमूप्रियस्य यस्या जघनं विधिर्व्यधात् ॥४६॥

(१) प्रमातुमशक्याया यद्वपुःसुभगतायाः कल्लोलानां लावण्यलहरीणां रमणीयतायाः सङ्गोऽस्त्यस्य तादृक्शोचिरेव गङ्गा तस्याः समीपे । (२) क्रीडितुम् । (३) जलोज्झितं तीरम् । (४) मदनरूपैरावणस्य ॥४६॥

हील० **अग०** । यस्या जघनं धाता चक्रे । उत्प्रेक्ष्यते । अगण्यं यल्लावण्यं तस्य तरङ्गाणां चारुता यत्र तादृक् । शोचिरेव सुरनदी तस्याः पार्श्वे स्मर एवैरावणस्तस्य क्रीडितुं किं तटम् ॥४६॥

हीसुं० **[१]अजय्यवीर्यं [२]मृड[३]मन्यहेतिभिर्विजि[४]त्वरीभिर्जगतोऽपि [५]जानता ।**
स्मरेण धात्रा किमु [६]कार्यते स्म यन्नितम्बचक्रं [७]युवयोगिधैर्यजित् ॥४७॥

(१) जेतुमशक्यपराक्रमम् । (२) ईश्वरम् । (३) अपरप्रहरणैः । (४) जयनशीलाभिः । (५) अवधारयता । (६) निर्मापितम् । (७) तरुणाश्च योगिनो वशीकृतात्मानश्च, अथ तरुणाः सन्तो योगिनस्तेषां धैर्यं ब्रह्मव्रतं जयति ध्वंसते इति न हि प्रायो वृद्धानां मदनाभिलाषः स्यात् ॥४७॥

हील० **अन०** । अन्यशस्त्रैर्जगज्जयनशीलैरपि । ईश्वरं अजेयपराक्रमं जानता स्मरेण विश्वसृष्टिकृता पार्श्वे यस्या नितम्बचक्रं कारितम् । यदि अन्यैर्जगज्जेतृभिर्न जातं तर्हि चक्रेणापि किं भावि । अतश्चक्रं युवयोगिधैर्यजित् ॥४७॥

हीसुं० **[१]करीन्द्रहस्तात्क[२]दलीप्रकाण्डतो [३]निरस्य [४]कार्कश्यमसारतां[५] पुनः ।**
इमौ किमादाय [६]परस्परोपमं यदूरुयुग्मं विधिना विनिर्म्ममे ॥४८॥

(१) करिशुण्डादण्डात् । (२) रम्भास्तम्भाच्च । (३) अपाकृत्य । (४) कठिनताम् । (५) प्रकाण्डो मूलशाखानिर्गमनप्रदेशयोरन्तरालवर्त्ती विभागस्तत्रासारतां निर्बीजत्वम् ।

1. विजृम्भि हीमु०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(६) अन्योन्यमेव साम्यं ययोः अन्यतदुपमेयपदार्थाभावात् ॥४८॥

हील० **करी०** । भद्रगजशुण्डादण्डात्कार्कश्यं निराकृत्य । पुनः रम्भास्तम्बात् असारतामपास्य । पश्चाद्द्वौ गृहीत्वा यस्या ऊरुयुग्मं धात्रा निर्मितम् ॥४८॥

हीसुं० **यदूरुजङ्घायुगयोर्विवृत्स[1]तोष्प[2](: प)रस्परा द्वैत[1]तया [3]विरोधिनोः ।**
[4]द्विराजताया भयतस्त[5]दन्तरानिवासिजानू किमल[6]क्ष्यतां गतौ ॥४९॥

(१) वर्द्धितुमी(मि)च्छतोः । (२) अन्योन्यासाधारणलक्ष्मीकत्वेन । (३) वैरभाजोः । (४) द्वयो राज्ञोर्भावो द्विराजता । (५) ऊरुजङ्घायुगयोर्मध्ये निवसनशीलौ जानू । (६) अदृश्यताम् ॥४९॥

हील० **यदूरु०** । अन्योन्यं विरुद्धभावधारिणोः । पुनर्वर्द्धितुमिच्छतो यस्या ऊरुजङ्घायुगयोर्यद्वैराज्यं तस्य भयतः । तयोर्जङ्घायुगयोर्मध्ये निवासिनौ जानू ऊरुपर्वणी किमदृश्यतां प्राप्तौ ॥★४९॥

हीसुं० **[1]रतीशगेहेऽजनि यत्र जङ्घयोर्गृहा[2]श्रयस्थूणिकयोरिव द्वयम् ।**
[3]यदीयगुल्फावपि गुप्ततां [4]गतौ किमंह्रि[4]शोचिः सलिले निमज्जनात् ॥५०॥

(१) <u>नार्थी</u>तनुरूपे मदनमन्दिरे । (२) भवनाधारस्तम्भयोः । (३) <u>नार्थीदेव्या</u>श्चरणग्रन्थी । (४) पदकान्तिसलिले ॥५०॥

हील० **रती०**। यत्र देहे जङ्घयोर्द्वयमजनि । उत्प्रेक्ष्यते । कामसद्मनि गृहस्याश्रयो यस्मिन् तादृशस्तम्भयोर्द्वयमिव । पुनर्यस्या गुल्फौ अदृश्यतां गतौ । उत्प्रेक्ष्यते । अङ्घ्रयोः कान्तिरेव सलिलं, तस्मिन्निमज्जनादेव ॥★५०॥

हीसुं० **[1]पदारविन्दोन्नतताभिरात्मनः पराजितैः [2]कुञ्जरराजयानया ।**
[3]अगोपि [4]मन्दाक्षविलक्षितात्मभिर्व[5]ने वसद्भिः [6]कम[3]ठैः किमाननम् ॥५१॥

(१) क्रमकमलौन्नत्यैः । (२) गजेन्द्रगमनया । (३) गुप्तीकृतम् । (४) लज्जा । (५) वनं जलं का [?] कान्तारश्च । (६) कच्छपैः ॥५१॥

हील० **पदा०** । गजगमतया तया स्वस्य चरणकमलयोरुन्नततत्वेन जितैस्सद्भिः । ह्रिया विमनीभूतस्वरूपैष्पु-(: पु)नर्वने पानीय तिष्ठद्भिः । कच्छपैः मुखं गुप्तीकृतमिव ॥★५१॥

हीसुं० **यदीयपादौ सरलाङ्गुली द्यु[1]ता [2]करम्बितौ [3]झांकृतिकारिनूपुरौ ।**
श्रियानुयातः[4] कमले [5]दलद्दले [6]मरन्दनिःस्यन्दिनदत्सितच्छदे ॥५२॥

(१) कान्त्या । (२) मिश्रितौ । (३) रणज्झणितिशब्दं कुर्व(रु)त इत्येवं शीले नूपुरे ययोः । (४) सदृशीभवतः । (५) विकसन्ति दलानि ययोः । (६) मकरन्दरसोऽस्त्यनयोस्तथा शब्दायमाना हंसा ययोः ॥५२॥

---

1. <u>०द्वैतविरोधिताजुषोः</u> हीमु० । 2. <u>गताविवाङ्घ्रिशो०</u> हीमु० । 3. <u>०मठैरिवाननम्</u> हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० यदी० । सरलाङ्गुलीदीप्त्या व्याप्तौ । पुनर्झांकृतिकारिणी नूपुरे ययोस्तादृशौ । यस्याः पादौ कमलेऽनुकुरुतः सदृशौ भवतः । कमले किंभूते ? । दलद्दले दलन्ति विजृम्भमाणानि पत्राणि ययोः । पुनः किंभूते ?। मरन्दं निःस्यन्दते-क्षरते इत्येवंशीले । नदन्तो वदन्तो हंसा ययोस्तौ ॥५२॥

हीसुं० [1]स्फुरत्प्र[१]भातैलकरम्बितान्तरे [२]यदंह्रिपात्रेऽ[३]गुलिवृत्ति[वर्त्ति] वर्त्तिनः ।
नखाः प्रदीपा इव विस्फुरत्त्विषोऽपुषन्विभूषाम[४]भिभूततामसाः ॥५३॥

(१) दीप्यमानकान्तितैलभृतमध्ये । (२) नाथीचरणरूपशरावके । (३) अङ्गुलय एव दशास्तासु वर्त्तन्ते इत्येवंशीलाः । (४) भिन्नतमः समूहाः ॥५३॥

हील० कान्तिवितानमेव तैलं, तेन व्याप्तमन्तरं यस्य तादृशे चरणपात्रेऽङ्गुलीदशा वर्त्तिनः नखाः प्रदीपा इव शोभां पुष्टामकार्षुः ॥*५३॥

हीसुं० [१]व्यलीलसत्पा[२]टलिमा पदाम्बुजद्वयस्य [३]यस्याः सरसीजचक्षुषः ।
[४]स्वमार्दवेनाभिभवं [५]विधित्सतः [६]प्रवालपुञ्जैरुप[७]दीकृतः किमु ॥५४॥

(१) शुशुभे । (२) रक्तत्वम् । (३) नाथीदेव्याः । (४) निजसुकुमालतया । (५) कर्त्तुमिच्छन्ति (मिच्छतः) । (६) पल्लवपटलैः । (७) ढौकितम् ॥५४॥

हील० व्यली० । यस्याः कमललोचनायाश्चरणकमलद्वयस्य रक्तता विलसति स्म । किमुत्प्रेक्ष्यते । स्वमृदुतया पराभवं कुर्वतः चरणद्वयस्य किसलयौघैः पाटलिमा प्राभृतीकृतः ॥५४॥

हीसुं० असौ जयन्ती [१]जलजं [२]स्वपाणिना [३]रदैश्च [४]तारश्रियमात्मना [५]श्रियम्[2] ।
[६]मृगाङ्कमास्येन रुचाऽपि[3] चम्पकं स्मरस्य [७]हेतिष्कि(:कि)मु [८]विश्वजित्वरी ॥५५॥

[4]इति नाथी ॥

(१) कमलम् । (२) करेण (३) दन्तैः । (४) तारकशोभाम् । (५) लक्ष्मीम् । (६) चन्द्रम् । (७) शस्त्रम् । (८) जगज्जैत्रम् ॥५५॥

हील० किमुत्प्रेक्ष्यते । असौ विश्वे जयनशीला स्मरस्य हेतिः शस्त्रम् । असौ किंकुर्वती ? । कमलं स्वकरेण जयन्ती । पुना रदैस्ताराणां निर्मलमौक्तिकानां शोभां, पुनर्लक्ष्मी स्वस्वरूपेण मुखेन चन्द्रं कान्त्या चम्पकं जयन्ती ॥*५५॥

हीसुं० अथो मिथः[१] प्रीति[२]परीतदम्पती इमौ [३]कलाकेलिविलासशीलिनौ ।
[४]विलेसतुः केलि[५]सरस्सरिद्वनीगिरीन्द्रभूमीषु रतिस्मराविव ॥५६॥

(१) परस्परम् । (२) प्रेमकलितौ नाथीकुंराख्यौ । (३) कन्दर्पक्रीडाकारिणौ । (४) खेलत(:)स्म । (५) क्रीडातडाक-नदी-कानन-शैल-क्षितिषु ॥५६॥

हील० अथो० । कलाकेलेः स्मरस्य विभ्रमं शीलतो भजन्त इत्येवंशीलौ । पुनः प्रमोदेन व्याप्तौ दम्पती

1. प्रभाप्रथातैल० हीमु० । 2. रमाम् हीमु० । 3. च हीमु०। 4. इति नाथीसर्वाङ्गवर्णनम् हील०- ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्त्रीभर्त्तारौ इमौ नाथीकूंरौ क्रीडार्थं ये सरांसि सरितो वन्यः वनानि पर्वताश्च, तेषां भूमीषु स्थानकेषु विलेसतुर्विविधां क्रीडां केलतीकामाविव चक्रतुः ॥५६॥

हीसुं० [१]सकाकतुण्डैणमदद्रवाङ्कितोरसोः परिक्षालनतः कदापि तौ ।
[२]सुतामिवार्कस्य विहार[३]वाहिनीं [४]विनिर्मिमाते [५]जलकेलिलालसौ ॥५७॥

(१) कृष्णागुरुमिश्रितकस्तूरिकापङ्कविलिस [व्याप्त ?] वक्षसोः । (२) यमुनाम् । (३) क्रीडानदीम् । (४) चक्राते । (५) सलिलखेलनलोलुपौ ॥५७॥

हील० सका० । कदापि कस्मिन्नपि समये सह कृष्णागुरुणा वर्त्तते । तादृशो यष्क(: क)स्तूरिकापङ्कस्तेन व्याप्तयोरुरसोर्धावनतः विलासनदीं यमुनोपमां कुर्वाते । "विहारस्तु जिनालये लीलायां भ्रमरे स्कन्धे" इत्यनेकार्थः ॥५७॥

हीसुं० [१]कुमुत्स्मिता [२]षट्पदपङ्क्तिकुन्तला [३]स्मितोत्पलाक्षी [४]कजकुड्मलस्तनी ।
प्रियेव [५]पाथःप्लवने [६]सहंसका[1] [७]तरङ्गहस्ता[2] सरिदालिलिङ्ग तम् [८]॥५८॥

(१) कुमुदेव तद्वद्वा हसितं यस्याः । (२) भृङ्गश्रेणिरेव तद्वच्च केशा यस्याः । (३) विकचत्कुवलयमेव तद्वद्वा नयने यस्याः । (४) कमलस्य कोशावेव तद्वच्च कुचौ यस्याः । (५) जले केलिसमये । (६) सह नूपुरेण मरालेन वा वर्त्तते या । स्वार्थे 'क' प्रत्ययः । (७) कल्लोला एव तद्वद्वा करौ यस्याः । (८) कुंराख्यम् ॥५८॥

हील० कुमु० । पाथःप्लवने जलकेलिसमये । नदीं प्रियेव तं आलिलिङ्ग । यथा पत्नी स्वभर्त्तारमाश्लिष्यति । किंभूता नदी प्रिया च ?। कुमुदेव तद्वद्वा स्मितं यस्याः । पुनर्भ्रमराणां पङ्क्तय एव तद्वद्वा कुन्तला यस्याः । स्मितकमलमेव तद्वदक्षिणी यस्याः । कमलमुकुलावेव तद्वत्स्तनौ यस्याः । सहंसकैर्मरालैर्नूपुराभ्यां च वर्त्तते सा । उभयतटस्थौ तरङ्गौ एव तद्वद्वा बाहू यस्याः ॥★५८॥

हीसुं० वि[१]जृम्भिजाम्बूनदपद्मनिष्पतत्परागपिङ्गीकृतवारिशालिनि ।
समं करिण्या करिणेव प[२]ङ्कजाकरे ऽमुना[३]क्रीडि [४]कुरङ्गचक्षुषा ॥५९॥

(१) स्मेरसुवर्णकमलनिर्गलद्रजः पीतीकृतसलिलशोभा भासिते । (२) सरसि । (३) क्रीडितम् । (४) नाथीदेव्या समम् ॥५९॥

हील० विकसितसुवर्णारविन्देभ्यो निष्पतत्परागपीतवारिणा शालिनि कमलाकरे । अनेन कुरङ्गाक्ष्या समं क्रीडितम् । यथा हस्तिन्या समं हस्तिना क्रीड्यते ॥५९॥

हीसुं० [१]स्मितारविन्दोदयदिन्दुविभ्रमादिवाम्बु[२]लीलासमये [३]तयोर्मुखे ।
[४]विमुग्धसारङ्गचकोरशावका [3]भजन्ति [५]पौष्पामृतयोष्पि[६](: पि) पासया ॥६०॥

(१) विकचत्कमलस्य तथा उदयच्चन्द्रस्य च भ्रान्त्याः । (२) जलक्रीडासमये । (३)

१. सहंसिका हीमु० । २. तरङ्गबाहुः हीमु० । ३. मरन्दपीयूषपिपासयाभजन् हीमु० ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

<u>नाथीकुंरा</u>ख्ययोः । (४) अज्ञभ्रमरचकोरबालौ(लाः) । (५) मकरन्दपीयूषयोः । (६) पातुमिच्छया ॥६०॥

हील० **स्मिता०** । जललीलासमये मकरन्दाणा(ना)ममृतानां च पातुमिच्छया । अचतुराः सारङ्गाणां भृङ्गाणां चकोराणां च । "सारङ्गा हरिणे शैले कुञ्जरे चातके खगे । शबले चिञ्चरीके चे"त्यनेकार्थः । पोतास्तयोर्मुखे प्रति सेवन्ते स्म । इवोत्प्रेक्ष्यते । विकसितं यत्कमलं उदयन् य इन्दुस्तयोर्भ्रमादिव ॥*६०॥

हीसुं० **[१]प्रफुल्लकङ्केल्लिरसालमल्लिकाकदम्बजम्बूनिकुरम्बचुम्बिते ।**
[२]अलीव साकं [३]सुदृशा स [४]निष्कुटे कदापि रेमे [५]श्रितसूनशीलनः ॥६१॥

(१) विनिद्राशोकः-सहकारो-विचकिलनामा पुष्पजातिविशेषः-नीपः-जम्बूः प्रसिद्धः श्यामफलः निकरकलिते । (२) भृङ्गः । (३) <u>नाथीदेव्या</u> । (४) गृहारामे । (५) आश्रितः पुष्पावचयो येन सः ॥६१॥

हील० **प्रफु०** । प्रफुल्ला कुसुमिता ये किङ्केल्लयोऽशोकाः, सहकाराः, मल्लिका विचिकिलाः, कदम्बाः, जम्ब्वः, श्यामफलास्तेषां वृन्देन चुम्बिते कलिते । एतादृशे निष्कुटे गृहारामे स्वस्त्रिया सह कस्मिन्नपि स रेमे क्रीडति स्म । यथाली भ्रमरः सीमारामे रमते । किंभूतः स अली च ?। श्रितं सूनानां कुसुमानां सेवनं येन सः ॥६१॥

हीसुं० **रसालसालस्य[१] तले [२]विलासिना [३]प्रणीय वीणां [४]क्वणनानुवादिनीम् ।**
अगीयत [५]श्रोत्रसुधारसोपमं क्वचिन्मृगाक्ष्या[६] सह किंनरेन्द्रवत् ॥६२॥

(१) आम्रतरोरधस्तात् । (२) <u>कुंरा</u>महेभ्येन । (३) कृत्वा । (४) स्वशब्दमनुगच्छतीत्येवंशीला, आत्मध्वनितुल्यां विधाय । (५) कर्णयोरमृतरसनिषेकतुल्यम् । (६) **<u>नाथीदेव्या</u>** सार्द्धम् ॥६२॥

हील० **रसा०** । क्वणनं निजध्वनिमनुकरोतीत्येवंशीलां वीणां सज्जीकृत्य अमुना तया सममगीयत गीतम् ॥६२॥

हीसुं० **कदापि मन्दार[१] इव स्मितद्रुमे [२]विलासदोलाम[३]वलम्ब्य लीलया ।**
न्यखेलि तेनोपवने [४]मृगीदृशा [५]समं स्वदेव्या [६]द्युसदेव [७]नन्दने ॥६३॥

(१) मन्दारनाम्नि सुरतरौ । (२) क्रीडाप्रेङ्खोलनाम् । (३) आश्रित्य । (४) स्त्रिया । (५) सार्द्धम् । (६) देवेन । (७) मेरुवने स्वर्गवने वा ॥६३॥

हील० **कदा०** । मन्दारः कल्पवृक्षस्तत्सदृशे स्मिततरौ लीलया विलासार्थं प्रेङ्खोलनमाश्रित्य तेन स्वस्त्रिया समं न्यखेलि । उपवने क्रीडितम् । यथा द्युसदा देवेन स्वदेव्या समं दोलां बध्वा नन्दनवने क्रीड्यते ॥६३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० **कदाचिदिभ्यः [१]कलधौतभूधरे [२]चिखेल सार्द्धं [३]परमाणुमध्यया ।**
[४]मृगाङ्कचूडामणिरद्रिचक्रिण[५]स्तनूजयेवा[६]द्भुतभूतिभासुरः ॥६४॥

इति दम्पतीक्रीडा ॥

(१) क्रीडार्थं रजतशैले कैलाशे च । (२) रमते स्म । (३) परमाणुरिवोदरं यस्याः । कृशोदर्याः । "अध्यापयामः परमाणुमध्या" इति नैषधे । (४) ईश्वरः । "मृगाङ्कचूडा-मणिवर्जनार्जित" मित्यपि नैषधे । (५) हिमाचलस्य पुत्र्या पार्वत्या । (६) आश्चर्यकारिणी भूतिः-लक्ष्मीर्भस्म च तया भासुरो दीप्यमानः ॥६४॥

हील० **कदा०** । इभ्यः कलधौतं रूप्यं तस्य वा श्वेतत्वेन तत्तुल्ये गिरौ परमाणुवन्मध्यमुदरं यस्यास्तादृश्या तया समं चिखेल, खेलति स्म । यथा चन्द्रचूडः अद्रीशस्य पुत्र्या समं रूप्याचले खेलति । किंभूतः स इभ्यः ? । अद्भुतया भूत्या-सम्पदा भस्मना वा भासुरः ॥६४॥

हील० **→विनोदमेवं सृजतोरहर्निशं तयोः स्मराज्ञैकवशंवदात्मनोः ।**
दिनानि दोगुन्दकदेवयोरिव प्रमोदभाजोरतिचक्रमुः क्रमात् ॥६५॥←

विनो० । अनिशं क्रीडां कुर्वतोष्पु(: पु)नः स्मरस्य आज्ञाया वशंवद आत्मा ययोस्तादृशयोः स्वयो<u>र्नाथीकुंरा</u>व्यवहारिणोर्दिनानि दोगुन्दकदेवयोः इव अतिचक्रमुरतिक्रामन्ति स्म । किंभूतयोः ?। प्रमोदभाजिनोः ॥६५॥

हीसुं० **कदाचिद[१]म्भोरुहिणीव निद्रया सुखं [२]प्रसुप्ता प्रहरेऽन्तिमे[३] निशः ।**
[४]तदङ्गना[५]स्वप्नसरोऽवगाहिनं न्यभालयज्ज[६]म्भनिशुम्भकुम्भिनम् ॥६५॥

(१) पद्मिनी । (२) शयाना । (३) रात्रेश्चरमे यामे । (४) <u>कुंरासाहप्रिया</u> <u>नाथी</u> । (५) स्वप्न एव सरोऽवगाहते आश्रयतीत्येवंशीलम् । (६) ऐरावणम् ॥६५॥

हील० **कदा०** । कस्मिन्नपि समये सा पद्मिनी रात्रौ यथा स्वपिति तथा सुप्ता सती निशाचतुर्थे यामे तस्या <u>नाथ्याः</u> स्वप्न एव सरस्तमवगाहते इत्येवंशीलं जम्भस्य निशुम्भनं हिंसनं यस्मात्स इन्द्रस्तस्य हस्तिनं पश्यति स्म ॥६६॥

हीसुं० **[१]श्रियेव निर्जित्य समग्रदिग्गजान्धृतैर्जयाङ्कैश्चमरैर्विराजितम् ।**
प्रभुं[२] धराणामिव धात्वधि[३]त्यकां [४]स्वमूर्ध्नि सिन्दूररुचिं च बिभ्रतम् ॥६६॥

(१) जयसूचकैः । (२) हिमाचलम् । (३) गैरिकमयोर्ध्वभूमीम् । (४) कुम्भस्थले ॥६६॥

हील० **श्रिये०** । चतुर्भिः काव्यैर्गजं निशिनष्टि । किंभूतं गजम् ? । शोभया सर्व दिग्गजान्विजित्य धृतैर्जयसूचकैः शोभितम् । पुनष्किं(: किं)कुर्वन्तम् ? । सिन्दूरकान्ति धारयन्तम् । यथा धराणां प्रभुर्हिमाद्रिर्गैरिकस्योद्धर्वभूमीं धत्ते ॥६७॥

→← एतदन्तर्गतः पाठो हीसुंप्रतौ नास्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० अ[१]खण्डचण्डेतरधाममण्डलान्तरालतो निर्गतम[२]ङ्कवर्त्मना ।
महीतले [३]स्त्यानतया कथञ्चनावति[४]ष्ठमानं किमु वा सुधारसम् ॥६७॥

(१) सम्पूर्णचन्द्रबिम्बमध्यात् । (२) लाञ्छनमार्गेण । (३) पिण्डत्वेन । (४) तिष्ठन्तम् ॥६७॥

हील० **अख०** । अखण्डो यस्तीक्ष्णेतरकिरणः शशी, तस्य बिम्बमध्याल्लाञ्छनमार्गेण निःसृतम् पुनर्निश्चलतया स्थितिं कुर्वाणं अमृतद्रवं इव ॥६८॥

हीसुं० [१]सृजन्तमुच्चैः[२] [३]स्वकरं मदोदयात्कुलाद्रि[४]सान्द्रप्रतिनादमेदुरैः ।
स्वगर्ज्जितैः [५]स्पर्द्धितया पयोमुचां[६] चमूं [७]विगायन्तमिवातिकोपतः[८] ॥६८॥

(१) कुर्वन्तम् । (२) ऊर्ध्वम् । (३) निजशुण्डादण्डम् । (४) मन्दरप्रमुखशैलेषु निबिड-प्रतिशब्देन पुष्टैः । (५) स्पर्द्धनशीलत्वेन । (६) घनानाम् अप्पतां "नवाम्बुदानीकमुहूर्तलाञ्छने" इति रघुवंशे । (७) निन्दन्तम् । (८) अधिकक्रोधेन ॥६८॥

हील० **सृज०** । किं कुर्वन्तम् ? उच्चैः करं कुर्वन्तम् । पुनष्कि(ः किं) कुर्वन्तम् ? । महत्पर्वतेषु प्रतिच्छन्देन पुष्टैर्गर्जितैर्मेघानां सेनामवगणयन्तम् ॥६९॥

हीसुं० कुतूहलेनेव [१]महीविहारिणं [२]महीधरं कैरवबन्धुधारिणः ।
किमेत[३]योर्भाग्य[४]नभोमणेरहः[५] [६]शरद्विधोर्वा किमु [७]पिण्डितं महः ॥६९॥

इति गजस्वप्न : ॥ [1]पञ्चभिःकुलकम् ॥

(१) भूमण्डलचारिणम् । (२) पर्वतम् । ईश्वरस्य कैलाशमित्यर्थः । (३) नाथीकुंराख्ययोः । (४) पुण्यसूर्यस्य । (५) दिवसः । (६) शारदशशिनो वा । (७) पिण्डीभूतम् । (८) कान्तिनिकरः ॥६९॥

हील० **कुतू०** । उत्प्रेक्ष्यते । चन्द्रधारिणः ईश्वरस्य कौतुकान्मह्यां चरन्तं कैलासमिव । किमथवा तयोर्भाग्यसूर्यस्य दिनम् । अथवा शरच्चन्द्रस्य पिण्डीभूतं तेज इव ॥७०॥

हीसुं० [2][१]अमोचि तं स्वप्नमवेक्ष्य [२]संलये [३]विलोचनाम्भोरुहमुद्रणानया ।
[४]पयोरुहिण्येव [५]पयोजबान्धवोदये [६]शचीकान्तहरिन्महीधरे ॥७०॥

(१) मुक्ता । (२) निद्रायाम् । (३) नयनकमलमीलनम् । (४) पद्मिन्या । (५) सूर्योद्गमे । (६) पूर्वाचले ॥७०॥

हील० **व्यमो०** । अनया तं स्वप्नं दष्ट्वा, संलये निद्रायां, नयनकमलयोर्मुद्रणा निमीलनं, व्यमोचि मुक्ता । यथा इन्द्रहरितः पूर्वायाः, पर्वते उदयगिरौ सूर्योदयं विभाव्य पद्मिन्या नेत्रतुल्ययोः पयोजयोर्मुद्रणा मुकुलनं विमोच्यते ॥*७१॥

---

1. <u>आदितः पञ्चभिः०</u> हील० । 2. <u>व्यमोचि</u> हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० सुखं [१]शयाना निशि निद्रयाऽङ्गना [२]निभाल्य तं स्वप्नमवाप संमदम् ।
यथा [३]परब्रह्म [४]समीररुन्ध(रोध)नैर्निबद्ध[५] धी[1]रासनयोगिमण्डली ॥७१॥

(१) सुखेन स्वपन्ती । (२) वीक्ष्य । (३) परमज्योतिः । (४) प्राणापानादिवायूनां वशीकरणैः । (५) रचितपद्मासना योगभाजां राजिः ॥७१॥

हील० सुखं सुप्ता सा स्त्री स्वप्नं दृष्ट्वा मुदमाप । यथान्तर्वायुनिरोधे परमात्मानं दृष्ट्वा पद्मासनस्थिता योगिनां श्रेणिष्प(: प)रमां मुदमाप्नोति ॥*७२॥

हीसुं० [१]गभीरिमाणं दधतः स[२]पल्लवस्मितप्रसूनव्रजिराजितान्तरात् ।
[३]स्वहंसतूलीशयनोदरादसौ क्षणादु[४]दस्थात्करिणीव सै[५]कतात् ॥७२॥

(१) निम्नताम् । (२) प्रवालकलितविकचत्कुसुमनिकरशोभितमध्यात् । (३) आत्मनो हंसेनोपलक्षिता तूली प्रस्तरणोपकरणविशेषस्तत्संयुक्तं यत् । शयनीयं शय्या तस्य मध्यात् । (४) उत्थिता । (५) तटात् ॥७२॥

हील० **गभी०** । गम्भीरात् । पुनः किसलयसहिता विकसिता ये पुष्पव्रजास्तै राजितं अन्तरं यस्य तादृशं यत्स्वकीयं हंसतूलीनाम्ना शयनम् । तन्मध्यात् **नाथी** तत्कालमुत्थिता । यथा हस्तिनी तटादुत्तिष्ठते ॥७३॥

हीसुं० [१]मरालबालेव [२]विलासगामिनी क्षितौ [३]क्षिपन्ती पदपद्मयामलम् ।
ततः समुद्दिश्य पतिं [४]पतिव्रता [५]महेभ्यपत्नी [६]पदवीं [७]व्यभूषयत् ॥७३॥

(१) हंसीव । (२) मन्थरगमनशीला । (३) स्थापयन्ती । (४) सती, पतिरेव व्रतं यस्याः । का ? तमेव त्रिधा कामयते नान्यं सा पतिव्रता । (५) नाथी । (६) मार्गम् । (७) शोभयति स्म ॥७३॥

हील० **मरा०** । हंसीव लीलगतिः । पुनः पृथिव्यां चरणकमलयुगं स्थापयन्ती सती पतिं उद्दिश्य ततः शयनादुत्थितानन्तरं इभ्यपत्नी मार्गमलङ्कृतवती ॥७४॥

हीसुं० क्षणादथो[१]र्व्वीवलयोर्व्वसी [२]मणीविभूषणध्वंसितरोदसीतमाः ।
असौ पुरस्तात्प्रकटीबभूवुषी प्रियस्य मूर्त्तेव [३]कुलाधिदेवता ॥७४॥

(१) महीमण्डलोर्वसी । "विशति विशति वेदीमुर्वसी सेयमुर्व्या" इति नैषधे । (२) रत्नाभरणकिरणनिर्दलितभूमीनभोध्वान्ता । (३) कुलाधिष्ठात्री सुरी ॥७४॥

हील० **क्षणा०** । भूवलयस्य उर्वसी नामाप्सरा तादृशी । पुनः रत्नभूषणैर्निर्दलितं रोदस्योर्द्यावाभूम्योस्तमो यया तादृशी । सा प्रियस्याग्रे प्रकटिता । यथा मूर्त्तिमती कुलदेवी ॥७५॥

---

1. ०पद्मा० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]तया क्रमादि[२]भ्यविभावरीवरो विमु[३]द्रणा[1]गोचरतामवापितः ।
[४]वचोविलासैररुणांशुभिर्यथाऽर[६]विन्दवृन्दं [७]दिवसाननश्रिया ॥७५॥

(१) नाथीदेव्या । (२) कुंराख्यः पतिः । (३) जागरितः । (४) सुकुमारवाणीभिः । (५) सूर्यकिरणैः । (६) कमलाकरः । (७) प्रभातलक्ष्म्या ॥७५॥

हील० तया० । तया स इभ्यचन्द्र : वनविभ्रमैः विमुद्रणाया जागरणस्य गोचरं गमितः । प्रबोधित इत्यर्थः । यथा प्रभातलक्ष्म्या सूर्यकिरणैः पद्मनिकरः प्रबोध्यते ॥★७६॥

हीसुं० [१]सुमध्वजोर्व्वीधरजैत्रशस्त्रया [२]रहस्यवत्स्वप्न [३]उदात्तनेत्रया ।
[४]विनिद्रतां लोचनयोर्वितन्वते [५]न्यवेदि [६]तस्मै व्यवहारिभास्वते ॥७६॥

(१) स्मरराजजयनशीलप्रहरणया । (२) गुप्तवृत्तिमिव । (३) विशालचक्षुषा । (४) प्रबुध्यमानाय । (५) कथितम् । (६) कुंरामहेभ्याय ॥७६॥

हील० सुम० । कामभूपस्य जैत्रं यत्शस्त्रं तद्रूपया । पुनः स्फारनेत्रया । तस्य नेत्रयोर्निद्राभावात्स्मेरतां कुर्वते । इभ्यसूर्याय रहस्यवन्निवेदितम् ॥७७॥

हीसुं० किमावयोरेष[१] फलं प्रदास्यति [२]स्वपाणिसिक्तस्मयमानशाखिवत् ।
इदं निगद्य[३] प्रमदाद्व[४]सुन्धराप्सरा व्यरंसीद्व[५]यवहारिवर्णिनी ॥७७॥

(१) स्वप्नः । (२) निजहस्ताभ्यां जलसेकात् विकसत्तरुरिव । (३) कथयित्वा । (४) पृथिव्या अप्सरा इव । (५) कुंराख्यमहेभ्यस्य प्रिया नाथी ॥७७॥

हील० किमा० । एषः स्वप्नः आवयोः स्वकरसिक्तप्रफुल्लिततरुवत्किं फलं दास्यति ?। इदं कथयित्वा उर्वसी सदृशा सा इभ्यस्त्री विरमति स्म ॥७८॥

हीसु० [१]तदाननेन्दोरमृ[२]तोर्म्मिमालिनो गिरं सुधाया भगिनीमिवोद्ग[३]ताम् ।
[४]निपीय [५]कर्णैः [६]पुटकैरि[७]वान्तरा स [८]कूणिताक्षष्य[९](: प)रमां [१०]मुदं दधौ ॥७८॥

(१) नाथीवदनचन्द्रात् । (२) सुधासमुद्रात् । "तदेव गत्वा पतितं सुधाम्बुधौ दधाति पङ्कीभवदङ्कतां विधौ" इति नैषधे । (३) प्रकटीभूताम् । (४) सादरं निशम्य । (५) श्रवणैः । (६) नितरां पीत्वा च पुटकैः । (७) अन्तरा मनोमध्ये । (८) किञ्चिन्निमीलिते नयने येन । (९) वचनागोचरम् । (१०) हर्षम् ॥७८॥

हील० तदा० । अमृतस्य उर्मिमाली समुद्रस्तादृशान्नाथीवदनचन्द्रादुद्गतां प्रकटीभूताममृतसदृशां वाचं पुटकसदृशैः कर्णैः श्रुत्वा कूणि[ते] निमीलिते अक्षिणी येन स इभ्यः परमां मुदं धारयति स्म ॥७९॥

हीसुं० [१]द्विजावलीचन्द्रिकयानुविद्धया स्मितश्रिया [२]श्वेतितसृक्वदेशया ।
[३]भुजान्तराभोगविलासिनीरिवो[४]पचिन्वता [५]चञ्चुरमौक्तिकावलीः ॥७९॥

---

1. ०णाया गमितः सगोचरम् हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निगद्यते[1] स्म व्यवहारिणा क्षणं [2]विमृश्य सा[3] तेन[4] [5]सुकेशमानिनी ।
[6]रथाङ्गनाम्नेव [7]रथाङ्गबान्धवोदये रथाङ्गी [1]स्वसमीपमीयुषी[8] ॥८०॥ युग्मम् ।

(१) दन्तसन्ततिज्योत्सनया व्याप्तया । ''दशनचन्द्रिकया व्यवभासित'' मिति रघुवंशे । (२) धवलीकृताधरप्रान्तविभागया । (३) वक्षोविस्तारे विलसनशीला (४) वर्द्धयता । (५) प्रकृष्टहारान् ॥७९॥

(१)भाषिता (२) विचार्य । (३) नाथी । (४) कुंराख्येन । (५) सुकेशीं स्वां मन्यत इति सुकेशमानिनी ''क्यङ्मानिनोश्चे'' ति पुंवद्भावः । (६) चक्रवाकेण । (७) सूर्योद्गमे । (८) आगता ॥८०॥

हील० **द्विजा०** । तेन व्यवहारिणा सा सुकेशीमानिनी निगद्यते स्म । भाषितेत्यर्थः । यथा भानोरुदये चक्रवाकेन समीपागता सती चक्रवाकी निवेद्यते । किं । तेन दन्तज्योत्स्नया व्याप्तया । पुनर्धवलीकृत औष्ठप्रान्तदेशो यया । तादृश्या ईषद्धसितलक्ष्म्या कृत्वा हृदयस्याभोगो विस्तारस्तत्र विलसन्तीत्येवंशीला । प्रधानमुक्तावलीहारानुपचिन्वता पुष्णता ॥८०-८१*॥

हीसुं० **[1]अनेकपस्वप्ननिरीक्षणा[2]त्प्रिये सुतं [2]तदन्वर्थमवाप्स्यसेऽ[3]चिरात् ।**
[3]महो[4]दयं वि[5]न्दति मण्डली यथा [6]समाधिभाजां [7]परमात्मदर्शनात् ॥८१॥

(१) गजस्वप्नावलोकनात् । (२) तस्यानेकपस्यान्वर्थोऽनेकान् पाति रक्षति इत्यनुगतार्थो यस्य । (३) स्तोककालेन । (४) मोक्षम् । (५) लभते । (६) योगिनाम् । (७) परमब्रह्मस्वरूपदर्शनात् । ध्यानावस्थायां परमज्योतिःस्वरूपावलोकनात्सिद्धिं प्राप्नोति । योगिनो हि यदा ध्यानेन हृदि परमात्मानं पश्यन्ति तथा(दा) ध्यानाद्विरमन्ति' इति श्रुतिः ॥८१॥

हील० **अने०** । हे अम्भोजलोचने ! गजस्वप्नप्रदर्शनात्त्वया तस्यानेकपस्यान्वर्थो अनेकान्पाति रक्षति स्वामितया इत्यनुगतार्थो यस्य तादृशः पुत्रः लप्स्यते । यथा यतिसमया केवलज्ञानलाभान्मोक्षो लभ्यते ॥*८२॥

हीसुं० **[1]जयन्तवज्जम्भ[2]निशुम्भभामिनी पतिं[3] चमूनामिव [4]सर्वमङ्गला ।**
वशेव[5] शौरेः [6]सुमनश्शरासनं क्रमाच्च पुत्रं [7]प्रसविष्यसि प्रिये ॥८२॥

(१) इन्द्रपुत्रः । (२) इन्द्राणी । (३) स्कन्दम् । (४) पार्वती । (५) लक्ष्मीः । (६) प्रद्युम्नम् । (७) जनयिष्यसि ॥८२॥

हील० **जय०** । यथा शची जयन्तं सूते । पुनर्यथा पार्वती स्वामिकार्त्तिकं सूते । यथा लक्ष्मीः कामं प्रसूते । तथा त्वं सुतं प्रसविष्यसि ॥८३॥

---

1. <u>सविधे समीयुषी</u> हीमु० । 2. <u>०णादवाप्स्यते तदन्वर्थसुतोऽचिरात्त्वया</u> हीमु० । 3. <u>महोदयः केवललम्भतो मुनिसमज्ययेवाम्बुजमञ्जुलोचने</u> हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० इति प्रणीय[१] श्रुतिगोचरं वचः प्रियस्य दध्रे [२]पुलकोद्गमस्तया ।
[३]तडिद्वतामु[४]र्व्वरयेव [५]जीवनं निपीय[६] [७]सस्याङ्कुरराजिराजिता ॥८३॥

(१) कृत्वा श्रवणगतम्, श्रुत्वेत्यर्थः । (२) रोमाञ्चकञ्चुकः । (३) मेघानाम् । (४) सर्वसस्यभुवा । (५) पानीयं (६) पीत्वा (७) धान्यप्ररोहश्रेणिशोभिता ॥८३॥

हील० इति० । इति प्रियवचः श्रुत्वा तया रोमाञ्चाविर्भावो धृतः । यथा मेघानां पानीयं पीत्वा सर्वसस्या-(यया)भुवा सस्याङ्कुरश्रेणिशोभनं ध्रियते ॥८४॥

हीसु० [१]धवः [२]सुधाधामसगोत्रवक्त्रयेत्यवादि [३]बद्धाञ्जलिपाणिपद्मना(या) ।
वरे [४]सुरेन्दोरिव कान्त तावके वचः प्रपञ्चेऽ[६]व्यभिचारितास्तु मे ॥८४॥

(१) भर्त्ता । (२) चन्द्रोपममुखया । (३) रचितोऽञ्जलिर्येन तादृक्करकमलं यस्याः । (४) प्रकृष्टदेवस्य । (५) सत्यता ॥८४॥

हील० धवः०। चन्द्रसमवक्त्रया तया इति रीत्या धवः पतिर्भाषितः । इति किम् ? हे कान्त ! त्वदीये वचोविस्तारे मे सत्यतास्तु । यथा इन्द्रादिवरे सत्यता भवेत् ॥*८५॥

हीसु० मिथः[१] प्रथाभि[२]र्वचसां [३]वचस्विनौ [४]कियच्चिरं तस्थतुरत्र [५]दम्पती ।
[६]वसन्तफुल्लत्सहकारकानने [७]पिकाविवोदी[८]रितपञ्चमस्वनौ ॥८५॥

(१) परस्परम् । (२) वचनविस्तारैः । (३) प्रगल्भवचनौ । (४) कियन्तं समयम् । (५) जायापती । (६) वसन्तसमयेन विकसन्माकन्दवने । (७) कोकिलौ । (८) प्रकटीकृतपञ्चमालापौ ॥८५॥

हील० मिथः० । अत्रेभ्यगृहे वाग्विस्तारैस्तौ दम्पती कियद्वेलां स्थितौ । इवोत्प्रेक्ष्यते । वसन्तेन फुल्लतां सहकाराणां वने प्रकटीकृतः पञ्चमरागस्य ध्वनिर्याभ्यां, तादृशौ पिकौ । "पिकी च पिकश्च पिकौ" । तथा च सिद्धान्तकौमुद्याम्-पुमान् स्त्रिया तल्लक्षणश्चेदेव विशेषः । स्त्रिया सहोक्तौ पुमान् शिष्यते न स्त्री । स्त्रीपुंलक्षणश्चेदेव विशेषे । ब्राह्मणी च ब्राह्मणश्च ब्राह्मणौ । तल्लक्षणः किम् ? कुक्कुटमयूर्यौ ॥८६॥

हीसुं० मुदाथ[१] नाथी [२]शयनीयमन्दिरं क्रमेण[1] [३]पौरन्दरसद्मसुन्दरम् ।
व्यभूषयत्किं[४]पुरुषप्रभोरिवारविन्ददृङ्मन्दरकन्दरोदरम् ॥८६॥ इति स्वप्न[2]विचारः ॥

(१) भर्तुरनुज्ञानन्तरम् । (२) शय्यागृहम् । (३) वैजयन्तसदृशम् । (४) किंनरेन्द्रस्य कान्ता मेरुगुहामध्ये ॥८६॥

हील० मुदा० । इन्द्रमन्दिरसुन्दरं शय्यागृहं नाथी अलङ्करोति स्म । यथा इन्द्रस्य स्त्री मेरुगुहामध्यमलङ्कुरुते ॥*८७॥

1. ०मेण सङ्क्रन्दनसद्म० हीमु० । 2. ०नविचारकथनम् हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० सुखं स्वकीये[1] [१]शयने [२]निषेदुषी मुदं महास्वप्नजुषं [३]प्रपेदुषी ।
इदं [४]कलाकेलिमरालमानसे व्यचिन्तयत्सा [५]विदुषीव [६]मानसे ॥८७॥

(१) शय्यायाम् । (२) उपविष्टा । (३) प्राप्ता । (४) स्मर एव हंसस्तस्य क्रीडार्थं मानससरःसदृशं (५) विज्ञा । (६) चित्ते ॥८७॥

हील० सुखं स्वमन्दिरे स्थिता सती । पुनर्महास्वप्नोद्भवां मुदं प्रपन्ना सती सा काम एव हंसस्तस्य मानसनाम्नि सरसि चित्ते । इदं वक्ष्यमाणं चिन्तयति स्म ॥*८८॥

हीसुं० [१]पुनः [२]सृजन्त्यां मयि [३]मुद्रणां दृशोष्य(: प)रैरप[४]स्वप्नविजृम्भितैरसौ ।
निहन्यतां माऽ[५]सहजैरिव ग्रहैस्त्रि[६]कोणकेन्द्रोपगतः [७]शुभग्रहः ॥८८॥

(१) द्वितीयवारम् । (२) कुर्वन्त्याम् । (३) निद्राम् । (४) कुस्वप्नविलसितैः । (५) वैरिभिः । (६) नवपञ्चमं त्रिकोणं चतुरस्त्राणि तेषु प्राप्तः । (७) प्रशस्यग्रहः ॥८८॥

हील० पुनर्द्वितीयवारं दृशोर्निद्रां कुर्वत्यां मयि असौ सुस्वप्नः कुस्वप्नविलसितैर्मा हन्यताम् । यथाऽसहजैः शत्रुभिर्ग्रहैर्भौममन्दादिभिस्त्रिकोणं नवपञ्चमं प्रथमचतुःसप्तमदशमाख्यानि केन्द्राणि तेषु भवनेषु गतः शुभग्रहो गुरुबुधादिर्यथा हन्यते निर्बलीक्रियते ॥८९॥

हीसुं० [१]इदं [२]विमृश्येयम[३]जूह[2]वन्मुदा सखीरशेषाः [४]स्वकपारिपार्श्व(श्वि)काः ।
[५]द्विरेफगुञ्जारवमञ्जुवादिनी वसन्तलक्ष्मीष्पि[६](: पि)ककामिनीरिव ॥८९॥

(१) पूर्वोक्तम् । (२) विचार्य । (३) आकारयामास । (४) निजसमीपवर्त्तिनीः । (५) भ्रमरगुञ्जितमिव मनोज्ञं वदतीत्येवंशीला । (६) कोकिलाः ॥८९॥

हील० इदं विमृश्य इयं निजसमीपवर्त्तिनीः सखीराकारयामास । यथा भ्रमरगुञ्जितेन मनोज्ञवादिनी वसन्तलक्ष्मीः कोकिलाः आकारयति ॥९०॥

हीसुं० ततो [१]वयस्योऽन्तिक[3]मागता [२]मधुव्रताङ्गनाश्रूत[३]लतामिव स्मिताम् ।
बभाषिरे [४]कोकिलकामिनीगणक्वणाऽद्वयीवादनिनादयाऽनया ॥९०॥

(१) सख्यः । (२) भृंगा (भृङ्ग्यः) । (३) आम्रतरुम् । (४) कोकिलकामिनीनिकरस्य कलकूजितमिवाद्वयीवादः असाधारणता (तया) यस्मिंस्तादृग्ध्वनिर्यस्याः ॥९०॥

हील० ततो० । यद्वद्भ्रराङ्गना आम्रलतां आश्रयन्ते । तद्वत्समीपं आश्रिताः सख्यः अनया भाषिताः । किं-भूतया अनया ? । कोकिलागणानां क्वणेन रावेण सहाद्वयीवादो एकीभावो यस्य तादृशो निनादो यस्यास्तादृश्या ॥*९१॥

हीसुं० [१]चकोरिके चन्द्रकले लवङ्गिके मृणालिके [4]पुष्पकले कुरङ्गिके ।
कुरङ्गनाभे सुरभे शशिप्रभे विनोदिके मोदिनि वन्दि सुन्दरि ॥९१॥

---

1. ०ये सदने हीमु० । 2. ०वत्ततः सखी० हीमु० । 3. ०माश्रिता हीमु० । 4. पुष्पलते हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]तथा [२]प्रथन्तां कथका[३] यथा कथा ममाग्रतः [४]श्रीजिनचक्रिसंकथाः ।
यथा [५]शुभस्वप्नदृशा मया निशा[६]पनीयते [७]पद्धतिवत्पथिस्पृशा ॥९२॥ युग्मम् ॥

(१) एतानि सखीनामानि चम्पूकथायामेवंविधान्येव सखीनामानि दृश्यन्ते ॥९१॥

(१) तेन प्रकारेण । (२) विस्तारयन्तु कथयन्त्वित्यर्थ : । (३) कथाकथयितार इव । (४) श्रीतीर्थकृच्चक्रवर्त्तिवार्त्ताः (५) प्रकृष्टस्वप्नावलोकिन्या । (६) पूर्णीक्रियते । (७) मार्ग इव । (८) पान्थेन ॥९२॥

हील० पूर्वकाव्ये सखीसम्बोधनान्येव सन्ति । तथा० । हे सख्यः ! यूयं ममाग्रतः जिनानां चक्रिणां वार्त्तास्तथा प्रथन्तां विस्तारयन्तु यथा कथकाः कथयन्ति । यथा शुभं स्वप्नं पश्यतीत्येवंशीलया मया रात्रिरपनीयते । यथा पथिकेन पद्धतिर्वर्त्म अपनीयते ॥*९२-९३ ॥

हीसुं० [१]कथानु[ष]ङ्गेषु मिथस्सखीजनो[२]दितेषु काचिद्वय[३]सीदमा[४]लपत् ।
परेषु [५]गान्धर्व्वरसेषु [६]पञ्चमप्रपञ्चि(ञ्च)गीतिं [७]विदुरेव [८]गायनी ॥९३॥

(१) कथाप्रस्तावेषु । (२) कथितेषु । (३) सखी । (४) उवाच । (५) गीतिरसेषु । (६) पञ्चमरागालापविस्तारम् । (७) चतुरा । (८) गानकारिका ॥९३॥

हील० क० । कथाप्रसङ्गेषु सखीकथितेषु काचित्सखी इदं कथयति स्म । यथान्येषु गान्धर्वरसेषु सत्सु काचित्पण्डितगायनी पञ्चमगीतिं विस्तारयति ॥९४॥

हीसुं० [१]पुराभवन्ना[२]भिमहीहिमद्युतेस्त[३]नूभवः श्रीवृषभध्वजो[४] जिनः ।
इवात्मभू[५] [६]राजसभावभासितः स[७]सर्ज्ज यो [८]विष्टपसृष्टिमात्मना[९] ॥९४॥

(१) युगस्यादौ । (२) नाभिर्नामराजा । (३) पुत्रः (४) ऋषभजिनः । (५) विधाता । (६) राजसभा या राजन्यव्रजेनावभासितः वेधाः तु राजसभावेन राजगुणस्वभावेन शोभितः । (७) चकार । (८) लोकनिर्माणम् । (९) स्वेन ॥९४॥

हील० पुरा० । हे स्वामि[नि] ! पुरा-पूर्वं नाभिभूचन्द्रस्य सुतः श्रीऋषभदेवः अभवत् । यः स्वयंभूरिव जगत्सृष्टिं चकार । किंभूतो यः आत्मभूश्च ? । राज्ञां सभासु अवभासितः । अथवा रजोगुणस्वभावेन भासितः ॥९५॥

हीसुं० अमुष्य [१]नाभेयजिनावनीनभोमणेरजायन्त शतं [२]तनूभवाः[1] ।
[३]पवेरिवास्त्राः[४] [५]ऋतवः [६]शतक्रतोरिवच्छ[७]दानीव पुनः [८]पयोरुहः ॥९५॥

(१) ऋषभराजस्य । "मध्यंदिनाद(व)थ(धि)विधेर्वसुधाविवस्वाश(न्)" इति नैषधे । (२) पुत्राः । (३) वज्रस्य । (४) कोणाः । (५) यज्ञाः । (६) इन्द्रस्य । (७) पत्राणि । (८) कमलस्य ॥९५॥

1. ०रुहाः हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० **अमु०** । एतस्य ऋषभदेवजिनसूर्यस्य शतं पुत्रा जाताः । वज्रस्य कोटयः, इन्द्रस्य यज्ञाः प्रतिमा वा । यथा कमलस्य पत्राणि शतमेवाभूवन् तथा ॥*९६॥

हीसुं० **[1]जिनावनीन्दोष्किल(: किल) [2]धर्म्मकर्म्मणोर्व्यवस्थयास्मादुद[3]भावि भूतले ।**
[4]रथाङ्गपाथोरुहयोर्मु[5]दोदि[6]तारविन्दिनीवल्लभमण्डलादिव ॥९६॥

(१) ऋषभदेवात् । (२) धर्मव्यवस्था कर्मव्यवस्था । (३) प्रकटीभूता । ९४) चक्रवाककमलयोः । (५) हर्षेण । (६) उदयं प्राप्तात् सूर्यबिम्बात् ॥९६॥

हील० **जिना०** । अस्माज्जिनाद्धर्मकर्मरीत्या प्रकटितम् । यथोदितसूर्यमण्डलात् चक्रवाककमलयोर्मुदा हर्षेणोद्भूयते ॥९७॥

हीसु० **बभूव [1]नाभेयविभुः स [2]आदिमः क्षितौ [3]समग्रावनिभामिनीभुजाम् ।**
[4]पुलोमजाप्राणपतेर्म[5]तङ्गजो महामृगाणामिव[6] दानशालिनाम् ॥९७॥

(१) ऋषभजिनः । (२) प्रथमः । (३) समग्रभूपानाम् । "वसुमतीयुवतीभुजङ्ग" इति काव्यकल्पलतायाम् । (४) इन्द्रस्य । (५) ऐरावणः । (६) परगजानां मध्ये मदवारिशोभितानाम्, दानेन च ॥९७॥

हील० **बभू०** । क्षितौ समग्रराज्ञां मध्ये आद्यः ऋषभनाथः अभूत् । यथा मदवारिधारिणां गजानां मध्ये शचीपतेरिन्द्रस्य गजः ऐरावणो भवति ॥९८॥

हीसुं० **[1]पयोधिपुत्रीतनयावनीपतेरिवा[2]नुबिम्बेषु [3]महीविहारिषु ।**
[4]शताङ्गजातेषु तदा[5]दिमप्रभोर्बभूव [6]मुख्यो भरताभिधो[1]ऽग्रजः ॥९८॥

(१) स्मरराजस्य । (२) प्रतिमूर्त्तिषु । ९३) भूमण्डलविवरणशीलेषु । (४) शतसङ्ख्याङ्गजेषु, पुत्रेषु । (५) ऋषभदेवस्य । (६) प्रथमः श्रेष्ठश्च ॥९८॥

हील० **पयो०** । लक्ष्मीसुतप्रतिबिम्बेषु मह्यां विहरन्तीत्येवंशीलेषु ऋषभदेवपुत्रेषु भरतः आद्योऽभूत् ॥*९९॥

हीसुं० **[1]यदीययात्रासु [2]चमूसमुत्थितैर्दिव[3]स्पृथिव्योः [4]प्रविसारिपांशुभिः ।**
[5]अहस्त्रि[6]यामीयति [7]पद्मिनीपतिः [8]पतङ्गति [9]ध्वान्तति [10]तत्प्रभाभरः ॥९९॥

(१) भरतसम्बन्धिदिग्विजयप्रयाणेषु । (२) कटकचलनादुद्भूतैः । (३) आकाशभुवोः । (४) विस्तरणशीलधूलीभिः । (५) दिवसः । (६) रात्रिरिवाचरति । (७) सूर्यः । (८) खद्योत इवाचरति । (९) अन्धकार इवाचरति । (१०) सूर्यकान्तिव्रजः ॥९९॥

हील० **यदी०** । यस्य भरतस्य दिग्विजयप्रयाणेषु सेनोद्भूतैष्पु(: पु)नराकाशभुवोर्विषये विस्तरणशीलैरेणुभिरहो रात्रिवदाचरति सूर्यः खद्योतवज्जातः, पुनः सूर्यकान्तिततिस्तम इवाचरति ॥१००॥

---

1. धोऽङ्गजः हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० हरेर्महिष्यां[1] हरिति प्रयातवान्य [2]आदितः सा[3]दितगोत्रशात्रवः ।
पतिः[4] सुराणामिव दानवारियुग्गजेन्द्रसिन्धूद्भववाजिराजितः ॥१००॥

(१) पूर्वदिशि । "निजमुखमितः स्मेरं धत्ते हरेर्महिषी हरि" दिति नैषधे । (२) प्रथमतः । (३) हता वंशा येषां तादृशा वैरिणो यस्य । (४) इन्द्र : । (५) मदजलकलितकरिराजसिन्धु-देशोत्पन्नहयश्रेणिशोभितः । देवव्रजयुतैरावणसमुद्रोत्पन्नोच्चैःश्रवोराजितः इन्द्रपक्षे ॥१०७॥

हील० हरे० । यः प्रथमत इन्द्रपत्न्यां दिशि प्राच्यां गतः । यथा सुराणां पतिः प्राच्यां याति । किंभूतो यः शक्रश्च ? । उच्छेदिता गोत्रसहिता गोत्राः पर्वता एव वा शात्रवा येन सः । पुनः किंभूतो यः शक्रश्च ? । दानवारिभिर्मदजलैर्युञ्जन्ति योगं प्राप्नुवन्ति । तादृशा गजेन्द्राः । सिन्धुदेशोद्भवा वाजिनस्तै राजितः । पक्षे-दानवानां दैत्यानामरिभिर्देवैर्युनक्तीति । देवयुक्त इत्यर्थः । तथा ऐरावणः सिन्धूद्भवः समुद्रोत्पन्नः उच्चैःश्रवा अश्वस्तेन शोभितः ॥१०१॥

हीसुं० स [1]सार्वभौमो [2]ध्वजदण्डशेखरीकृतस्फुरत्काञ्चनकुम्भकान्तिभिः ।
[3]मतङ्गजैरञ्जनशैलमांसलैः[4] क्षितौ [5]तनोतीव [6]सविद्युदम्बुदम् ॥१०१॥

(१) भरतचक्रवर्त्ती । (२) पताकादण्डेषु उत्तंसा विहिता ये दीप्यमानकनककलशास्तद्-रुचिभिः । (३) गजैः । (४) कज्जलगिरिवन्मांसलैः पुष्टैरुन्नतैश्च । (५) करोतीव । (६) तडित्कलितमेघम् ॥१०१॥

हील० स चक्री ध्वजानां दण्डेषु उपरिस्थितानां, पुनः स्फुरतां दीप्यमानानां कनककुम्भानां कान्तिर्येषु, तादृशैः । पुनरञ्जनाचलवत्पुष्टैर्गजैः पृथिव्यां विद्युत्सहितं मेघं करोतीव ॥ १०२॥

हीसुं० [1]दशामवास्यन्ति [2]यदन्तिमामिमेऽस्मदाश्रया[3] लक्षमिताः [4]क्ष्मा[1]माक्षितः ।
[5]विवर्णतेतीव दिगङ्गनागणैर्मुखे [6]निषेवेऽस्य [7]चमूरजोभरैः ॥१०२॥

(१) अवस्थाम् । (२) यस्मात्कारणात् चरमां मरणलक्षणामित्यर्थः । (३) वयमेवाश्रय आवासस्थानं येषाम् । (४) राजानः । (५) विच्छायता । (६) भेजे । (७) चतुरङ्गदलचलनोद्धूतधूलीभिः ॥१०२॥

हील० दशा० । वयमेवाश्रयो येषां तादृशाः, पुनर्लक्षबद्धाः क्षितिपाः । अन्तिमां दशां मरणावस्थां लप्स्यन्ते । इतीव कारणाद्दिग्रामाभिः सेनारेणुभिः कृत्वा मुखे विवर्णता विच्छायता निषेवे धृता ॥*१०३॥

हीसुं० [1]चमूध्वनिः [2]प्राग्गिरिकन्दरोदरे प्रियोपगूढं [3]सुखसुप्तकिन्न(न)रान् ।
[4]इदंयशो गापयितुं [5]गुहागतप्रतिस्वनै र्जाग[6][र]यन्निवो[7]द्गतः ॥१०३॥

(१) कटककोलाहलशब्दः । (२) उदयाचलगुहामध्ये । (३) प्रियां किंन्न(न)रीमुपगूह्यालिङ्ग्य सुखेन सुप्तान् किंपुरुषान् । (४) भरतकीर्त्तिः । (५) कन्दरोदरप्रसरत्प्रतिशब्दैः । (६) विनिद्रीकुर्वन् । (७) प्रकटीबभूव ॥१०३॥

1. क्षितिक्षितः हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० चमूध्वनिरुद्गतः प्रकटितः । उत्प्रेक्ष्यते । उदयाद्रिगुहामध्ये प्रियामुपगुह्यालिङ्ग्य आलिङ्ग्य सुखेन सुप्तान्किनरान् प्रति इदंयशः-अस्य यशः गापयितुं गह्वरप्राप्तगर्ज्जितैः उत्थापयन्निव ॥१०४॥

हीसुं० **[1]प्रगल्भफालैर्गगने नखैष्पु(: पु)नर्महीतलस्योत्खननैर्हयव्रजः ।**
जयं[2] सृज स्वर्बलिवेश्मनोर्द्वयोरथेति संज्ञापय[1]तीव यं पतिम् ॥१०४॥

(१) उच्चैः सत्पतनैरुल्ललनैः । (२) हे सार्वभौम ! त्वया भूः साधिता, अथ स्वर्लोकपातालयोर्विजयं कुरु । (३) इति संज्ञां कुर्वन्ती(ती)व ॥१०४॥

हील० **प्रग०** । गगने उच्छलनैः पुनर्नखैः कृत्वा भूमिक्षोदनैरश्वौघः निजपतिं इति ज्ञापयतीव । इति किम् ?। हे चक्रिन् ! त्वं स्वर्गपातालयोर्जयं सृज ॥*१०५॥

हीसुं० **[1]पयोधिरोधःस्थलरोधिभिर्विभोर[2]सर्ज्जि [3]गर्ज्जाञ्जनबन्धुसिन्धुरैः ।**
[4]चराचरे वर्षित[5]मुन्मु[6]खैरितः किमम्बुदैर[7]म्बुजिघृक्षयागतैः ॥१०५॥

(१) समुद्रोपकण्ठस्थलरुन्धनशीलैः । (२) कृता । (३) कज्जलाचलतुल्यैर्वपुषा श्यामत्वेन च । (४) जगति । (५) उत्सुकैः । (६) जलग्रहणेच्छया ॥१०५॥

हील० पयोधेस्तटस्थलं वेलागमनभूस्तद्रुन्धन्ति इत्येवंशीलैः । अञ्जनाचलसहोदरैर्गजैर्गर्जा गर्जितमसर्जि-निष्पादिता । उत्प्रेक्ष्यते । सर्वजगति वर्षितुं उत्कण्ठितैरितः समुद्रादम्बुग्रहणेच्छया आगतैर्मेघैः किम् ? ॥*१०६॥

हीसुं० **इवेक्षु[1]डिम्भान्क्षि[2]तिरक्षिणो [3]महौजसा [4]समुत्खाय पुनः प्ररोपयन् ।**
स [5]पूर्वपाथोनिधिसैकतक्षितिं क्षिते[6]र्विवोढा व्रजति[7] स्म [8]सस्मयः ॥१०६॥

(१) बालेक्षून् । (२) राज्ञः । (३) उत्कटप्रतापेन । (४) राज्याद् भ्रंशयित्वा । (५) पूर्वसागरस्य जलोज्झिततटारभूमीम् । (६) भरतचक्री । (७) गतः । (८) सगर्व : । "पलालजालैः पिहितेक्षुडिम्भ" इति नैषधे ॥१०६॥

हील० स भूपः पूर्व समुद्रतटे व्रजति स्म । किं कुर्वन् ? । महाप्रतापेन क्षितिपान् राज्याद् भ्रंशयित्वा पुनर्राज्ये स्थापयन् । यथा कृषिकः इक्षुडिम्भानुप्तस्थानादुत्खायान्यत्र रोपयति ॥१०७॥

हीसुं० **[1]अजिह्मता [2]सुह्मनृपैर्बिले[3] [4]बिलेशयैरिवैतद्वसुधाधवे[5] दधे ।**
विनम्रता च ध्रियते स्म वेतसै[6] [7]रये [8]स्त्रवन्त्या इव भूरि[9]वैतसैः ॥१०७॥

(१) सरलता । (२) सुह्मनामदेशस्तन्नायकैः । (३) भुजगनिवसनस्थाने । (४) सर्प्यैः । (५) भरतचक्रिणि । (६) नामद्रुमैः । (७) प्रवाहे । (८) नद्याः । (९) वेतस्वद्देशभूपैः ॥१०७॥

हील० **अजि०** । एतस्मिन्नृपे सुह्मदेशनृपैः अकुटिलता दधे-धृता । यथा भुजङ्गैर्बिले सरलत्वं ध्रियते । पुनर्भूरिभिर्वैतसदेशीयनृपैर्विशेषेण नम्रता ध्रियते स्म । यथा नद्याः रये प्रवाहे वेतसवृक्षैर्नम्रता ध्रियते,

---

1. ०<u>यति स्वयं पतिम्</u> हीमु० । 2. <u>मुत्सुकैरितः</u> हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तद्वत् ॥१०८॥

हीसुं० अवापितो गोचरतां स मागधै[१]रिव स्तवस्य प्रमदेन [२]मागधैः ।
[३]सृजद्भिरिन्द्रो[४]ऽ[५]द्रिगणैः [६]कलिं गजैरिवोपलै[७] [८]रुद्धनतः [९]कलिङ्गजैः ॥१०८॥

(१) बन्दिभिरिव स्तुतः । (२) मगधदेशनृपैः । (३) कुर्वद्भिः । (४) शक्रः । (५) गिरिगणैः । (६) सङ्ग्रामम् । (७) प्रस्तरैः । (८) पूर्वं रुद्धः पश्चान्नतः । (९) कलिङ्गदेशभूपैः ॥१०८॥

हील० स भरतचक्री बन्दीजनैरिव मगधदेशोद्भवैर्नृपैः स्तुतेर्विषयतां प्रापितः । पुनः गजैः कलिं सृजद्भिः, कलिङ्गदेशनृपैः पूर्वं रुद्धः पश्चान्नतः । यथोपलैः कलिं कुर्वद्भिः पर्वतैः रुद्धः नतश्च ॥१०९॥

हीसुं० [1]नि(दि)शां चतुर्णामयमर्ण[१]वावधीनिति प्रदेशान् [२]ध्वजिनीभिरानशे[३] ।
विभासिताभिः[४] स्मितसिन्धुरश्रिया यथा[५]भ्रिकाभिः [६]प्रसरत्पयोधरः ॥१०९॥

(१) समुद्रपर्यन्तान् । (२) सेनाभिः । (३) व्याप्नोति स्म । (४) धवलगजैः ऐरावणेन वा शोभिताभिः । ऐरावणो हस्तिमल्लः श्वेतगजोऽभ्रमुप्रियः । "प्रावृषेण्यं पयोवाहं विद्युदैरावताविवे"ति रघुवंशे । (५) वर्द्दलैः । (६) विस्तरन्मेघः ॥१०९॥

हील० चतु० । शुभ्रगजशोभया शोभिताभिः सेनाभिश्चतुर्दिगवयवान्व्याप्नोती(ति) स्म । यथा विस्तृतो मेघो वर्द्दलैर्दिगवयवान्व्याप्नोति ॥*११०॥

हीसुं० अथैष[१] वेलातटतः समं[२] भटैर्न्य[३]वीवृतन्नीर[४]धिनेमिनायकः ।
[५]गभीररावैरु[६]दरं [७]भरन्भुवो रयः[८] पयोधेरिव यादसां[९] भरैः ॥११०॥

(१) पूर्वसमुद्रजलवेलातीरात् । (२) सैनिकैः सार्द्धम् । (३) निवर्त्तते स्म । पश्चाद्वलते । (४) भरतचक्री । (५) सेनागम्भीरशब्दैः । (६) पृथिव्या मध्यम् । (७) पूरयन् । शब्दाद्वैतमयां भुवं कुर्वन् । (८) पयःप्रवाहः । (९) जलजन्तुनिकरैः ॥११०॥

हील० अथेत्यनन्तरं गम्भीरस्वरैः पृथ्व्या मध्यं भरन् । पृथ्वीनाथो भटैः समं समुद्रतटान्निवर्त्तते स्म । यथा गर्जितैः पृथ्वीं पूरयन् जलधिप्रवाहो मत्स्यौघैः समं तटे आगत्य पश्चान्निवर्त्तते । एतावता सेना समुद्र इव जातः(ता) ॥१११॥

हीसुं० स चक्रिणां [१]भारतभूमिभामिनीविशेषकानां(णां) [२]वृषभाङ्गजोऽग्रणीः[३] ।
[४]तदीयवमेव जिना[५]वनीभुजामभूत्सुर[६]श्रेणिनिषेवितक्रमः ॥१११॥

(१) भरतभूमिलक्ष्मीनां तिलकानां द्वादशचक्रिणाम् । (२) भरतः । (३) मुख्यः । (४) भरततातो युगादिदेवः । (५) सामान्यकेवलिनां चतुर्विंशतितीर्थकृतां वा । (६) अमरनिकरपरिचरितचरणः ॥१११॥

---

1. चतुर्दिशामप्ययमर्ण० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० **स च०** । भरतभूमितिलकायमानानां चक्रिणां मध्ये आद्यो भरतचक्र्यभूत् । यथा भरतपिता ऋषभनाथः जिनराज्ञां मध्ये आद्यः अभूत् ॥११२॥

हीसुं० **य [१]आदिमोद्धारकरो [२]जिनालयं [३]व्यधापयन्मूर्द्धनि सिद्धभूभृतः ।**
समग्रतीर्थेष्वपि [४]सार्वभौमता[५]ममुष्य वक्तुं किमु [६]हेमशेखरम् ॥११२॥

(१) प्रथमोद्धारविधाता । (२) अत एवं शत्रुञ्जयशिखरे ऋषभप्रासादम् । (३) कारयति स्म । (४) चक्रवर्त्तिताम् । (५) शत्रुञ्जयस्य । (६) सुवर्णोत्तंसम् ॥११२॥

हील० **य आ०** । यो भरतः श्रीशत्रुञ्जयपर्वते जिनगृहं निर्मापयति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । एतस्य तीर्थेषु चक्रवर्त्तित्वं वक्तुं हेमशिखाम् ॥११३॥

हीसुं० **मृगाक्षि ! सो[१]पारककु[१]ल्पाकयोर[२]मूल्यमाणिक्यविनीलरत्नयोः ।**
[३]स्वतातमूर्त्तीर्भ(भ)रतेन कारिते दृशाविवैते[४] भरतावनीश्रियः ॥११३॥

(१) सोपारकनाम पत्तनं कुल्पाकनाम नगरं, तयोः । (२) महर्घ्यपद्मरागमरकतरत्नयोः । (३) ऋषभदेवप्रतिमे । (४) भरतक्षेत्रलक्ष्म्या नयने इव ॥११३॥

हील० हे मृगाक्षि ! भरतेन अमूल्येन रक्तरत्नेन नीलरत्ने[न] च स्वतातस्य ऋषभदेवस्य मूर्त्ती कारिते । तेऽद्यापि शत्रुञ्जयतलहट्टिकायां सोपारकं नाम पत्तनं, पुनः कुल्यपाकं नाम नगरं, तयोः पुरयोर्विषये विद्येते इत्याध्याहारः । उत्प्रेक्ष्यते । भा(भ)रतक्षेत्रक्षोणिलक्ष्म्या एतेऽप्रतिमे दृशौ नेत्रे इव ॥११४॥

हीसुं० **तथा [१]चतुर्विंशतितीर्थकृद्गृहं धराधवोऽष्टा[२]पदभूध्रमूर्द्धनि ।**
2[३]व्यधापय[४]त्शाश्व[३]तजैनवेश्मवत्तदद्य[५] यावद्ध्रुव[६][व]द्वितिष्ठते ॥११४॥

(१) तुल्यनासाग्रचतुर्विंशतिजिनप्रतिमं सिंहनिषद्यानामप्रासादम् । (२) अष्टापदोपरि । (३) कारयति स्म । (४) शाश्वतचैत्यतुल्यम् । (५) अधुनापि । (६) ध्रुवतारक इव यस्तिष्ठति ॥११५॥

हील० **तथा०** । तथा, पुनः स भरतभूपतिः कैलाशशैलशिखरे तुल्यनासाग्रस्वस्ववर्णप्रमाणपद्मासनाद्यङ्कितप्रतिमालङ्कृतसिंहनिषद्या नाम जिनसद्म कारितवान् । अन्यत्सुखोन्नेयम् ॥११५॥

हीसुं० **परान्परः[१] कोटिजिनालयानयं हिर[२]ण्यमाणिक्यमयानचीकरत् ।**
जिनेन्द्रमूर्त्तीरपि कोटिशस्त[३]रीरिवाङ्गिनां [४]संसृतिसिन्धुपातिनाम् ॥११५॥

(१) कोटिशः प्रासादान् । (२) स्वर्णरत्नमयान् । (३) दण्डा इव । (४)संसारसमुद्रे पतनशीलानाम् ॥११५॥

हील० **परा०** । अयं भरतचक्री कोटिमितान् जिनालयान्कारयामास । पुनः कोटिमिताः प्रतिमाः कारयति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । संसारसमुद्रपतनशीलानां मनुजानां नाव इव ॥११६॥

---

1. ०कुल्य० हीमु० । 2. व्यधापयत्शाश्वतसार्ववेश्मवत् तच्चैत्यमद्य ध्रुववद्यथास्थितम् हील० । 3. ०श्वतसार्ववे० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० नृपोऽयमाद्योऽजनि [१]सङ्घनायकः कृशाङ्गि ! [२]शत्रुञ्जयरूप्यशैलयोः ।
[३]क्षमाभृतां [४]भोगभृतां च योऽग्रणीरभूत्पुनः कुण्डलिनामि[५]वाधिभूः ॥११६॥

(१) सङ्घपतिः (२) शत्रुञ्जयाष्टापदयोः । (३) पृथ्वीधराणाम् । (४) भोगं सर्पशरीरं राज्यादिसुखं च तद्भाजाम् । (५) शेषनागः ॥११६॥

हील० नृपो० । अयं भरतः शत्रुञ्जयाष्टापदयोः सङ्घपतिष्पु(ः पु)नः पृथ्वीपतीनां भोगिनां मध्ये मुख्योऽभूत् । यथा क्षमाभृतां गिरीणां भोगः सर्पकायस्तद्भृतां सर्पाणां मध्ये शेषः मुख्यो भवति ॥११७॥

हीसुं० असौ [१]प्रकामप्रमदं ददानया [२]प्रसूतया [३]ध्यानसुधापयोधिना ।
शिवश्रिया [४]अग्रजयेव केवलश्रिया श्रितो [५]दर्प्पणिकानिकेतने ॥११७॥

(१) अतिशयहर्षं सिद्धिं प्रकर्षेण मदनस्य प्रमोदम् । (२) जनितया । (३) ध्यानरूपक्षीर-सागरेण । (४) वृद्धभगिन्या । (५) आदर्शगृहे । "यन्मतौ विमलदर्पणिकाया' मिति नैषधे ॥११७॥

हील० असौ० । ध्यानमेव क्षीराधिस्तज्जातया । पुनः प्रकाममत्यर्थम्, अथवा प्रकृष्टकामस्य स्वसुतस्य प्रमोदं ददानया केवललक्ष्म्या यः आदर्शिकाभुवने वृत्तः । उत्प्रेक्ष्यते । मोक्षलक्ष्म्या ज्येष्ठभगिन्येव प्रथमोत्पन्नत्वेन केवलज्ञानानन्तरं मोक्षप्राप्तेः ॥११८॥

हीसुं० दिग[१]न्तवासं किम[२]पास्य [३]काश्यपी[1]विहारशीलैः ककुभां [४]पुरन्दरैः ।
[५]तदष्टपट्टक्षितिपैरवा[६]प्यता[७]मुनेव सीमन्तिनि [८]केवलेन्दिरा ॥११८॥

(१) दिशां प्रान्ते वसतिम् । (२) त्यक्त्वा । (३) भूमीविवरणस्वभावैः । (४) दिगीशैः । "आखण्डलो दण्डधरः शिखावान्पतिः प्रतीच्या इति दिग्महेन्द्रै" रिति नैषधे । (५) भरतादारभ्याष्टपट्टधरैः राजभिः । (६) अवापे । (७) आदर्शगृहे । (८) केवलश्रीः ॥११८॥

हील० दिग० । हे सीमन्तिनि ! तस्य भरतस्य अष्टपट्टक्षितिपैः भरतेनेव केवललक्ष्मीः प्राप्ता । उत्प्रेक्ष्यते । दिशां प्रान्ते वासं त्यक्त्वा पृथ्व्यां विलासिभिः अष्टदिक्पालैः ॥★११९॥

हीसुं० ततोऽस्य [१]सङ्ख्यातिगपट्टपङ्क्तिभिः [४]प्रपद्य [२]शत्रुञ्जयमूर्द्धिन केवलम्[३] ।
[५]महोदयश्रीः [६]समसेवि [७]भास्करैरिवोदयं [८]द्यौरुदयावनीधरम्[2] ॥११९॥

(१) भरतपट्टधरैरसङ्ख्यश्रेणिभिर्भूपैः । (२) शत्रुञ्जये । (३) केवलज्ञानम् । (४) अधिगम्य । (५) मोक्षलक्ष्मीः । (६) भेजे । (७) यथा सूर्यैः । (८) उदयाचले उदयं प्राप्य गगनं सेव्यते ॥११९॥

हील० ततोऽष्टमपट्टधरदण्डवीर्यराजानन्तरं सङ्ख्यामतिगच्छन्त्यतिक्रामन्ति । तादृशाः पट्टपङ्क्तयस्ताभिः सिद्धाचलशिखरे केवलज्ञानमासाद्य मुक्तिलक्ष्मीः संसेविता । यथा सूर्यैरुदयाचले उदयं प्राप्य द्यौराकाशं

1. ०विलास० हीमु० । 2. ०रे हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेव्यते ॥*१२०॥

हीसुं० बभूवुरिक्ष्वाकुकुले सहस्रशः [१]सहस्रशोचिःसदृशा [२]महौजसा ।
ततः क्षितीन्द्रा [३]जगदीहितावहा [४]महेन्द्रशैले [५]सुरभूरुहा इव ॥१२०॥

[1]इति भरतदिग्विजयादिः ।

(१) सूर्यतुल्याः । (२) स्फुरत्प्रतापैः । (३) विश्ववाञ्छितविधायिनः । (४) मेरौ । (५) कल्पतरवः ॥१२०॥

हील० ततोऽनन्तरं प्रतापेन सूर्यसदृशाः धरेन्द्रा अभूवन् । यथा जगत्कामितदाः कल्पवृक्षा भवन्ति ॥१२१॥

हीसुं० [१]इदं वदन्त्यामर[२]विन्दचक्षुषष्पु(: पु)रोऽथ तस्यामपरा[३] [४]निपस्तनी ।
गिराननं[५] योजयति स्म कौतुकान्मरा[६]लिकायामिव कीरकामिनी ॥१२१॥

(१) पूर्वोक्तं भरतदिग्विजय-चैत्यनिर्मापणादि । (२) नाथीदेव्याः । (३) अन्या । (४) घटस्तनी । (५) जगाद । (६) हंस्याम् ॥१२१॥

हील० इदं० । कमलाक्ष्याः पुरः इदं वदन्त्यां तस्यां सत्यामन्या घटस्तनी वदति स्म । यथा हंस्यां वदन्त्यां सत्यां शुकी वक्ति ॥१२२॥

हीसुं० मृगाक्षि ! पश्यामर[१]सिन्धुसारणी त्वमभ्रवीथीं [२]सुमनोवनीमिव ।
[३]मयूखलेखामकरन्दितारकामणीचका मे[४]चकिमालिमण्डलाम् ॥१२२॥

(१) स्वर्गङ्गैव कुल्या यस्याम् । (२) पुष्पवाटिकाम् । (३) किरणश्रेणिरेव मकरन्दो विश्व(द्य)ते येषु तादृशास्तारका एव कुसुमानि यस्याम् । (४) गगनस्य श्यामलत्वमेव भृङ्गमाला यस्याम् ॥१२२॥

हील० हे मृगाक्षि ! स्वर्नदीसारणी यस्यां तादृशी पुष्पवाटिकामिवाभ्रपद्धतिं पश्य । किंभूताम् ? । किरणश्रेणिरेव मरन्दो यस्यां, ताराः पुष्पानि(णि) यस्यां, मेचकिमा गगनश्यामत्वमलिमण्डलं यस्यां, ताम् ॥१२३॥

हीसुं० [१]मृगेन्द्रमध्ये ! [२]मृगयस्व तारकान् [३]श्रमोदबिन्दुस्तबकानिवा[४]ङ्कके ।
[५]विभावरीकैरवचक्षुषोऽमुना [६]निखेलयन्त्या [७]दयितामृतांशुना ॥१२३॥

(१) पञ्चाननोदरि ! । (२) पश्य । (३) परिक्लमजलकणनिकरान् । (४) शरीरे । (५) रात्रिस्त्रियाः । (६) क्रीडयन्त्या । (७) भर्त्रा चन्द्रेण ॥१२३॥

हील० हे सिंहोदरि ! ताराकान्पश्य । उत्प्रेक्ष्यते । अमुना दृश्यमानेन दयितेन चन्द्रेण सह क्रीडन्त्याः रात्रिरामायाः श्रमजलबिन्दून्शरीरे पश्य ॥१२४॥

---

1. इति ऋषभदेव-भरतदिग्विजयादिः हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]कुशेशयामोदिनि ! वीक्ष्यतामसौ शनैश्शनैष्य(: प)[२]ङ्कजकाननानिलः ।
[३]त्वदाननाम्भोजजनुःप्रभञ्जनैर्जित[1]ष्कि(: कि)म[४]भ्यर्णमुपैति सेवितुम् ॥१२४॥

(१) कमलपरिमले ! । (२) कमलवनवायुः । (३) भवन्मुखपद्मजन्मानिलैः । (४) पार्श्वम् ॥१२४॥

हील० हे कमलामोदिनी(नि) ! । पद्मिनीत्यर्थः । विलोक्यतां असौ स्पर्शानुमेयः नलिनवनवातः शनैः शनैः श्रीमत्याः अन्तिके आगच्छति । उत्प्रेक्ष्यते । तव वदनारविन्दाज्जनुरुत्पत्तिर्येषां तादृशैर्वातैर्जितः सन्सेवितुम् ॥*१२५॥

हीसुं० [१]करेणुकुम्भस्तनि ! पश्य दीप्यतेऽन्तिके [२]मणीकुट्टिमबिम्बतारकैः।
[३]त्वदाननस्वामिसितांशुसेवनाकृते [४]नभस्तः किमु[५]पागतैरि[६]ह ॥१२५॥

(१) कुम्भिकुम्भपीनपयोधरे ! । (२) मणीनिबद्धप्राङ्गणप्रतिबिम्बितज्योतिर्गणैः । (३) तव वदनमेव स्वस्वामिनो निजनायकस्य विधोः पर्युपासनाकृते । (४) गगनात् । (५) समागतैः । (६) त्वद्गृहाङ्गणे ॥१२५॥

हील० हे करेणुकुम्भकुचे ! यच्छ्रीमत्समीपे रत्ननिबद्धप्राङ्गणे बिम्बानि येषां तादृशैस्तारकैर्दीप्यते । तत्त्वं पश्य । उत्प्रेक्ष्यते । तव मुखमेव स्वामी चन्द्रस्तस्य सेवां कर्तुं गगनादिह त्वद्गृहाङ्गणे समेतैरिव ॥१२६॥

हीसुं० [१]त्वदीयवापीतपनास्तमुद्रिताम्बुजन्मकोशव्यसनानुपातिनः ।
[२]क्षपाक्षयायौं[३]कृतिमन्त्रवर्णकानिव [४]द्विरेफा [५]गणयन्ति गुञ्जितैः ॥१२६॥

(१) तव क्रीडादीर्घिकायां सूर्यास्तमनेन निमीलितकमलमुकुले यद्व्यसनमापत् कोशान्तर्दुःखस्थितिविपत्तिस्तामनुलक्ष्यीकृत्य ज्ञात्वैव पद्ममुद्रणायां रात्रौ कोशान्तर्दुःखेन स्थातव्यमेवेति विचार्यैव पतन्तीत्येवंशीलाः । (२) रात्रिविरामाय । (३) ओंकृतिरूपाणि मन्त्राक्षराणि । (४) भृङ्गाः । (५) गणयन्ति ॥१२६॥

हील० त्वदी० । हे स्वामिनि ! तव वाप्यां सूर्यास्तेन निमीलितकमलकोशेषु व्यसनमनुलक्षीकृत्य पतनशीलाः । पतित्वा स्थिता इत्यर्थः । भ्रमरा गुञ्जितैः कृत्वा रात्रिक्षयाय ऊँकारमन्त्रवर्णान्गणयन्ति–जपन्ति इव । ऊँकारमन्त्रादिः सुखं दत्ते इति ॥१२७॥

हीसुं० [१]नभःश्रियास्ता[२]रकमौक्तिकस्त्रजष्कि[३](: कि)मेणनाभीशितिमाङ्कनायकम् ।
दृशा [४]विनिर्दिश्य [2]नि[५]शीथिनीपतिं परा ददे कापि गिरं मृगेक्षणा ॥ १२७॥

(१) गगनलक्ष्म्याः । (२) तारका एव मौक्तिकमाला–तस्याः । (३) कस्तूरिकायाः श्यामत्वेनाङ्कितमध्यमणिः । (४) दर्शयित्वा । (५) चन्द्रम् ॥१२७॥

---

1. तोऽन्तिकैः किं समुपैति० हीमु० । 2. शशाङ्कमादरात्० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० नभः । अन्या गिरमाददे । वदति स्मेत्यर्थः । किंकृत्वा ?। नेत्रेण चन्द्रं दर्शयित्वा । उत्प्रेक्ष्यते । गगनलक्ष्म्या निर्मलमुक्ताहारस्य कस्तूरिकायाः शितिमा श्यामत्वमङ्के क्रोडे यस्य तादृशो नायको मध्यमणिरिव ॥*१२८॥

हीसुं० [१]निजाक्षिलक्ष्मीहसिताब्जखञ्जने!ऽधरीकृतः[२] सुभ्रु! तवा[३]स्यविभ्रमैः ।
[४]विवर्णताश्लेषिमुख[५]स्त्रपाभरादिवास्ततां याति [६]तमस्विनीपतिः ॥१२८॥

(१) निजनयनशोभया भर्त्सितकमलखञ्जरीटे !। (२) हीनीकृतः । (३) वदनशोभाभिः । (४) विच्छायताया आश्लेषो यत्र तादृक् मुखं यस्य । (५) लज्जातिशयात् । (६) चन्द्रः ॥१२८॥

हील० हे निजचक्षुःशोभाहसिताब्जखञ्जने ! हे सुभ्रु ! त्वन्मुखविभ्रमैर्हीनीकृतश्चन्द्रः लज्जया विच्छायताया आश्लेषो यत्र, तादृग्मुखं यस्य तादृशः सन्नस्ततां याति ।.१२९॥

हीसुं० [१]निजास्यदासीकृतशारदोदयत्सितद्युते! [२]भृङ्गिततारतारके ।
[३]विनिद्रतां वीक्ष्य तवेक्षणाम्बुजे[४] [५]ह्रियेव [६]निद्राति [७]कुमुद्वनं वने ॥१२९॥

(१) स्ववदनकिङ्करीकृतशारदीनोद्गच्छच्चन्द्रे !। (२) भृङ्गविवाचरिते । प्रधानकनीनिके यस्याः । (३) विकाशताम् । (४) नयनकमले । (५) लज्जयेव । (६) सङ्कुचति । (७) कैरवकाननम् ॥१२९॥

हील० हे निजास्यदासीकृतचन्द्रबिम्बे ! भृङ्गविवाचरिते तारे निर्मले तारिके कनीनिके यत्र तादृशे तव लोचनकमले विकस्वरत्वं दृष्ट्वा वने कैरववनं निद्राति-सङ्कुचितम् । यदा कमलं विकसति तदा कुमुदं सङ्कुचति, इति स्थितिः ॥१३०॥

हीसुं० कृशाङ्गि ! [१]राजन्यपयातवैभवेऽ[२]पराश्रये [३]शोच्यदशावशंवदे ।
शनैः शनैस्तारगणा [४]इवानुगा विभावयाऽभ्रे [५]विरलीभवन्त्यमी ॥१३०॥

(१) चन्द्रे गतलक्ष्मीके सति । (२) अन्या स्त्री आश्रयो यस्य, पश्चिमायां च गते । (३) शोचयितुं योग्यामवस्थां प्राप्ते । (४) सेवका इव । (५) स्तोका भवन्ति ॥१३०॥

हील० हे कृशाङ्गि ! राजनि चन्द्रे गतश्रीके । पुनरपरेषां सश्रीकाणां अपरस्यां पश्चिमायामाश्रयो यस्य तस्मिन् । पुनः शोच्यावस्थां प्राप्ते सेवका इव ताराः स्तोका जातास्तत्त्वं विभावय-पश्य ॥१३१॥

हीसुं० [1][१]तनूभवत्तारकतारभूषणा [२]प्रपूर्णपाथोरुहबन्धुगर्भिणी ।
[३]हरेर्हरित्पाण्डु[४]रिमान(ण)मानने बिभर्त्ति [५]मत्तेभगतेव [६]सुस्मिते ॥१३१॥

(१) स्तोकीभवन्ति तारका एव तारभूषणानि मौक्तिकाभरणानि यस्याः । (२) प्रपूर्ण उदय-समयोन्मुखः सूर्य एव गर्भोऽस्त्यस्याः । (३) पूर्वा दिग् । (४) पाण्डुरताम् । (५) युवतीव । (६) शोभनहसिते ॥१३१॥

---

1. प्रपूर्णपाथोरुहबन्धुगर्भिणी तनूभवत्तारकतारभूषणा हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० सूर्यगर्भिणी । पुनः स्तोकनक्षत्राभरणा पूर्वा दिग् वशेव पाण्डुरतां धत्ते ॥*१३२॥

हीसुं० [१]तमस्विनीशेऽस्तमिते प्रकाशतां[२] विलोकयास्ये दधतेऽखिला दिशः ।
[३]कलङ्किदोषाकररुद्रसङ्गिनां वहन्ति केन [४]व्यसनोदये मुदम् ॥१३२॥

(२) चन्द्रे । (२) प्रकटताम् । (३) कलङ्कवतां अपवादभाजां, निर्गुणानां, रौद्रं चण्डं श्रितानां, पाप्मवतीपतीनाम् । (४) आपद आविर्भावे ॥१३२॥

हील० चन्द्रेऽस्तमितेऽखिला दिशः प्रकाशं बिभ्रति, तत्त्वं पश्य । अपवादिनामपगुणवतां चन्द्रसङ्गिनामापत्प्रकटी[भावे] के मोदं न वहन्ति ॥१३३॥

हीसुं० [१]इतः श्रिया[२] निर्जितविश्वयौवते ! [३]समुज्जिहानः [४]सविता [५]निपीयताम् ।
किमु स्फुरद्भाग्यभरो [६]विभावरीवियुज्यमानद्विजसन्ततेरसौ ॥१३३॥

(१) अस्मिन्पार्श्वे । (२) वपुर्लक्ष्म्या पराजितजगद्युवतीजनव्रजे ! । (३) उदयन् । (४) सूर्यः । (५) सादरमवलोक्यताम् । (६) रात्रौ वियोगं प्राप्नुवन्त्याः द्विजानां-पक्षिणां श्रेण्याः चक्रवाकपङ्क्तेः ॥१३३॥

हील० इतः० । हे प्रियानिर्जितविश्वयुवतीसमूहे ! । इतः अस्मिन्पार्श्वे प्राच्यां दिशि अभ्युदयन् सूर्यस्त्वया सादरमवलोक्यताम् । किमुत्प्रेक्ष्यते । विभावर्यां वियुज्यमानानां वियोगं प्राप्नुवतां द्विजानां-पक्षिणां अर्थाच्चक्रवाकानां सन्ततेः श्रेण्या असौ सूर्यरूपः स्फुरन्प्रकटीभवन्भाग्यभर इव ॥१३४ ॥

हीसुं० नि[१]री(रि)त्वरीभिर्मधु[२]पीभिरु[३]ल्लसत्सरोजकोशात्सखि ! मञ्जु गुञ्ज्यते ।
किं [४]गायनीभिर्धवलस्य[५] वासर[६]श्रियाब्जबन्धोः[७] [८]करपीडनोत्सवे ॥१३४॥

(१) निर्गमनशीलाभिः । (२) भ्रमरीभिः । (३) विकसत्कमलमुकुलात् । (४) श्रवणसुखकृद्यथा स्यात्तथा गायनकर्त्रीभिर्गान्धर्वी[भि]र्वा । (५) धवलमङ्गलस्य गानकर्त्र्यः। (६) दिनलक्ष्म्या । (७) सूर्यस्य । (८) पाणिग्रहणमहोत्सवे ॥१३४॥

हील० निरि० । हे सखि ! विकसत्कमलमुकुलान्निर्गमनशीलाभिर्भ्रमरीभिर्गुञ्ज्यते । किमुत्प्रेक्ष्यते । सूर्यस्य दिनलक्ष्म्या सह पाणिग्रहोत्सवे धवलमङ्गलगायनीभिः ॥१३५॥

हीसु० [१]हले ! [२]हिमाम्भष्य(:प)तितं विहङ्गमव्याहारलीलायितवल्लिपल्लवे ।
[४]गायन्मृगाक्षीदशनच्छदे [५]द्विजज्योत्सनास्मितश्रीरिव [६]लक्ष्यते क्षणम् ॥१३५॥

(१) सखि ! । (२) हिमजलम् । (३) पक्षिणां कूजितानां गिरां लीलया आचरितं यत्र तादृग्लतायाः किसलये । (४) गानं कुर्वत्या युवत्या अधरे । (५) दन्तचन्द्रिकाकलितहसितलक्ष्मीः । (६) दृश्यते ॥१३५॥

हील० हे हले ! पक्षिणां भाषितवचनानां लीलयाचरितं यत्र । तादृशे वल्लिपल्लवे पतितं हिमाम्भः दृश्यते । यथा रामाधरे दन्तकान्तिकलितस्मितशोभा दृश्यते ॥ १३६ ॥

हीसुं० [१]हैमाब्जनिर्यासपिशङ्गितैः सि[२]तच्छदै[३]र्वतंसैरिव भान्ति [४]पल्वलाः ।
क्रौञ्चैरपि क्रेङ्क्रियते [५]कजाश्रये [६]श्रियाः [७]प्रवेशे किमु [८]तूर्यनिस्वनैः ॥१३६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) कनककमलपरागपिङ्गीभूतैः। (२) हंसैः। (३) शेखरैरिव। (४) सरांसि। (५) पद्माकरे पद्मसद्मनि वा। (६) लक्ष्म्याः। (७) प्रवेशोत्सवे। (८) तूर्यशब्दैः, वादित्र- निर्घोषैः ॥१३६॥

हील० है० । कनकाम्बुजरसेन पीतैर्हंसैः सरांसि भान्ति । क्रौञ्चैरपि केङ्कारवो विधीयते । उत्प्रेक्ष्यते । पद्मगृहे लक्ष्मीप्रवेशे वादित्रनिर्घोषैः ॥ १३६ ॥

हीसुं० वाता वान्ति [१]स्मितकजसरिद्वारि [२]कल्लोलयन्तो
मन्दं[३]मन्दं [४]स्खलितगतयः [५]स्त्रैणवक्षोजशैलैः ।
[६]जातिस्नेहात्कि[७]मिह मिलितुं [८]कम्पितैराननाना-
[९]माजानेया अपि [१०]हरिहयाना[११]ह्वयन्ते विभाते ॥१३७॥

(१) विकसितानि कमलानि यस्यां तादृग्नद्या जलम्। (२) तरङ्गयुक्तं कुर्वन्तः। (३) शनैः शनैः। (४) भग्नं गमनं येषाम्। (५) युवतीव्रजविकञ्चुकितकुचाचलैः। (६) अश्वानां ज्ञातेः प्रेम्णः। (७) भुवि। (८) वक्त्रवेल्लनैः। (९) कुलीनाश्वाः। (१०) इन्द्रस्य रवेर्वा तुरगान्। (११) आकारयन्ति ॥ १३७ ॥

हील० वाता० । विकस्वरकमलसहितनदी[जलं] कल्लोलयन्तः । एतेन शीतसुरभित्वम् । पुनः स्त्रीसमूहकुचाचलैर्मन्दा गतिर्येषां, तादृशा । एतेन मन्दत्वम् । वाताः प्रभाते वान्ति ।पुनः आजानेयाः कुलीनाश्वाः इह पृथिव्यां मिलितुं मुखकम्पनेन सूर्याश्वानाकारयन्तीव ॥ १३८ ॥

हीसुं० [१]चन्द्रानने!ऽ[२]मन्दमरन्दबाष्पा [३]कुमुद्वती [४]मुद्रितनेत्रपत्रा ।
[५]विधोर्वियोगादिव [६]कोशमध्यावरुद्धगुञ्जन्मधुपै[७]र्विरौति ॥ १३८ ॥

(१) शशिमुखि ! । (२) बहुलमकरन्दमेव रोदनजलं यस्याः । (३) कैरविणी (४) निमीलितलोचनसदृक्पर्णा । (५) शशिविरहतः चन्द्रास्तमनात् । (६) मुकुलमध्ये बद्धैर्मध्य एव स्थितैः शब्दायमानैः भृङ्गैः । (७) रोदिति ॥ १३८ ॥

हील० हे चन्द्रानने ! बहुलमकरन्द एव नेत्राम्बु यस्याः । पुनर्निमीलिते नेत्रे इव पत्रे यस्यास्तादृशी कैरविणी गुञ्जद्भ्रमरैश्चन्द्रवियोगाच्छब्दायते ॥ १३९ ॥

हीसुं० [1][१]उपगतमिहान्यस्माद्[२]द्वीपा[३]त्प्रगेऽ[४]धिपतिं त्विषा-
[५]मनुरतिपरीरम्भारम्भप्रसारिकरं पुरः ।
[६]विकचवदना [७]राजीविन्यः [८]स्फुटोद्गतकण्टका
[2][९]नलिननयनैरा[१०]लोकन्ते वशा इव [११]वल्लभम् ॥ १३९ ॥

[3]इति सखीकथितरात्रिविरामविभातदिनकरोदयः ॥

(१) आगतम्। (२) द्वीपान्तरात्। (३) प्रभाते। (४) भास्करम्। (५) अनुरागेणालिङ्गन-प्रारम्भाय प्रसारिताः हस्ताः किरणाश्च येन। (६) हसितमुखाः। (७) पद्मिन्यः। (८) प्रकटं

1. आगमने गमनार्थाः समभ्युपाङ्भ्यः पराः कथिताः । इति हीलप्रति पार्श्वे टि० । 2. नयनकमलै० हीमु० ।

3. इति विभातदिनकरोदय वर्णनम् हील० ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

प्रकटीभूतकण्टका रोमाञ्चस्य यस्याः । (९) कमललोचनैः । (१०) पश्यन्ति । (११) भर्तारम् ॥१३९॥

हील० उप०। प्रगे-प्रातरन्यद्वीपादागतं पुरः-अग्रे अनुरागेणालिङ्गनार्थं प्रसारिणः किरणाः हस्ताश्च यस्य । तं सूर्यं विकसितमुखाः उद्गतरोमहर्षाः पद्मिन्यः नेत्रतुल्यैर्विलोकन्ते ॥*१४०॥

हीसुं० **[1]आनन्दाद्वयवादमेदुरमना मध्ये सखीनामिति**
[2]प्रारब्धाभिनवोक्तियुक्तिरचनावाग्देवताश्रीजुषाम् ।
देवीनां [3]जयवाहिनीव सुमनोवल्लीव [4]वा वीरुधां
ताराणां [5]विधुमण्डलीव [6]महिला [7]कामप्यवाप [8]श्रियम् ॥१४०॥

इति पण्डितदेवविमलगणि विरचिते हीरसुन्दरनाम्नि महाकाव्ये कुंरा-नाथीगजस्वप्न-स्वप्नजागरिका-सखीगोष्ठ्यादिवर्णनो नाम द्वितीयस्सर्ग्गः ॥

(१) प्रह्लादस्याद्वैततया पुष्टमानसी । (२) प्रक्रान्तनवीनवार्त्तायुक्तिसन्दर्ब्भैः शारदाशोभा-भाजाम् । (३) इन्द्राणी । (४) कल्पलता वल्लीनाम् । (५) चन्द्रबिम्बम् । (६) नाथी । (७) अनिर्वचनीयाम् । (८) लक्ष्मीम् ॥ १४० ॥

॥ इति द्वितीयः सर्गः ॥

हील० आनन्दाधिक्येन पुष्टचेताः सा सरस्वतीशोभाभाजां सखीनां मध्ये स्थिता सती अनिर्द्दिष्टवचनीयां शोभां प्राप । यथा देवीनां मध्ये इन्द्राणी, वल्लीनां मध्ये कल्पवल्ली, ताराणां मध्ये चन्द्रमण्डलीव । तारा पुंस्त्रीलिङ्गे । मण्डलशब्दस्त्रिलिङ्गे ॥ १४१ ॥

हील० **→यं प्रासूत शिवाह्वसाधुमघवा सौभाग्यदेवी पुनः**
श्रीमत्कोविदसिंहसी(सिं)हविमलान्तेवासिनामग्रिमम् ।
तद्ब्राह्मी क्रमसेविदेवदिमलव्यावर्णिते हीरयु-
क्सौभाग्याभिधहीरसूरिचरिते सर्गो द्वितीयोऽभवत् ॥ १४२ ॥←

इति पं.श्री सीहविमलगणिशिष्य पं.देवविमलगणिविरचिते हीरसौभाग्यनाम्नि महाकाव्ये कुंरा-नाथी-गजस्वप्न-तज्जागरिका-सखीकथित-भरतदिग्विजयादि-रात्रिविराम-दिनकरोदयवर्णनो नाम द्वितीयः सर्गः ॥

इति पं. देवविमलगणिव्यावर्णिते हीरसौभाग्याभिधे महाकाव्ये हीरविजयसूरिचरिते द्वितीयः सर्गः अभवत्-जातः ॥ १४२ ॥

॥ इति द्वितीयः सर्गः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐं नमः ॥

अथः तृतीयः सर्गः ॥

हीसुं० [1]कल्पद्रुमाङ्कुरमिवाम[2]रशैलभूमी [3]रत्नं वि[4]दूरधरणीव [5]घनस्वनोत्थम् ।
[6]अन्तर्मदोदयमिवे[7]भकपोलपाली नाथी ततोऽवहत [8]दोहदलक्षणं सा ॥ १ ॥

(१) कल्पतरुप्ररोहम् । (२) मेरुमही । (३) वैडूर्यरत्नम् । (४) विदूरशैलावनिः । (५) मेघगर्ज्जाश्रवणोद्भूतम् । 'प्रावृट्काले जल[द]गर्जितश्रवणात् विदूरशैलभूमी वैडूर्यरत्नशिलाका उद्भवतीति श्रुतिः' । (६) मध्ये दानवारिण उद्भवम् । (७) गजेन्द्रगण्डस्थलम् । (८) गर्ब्भम् ॥१॥

हील० कल्प० । ततः स्वप्नदर्शनानन्तरं नाथी दोहदलक्षणं गर्भं धत्ते स्म । यथा मेरुमही सुरतरुप्ररोहं वहते । पुनर्यथा विदूरपर्वतपृथ्वी मेघगर्जारवश्रवणसमुद्भूतं वैडूर्यं नाम रत्नं बिभर्त्ति । यथेभगल्लस्थलीमध्ये मदानां दानं जलानामुदयं प्रादुर्भावं धत्ते ॥ १ ॥

हीसुं० [1]श्रीमन्महेभ्यपुरुहूतपयोरुहाक्षी [2]नीराज्यमानवदना [3]शरदिन्दुल[1]क्ष्म्या ।
[4]आसेदुषी [5]शशिमुखी [6]सुषमां दधाना गर्ब्भं [7]पलालपिहितेक्षुशिशुं क्षमेव ॥२॥

[1]शुक्तीरसोद्भवमि[2]वाम्बु [3]घनावलीव [4]माणिक्य[5]प[2]ङ्क्तिमिव [5]शैवलिनीशवेला ।
[6]विद्याविशेषमिव [7]विज्ञ[3]ततिजिनेन्द्र-बिम्बं व्रजं [8]जिननिकेतनमालिकेव ॥३॥

[1]रक्ताङ्कपङ्क्तिरिव [2]कृष्णालताप्ररोह-मात्रेय[3]दृष्टिरिव वल्लभमौष[4]धीनाम् ।
[5]धात्री निधानमिव [4]नन्दन[6]मेदिनी च [7]मन्दारभूमिरुहमाद्रिगुहेव सिंहम् ॥८॥

इति गर्भाधानम् । त्रिभिर्विशेषकम् ।

(१) लक्ष्मीकलितव्यवहारिशक्रकमलाक्षी नाथी नामा । (२) आरात्रिकं क्रियमाणवक्त्रया । (३) शरत्कालसम्बन्धिविधुश्रिया । (४) प्राप्तवती । (५) नाथी । (६) सातिशायिनीं शोभाम् । (७) काण्डरहिततृणैराच्छादितः बालेक्षुः इक्षुप्ररोहः । "पलालजालैः पिहितः स्वयं हि प्रकाशमासादयतीक्षुडिम्भं" इति नैषधे ॥२॥

(१) मौक्तिकम् । (२) जलम् । (३) मेघमाला । (४) रत्नमालाम् । (५) समुद्रवेला । (६) चेतश्चमत्कारकारिणीं विद्याम् । (७) पण्डितराजी । (८) प्रासादश्रेणी ॥३॥

(१) वव(वि)द्रुममालिका । (२) कृष्णवल्लीप्ररोहम् । (३) अत्रिनाम्नो मुनेर्नयनम् । (४) शशिनम् । "अथ नयनसमुत्थं ज्योतिरत्रेरिव द्यौः" । (५) भूमी । (६) नन्दनवनावनिः । (७) मन्दारनामानं कल्पद्रुमम् । (८) गिरिकन्दरा ॥ ८ ॥

---

1. ०बिम्बैः हीमु० । 2. ०राशि० हीमु० । 3. सभाप्तबिम्बं प्रासादभूमिरिव वायुसखं शमीव० हीमु० ।
4. शैलगुहेव सिंहं कंसारिनाभिकजकोशकुटीव शंभुम् हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० **श्रीम०** । श्रीमन्तो ये महेभ्यास्तेषु इन्द्रस्य कमलनयना **नाथी** पत्नी सुषमां सातिशायिनीं शोभामासेदुषी प्राप्तवती । लेभे इत्यर्थः । किंभूता ? चन्द्रानना । किं क्रियमाणा ? । शरत्कालीनचन्द्रमण्डलैरारात्रिकं क्रियमाणं वदनं यस्याः । पुनः किं कुर्वाणा ?। गर्भं दधाना । यथा धान्यत्वग्भिराच्छादितं इक्षुप्ररोहं धरा धत्ते। यथा शुक्तिका मुक्ताफलम् । यथा मेघमाला जलम् । नदीपतेर्वेला रत्नमण्डलीमिव । पण्डितसभा विद्याविशेषं रहस्यमुपनिषदं वां । यथा जैनविहारभूमी आप्तस्यार्हतो बिम्बं प्रतिमाम् । यथा शमी 'खेजडी' तरुर्वायुसखमग्निम् ।यथा विद्रुममालिका कृष्णलतायाः 'कालीवेलि' नाम्न्याः अङ्कुरम् । **अत्रिऋषि**सम्बन्धिनी दृक् । औषधीपतिम् । धात्री निधानम् । शैलगुहा सिंहम् । यथा कंसारेः कृष्णस्य नाभिस्तत्रोद्भूतं यत्कमलं तस्य कोश एव कुटी पर्णाच्छादितगृहं ब्रह्माणं धत्ते । तद्वत् ॥*२-३-४॥

हीसुं० **[१]एकातपत्रमिह [२]यत्तनुजो [३]विधाता [४]साम्राज्यमिन्दु[५]विशदं जिनशासनस्य ।**
[६]शीतांशुमण्डलमितीव [७]सितातपत्री-कर्त्तुं स्वमूर्धनि तया [८]स्पृहयांबभूवे ॥५॥

(१) एकछत्रम् । (२) यस्याः पुत्रः (३) करिष्यति । (४) सम्यग्राज्यम् । (५) चन्द्र इव निर्मलम् (६) चन्द्रबिम्बमेव । (७) श्वेतच्छत्रं कर्त्तुम् । (८) काङ्क्षितम् ॥ ५ ॥

हील० **एका०**। यस्याः सुतः । इह जगति जिनशासनराज्यं एकछत्रं विधास्यति । इति कारणादेव तया चन्द्रमण्डलं छत्रीकर्त्तुं वाञ्छितम् ॥५॥

हीसुं० **प्रेम्णा गुणाननु[१]गुणीकृतवेणुवीणा [२]एणीदृशः [३]सुमनसाम[४]दसीयसूनोः ।**
गास्यन्ति ताभिरिति कीव (किन्नु ?)तया विधातुं [५]सौहार्दमम्बुजदृशा हृदि काम्यते स्म ॥६॥

(१) स्वध्वनिसदृशीकृतवंशवीणाः । (२) स्त्रियः । (३) देवानाम् । (४) नाथीपुत्रस्य । (५) मैत्र्यम् ॥६॥

हील० **प्रेम्णा०** । अस्याः सुतस्य गुणान् आत्मस्वरसदृशीकृतवंशवीणाः देवाङ्गना गास्यन्ति । इति कारणादेव ताभिर्देवीभिः सह सख्यं कर्त्तुं तया वाञ्छ्यते स्म ॥६॥

हीसुं० **[१]शौण्डीर्यचङ्क्रमणवारिमदानलीला-श्रीभिर्यतो मम सुतस्त[२]मधो[३] विधाता ।**
[४]आरोढुमन्तरिति [५]जम्भनिशुम्भकुम्भि-कुम्भस्थले किमनया हृदि का[1]ङ्क्ष्यते स्म ॥७॥

(१) शूरत्वगतिमञ्जिमदानं मदो विश्राणनं च तस्य लीलाग्राभिः । (२) ऐरावणम् । (३) अधो विधाता अधो नीचैः करिष्यति । (४) अध्यासितुम् । (५) ऐरावणकुम्भस्थलोपरि ॥७॥

हील० **शौण्डी०** । यतः यस्मात्कारणान्मे पुत्रः पराक्रमगतिचारुतामदशोभाभिस्तमैरावणमधः करिष्यति । इति कारणादिन्द्रहस्तिकुम्भस्थले चटितुं अनया अन्तःकरणे काम्यते स्म ॥*७॥

---

1. काम्यते हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसु० [१]यत्तत्सुतो [२]मधुरिवाव[३]निजव्रजानां कर्त्ता [४]यश:सुरभिदिग्वलय: [५]प्रबोधम् ।
प्रीतिं [६]प्रणेतुमृतुना किमिति [८]स्मितास्या [७]ग्रीष्माग्रजेन सह [९]कामयते स्म चित्त (त्ते) ॥८॥

(१) यस्या: पुत्र: । (२) वसन्त इव । (३) अवनिजा नरा द्रुमाश्च । "भुविदिविजमहिय" मितिवत् (४) कीर्त्त्या सुगन्धीकृतदिग्विभाग: । (५) प्रतिबोधं विकाशं च । (६) कर्त्तुम् । (७) उष्णकालात्प्रथमवृत्तेन ऋतुना वसन्तेनेत्यर्थ: । (८) हसितवदना नार्थी (९) वाञ्छति स्म ॥८॥

हील० **यत्त०**। यशोभि: सुगन्धं दिग्वलयं यस्मात्तादृशस्तस्या: सुत: अवनौ जाता जना द्रुमाश्च तेषां व्रजानां प्रतिबोधं विकाशं वा करिष्यति । इति कारणादेव सा वसन्तेन सह प्रीतिं कर्तुं ईहते स्म ॥८॥

हीसुं० तस्या: सुतो रविरि[१]वाम्बुजपाणिविश्व-चक्षु: [२]प्रबोधकरकृत्ततमा [३]महस्वी ।
भावी यत: किमिति पद्मदृशा च काङ्क्षे [४]तन्मण्डलं [५]स्वसदनेऽ[६]निशमु[७]ज्जिहानम् ॥९॥

(१) कमलमाकृत्या हस्ते यस्य । लोकस्य धर्मप्रकाशकत्वेन चक्षुरिव चक्षु: । (२) प्रतिबोधविधाता ध्वस्तपाप: । (३) प्रतापवान् । रविस्तु पद्महस्त: जगच्चक्षु: प्रकाशकर: दलितान्धकार: कान्तिमान् । (४) रविबिम्बम् । (५) स्वगृहे । (६) निरन्तरम् । (७) उदयन्तम् ॥९॥

हील० **तस्या०** । यस्या: सुत: सूर्यवत् अम्बुजे इव पाणी वा आकृत्या कमलं पाणौ यस्य । तथा जगच्चक्षुस्तथा प्रतिबोधकर: । दलिताज्ञानान्धकार: । प्रतापवानुत्सववान् भविष्यति । किं इतीव तया सूर्यबिम्बं स्वगृहे उदयमानं वाञ्छितम् ॥९॥

हीसुं० स्व:[१]सानुमन्तमधिरोढुम[२]थात्मदर्शी-कर्त्तुं विधुं पु[३]नरपांपति[४]मुत्तरीतुम् ।
[५]सिद्धालयेष्वपि [६]सभाजयितुं जिनान्सा [७]गर्भानुभावत इयेष [८]यथार्हदम्बा ॥१०॥

इति दोहदा: ।

(१) मेरुम् । (२) दर्प्पणं विधातुम् । (३) समुद्रम् । (४) तरीतुम् । (५) शाश्वतचैत्येषु । (६) पूजयितुम् । (७) गर्भप्रभावात् । (८) जिनजननीव ॥१०॥

हील० **स्व०** । मेरुमारोढुम् चन्द्रं दर्पणं कर्तुम् । समुद्रं तरीतुम् । पुन: शाश्वतार्हत्प्रसादेषु जिनान्पूजयितुं गर्भानुभावात्सा काङ्क्षति स्म । यथा जिनजननी शुभदोहदं ईहते ॥ १० ॥

हीसुं० [१]तद्दोहदप्रकरपूर्त्तिविधौ [२]सुपर्व्व-वल्ल्या [३]विधेरिह [४]तथा [५]स्पृहया [६]व्यलासि ।
[७]श्रेयोवतामिव ततिष्य[८](: प)रिपूर्णकामा जज्ञे यथा[९]नतिचिरादियमाय[१०]ताक्षी ॥११॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) तस्या दोहदनिवहानां पूर्णीकरणप्रकारे । (२) कल्पवल्लीतुल्यया । (३) विधातुः । (४) तेन प्रकारेण । (५) वाञ्छया । (६) विलसितम् । प्रवृत्तम् । (७) पुण्यवताम् । (८) सम्पूर्णीभूताभिलाषाः । (९) स्तोककालेन । (१०) प्रसूतिप्रमाणे अक्षिणी यस्याः ॥११॥

हील० तद्दो०। इह जगति तस्या दोहदपूर्णीकरणे कल्पलतातुल्यया विधातृवाञ्छया तथा विलसितं यथेयं त्वरितं पूर्णाभिलाषा जाता । यथा पुण्यवतां श्रेणी पूर्णाभिलाषा भवति ॥११ ॥

हीसुं० सा[१] दोहदोदयकृशीकृततत्प्रपूर्त्ति-संप्रापितोपचयसञ्चरचारिमश्रीः ।
भाति स्म[२] फाल्गुनविपत्त्रितचैत्रसान्द्री-भूतावनीरुह[१]वती विपिनस्थलीव ॥१२॥

(१) सा नाथी पूर्वं दोहदानामाविर्भावेन दुर्बलीकृता पश्चात् तेषां पूर्त्त्या पूर्णीभवनत्वेन संप्रापिता पुष्टिर्यस्मिंस्तादृशस्य देहस्य चारुत्वस्य श्रीर्यस्याः । (२) फाल्गुनमासेन पत्त्ररहिताः । कृताष्प(: प)श्चाच्चैत्रमासेन पत्र-पुष्प-पल्लवैर्निवडा जाता ये द्रुमास्ते विद्यन्ते यस्यां सा ॥१२॥

हील० सा दो०। दोहदेन दुर्बलीकृता पश्चात्तत्पूरणेन प्राप्तोपचयस्य देहस्य मनोहरतायाः श्रीर्यस्यां तादृशी सा भाति स्म । यथा फाल्गुनेन विगतानि पत्राणि येभ्यस्ते विपत्त्रीः । विपत्त्रान्करोतीति विपत्त्रयति । विपत्त्र्यन्ते स्मेति विपत्त्रिताः कृताः चैत्रेण पल्लविता वृक्षाणां ततिर्यस्यां तादृशी वनी भाति ॥१२॥

हीसुं० [१]निस्तीर्य [२]दोहदभवार्त्तिम[३]थैणचक्षु-र्मेद[४]स्वितामवयवेषु बभौ वहन्ती ।
[५]फु[2]ल्लद्दलैरुपचिता नव[६]शारदीन-नालीकिनीवदति[७]वाहितवारिवाहा ॥१३॥

(१) तीर्त्वा । (२) दोहदोत्पन्नव्यथाम् । (३) नाथी । (४) पुष्टिम् । (५) स्मैरत्पर्णैः पुष्टा जाता सद्यस्का । (६) शरदिभवा कमलिनीव । (७) अतिक्रान्तमेघा ॥१३॥

हील० दोहदोद्भवां पीडां निरस्य पुष्टा सा भाति स्म । यथातिक्रान्तमेघसमया पत्रैः पूर्णा कमलिनी शोभते ॥१३॥

हीसुं० [१]शुद्धां [२]क्रियां [३]विदधताम[४]धिभूर्यदेष भावीरितः किमिति भा[५]गवतैः प्रतापैः ।
[६]आनन्दपूर्वविमलव्रतिवासवस्तां [७]प्राग्जन्मनः समय एव [८]समुद्दधार ॥१४॥

(१) निर्दोषाम् । (२) अनुष्ठानम् । (३) कुर्वताम् । (४) यतीनां स्वामी । (५) भगवत्सम्बन्धिभिर्महिमभिः । (६) आणंदविमलसूरिः । (७) हीरकुमारजन्मनः पूर्वमेव । (८) क्रियोद्धारं कृतवान् ॥ १॥

हील० शुद्धक्रियाकारिणां पतिर्भावी इति भगवत्प्रतापैः प्रेरितः श्रीआनन्दविमलसूरिः हीरविजयसूरेः प्राक् तां क्रियामुद्धृतवान् ॥१४॥

---

1. हीमु० हीलप्रतौ चात्र भूतावनीरुहततित० पाठो दृश्यते । तत्र भूतावनीरुहवती पाठो योग्यः प्रतिभाति ॥ 2. स्मेरद्दलै० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]कालागुरुद्रवकरम्बितगन्धधूली-पत्त्रावलीकलितपाण्डुरगण्डभाजा ।
[२]छायाधरः शरदपास्त[३]पयोदरोधोऽवश्याय[४]दीधितिरह[५]स्यत [६]तन्मुखेन ॥१५॥

(१) कृष्णागुरुद्रवेणमिश्रीकृतकस्तूरीपत्त्रलताङ्कितपाण्डुरकपोलं भजन्त्या । (२) लाञ्छनयुतः । (३) घनरुन्धनं यस्य । (४) चन्द्रः । (५) हसितम् । (६) नाथीवदनेन ॥१५॥

हील० कृष्णागुरुपङ्केन व्याप्ता कस्तूरी, तस्याः पत्त्रलतासहितौ धवलौ गल्लौ भजति, तादृङ्मुखेन श्यामताधरः अभ्रमुक्तस्तुहिनकान्तिर्हसितः ॥१५॥

हीसुं० लीलाचलद्दलगणा [१]विगलन्मरन्द-लुभ्यन्निलीनमधुपा सितपद्मपङ्क्तिः ।
[२]प्रस्यन्दमाननयनेन [३]सविभ्रमभ्रू-भाजा [४]यदीयवदनेन विडम्ब्यते[५] स्म ॥१६॥

(१) लीलया नातिशयेन मन्दमरुत्प्रेरणया चपलीभवन्तष्प(ः प)र्णनिवहा यस्याम् । तथा मकरन्दार्थं लोलुपीभवतामत एव निलीनानां कोशान्तर्लयं प्राप्तानां भ्रमराणामासितमवस्थितिर्यस्यां तादृशी कमलमाला । (२) स्वभावचपले लोचने यस्मिन् । (३) विलासकलितभ्रुवं भजतीति । (४) नाथीमुखेन । (५) अनुक्रियते स्म ॥ १६ ॥

हील० चलन्नेत्रेण विलसद्भ्रूसहितेन यद्वदनेन नातिशयेन चलन् दलानां गणो यत्र । पुनर्भ्रमराञ्चिता धवलकमलश्रेणिरनुक्रियते स्म ॥१६॥

हीसु० [१]नीलारविन्दनयना [२]कलमावदाता [३]बन्धूकदन्तवसना सितकान्ति[४]वक्त्रा ।
[५]कासस्मिता कुमुदिनी[६]सुरभिर्मराल-[७]लीलागतिः [१]श[८]रदिवाजनि सा [९]तदानीम् ॥१७॥

(१) नीलोत्पलः । (२) कलमशालिवदुज्ज्वला । (३) बन्धुजीवाधरा । (४) चन्द्रमुखी । (५) कासवद्विशदहसितं यस्याः (६) कुमुद्वत्सुगन्धा । (७) मरालो हंसस्तद्वन्मन्थरा गतिर्यस्याः (८) शरदर्थे । (९) सर्वं तदेव गर्भाधानसमये ॥ १७ ॥

हील० तदानीं गर्भाधानसमये सा शरत् जातेव । किंभूता सा शरच्च ? । नीले पङ्कजे तद्वत्ते एव वा नेत्रे यस्याः । कलमाः शालयस्तद्वत्तैश्च गौरी । तथा बन्धूकानि सुमानि तद्वत्तान्येवाधरो यस्याः । सिता कान्तिर्यस्य तादृग् मुखं यस्याः । पक्षे चन्द्र एव मुखं यस्याः कासास्तद्वत्ते एव स्मितं यस्याः । कुमुदिन्यः कैरविण्यस्तद्वत्ताभिर्वा सुगन्धिः । मराला राजहंसास्तद्वत्तेषां च मन्थरतया गतिर्यस्या यस्यां वा ॥१७॥

हीसु० [१]माणिक्यभूषणगणैर्न तदा कदाचि-[२]त्खेदोदयाद्वपुरभूष्यत चन्द्रमुख्या ।
क्रीडागतामरकरावचिताम्बुजातां जानेऽनुयातुमनसा सरितं[४] सुराणाम् ॥१८॥

(१) माणिक्यानामुपलक्षणान्मणी अलङ्कारनिकरैः । (२) गर्भधरणनिर्वेदात् । (३) जलक्रीडार्थं

1. सरसि हीमु० ।

समेत सुरैः स्वकरैर्गृहीतपद्माम् । (४) स्वर्गङ्गाम् ॥१८॥

हील० तया भूषणैर्वपुर्न भूषितम् । कस्मात् । खेदस्याविर्भावात् । तच्चाह - अहं एवं जाने क्रीडयागता ये देवास्तेषां करैश्चुण्टिताम्बुजां देवनदीं अनुकर्त्तुम् ॥१८॥

हीसु० **रेजे [१]स्तनान[न]विनीलिममञ्जुलेन यस्याः स[२]मुज्ज्वलपयोधरयामलेन ।**
[३]केलीकृते [४]मरकताङ्कितसानुनेव रौप्येन(ण)[५] शैलयुगलेन मनोभवस्य ॥१९॥

(१) चूचुककृष्णता चारुणा । (२) पाण्डुरस्तनद्वन्द्वेन । (३) क्रीडार्थम् । (४) नीलरत्नशिखरेण । (५) रजतपर्वतद्वन्द्वेन ॥१९॥

हील० रेजे० । चूचुकश्यामत्वेम मनोज्ञेन यस्याः स्तनद्वयेन रेजे । उत्प्रेक्ष्यते । कामस्य मरकतशिखरेण रजतशैलेनेव ॥१९॥

हीसुं० **[१]यस्याः समेचकिमच्चू(चू)चु[कचञ्चु]रेण व्यभ्राजि [२]शुभ्रिमभृता स्तनयोर्द्वयेन ।**
[३]यन्मानसाश्रयनिवासिरतीशरत्यो-र्विद्मो [४]विनोदमधुपाङ्ककुमुद्युगेन ॥२०॥

[१]प्रेम्णा [२]प्रणेतुम[३]जरामरतां [४]प्रसद्य [५]विश्राणितेन विधिना [६]कुसु[1]मायुधस्य ।
[७]रौप्येन(ण) [८]नीलदृशदां दधता पिधानं [९]पीयूषपूर्णकलशीयुगलेन किं वा ॥२१॥
युग्मम् ॥

(१) कृष्णत्वकलितचूचुकचारुणा । (२) पाण्डुरताधारिणा । (३) <u>नाथी</u>हृदयमेव गृहं तत्र निवसनशीलयोः स्मरतद्भार्ययोः । (४) विनोदार्थं भृङ्गसङ्गिकैरवद्वयेन ॥२०॥

(१) पितामहत्वेन प्रीत्या । (२) कर्त्तुम् (३) जरामरणराहित्यम् । (४) प्रसन्नीभूय । (५) दत्तेन । (६) स्मरस्य । (७) रजतसम्बन्धिना । (८) नीलमणीनाम् । (९) सुधापरिपूरितकुम्भीद्वयम् । "अवलम्बितकर्णशष्कुलीकलशी क"मिति नैषधे ॥२१॥

हील० यस्याः सह मेचकिम्ना श्यामत्वेन वर्त्तते, तादृशाभ्यां चूचुकाभ्यां सुन्दरेण । पुनरुज्ज्वलेन स्तनद्वयेन शोभितम् । उत्प्रेक्ष्यते । **नाथी**चित्तमेव गृहं तत्र निवासिनो रतीशरत्योः विनोदार्थं भ्रमरयुक्तकैरवद्वयेनेत्येवं वयं विद्मः ॥२०॥

प्रेम्णा आगतेन । पुनः प्रसन्नीभूय धात्रा दत्तेन । पुनः पलेवापाषाणढंकनकयुक्तेनामृतपूर्णकलशद्वयेनेव स्तनद्वयेन रेजे । उत्प्रेक्ष्यते । अजरामरत्वं निष्पादयितुं प्रेम्णा दत्तेनेव ॥२१॥

हीसु० **पीनस्तनद्वयम[१]मेचकितं पयोभि-स्तस्याः क्षणं क्षणमपूर्यत गर्भवत्याः ।**
सान्द्रै[२] रसैरिव[2] [३]विकाशिकुशेशयिन्याः कोशद्विकं [४]विशदमश्रिय[3]मादधानम् ॥२॥

(१) पाण्डुरितम् । (२) स्निग्धैर्मकरन्दैः । (३) विकचकमलिन्याः । (४) श्वैत्यलक्ष्मीम् ॥२२॥

हील० **पीन०** । तस्या गर्भवत्या अमेचकितं पाण्डुरीभूतं कुचद्वन्द्वं क्षणं क्षणं स्तन्यैः पूर्णं जायते स्म । यथा

1. ०<u>मायुधेन</u> हीमु० 2. <u>विकस्वरकैरविण्या</u>: हीमु० । 3. ०<u>यमुद्वहन्त्या</u>: हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विकसनशीलायाः कुमुदिन्याः मुकुलयुगलं क्षणं क्षणं बहलैर्मकरन्दै सम्पूर्यते । किंकुर्वत्यास्तस्याः कैरविण्याश्च ?। विशदिम्नः सतीत्वेन निर्मलताया श्वेततायाश्च शोभां लक्ष्मीं वा धरन्त्याः ॥२२॥

हीसु० [१]दम्भोलिभूषणभरोद्भवदंशुचाप- चक्राङ्कितेन पयसा परिपूरितेन ।
[२]आदीयते किमु समुन्नमता चकोर-चक्षुः [३]पयोधरयुगेन [४]पयोधरश्रीः ॥२३॥

इति कपोलस्तनादिपाण्डिमा ॥

(१) वज्ररत्नाभरणनिकरोद्भूतं किरणैः । प्रारब्धधनुर्मण्डलकलितेन । "उल्लसन्मयुखतें (म)ञ्शरीरचितेन्द्रचापचक्राण्याभरणानि" इति चम्पूकथायाम् "वृता विभूषामणिरश्मि-कार्मुकै"रिति नैषधे । (२) गृहीता । (३) स्तनद्वयेन । (४) मेघलक्ष्मीः ॥२३॥

हील० **दम्भो०** । चकोरलोचनायाः स्तनद्वयेन । किमुत्प्रेक्ष्यते । मेघश्रीर्गृह्यत इव । किंभूतेन पयोधरयुगेन ?। वज्ररत्नघटिताभरणौघात्प्रकटीभवन्तः अंशवस्तेषां यद्धनुर्मण्डलं तेनाङ्कितेन । पुनर्नीरेण दुग्धेन च पूरितेन । पुनरुन्नतेन ॥२३॥

हीसु० [1]सा पूर्णचन्द्रवदना [१]प्रसवोन्मुखत्वं पूर्णेऽथ गर्भसमये बिभरांबभूव ।
[२]वर्षाभिमुख्य[३]मुपकण्ठवितिष्ठमान-ज्येष्ठोन्मुखीकृतजनाम्बुदमण्डलीव ॥२४॥

(१) गर्भजनने सन्मुखत्वम् । (२) वर्षणं वर्षा तस्या आभिमुख्यं सन्मुखताम् । (३) समीपे स्थिता वृद्धा स्त्री ज्येष्ठमासश्च यस्या उत्कण्ठां नीताः स्वजनादिविश्वलोकाश्च यया कादम्बिनी ॥२४॥

हील० सम्पूर्णचन्द्रवक्त्रा प्रसवस्य सम्मुखतां धारयामास । यथा मेघमाला वर्षणं वर्षः वृष्टिस्तस्य सम्मुखतां धत्ते । किंभूता सा कादम्बिनी च ?। उपकण्ठे समीपे वितिष्ठमानाः स्थितिं कुर्वाणाः ज्येष्ठाः कुलवृद्धस्त्रियो ज्येष्ठमासश्च यस्याः । पुनरुन्मुखीकृताः सन्तानावलोकनार्थ-मुत्कण्ठीकृता उच्चमुखाश्च कृतास्तादृशा जना स्वजना विश्वलोकाश्च यया ॥२८॥★

हीसु० [१]वंश्यैः सुधाशनचिकित्सकयोरिवार्भ[२]-[2]भृत्याविनिर्म्मितिविशारदतां [३]दधानैः ।
[४]अध्यूषिरेऽखिल[५]भिषग्वृषभैर्महेभ्य[६]-जम्भद्विषद्भवनगर्भभुवः प्रदेशाः ॥२५॥[3]

(१) देववैद्ययोर्दश्रयोर्वंशे गोत्र उत्पन्नैरिव । (२) बालकानां चिकित्साकरणे पाण्डित्यम् । (३) दधद्भिः । (४) अध्यूषिरे आश्रिताः । (५) प्रधानवैद्यैः । (६) कुंराव्यवहारीन्द्र-गृहमध्यभूभागाः ॥२५॥

हील० **वंश्यै०** । बालकस्य भृत्यायाः करणे पाण्डित्यवद्भिर्वैद्यैस्तस्य कुंरागृहस्य मध्यभूमेः प्रदेशा आश्रिताः । उत्प्रेक्ष्यते । देववैद्ययोर्वंश्यैः ॥२५॥

---

1. <u>सम्पूर्णचन्द्र०</u> हीमु० । 2. ०<u>भृत्या</u>० हीमु० । 3. इति प्रसवसमयः हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]लग्नं [२]गुरौ [३]शिखिनि [४]शीलति युग्मगेहं[1] भूमीभवे भजति[५] खिड्ग इवाथ कन्याम् ।
याते [६]तुलां सितमरीचिसुते[७] सिते च [८]सूरेऽपि सारस[९] इवालिविलासशीले ॥२६॥

राहौ [१]पुनः सुकृतिनीव [२]धनं [३]प्रपन्ने [४]पाथोनिधाविव [५]विधौ [६]मकराश्रयेव ।
[७]मीनं शनौ [2]मदनवन्मदयत्यदीन[८]मित्थं [९]ग्रहेषु [१०]तदयाभ्युदयावहेषु ॥२७॥[3]

[१]विश्वावनीधर ८शिलीमुख ५पूष १५८३ संख्ये संवत्सरेऽध्वनिपुरन्दरविक्रमार्कात् ।
मासः [२]सहस्य [३]विशदश्रियमाश्रयन्त्यां [४]जन्मानुभावत इवास्य तिथौ नवम्याम् ॥२८॥

लग्नोदये[4]ऽस्य [१]शुभशंसिनि [२]सार्वभौम-जन्मोचितेऽहनि[३][5] [४]ससाधिमधिष्ण्ययोगे ।
कूलङ्कषा[५] मखभुजामिव [६]केकियान-[७]माखण्डलामृतमयूखमुखी जयं वा ॥२९॥

[१]आमोद[२]मम्बुरुहिणीव विजृम्भमाणा [३]पञ्चार्चिषं [४]शुचिमरीचिचकोरचक्षुः ।
[५]सौदामनीवलय[६]मम्बुदमालिकेव पृथ्वीव[७] तीर्थमनघं [८]कृषिमुर्व्वरेव ॥३०॥

[१]पीयूषकान्तिमिव [२]दुग्धपयोधिवेला सिंहं महामृगरिपोरिव[३] वा महेला ।
[४]विश्वावबोधमिव [५]वासरवक्त्रलक्ष्मीः [६]श्रीखण्डसालमिव वा [७]मलयाचलोर्व्वी ॥३१॥

[१]श्रृङ्गारयोनिमिव [२]नीरजनाभपत्नी राज्ञः प्रतापमिव वा [३]जगतीजयश्रीः ।
[४]आचार्यमध्वरभुजामिव फाल्गुनी सा नाथी क्रमेण तनयं जनयां[6]बभूव ॥३२॥

[सप्तभिः कुलकम्]

(१) मिथुनलग्ने तनुभवनम् । (२) बृहस्पतौ । (३) केतौ च । (४) सेवमाने । (५) विट इव मङ्गले कन्याराशिं कुमारीं च भुञ्जाने । (६) तुलाराशिम् । (७) चन्द्रसुते । बुधे शुक्रे च गते सति । (८) सूर्येऽपि । (९) पुनः सारसपक्षीव अलौ वृश्चिकनामराशौ श्रेण्या च कृत्वा यो विलासस्थितिर्गमनं तत्र शीलं स्वभावो यस्य ॥२६॥

(१) कृतसुकृते पुंसीव राहौ । (२) धनं राशिं द्रव्यं च । (३) प्राप्ते । (४) समुद्र इव । (५) चन्द्रे । (६) मकराणां मत्स्यविशेषाणामाश्रयः । मकरराशेराश्रयो यस्य । (७) कन्दर्प इव शनैश्चरे मीनं मत्स्यं मीनराशिं च मदयति सति । (८) इत्थममुना प्रकारेण । (९) जन्मसमयग्रहेषु । (१०) तस्य हीरकुमारस्य शुभकर्मणः पुण्यस्य अभ्युदयस्य करेषु(कारकेषु) सत्सु । इति जन्मकुण्डलिका ॥२७॥

1. ०नाम हीमु० । 2. सलिल० हीमु० । 3. इति जन्मकुण्डलिकाग्रहाः हील० । 4. येऽथ हीमु० ।
5. ०ससाधिमधिष्ण्ययोगे । विक्रमात्संवत् १५८३ वर्षे मार्गशीर्षसितनवम्यां सोमवासरे पूर्वभद्रपदनक्षत्रे हर्षणनामयोगे घटी १२ उपरांत वज्रयोगे मिथुनलग्ने तद्दिने प्रह्लादनपुरवास्तव्य-ओकेशवंश्य सा कुंरापत्नी नाथी सुतमजीजनत् हील० ।
6. ०चकार हीमु०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) त्रीणि जगन्ति ३ (गो)त्रशैलाः सप्त(अष्टौ) कुलाचला ७(८) बाणाः पञ्च ५ सूर्यः १मितिसंवत्सरे । (२) मार्गशीर्षस्य । (३) श्वेतलक्ष्मीम् । (४) हीरकुमारस्य जन्मनः प्रभावादिव । विक्रमावनिशक्रवर्षात् संवत् १५८३ वर्षे मार्गशीर्षसितनवम्यां तिथौ सोमवासरे पूर्वभाद्रपदनक्षत्रे हर्षणघटी १२ उपरान्तवज्रयोगे तद्दिने प्रह्लादनपुरवास्तव्य औकशवंश्य साहकुंरापत्नी नाथी सुतरत्नमजीजनत् ॥२८॥

(१) हीरकुमारभाग्याभ्युदयस्य कल्याणस्य वा कथयितरि । (२) चक्रवर्त्तिजन्मयोग्ये । (३) दिने । (४) साधि[म्ना]श्रीरम्यत्वेन सहिते नक्षत्रयोगे । "त्वयादृतः किन्नरसाधिमभ्रमः" इति नैषधे । (५) गङ्गा । (६) कार्त्तिकेयम् । (७) शची ॥२९॥

(१) परिमलम् । (२) पद्मिनी । (३) बुधम् । (४) रोहिणी (५) विद्युद्वलयम् । (६) मेघमाला । (७) "पृथ्वीव पुण्यतीर्थ" मिति चम्पूकथायाम् । (८) सर्वसस्या भूः ॥३०॥

(१) चन्द्रम् । (२) क्षीरसागरवेला । (३) सिंही गजारिस्त्री । (४) जगज्जागरणम् । (५) प्रभातश्रीः । (६) चन्दनतरुम् । (७) मलयाद्रिभूः ॥३१॥

(१) स्मरम् । (२) लक्ष्मीः । (३) विश्वविजयश्रीः । (४) सुरसूरिर्बृहस्पतिं नक्षत्रम् ॥३२॥

हील० **लग्नं०** । आरभ्य सप्तभिः कुलकम् । गुरौ केतौ च मिथुनलग्नं शीलति सति तथा मङ्गले कन्यां भजति सति । यथा विटः कुमारिकां भजते । पुनर्बुधे शुक्रे च तुलां प्राप्ते । पुनः सूर्ये अलौ विलासिनी । यथा सारसः आल्या श्रेण्या कृत्वा यो विलासो गमनमासनं च तत्र स्वभावो यस्य तादृशो भवति । पुना राहौ पुण्यवानिव धनं प्रपन्ने । पुनश्चन्द्रे मकराश्रिते सति । यथा मकरध्वजो मकराश्रितो भवति । पुनः शनैश्चरे अदीनं मीनं मदयति सति । यथा पानीयं मत्स्यं समदं कुरुते । इत्थममुना प्रकारेण तस्या यस्याभ्युदयं वहति । तादृशेषु ग्रहेषु सत्सु विक्रमादित्यात् १५८३ संवत्सरे सहस्य मार्ग्रशीर्षस्य जन्मप्रभावादिव उज्ज्वलायां नवम्यां तिथौ सत्यां शुभकथके मिथुनलग्नोदये सति । पुनश्चक्रवर्त्तिनो जन्मनोऽवतारस्योचिते योग्ये अहनि वासरे सति । पुनः कस्मिन्सति ?। सह साधिम्ना प्रधानत्वेन वर्तते तादृशे धिष्ण्यस्य नक्षत्रस्य योगे सति **नाथी** नन्दनं प्रासूत इति सम्बन्धः ।

अथोपमानोन्येवाह-केव ?। कूलङ्कषेव । यथा मखभुजां देवानां कूलङ्कषा नदी गङ्गा केकिमानं स्वामिकार्त्तिकं जनयतीति सर्वत्र योज्यम् ॥ १ ॥ पुनः केव ? । आखण्डलामृत-मयूखमुखीव । यथा आखण्डलस्य शक्रस्य शक्रस्यामृतमयूखमुखी पीयूषकान्तिवक्त्रा चन्द्रवदना इन्द्राणी जयन्तनामानमङ्गजं सूते ॥ २ ॥ विकस्वरा कमलिनी परिमलं यथा सूते ॥३॥ यथा शीतकान्तेश्चन्द्रस्य पत्नी पञ्चार्चिषं बुधं सूते ॥४॥ पुनर्मेघमाला विद्युन्मण्डलमिव ॥५॥ पृथ्वी श्लाघनीयं तीर्थं शत्रुञ्जयादि सूते ॥६॥ सर्वसस्या पृथ्वी कर्षणमिव ॥७॥ क्षीराब्धिश्चन्द्रमिव ॥८॥ गजानां रिपोः केसरिणः स्त्री सिंहम् ॥९॥ दिनाननस्य प्रभातस्य श्रीर्जगतो जागरणं सूते ॥१०॥ पुनर्मलयाचलधरा चन्दनद्रुमं सूते ॥११॥ नीरजं ब्रह्मोत्पत्तिकमलं नाभौ यस्य कृष्णस्य स्त्री लक्ष्मीः कामं सूते ॥१२॥ यथा जगत्या भूमेर्जयलक्ष्मी राज्ञः प्रतापं सूते । यथा पूर्वाफाल्गुनीनक्षत्रं यज्ञांशभोजिनां देवानां गुरुं बृहस्पतिं सूते ॥१४॥ **तद्वन्नाथी** क्रमेण सूतमजीजनत् ॥ २६*-३२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]श्यामीकृतानि [२]कुदृशामपकीर्त्तिपङ्कै-रस्मन्मुखानि [३]विशदानि [४]विधास्यते यत् ।
एष [५]स्वकीर्त्तिविलसत्त्रिदशस्रवन्ती-विस्फूर्त्तिभिष्कि(: कि)मिति [६]दिक्प्रमदाः
[७]प्रसेदुः ॥३३॥

(१) मलिनीकृतानि । (२) पाखण्डिकुकीर्त्तिकर्द्दमैः । (३) निर्मलानि । (४) करिष्यति । (५) निजयशःप्रसरद्गङ्गाप्रवाहैः । (६) दिगङ्गनाः । (७) प्रसन्नीबभूवुः ॥३३॥

हील० **श्या०** । दुर्वादिनां अपयशोभिरेव कर्दमैरस्माकं दिशां मुखानि श्यामीकृतानि स्वकीर्त्तिरेव विलसद्गङ्गाया विलासैरुज्ज्वलानि । एषः विधास्यते । किमिति कारणादेव दिगङ्गनास्तज्जन्मसमये प्रसन्नीबभूवुर्निर्मला जाताः ॥३३॥

हीसुं० [१]भावी यदेष पृथुकः[२]सुमनोनिषेव्य-स्त[३]द्वृष्ट्यो दिव इतीव गृहे निपेतुः ।
हन्ता यतः स [४]तमसां [५]तमसामिवारिः प्रागेव [६]तैष्कि(: कि)[मि]ति भी[ति]-
वशात्प्र[७]णेशे ॥३४॥

(१) भविष्यति । (२) सुमनोभिर्देवैः पर्युपासनीयः । (३) तेषां सुमनसां पुष्पाणां वृष्ट्यो वर्षणानि । (४) पापानामन्धकारणां च । (५) रविरिव तद्वपुप्रभाभिरेव । (६) तैर्ध्वान्तैः । (७) प्रणष्टम् ॥३४॥

हील० **भावी०** । यद्यस्मात्कारणात् एष बालकः सुमनोभिर्देवैरुपास्यो भविष्यति । किमितीव गृहे तेषां सुमनसां पुष्पानां(णां) वृष्टयः पतिताः । यतः स पृथुकः तमसां अरिः सूर्य इव तमसामज्ञानानां पापनां हन्ता भावीति इव तद्गृहे वपुर्भाभिः पूर्वमेव भयात्तमोभिः पलायितम् ॥३४॥

हीसुं० [१]लब्धि[1]श्रिया[२]नुसरता [३]वसुभूतिपुत्रं [४]सारुप्यमाक[५]लयता च [६]युगप्रधानैः ।
जज्ञेऽचिराद्यदमुना विभुना ममान्तः-प्रीत्येत्यनृत्यदिव [७]शांभवशासनश्रीः ॥३५॥

(१) क्षीराश्रवादिलब्धीनां लक्ष्म्या । (२) अनुकुर्वता । (३) गौतमम् । (४) सादृश्यम् । (५) बिभ्रता । (६) वज्रस्वाम्यादिभिः । (७) जिनशासनश्रीः ॥३५॥

हील० **लब्धि०** । लब्ध्या गौतमं अनुकुर्वता । पुनर्वज्रस्वाम्यादिभिः सादृश्यं बिभ्रतामुना मम शासनश्रिया स्वामिना जातम् । इतीव तीर्थकृच्छासनश्रीरनृत्यत् ॥३५॥

हीसुं० [१]विश्वत्रयीश्रुतिपुटैकवतंसिकाना-मस्माकमेष समजायत [२]वासवेश्म ।
[2]गाम्भीर्यधीरिममुखाभिर[३]धः कृतेन्दु-श्रीभिश्च वल्गितमितीव गुणावलीभिः ॥३६॥

(१) त्रैलोक्यलोककर्णाद्वैतोत्तंसानाम् । (२) वासार्थसदनम् । (३) तिरस्कृतशशाङ्कलक्ष्मीभिः । "विदर्भपुत्रीश्रवणावतंसिका" इति नैषधे ॥३६॥

---

1. <u>लब्ध०</u> हीमु० । 2. <u>गम्भीर०</u> हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० **वि०** । निर्मलत्वेनाधःकृतचन्द्रश्रीभिर्गाम्भीर्यादिगुणश्रेणीभिरितीव वल्गितं-उल्लसितम् । इतीति किम् ?। यत्त्रिजगज्जनकर्णकर्णाभरणानामस्माकं **हीरकुमारः** वासगृहं जातः ॥★३६॥

हीसुं० **[1]आजन्म [2]यद्विधुरिवैष उदेति कीर्त्ति-ज्योत्स्नाः कि[3]रन्कुवलयैकविकाशकारी ।**
अस्मादृशैष्कि(: कि)[4]मयशोऽञ्जन[5]मादधानैः [6]किञ्चित्प्रकाशितनिशान्तद-
शान्तदीप्रैः ॥३७॥

[1]भास्वन्मयूखविजिगि(गी)षुयदङ्गजात-नैसर्गिककाङ्गभवभास्वदभीशु(षु)जालैः ।
[2]तत्कालम[3]ल्पतमतैलदशैरिवोप-दीपैरितीव समजायत [4]दीप्तिदुस्थैः ॥३८॥ युग्मम् ॥

(१) जन्म मर्यादीकृत्य । (२) यद्यस्मात्कारणात् । (३) विस्तारयन्भूमण्डलस्य कैरवस्य च विकाशं प्रतिबोधं विकचतां च करोतीत्येवंशीलः । (४) अपकीर्त्तिः तुल्यश्यामत्वात् कज्जलम् । (५) बिभ्रद्भिः, उद्गिरद्भिः । (६) स्तोकमिवोद्योतितो निशायाः प्रान्तो यैस्तथा दशाऽवस्था वर्त्तिश्च तस्यान्ते दीपनशीलैः ॥३७॥

(१) सूर्यकिरणान्जेतुमिच्छुभिः <u>नाथीसुतस्य</u> स्वाभाविककायोद्भूतदीप्यमानकिरणनिकरैः । (२) तस्मिन्समये । (३) स्तोकीभूततैलवर्त्तिभिः । (४) विच्छायैः ॥३८॥

हील० **आ० भा०** । तस्मिन्नेव समये अल्पतैलवर्त्तिभिरिव सूर्यकिरणजित्वरा यस्याः पुत्रस्य सहजं शरीरादुत्पन्ना दीप्यमाना येऽभीषवस्तेषां जालैः कृत्वा समीपदीपैः कान्तिदरिद्रैर्जातम् । यतो जन्मसमयादारभ्य कीर्त्तिचन्द्रिकाः किरन्पुनः कुवलये पृथ्वीमण्डले कमलानां चाद्वैतं विकाशकृच्चन्द्र इव एषः प्रादुर्भवति । अतः अपयशतुल्याञ्जनवद्भिः । पुनष्कि(: कि)ञ्चित्प्रकाशितगृहान्तैः अवस्थाया वर्त्तेश्च प्रान्ते दीप्रैरस्मादृशैष्कि(: कि)म् ॥३७-३८॥

हीसुं० **[1]स्वःकूलिनीजलविलोचनक्लृप्तकेलिः [2]पाटच्चरो वि[3]कचवारिजसौरभाणाम् ।**
[4]उत्फुल्लवल्लिनवनाटकसूत्रधार-स्तं प्रेक्षितुं किमु ववौ पवनोऽनुकूलः ॥३९॥

(१) गगनगङ्गासलिलोत्तरङ्गीकरणे कलितो विलासो येनेति शीतलः । (२) तस्करः । (३) स्मितपद्मपरिमलानाम् । एतेन सुरभिः । (४) विकसितलतानां नवीननृत्यस्य ताण्डवप्रारम्भकर्ता । एतेन मन्दत्वम् ॥३९॥

हील० **स्वः०** । सुखस्पर्शः पवनो वाति स्म । किंभूतः पवनः ? । गङ्गाजलविलोलने रचितक्रीडाविलासः । पुनः स्मेराम्भोरुहपरिमलानां तस्करः । पुनर्विकसितलतानां नाटके सूचकस्ताण्डवकारकः ॥३९॥

हीसुं० **आसीदसौ कलियुगे [1]युगबाहुरस्मि-न्नर्हन्निवा[2]तिशयितातिशयाश्रितत्वात् ।**
[3]एतस्य जन्मनि जिनाधिपतेरिवान्तः-प्रीतेरितीव दिवि [4]दुन्दुभयः [5]प्रणेदुः ॥४०॥

(१) युगवद्युगन्धरवद्बाहू यस्य । (२) स्फूर्त्ति प्राप्तैर्महिमविशेषैराश्रितत्वेन । (३) <u>हीरकुमारस्य</u> । (४) मदनभेर्यः । (५) दन्ध्वनन्ति स्म ॥४०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आ० । एतज्जन्मनि गगने मदनभेर्यः वाद्यन्ति । उत्प्रेक्ष्यते । इति अन्तः स्वस्वान्ते प्रीतितः । इतीति किम् ?। धूसरप्रमाणभुजः असौ पञ्चमारकेऽर्हन्निव अतिशयं प्राप्तैरतिशयैराश्रितो भविष्यति किमितीव ॥४०॥

हीसुं० [१]एकांशवानपि [२]कलौ [३]शिशुनामुनाह- [४]मङ्गैश्चतुर्भि[५]रुद[1]यीह पुरा[६] भवामि ।
धर्म्मेण पल्लवितमन्तरितीव जाते विश्वासुमत्प्रमददायितदङ्गजाते ॥४१॥

इति तज्जन्ममाहात्म्यम् ॥

(१) चतुर्थांशस्य चतुर्थांशो विद्यते यस्य । (२) कलियुगे । (३) कुमारेण । (४) सम्पूर्णावयवैः । (५) स्फूर्त्तिमान् । (६) भविष्यामि । "यावत्पुरानिपातयोर्योगे भविष्यति काले वर्त्तमानाः" । "पूरेदमूर्ध्वं भवतीति वेधसा" इति नैषधे दृष्टम् ॥४१॥

हील० एकां० । विश्वस्यासुमतां प्राणिनां हर्षदायिनि तस्याः अङ्गजे जाते सति । इतीव कारणाद्धर्मेण अन्तश्चित्ते पल्लवितम् । इतीति किम् ?। यतोऽहं कलौ एकांशमात्रोऽपि अमुना शिशुना कृत्वा चतुरवयवैरुदयी पुरा भवामि । भविष्यामीत्यर्थः । "यावत्पुरा योगे वर्त्तमानाया भविष्यदर्थः" ॥४१॥

हील०→एतद्गुणाभिनवगानविधानपूर्व-प्रारब्धताण्डवतरङ्गिरसाङ्गरङ्गः ।
प्रारप्स्यते विबुधराजसमाजरङ्गेऽस्माभिर्मुदेति दिवि किं ननृतेऽप्सरोभिः ॥४२॥←

इति जन्ममाहात्म्यम् ॥

एत० । दिवि स्वर्गे अप्सरोभिः । किम् ?। इति कारणादेव नर्तितम् । इति इति किम् ? अस्माभिर्देवाङ्गनाभिः । देवेन्द्रसमाज एव रङ्गो नाट्यस्थानं तत्र एतद्गुणानामभिनवगानस्य विधानं पूर्वं यस्मिन्तादृशं प्रारब्धं यत्ताण्डवं तस्य तत्र वा तरङ्गिणो ये शृङ्गारादिरसास्त एव अङ्गं शरीरं यस्य तादृशो रङ्गः प्रारप्स्यते उपक्रम्यते ॥४२॥

हीसुं० प्रह्लादनाह्वनगरं [१]पुनरप्यमुष्य [२]मूर्त्त्या पवित्रयितुमन्त[३]रिवेहमानः ।
[४]श्रीसोमसुन्दरयतिक्षितिशीतकान्ति-र्जन्मापरं [५]स्वयमसौ [६]ग्रहयांबभूव ॥४२॥

(१) द्वितीयवारम् । (२) हीरकुमारकायेन । (३) चित्ते काङ्क्षन्निव । (४) सोमसुन्दरसूरीन्द्रः । (५) साक्षादेव । (६) जग्राह ॥४२॥

हील० प्रह्ला० । श्रीसोमसुन्दरनामा यतीनां मध्ये क्षितेश्चन्द्रः राजा । उत्प्रेक्ष्यते । अपरं जन्मादद । उत्प्रेक्ष्यते । प्रह्लादननगरं पुनरपि अमुष्य कुमारस्य शरीरेण पवित्रीकर्त्तुं अन्तश्चिते वाञ्छन्निव ॥४३॥

हीसुं० चक्रस्य चक्रिवदुदी(दि)त्वरदीप्रदीप्ति-र्दण्डौघचण्डिमविखण्डितचण्डभासः ।
[२]इभ्यः [३]स्वभृत्यजनराजिभिरु[४]त्सुकाभिः [५]संवर्ध्यते स्म [६]जननेन [७]तनूभवस्य ॥४३॥

(१) उदयनशीला दीप्यमाना कान्तय एव सरलतया निर्गमनाद्दण्डा इव दण्डास्तेषां निकरस्तस्य

1. ०यीव हीमु० । →← एतदन्तर्गतः पाठो हीसुंप्रतौ नास्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चण्डता तया विशेषेण परिभूतः सूर्यो येन । चक्रवर्त्त्यायुधविशेषस्य । (२) कुंराख्यः । (३) तदीयसेवकलोकपङ्क्तिभिः । (४) उत्कण्ठिताभिः । (५) वर्द्धितः । (६) जन्मना । (७) पुत्रस्य ॥४३॥

हील० चक्र० । उत्सुकाभिः स्वसेवकश्रेणिभिः कुंराव्यवहारी पुत्रजन्मना वर्द्धाप्यते स्म । यथा चक्रस्योत्पत्या चक्री वर्द्धाप्यते । किंभूतस्य सूनोश्चक्रस्य च ?। उदयनशीला दीपनशीला या दीप्तयस्तासां यः प्रसरसमूहस्तस्य चण्डिमभिरुग्रताभिर्विखण्डितश्चण्डभाः सूर्यो येन तस्य ॥४४॥

हीसुं० सूनो[१]र्जनेरुप[२]नतेरिव [३]सेवधीना-[४]मुद्गत्वरा[५]न्स्वजनवक्त्रसुधाकरेभ्यः ।
वर्णान्स्व[६]कर्णपुटकेन [७]सुधायमाना-न्पीत्वा[८] तदा प्रमुमुदे हृदये महेभ्यः ॥४४॥

(१) पुत्रजन्मनः । (२) आगमनमिव । (३) निधीनाम् । (४) प्रकटनशीलान् । (५) बन्धुजनवदनचन्द्रेभ्यः । (६) श्रवणपर्णेन । (७) अमृतमिवाचरतः । (८) सादरं श्रुत्वा । ॥४४॥

हील० सूनो० । स्वजनाननचन्द्रेभ्यः निसृतान् सुधासमानान् पुत्रजन्मनः वर्णान्, कर्ण एव पुटकः-पत्रभाजनं, तेन सादरं श्रुत्वा तस्मिन्समये महेभ्यः जहर्ष । कस्या इव ? । उपनतेरिव । यथा सेवधीनां नवनिधानानां स्वर्णरत्नमाणिक्यानामुपनतेरानमनस्य वर्णान् श्रुत्वा कश्चित्पुमान्मोदते ॥४५॥

हीसु०- सूनोर्जनिं [१]निगदताम[२]नुगव्रजाना-मासी[३]ददेयमिह तस्य [४]किरीटमेव ।
[५]भूभर्त्तृभावककुदं [६]विशदातपत्रं धात्रीपतेरिव मुदं दधतो [७]हृदन्तः ॥४५॥

(१) कथयताम् । (२) सेवकनिकराणाम् । (३) दातुमयोग्यम् । (४) मुकुट एव । (५) राजत्व चिह्नम् ।" नृपतिककुदं दत्वा यूने सितातपवारणम्" इति रघुवंशे । (६) श्वेतच्छत्रम् । (७) हृदयमध्ये ॥४५॥

हील० सूनो० । पुत्रजन्म कथयतां सेवकगणानां अदेयं तस्य कुंरेभ्यस्य मुकुटं आसीत् । यथा पृथ्वीपते राजचिह्नं छत्रं दातुमनर्हं स्यात् ॥४६॥

हीसुं० [१]लक्ष्मीवताम[२]धिपतेर[३]नुजीविवृन्दैः [४]पुत्रप्रसूतिममितं [५]मधु निर्दि[६]शद्भिः ।
पाणिः [७]प्रदेशनविधौ ददृशेऽस्य [८]पञ्चशाखोऽपि लेख[९]शिखरीव सह[१०]स्त्रशाखः ॥४६॥[1]

(१) श्रीमताम् । (२) व्यवहारिणां मध्ये अधिपतिरिवाधिपतिर्मुख्य इत्यर्थः । (३) अनुचरनिकरैः । (४) नन्दनजन्म । (५) प्रमाणरहितं मधु माध्वीकम् । "अमितं मधु तत्कथा ममे" ति नैषधे । (६) कथयद्भिः । (७) दानप्रकारे । (८) पञ्चमिताः शिखा अङ्गुलयश्च । (९) कल्पतरुः । (१०) सहस्त्रसङ्ख्या शाखा यत्र ॥४६॥

---

1. इति पुत्रवर्धापनि[का]-दानादि हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० **लक्ष्मी०।** धनिनां नायकस्य अस्य **कुंराख्यस्य** पञ्चैव शाखा अङ्गुलयो यस्य तादृशो हस्तः । पुत्रप्रसवलक्षणं प्रचुरं मधु कथयद्भिः सेवकसमूहैर्दानसमये देवतरुरिव सहस्रं शाखा यस्य तादृशो ददृशे-दृष्टः ॥४७॥

हीसुं० **[१]आसाद्य [२]तत्प्रसववेश्म समं [३]सगोत्रैः सूनो[४]रतृप्ति स [५]पिबन्वदनारविन्दम् ।**
[६]अद्वैतसम्मदपरम्परया[७]लिलिङ्गे [८]लक्ष्म्या पुमानिव पचेलिमपुण्यशाली ॥४७॥

(१) प्राप्य । (२) तस्या नाथीदेव्याः सूतिकागृहम् । (३) स्वजनैः । (४) न विद्यते तृप्तिः सौहित्यमत्यादरतया यत्र । (५) सादरं पश्यन् । (६) असाधारणप्रमोदपरम्परया । (७) आश्लिष्टः । (८) परिपाकं प्राप्तेन सुकृतेन शोभमानः पुमान् यथा श्रिया आश्रीयते ॥४७॥

हील० **आसा०** । तस्य पुत्रस्य प्रसववेश्म सस्वजनैः सह प्राप्य । स अतृप्ति यथा स्यात्तथा सूनोः पुत्रस्य मुखकमलं सादरमवलोकयन् । न विद्यते द्वैतं-युगलं येषां तादृशानां असाधारणानां प्रमोदानां परम्परया आलिङ्गितः । यथा परिपाकप्राप्तेन उदयावलिकायामागतेन पुण्येन शालते, तादृशः पुरुषः लक्ष्म्या आश्रीयते ॥४८॥

हीसुं० **[१]तस्याङ्गजास्यशशिदर्शनोऽम्बुराशे-[२]र्वारामिवोल्लसदमन्दमुदामियत्ताम् ।**
[३]हृत्सद्मसूत्रितजगत्त्रयविस्तरापि [४]विज्ञावली प्रभुरभून्न तदा प्रमातुम् ॥४८॥

(१) स्वसुतवदनचन्द्रावलोकनात् । (२) समुद्रस्य जलानामिव प्रकटीभवन्तीनाममेयानां मुदां प्रमदानां इयत्परिमाणत्वं एतावन्मात्रताम् । (३) मनोमन्दिरे गोचरीकृतस्त्रैलोक्यप्रपञ्चो यया त्रिभुवनस्वरूपवेदनविदुरापि । (४) निपुणश्रेणिः ॥४८॥

हील० **तस्या०।** पुत्रस्य आस्यमेव चन्द्रस्तद्दर्शनतस्तस्य **कुंरेभ्यस्य** उल्लसन्तीनां प्रचुराणां मुदां हर्षाणां इयत्तां प्रमातुं हृदेव सद्मनि गृहे सूत्रितः विज्ञातः जगत्त्रयस्य विस्तरो यया तादृशी पण्डितश्रेणी प्रभुः समर्था नाभूत् । यथा चन्द्रदर्शनतः समुद्रस्य वारां इयत्ता न कोऽपि वक्ति ॥४९॥

हीसुं० **[१]आस्वादयन्ल[२]वणिमामृतमे[३]तदास्या-वश्यायभासि [४]वसतिं [५]गवि चानुतिष्ठन् ।**
पश्यन्सुतं [६]द्युसदिवाजनि [७]निर्निमेष-नेत्रारविन्दयुगलः स महेभ्यकुम्भी ॥४९॥

(१) पिबन् । (२) लावण्यसुधारसम् । (३) नन्दनवदनचन्द्रे । (४) स्थितिम् । (५) भुवि दिवि च । (६) देवः । (७) मेषोन्मेषरहितनयनकमलः ॥४९॥

हील० **आस्वा०।** स इभ्यहस्ती सुतं पश्यन् सन् स्वर्वासीव मेषोन्मेषरहितनयनकमलयुगलो जातः । किं कुर्वन् ?। एतस्यास्यमेवावश्यायस्य तुहिनस्य भाः कान्तिर्यस्य तस्मिंश्चन्द्रे लावण्यसुधां पिबन् । पुनर्गवि भूमौ स्वर्गे वा वासं कुर्वन् । इदं देवलक्षणम् ॥५०॥

हीसुं० **[१]पूर्वाद्रिपाटलशिलावलये शशीव ली[२]लामराल इव को[३]कनदच्छदे वा ।**
[४]पारीन्द्रपोत इव [५]गैरिकशृङ्गिशृङ्गे [६]तत्पाणिपल्लवतले विललास बालः ॥५०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) उदयाचलरक्तोपलतले । (२) क्रीडाहंसः । (३) रक्तोत्पले । (४) सिंहशिशुः । (५) गैरिकपर्वतशिखरे । (६) कुंराहस्तमध्ये । (७) शुशुभे ॥५०॥

हील० **पूर्वा०**। तस्य कुंरेभ्यस्य पाणिपल्लवतले स बालः विलसति स्म । क इव ?। उदा(दया)चललोहितोपले चन्द्र इव । रक्तोत्पलपर्णे क्रीडाहंस इव । धातुमये शृङ्गे सिंहबाल इव ॥५१॥

हीसुं० **जन्मोत्सवं वि[१]दधता तनयस्य तेन [२]कामाधिकं [३]प्रदिशता[४]र्थिजनेऽ[५]र्थजातम् ।**
[६]श्रीदस्त[७]दाव[८]गणनां [९]गमितो [१०]निकेतं [११]कैलाशमूर्ध्नि विदधे किमप[१२]त्रपिष्णुः ॥५१॥

(१) कुर्वता । (२) अभिलषितादपि अतिशयिताभ्यधिकम् । (३) ददता । (४) याचकलोकम् । (५) धननिवहम् । (६) धनदः । (७) तस्मिन् पुत्रजननमहसमये । (८) अवहेलनाम् । (९) प्रापितः । (१०) स्थितिम् । (११) कैलाशशिखरे । (१२) लज्जाशीलः ॥५१॥

हील० **जन्मो०** । तदा तस्मिन्समये सुतजन्मोत्सवं कुर्वता पुनरर्थिनामभिलि(ल)षिताधिकं द्रव्यसमूहं ददता तेनेभ्येनावहेलितः धनदः लज्जाशीलः सन् कैलाशशिखरे गृहं कृतवान् ॥५२॥

हीसुं० **सूनो[१]र्जनेर्म[२]हमसौ [३]विभवानुरूपं श्री[४]मन्महेभ्यमघवा घ[५]टयांबभूव ।**
[६]सञ्जातजातविधिरप्य[७]दसीयसूनु-[८]र्निर्द्धूतदर्प्पण इव [९]स्फुरयांबभूव ॥५२॥

(१) पुत्रस्य जन्मनः । (२) उत्सवम् । (३) स्वद्रव्यसदृशम् । (४) व्यवहारिशक्रः (५) चकार । (६) सम्पन्नजन्मसंस्कारादिविधिः । (७) कुंराकुमारः । (८) शाणोत्तेजितात्मदर्श इव । (९) दीप्यते स्म ॥५२॥

हील० **सूनो०**। असौ इभ्येन्द्रः स्वद्रव्यानुसारेण पुत्रजन्मोत्सवं रचयामास । जातजन्मसंस्कारोऽस्य सुतोऽपि शाणोत्तेजितात्मदर्श इव चकासामास ॥५३॥

हीसुं० **अर्थिव्रजेन[१] मिलितुं [२]स्वककामुकेन [३]सङ्केतसौधमिव [४]वारिधिनन्दनायाः ।**
[५]गीतिप्रतिध्वनितनर्त्तितकेलिकेकि षष्ठीदिने[६] रजनिजागरणं प्रणीय ॥५३॥

[१]पातालभूतलसुरालयलोककोटी-कोटीरहीर इव बालक एष भावी ।
[२]उन्नीय [३]नीतिकृतिनान्तरितीव पित्रा सत्रा [४]स्वगोत्रिभिरकारि स हीरनामा ॥५४॥
युग्मम्॥ [1]इति जन्म ॥

(१) याचकलोकेन, साकं सङ्गं कर्त्तुम् । (२) निजाभिलाषुकेन । (३) सङ्केतगृहम् । (४) लक्ष्म्याः । (५) गानप्रतिशब्देन नृत्यकलिता जाता क्रीडामयूरा यत्र । (६) षष्ठीरात्रिजागरणम् ॥५३॥

---

1. इति जन्मोत्सव-नामदानादि हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) त्रिभुवनजनकोटिमुकुटे हीरक इवैष भविष्यति । (२) विचार्य । (३) न्याये चतुरेण । (४) स्वस्वजनैः समम् ॥५४॥

हील० पातालपृथ्वीस्वर्गवासिकोटीनां मुकुटेषु नगीनो इव एव बालो भावी इति अन्तश्चिते विचार्य स्वस्वजनैः सत्रा-समं पित्रा स बालः **हीरनामा** कृतः । किंकृत्वा ?। पद्यां गीतानां प्रतिशब्दैर्नर्त्तिताः क्रीडार्थं मयूरा यत्र तादृशं रात्रिजागरणं निष्पाद्य । उत्प्रेक्ष्यते । लक्ष्मीकामयिता याचकचक्रेण समं अब्धिपुत्र्याः मिलितुं सङ्केतः । अमुकस्मिन् त्वया समेतव्यं मयापि तत्र समागंस्यते इति यूनो युवत्याश्च सङ्केतस्तस्य गृहम् ॥५४-५५॥

हीसुं० [१]पूर्वापराम्बुनिधि[1]बन्धुरमेखलाया भूमेः सभर्त्तुरु[२]चितैः सम[३]भूषि [४]चिह्नैः ।
[५]दानानुकम्पनसभाजननीरसिक्त-प्राचीनपुण्यविटपिप्रसवैरिवैतैः ॥५५॥

(१) प्राची-प्रती[ची]सागर एव सुन्दरा काञ्ची यस्याः । (२) योग्यैः । (३) अलङ्कृतः। (४) सामुद्रिकलक्षणैः । (५) दान-दया-पूजारूपैर्जलैरभिषिक्तस्य प्राक्तनजन्मप्रणीत-पुण्यद्रुमस्य पुष्पैः ॥५५॥

हील० पूर्वा-प्राची अपरा-प्रतीची सृष्टिभ्रमणेन पूर्वस्या दक्षिणां गमनाद्दक्षिणा गृहीता पश्चिमाया उत्तरस्यां इति उत्तरा गृहीता । तासां जलधय एव रम्या मेखला यस्यास्तादृश्या भूमेर्भर्तुश्चक्रिणः योग्यैश्चिह्नैरलङ्कृतः । उत्प्रेक्ष्यते । दान दया पूजारूपैर्नीरैः सिक्तः प्राक्तनपुण्यवृक्षस्तस्य पुष्पैः । "प्रसवश्च मणीचक" मिति हैम्याम् ॥५६॥

हीसुं० स[१]ज्ञाति लोचनचकोरनिपीयमानै र्ला[२]वण्यचञ्चदमृतैरुप[३]चीयमानैः ।
वृद्धिं दधार [४]पृथुकोऽ[५]प्रतिमैः [६]प्रतीकै-[७]र्द्वैतीयकेन्दुरिव सान्द्रकलाकलापैः ॥५६॥

(१) स्वजननयनचकोरकैरास्वाद्यमानैः । (२) लावण्यपुण्यसुधारसैः । (३) पुष्टिं प्राप्नुवद्भिः । (४) बालः । (५) असाधारणैः । (६) अवयवैः । (७) श्वेतपक्षद्वितीयासम्बन्धिचन्द्र इव ॥५६॥

हील० **सज्ञा०**। स्वजनानां नेत्राण्येव चकोरास्तैरतृप्तमालोक्यमानैः । पुनर्लावण्यान्येव चञ्चन्ति अमृतानि तैः पुष्टिं नीयमानैरनुपमावयवैः पुष्टिं धत्ते स्म । यथा द्वितीयेन्दुः कलाभिरेधते ॥५७॥

हीसुं० [१]पित्रोर्मनोरथगणान्कु[२]टजावनीजा-[३]न्प्रावृट्पयोद इव [४]पल्लवयन्कुमारः ।
उत्सङ्गयोरुदलसत्कलयन्विलासं [५]फुल्लल्लता[२]विटपयोरिव के[६]लिकीरः ॥[3]५७॥
[१]आनन्दमेदुरितमानसपद्मचक्षु-रङ्कान्तरं परिचरन्स[२] महेभ्यसूनुः ।
[३]अभ्राभ्रिकान्तरमिवा[४]र्भकभानुमाली कस्तूरिकामृगशिशु[५]र्विपिनान्तरं वा[3]॥५८॥युगम्म्॥

1. धिमञ्जुल हीमु० । 2. ०फलदयोरिव हीमु० । 3. हीसुंप्रतो ५७-५८ इति श्लोकद्वयं युग्मतया निर्दिष्टम् । हीलप्रतौ तु ५८-५९ इति श्लोकद्वयं युग्मतयोल्लिखितम् । तत्र च तथैव च लघुटीकापि ५८-५९ पद्ययोः सहैव दृश्यते । अथ ५९तमं पद्यं हीमु० नास्ति । किन्तु, बृहट्टीकायां (हीमु०) ५९तमपद्यस्य टीका विद्यते, इति ज्ञेयम् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) मातृतातयोः । (२) नीपतरून् । (३) वर्षाकालसम्बन्धी मेघ इव । (४) क्रीडां कुर्वन् । (५) विकचवल्लीद्रुमयोः । (६) क्रीडाशुकः ॥५७॥

(१) हर्षेण पुष्टीभूतमनसां कान्तानामुत्सङ्गान्तरम् । (२) सेवमानो हीरकुमारः । (३) मेघवार्दलिकामध्यम् । (४) बालसूर्यः । (५) वनान्तरम् ॥५८॥

हील० यथा नीपाः मेघः पल्लवयति तथा मनोरथन्पल्लवयन्बालः मातृपित्रोः क्रोडयोः क्रीडां कुर्वन् उल्लसति स्म । यथा फुल्लतोर्वल्लीव तयोरुत्सङ्गे क्रीडार्थं शुकः उल्लसति ॥★५८॥

हीसु० [१]विन्ध्योपलान्तरमिव [२]द्विरदेन्द्रबाल[३]श्चूतद्रुमान्तरमिवा[४]र्भककाकपुष्टः ।
[५]स्मेराम्बुजान्तरमिव [६]भ्रमर[७]स्तरङ्गोत्सङ्गान्तरं च [८]कलहंस इवाबभासे ॥५९॥

(१) विन्ध्याचलशिलान्तरम् । (२) करिकलभः । (३) सहकारवृक्षान्तरम् । (४) कोकिलबालः । (५) विकचकमलान्तरम् । (६) भृङ्गः । (७) मानससरसः परसरसो वा कल्लोलान्तरम् । (८) हंसशिशुः ॥५९॥

हील० आनन्देन पुष्टं मानसं यासां तादृशामम्बुजाक्षीणां क्रोडान्तरं भजन् स बालो भाति स्म । यथा डिम्भद्युमणिर्मेघस्य वर्द्दलिकान्तरं भजन् शोभते । कस्तूरीहरिणो वनान्तरमिव । गजशिशु-र्जलबालकशिलान्तरमिव । बालकोकिलो माकन्दान्तरमिव । भ्रमरः विकसित्कमलान्तरमिव । हंसः तरङ्गाना(णा)मुत्सङ्गान्तरं भजन्भाति ॥५९-६०॥

हीसुं० [१]स्व[1]र्णाद्रिशृङ्ग इव [२]चन्द्रिकयाऽनु[३]विद्धः कायः शिशोर्विक[४]चगन्धफली विलासी ।
[५]सञ्चारिचन्द्रमलयद्रुमसान्द्रपङ्कैर्लिप्तः कयाचन चकोरदृशा चकासे ॥६०॥

(१) मेरुशिखरमिव । (२) चन्द्रज्योत्स्नया । (३) व्याप्तः । (४) विकसितचम्पककलितः । "कृतां विधोर्गन्धफलीबलिश्रिय" मिति नैषधे । (५) सञ्चरणशीलं मध्ये मिश्रीभूतं कर्पूरं यत्र एवंविधचन्दनतरोः स्निग्धद्रवैः ॥६०॥

हील० **स्व०**। विकसिता या गन्धफलं(ली) चम्पकपादपस्तद्वद्विलसतीत्येवंशीलो, गौराङ्ग इत्यर्थः । शिशुकायः कयाचित्स्त्रिया प्रसरणशीलो यत्र तादृशैः चन्दनद्रवैर्लिप्तः रेजे । यता चन्द्रज्योत्स्नया व्याप्तो मेरुशृङ्गः शोभते । 'शृङ्ग'शब्दः पुन्नपुंसके ॥६१॥

हीसुं० [१]नीलांशुकाकलितबालककामपाल-मूर्त्तेरिवोपमितिमानयितुं कुमारे ।
काचित्कदाचन [२]कुरङ्गमदाङ्गरागं [३]कौतुहले[न] [४]कुरुविन्ददती [५]ततान ॥६१॥

(१) विनीलवसनसंयुतकुमारावस्थालङ्कृतबलभद्रस्य कायस्य उपमानं स्वाभाविकसुवर्णगौरे कुमारे । (२) कस्तुरिकाया विलेपनम् । (३) कुतुकात् । (४) पद्मरागमणयस्तद्वद्दन्ता यस्याः । "को दर्शयेत्स्वां कुरुविन्दमालाम्", "चित्ते कुरुष्व कुरुविन्दसकान्तदन्ति" "अग्रान्तशुद्धशुभ्रवृषभवराहेभ्यश्चे" ति दन्तस्य दद्वा इति नैषधीयं पदद्वयं चकार ।

1. स्वर्णेऽद्रि० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(५) कृतवती ॥६१॥

हील० **नीलां०**। काचित् कुरुविन्दाः पद्मरागमणयस्तद्वद्दन्ता यस्याः सा कुरुविन्ददती कस्तूरीविलेपनं चक्रे । उत्प्रेक्ष्यते । नीलवस्त्रावृतस्य शिशुबलभद्रस्य शरीरस्योपमानं कुमारे आनयितुमिव ॥६२॥

हीसुं० **काचिच्च[१]कोरनयना [२]व्यवहारिसूनो-र्वक्त्राम्बुजं विकचनेत्रपुटैर्निपीय ।**
[३]चेतस्त[४]मीदयितनिर्म्मलितात्मदर्श-स्मेराब्जदर्शनविधौ [५]शिथिलीचकार ॥६२॥

(१) चकोराक्षी । (२) हीरकुमारस्य (३) मनः । (४) चन्द्रस्य, शाणोत्तेजितदर्पणस्य, विकचकमलस्य विलोकनप्रकारे । (५) मन्दीचकार ॥६२॥

हील० काचिच्चकोरनेत्रा स्त्री इभ्यपुत्रस्याननाब्जं विकस्वरनेत्रपत्रपुटैर्दृष्ट्वा स्वकीयं चित्तं चन्द्रस्यात्मदर्शस्य विकसितजलजस्य दर्शनकरणे मन्दीकरोति स्म ॥६३॥

हीसुं० **एनं [१]हिरण्यमणिभूषणभूषिताङ्ग-मिभ्याङ्गजं नयनयो[२]रतिथिं प्रणीय ।**
[३]सोऽयं [४]स्मरो [५]हरहुताशहतोऽवतीर्ण [६]एतन्मिषेण [७]समशायिकदाचिदेवम् ॥६३॥

(१) स्वर्णरत्नालङ्कारैरलङ्कृतकायम् । (२) लोचनयोः प्राघुणं कृत्वा-दृष्ट्वेत्यर्थः (३) प्राक्श्रुतः । (४) कामः । (५) त्रिलोचनभाललोचनानलज्वालितः अत एवावतीर्णः । (६) हीरकुमाररूपेण । (७) संशयः कृतः ॥६३॥

हील० एनं०। सुवर्णरत्नाभरणशोभिताङ्गं एनं सुतं नेत्रगोचरं कृत्वा कयाचित् एवं समशायि-संशयश्चक्रे । एवमिति किम् ?। हराग्निज्वालितः । पुनरेतद्व्याजादवतीर्णोऽयं स्मरः ॥६४॥

हीसुं० **काचिद्दृशा [१]विकचचम्पकसूनशालि-मालां [२]विलम्बितवती [३]शिशुकण्ठपीठे ।**
तस्मिं[४]श्चिकीर्षुरिव [५]कौतुकिनाकिमुक्त-प्रालम्बिकाङ्किनवकल्पतरूपमानम् ॥६४॥

(१) स्मितचम्पकपुष्पाकलितहारम् । (२) स्थापितवती । (३) हीरकुमारकण्ठे । (४) कुमारैः कर्त्तुमिच्छरिव । (५) कुतूहलाकलितदेवेन स्थापितकनकझुम्बनकेन संयुत-कल्पवृक्षस्योपमानम् ॥६४॥

हील० काचित्स्त्री विकचचम्पकपुष्पैः शालते । तादृशीं मालां शिशुकण्ठे स्थापयति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । कौतुकिना नाकिना मुक्ता प्रालम्बिका झुम्बनकं अङ्के अस्यास्ति तादृशस्य नूतनकल्पतरोरूपमानं तस्मिन् बाले कर्त्तुमिच्छुरिव ॥६५॥

हीसुं० **चूडामणि[१]स्त्रिभुवनस्य यदेष भावी चूडामणिं किमिति कापि [२]दधार मूर्ध्नि ।**
सूरिश्रिया[३]स्तिलकवद्भविता कुमारो भालेऽपरास्य [1]किमतस्तिलकं चकार ॥६५॥

(१) त्रैलोक्यशिखारत्नम् । (२) धृतवती । (३) आचार्यलक्ष्म्यास्तिलकम् ॥६५॥

हील० **चूडा०** । काचिद्धात्री मूर्ध्नि किरीटं धृतवती अन्यास्य ललाटे तिलकम् । किम् ?। अतः कारणादेव रचयामास यतोऽसौ शिशुः सूरिलक्ष्म्यास्तिलकवद्भविष्यति इतीव ॥★६६॥

---

1. तिलकं किमतश्चकार हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० तत्कर्णयोर्म[१]णिविनिर्म्मितकर्णपूर-द्वन्द्वं [1]कयाचि[२]दवलम्बितमुद्दिदीपे ।
[३]नित्योदयः कथमभूस्त्वमिदं [४]मुखेन्दुं प्रष्टुं किमि[५]त्युपगतं शशिसूर्ययुग्मम् ॥६६॥

(१) अर्थात्श्वेत-पीतरत्नघटितकुण्डलयुगलम् । (२) कर्णयोर्दत्तम् । (३) नक्तंदिनमस्तरहितः । (४) कुमारवदनचन्द्रम् । (५) आगतम् ॥६६॥

हील० तत्क० । रत्नघटितकुण्डलयुगलं कयाचित्तस्याः(स्य) कर्णयो विषये विलम्बितं स्थापितं शुशुभे । उत्प्रेक्ष्यते । अस्य मुखचन्द्रं इति प्रष्टुं उपगतं समेतं शशिसूर्ययोर्युग्मम् । इतीति किम?। हे मुखेन्दो ! नित्यमुदयो यस्य तादृशः केन प्रकारेण सञ्जातस्तत्कारणमावयोर्वद । यथा आवामपि नित्योदयौ भवामः(वः) ॥*६७॥

हीसुं० ने[१]त्रामृताञ्जनमसौ जगतां यदस्या-नञ्जाक्षिणी किमिति काचन कज्जलेन ।
सर्वाङ्गसूत्रमिह [२]धास्यति येन तस्योरः[३]सूत्रिकां किमिति काचि[४]दुरस्यधत्त ॥६७॥

(१) नेत्राणाममृतस्याञ्जनमिव । (२) समग्राणि आचाराङ्गादिलक्षणाङ्गानि तदेव सूत्रं सिद्धान्त-मसौ हृदये धारयिष्यति । (३) मौक्तिककृतहारम् । (४) वक्षसि ॥६७॥

हील० नेत्रा० । काचन स्त्री अस्य नेत्रे आनञ्ज । किमितीव इति किम् ?। यदसौ जगन्नेत्राणाममृताञ्जनं भावी । पुनरिह हृदये आचाराङ्गादिभिरुपलक्षितं सूत्रं धारयिष्यति । किम् ?। इति कारणादेव तस्योरसि मुक्तालतां क्षिपति स्म ॥६८॥

हीसुं० [१]पादारविन्दयुगलोपरिलम्बिनीनां क्वाणै र[२]णज्झणितराजतकिङ्किणीनाम् ।
[३]वीङ्खाविशेषललितेन [४]मरालबाल-स्तम्बेरमाविव [५]विगायति यः कुमारः ॥६८॥

[2]इति धात्रीभिष्प(: प)रिपालनशृङ्गारकरणादि ।

(१) चरणकमलयुगलोपरिबद्धानाम् । (२) रणज्झणितशब्दं कुर्वद्रूप्यघुर्घुरिकाणाम् । (३) गमनातिशयविलासेन । (४) बालशब्दो लालाघण्टान्यायेन उभयत्र सम्बध्यते । ततो बालहंसं बालगजं वा । (५) अवगणयति जयतीति यावत् ॥६८॥

हील० पादारविन्दोपरिस्थानां रणज्झणितानां रूप्यकिङ्किणीनां शब्देन पुनर्गते विशेषलावण्येन हंसबालं बालगजं च । बालशब्दो घण्टालालान्यायेनोभयत्र सम्बध्यते । यः शिशुर्निन्दतीव ॥६७॥

हीसुं० [१]कुंराह्वयस्य हरति स्म मनो [२]मनोज्ञं [३]तन्मुन्मुनालपनमि[४]भ्यगभस्तिभर्तुः ।
[५]किञ्चिद्विजृम्भियुवभावनवोढबाला-नातिप्रगल्भकिलकिञ्चितवत्प्रियस्य ॥६९॥

(१) तत्पितुः । (२) मनोहरम् । (३) यत्तस्यमुन्मुनालपनम् । (४) व्यवहारिषु मध्ये तत्पुत्रप्रतापेन भास्कर इव भास्करस्य । (५) किमपि प्रकटीभवत्तारुण्यं यस्यास्तादृश्या नवपरिणीतकान्ताया नाधिकचातुर्यान्वितं किलकिञ्चितं विलासविशेषः ॥६९॥

---

1. कयाचन विलम्बि० हीमु० 2. इति धात्रीपरिपालन-शृङ्गारकरणम् हील०

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

हील० कुरा०। चेतोहरं तस्यास्पष्टभाषणं व्यवहारिषु भास्करस्य मनो हृतम् । यथा किञ्चित्प्रकटीभवन् युवभावो यस्यास्तादृशी नवोढा बाला तस्या नातिचातुर्यं किलकिञ्चितं विभ्रमविशेषः प्रियस्य मनो हरति ॥७०॥

हीसुं० **इक्ष्वाकुवंश इव [१]नाभिमहीमघोना [२]विश्वप्रशस्यवृषभाङ्कतनूभवेन ।**
[1]ओकेश इत्यु[३]दयवांस्तनयेन तेन मेने महेभ्यवृषभेन नि[४]जान्ववायः ॥७०॥

(१) नाभिराजेन । (२) त्रिभुवनश्लाघास्पदादिदेवनन्दनेन । (३) अभ्युदययुक्तः । (४) स्ववंशः ॥७०॥

हील० **इक्ष्वा०**। तेन सुतेन कृत्वा इभ्यपुङ्गवेन स्ववंश उदयवान् मेने । यथा विश्वे श्लाधनीयेन ऋषभदेवेन कृत्वा नाभीपृथ्वीन्द्रेण इक्ष्वाकुवंशः अभ्युदययुक्तोऽमानि ॥७१॥

हीसुं० **धात्र्यो[१]दितां प्रथमतः [२]पृथुकप्रकाण्डः कीरस्य[३] शाव इव [४]चारुमुवाच [५]वाचम् ।**
[६]तस्याः पुनः [७]समवलम्ब्य [८]कराङ्गुलीः स लीलायितं [९]वितनुते स्म गतौ
[१०]स्विकायाम् ॥७१॥

(१) उपमात्रा कथितम् । (२) कुमारमुख्यः । (३) शुकबालकाः । (४) मनोज्ञां (५) वाणीम् । (६) धात्र्याः । (७) आश्रित्य । (८) हस्ताङ्गुलीः । (९) आत्मीयगमने लीलया आचरितं चकार । लीलागतिमदर्शयत् । (१०) "हंसं तनौ संनिहितं चरन्तं मुनेर्मनोवृत्तिरिव स्विकायामि"ति नैषधे ॥७१॥

हील० **धात्र्यो०**। सोऽर्भक उपमात्रा प्रथममुच्चरितां वाणीं उवाच । यथा शुकशावकः प्रथमकथितां चार्व्वीं वाचं वदति । पुनः स कुमारस्तस्या धात्र्याः हस्तस्य तर्जन्यादिकाः अङ्गुलीर्गृहीत्वा आत्मीयायां गतौ गमने लीलयाचरितं चारुचङ्क्रमणविलासं तनुते स्म । लीलागमनमदर्शयत् इत्यर्थः ॥७२॥

हीसुं० **[१]चूलाक्रियामहमथा[२]ङ्गभवस्य तस्य सन्तन्वता पुलककोरकितने[३] तेन ।**
[४]श्रीदायितं [५]प्रदिशता [६]मणिहेमजात-मा[७]ढ्यायितं समुदयेन[८]च मार्गणानाम् ॥७२॥

(१) शिखाकरणाद्याचारम् । (२) पुत्रस्य । (३) रोमाञ्चकञ्चुकितेन दानविद्यौ व्यवहारिणा । (४) धनदवदाचरितम् । (५) ददता । (६) रत्न-स्वर्णसमूहम् । (७) महेभ्यवदाचरितम् । (८) याचकनिकरेण ॥७२॥

हील० **चूला०** । रोमाञ्चकञ्चुकितेन चूलाक्रियोत्सवं कुर्वता । पुना रत्नादि ददता धनद इवाचरितम् । उत याचकव्यूहेन ईश्वरीभूतम् ॥७३॥

हीसुं० **[१]शावः [२]शुभैर[३]वयवैस्स[४]वितुः प्रयत्ना-द्वृद्धिं दधाव[५]नुदिनं स्वजनैरुपास्यः ।**
[६]भूमीभृतो [७]बहलनिर्झरतस्त[८]रङ्गैः सि[९]न्धुप्रवाह इव [१०]पत्रथा[2]भिरामः ॥७३॥

---

1. उत्केश हीमु० । 2. ०रथैर्निषेव्यः हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) हीरकुमारः । (२) श्लाघनीयैः । (३) अङ्गैः । (४) पितुः । (५) प्रतिदिवसम् । (६) पर्वतस्य । (७) जलपरिपूरितनिर्झरणतः । (८) कल्लोलैः । (९) नदीप्रवाह इव । (१०) पक्षिगणैर्मनोज्ञः ॥७३॥

हील० शा०। पितुर्लालनात् बालः पुष्टिमाप । यथाद्रेः प्रचुरनिर्झरप्रवेशात्तरङ्गैर्नदी वर्द्धते ॥*७४॥

हीसुं० [१]वाचस्पते[२]र्दिवि विधाय सुरान्वि[३]नेया[1]न् [४]जाने नरानपि [५]विधातुमुपेयुषः [2]क्ष्माम् । [६]वप्रा [७]व्यमोचि [८]पठितुं सविधे[९]द्विजस्य [१०]कस्यापि [११]वाङ्मयविदः स[१२]महं कुमारः ॥७४॥

(१) बृहस्पतेः । (२) स्वर्गे । (३) शिष्यान् । (४) अहं ग्रन्थकृद्विचारयामि । (५) मनुष्यानपि शिष्यान्कर्त्तुं भूमीमागतवतः । (६) पित्रा । (७) मुक्तः । (८) पठनाय । (९) ब्राह्मणस्य पार्श्वे । (१०) नाम्ना अनिर्दिष्टस्य । (११) शास्त्रज्ञस्य । (१२) समहोत्सवम् ॥७४॥

हील० वाच०। पित्रा स हीरः शास्त्रज्ञस्य ब्राह्मणस्य समीपे सोत्सवं यथा स्यात्तथा मुक्तः । उत्प्रेक्ष्यते । स्वर्गे देवान् शिष्यान् कृत्वा पृथ्व्यां नरानपि शिष्यीकर्त्तुमागतस्य बृहस्पतेर्निकटे मुक्त इव ॥*७५॥

हीसु० तस्या[१]र्भशक्र इव [२]चित्रशिखण्डिसूनो-[३]र्लब्ध्वोप[४]कण्ठम[५]शठस्स पठन्नकु[६]ण्ठम् । [७]पोतः [८]श्रुतिं स [९]विधिवल्लिपिसङ्ग्रहेण प्रेम्णा विवेश नगरीमिव [१०]गोपुरेण ॥७५॥

(१) बालेन्द्रस्य । "शैशवावधिगुरुर्गुरुरस्ये" ति नैषधे । (२) बृहस्पतेः । "विचित्रवाक्चित्र-शिखण्डि[3]नन्दन" इति नैषधे । (३) प्राप्य । (४) समीपम् । (५) सरलः । (६) सोत्साहम् । (७) हीरकुमारः । (८) शास्त्रम् । (९) यथोक्तप्रकारेण वर्णवाचनलिखनादि-प्रकारेण । (१०) प्रतोल्या ॥७५॥

हील० तस्य द्विजस्य समीपं लब्ध्वा स कुमारः अशठः सरलाशयः सन् अकुण्ठं तीक्ष्णं पठन् अक्षरशिक्षणेन शास्त्रं प्रविष्टः । यथा प्रतोल्या कश्चित्पुरीं विशति । यथा बालेन्द्रः बृहस्पतेरुपकण्ठं लब्ध्वा विज्ञः स्यात् । इन्द्रस्य बालत्वमध्ययनत्वं च नैषधे उक्तम् । यथा "शैशवावधिगुरुर्गुरुरस्ये"ति ॥७६॥

हीसुं० [१]छायां तनोरिव न लङ्घयतापि वाचं [२]प्रासादि तेन वि[३]नयाव[न]तेन [४]सूरिः । सर्वैरभावि [५]च गुरोः सफलैः प्रयत्नैस्तस्मिन्न[६]नूषरभुवीव [७]कृषीवलस्य ॥७६॥

(१) गुरोर्वाचं छायामिव नोल्लङ्घयता । (२) प्रसन्नीकृतः । (३) विनयनम्रेण । (४) कलाचार्यः । (५) गुरोः समस्तैः प्रयत्नैः हीरकुमारे सफलीबभूवे । (६) सुक्षेत्रक्षितौ । (७) कार्षुकस्य कृषिकारिणः ॥७६॥

हील० यथा कोऽपि छायां न लङ्घयति । तद्वद्गुरोर्वाचं न लङ्घयता तेन पुत्रेण विद्वान् प्रसन्नीकृतः । गुरोरप्युद्यमैः सफलैर्भूतम् । यथा कर्षणकारिणः प्रयासैः सर्वसस्यायां भूमौ सफलैर्भूयते ॥७७॥

---

1. ०यानुर्व्यां नरा० हीमु० । 2. किम् हीमु० । 3. सूनोः हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० तं साक्षिणं [१]प्रणयवान्स्वगुरुं [२]प्रणीय स्वल्पैर्दिनैः स [३]वहनैरिव [४]धीविशेषैः ।
संप्राप पारम[५]खिलागमसागरस्य साधुः समाधिभि[६]रिवानुपमै[७]र्भवस्य ॥७७॥

(१) स्नेहवान् । (२) कृत्वा । (३) यानपात्रैरिव । (४) बुद्धिविशिष्टगुणैः । (५) समस्तशास्त्रसमुद्रस्य । (६) असाधारणैर्ध्यानैः । (७) संसारस्य ॥७७॥

हील० तं स्वकीयं गुरुं साक्षिमात्रं कृत्वा स्नेहवान् स स्वप्रज्ञोत्कर्षैः समग्रशास्त्रस्य पारं प्राप । यथा प्रवहणैः समुद्रपारम् । पुनः साधुः योगैर्भवसमुद्रपारं प्राप्नोति तद्वत् ॥७८॥

हीसुं० [१]अध्याप्य तेन [२]विधिवत्सकलाः स विद्याः [३]प्रत्यर्प्यते स्म [४]गुरुणा [५]जनकस्य तस्य ।
[६]श्रीमान्मु[७]रारिरिव तेन [८]हिरण्यरत्न-कोटीर्वि[९]तीर्य [१०]सुतसूरिरपि [११]व्यधायि ॥७८॥

(१) पाठयित्वा । (२) यथोक्तप्रकारेण । (३) पश्चादर्पितः । (४) कलाचार्येण । (५) तातस्य । (६) लक्ष्मीवान् (७) कृष्ण इव । (८) स्वर्णमणीनां कोटीः । (९) दत्वा । (१०) कलाचार्योऽपि । (११) कृतः ॥७८॥

हील० अध्या०। तेन गुरुणा विद्याः पाठयित्वा तस्य पितुः स सुतः पश्चादर्पितः । अपि पुनस्तेन पित्रा दीनारकोटाकोटीर्दत्वा कविरपि कृष्ण इव लक्ष्मीपतिरकारि ॥७९॥

हीसुं० [१]चित्रामिवे[२]न्दुरन[३]वद्यतमां स विद्यां लब्ध्वा श्रिया [४]तदवधि [५]व्यरुचत्कुमारः ।
आसीद[६]सीममहिमाप्यनयाऽर्भकस्य [७]प्रोल्लेखितस्य [८]निकषेन(ण) मणे[९]स्त्विषेव ॥७९॥[1]

(१) चित्रानक्षत्रम् । (२) चन्द्रः । (३) प्रशस्याम् । (४) तद्दिनमारभ्य । (५) शुशुभे । " सहस्रधात्मा व्यरुचद्विभक्त" इति रघुवंशे । (६) अद्वैतमाहत्म्यविद्यया । (७) उत्तेजितस्य । (८) शाणेन । (९) कान्त्या ॥६९॥

हील० चित्रा०। स निरवद्यां विद्यां प्राप्य व्यरुचत् । यथा चित्रां प्राप्य चन्द्रः शारदीनकौमुदीलक्ष्म्या रोचते । अनया विद्यया सुतस्य अद्वैतमाहात्म्यजनि । यथा शाणोत्तेजितस्य रत्नस्य कान्त्यानन्यमहत्वं महर्घ्यता स्यात् ॥८०॥

हीसुं० अथ गुणलक्षणानि :—
[१]नाभीभवेन [२]तदुदाहरणैः[2] कृतैर्ष्कि(: किं) [३]सामुद्रशास्त्रगदितैर्नर[४]लक्षणौघैः ।
[५]नालम्भि तत्र कुमरे [६]व्यभिचारिभावः [७]प्रामाणिकैस्स[८]दुपमानविधाविवेह ॥८०॥

(१) विधिना । (२) स एव हीरकुमार एव उदाहरणं दृष्टान्तस्तत्कृतैः । (३) समुद्रे तत्कृतं सामुद्रम् । तदेव शास्त्रं तत्र कथितैः (४) पुरुषलक्षणगणैः । (५) न प्राप्तः । (६) परस्परविरोधिता । (७) तार्किकैः । (८) सद्विद्यमाने उपमानविधौ ॥८०॥

---

1. इति बालक्रीडा-पठनादि हील० । 2. रणीकृ० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० **ना०**। उत्प्रेक्ष्यते । धात्रा स एव **हीरकुमार** उदाहरणं दृष्टान्तो येषां तादृशैः कृतैः । पुनः समुद्रेण कविनोक्तं शास्त्रं तत्रोक्तैर्नरलक्षणैस्तत्र कुमरे । "कुमारः कुमरोऽपि चेति" शब्दप्रभेदे । व्यभिचारो नास्तः । यथेह जगति सति योग्ये विद्यमाने उपमानविधौ अन्यपदार्थसादृश्यीकरणप्रकारे तार्किकै-र्व्यभिचारित्वं न लभ्यते ॥८१॥

हीसुं० **तस्याभवल्ल[1]वणिमातिशयः स कोऽपि प्रो[2]त्तारयन् य[3]दुपरि [4]स्थविरः [5]शिवाय ।**
[6]मुक्ताः क्षिपत्य[7]नुदिनं [8]पवमानमार्गे [9]ता एव तत्र किमु [10]तारगणा भवन्ति ॥८१॥

(१) लावण्याधिक्यम् । (२) प्रोत्तारयन् न्युञ्छनानि कुर्वन् । (३) यल्लावण्यातिशयस्योपरि । (४) स्थविरः-पितामहो विधाता । (५) कल्याणाय । (६) मुक्ताफलानि (७) प्रतिदिनमुक्ताः क्षिपति त्यजति । (८) गगने । (९) ता मुक्ता एव । (१०) ताराः ॥८१॥

हील० तस्य लावण्यातिशयोऽद्वैतोऽभूत् । यस्योपरि प्रतिदिनं पितामहः कल्याणकारणाय मुक्ताः गगनमार्गे क्षिपति । ता एव तत्राम्बरे किमु ज्योतिर्मण्डलानि भवन्ति ॥८२॥

हीसुं० **[1]स्पर्द्धोदयादिव मिथः प्रवयं [2]सृजद्भि-[3]रङ्गैः स[4]चङ्गिमवपुर्विभवेन तेन ।**
ईर्ष्यां [5]तमीप्रिय तमः [6]प्रणयन्विजित्य [7]लक्ष्मच्छलेन [8]मुमुचे किमु लाञ्छयित्वा ॥८२॥

(१) स्पर्द्धाया उदयात् । (२) पुष्टिं कुर्वद्भिः । (३) अवयवैः । (४) चङ्गिम्ना चारुत्वेन युतकायशोभया । (५) विधुः । (६) कुर्वन् । (७) लाञ्छनकपटेन । (८) लाञ्छनं मष्या अभिज्ञानमास्ये कृत्वा मुक्तः ॥८२॥

हील० **स्पर्द्धो०**। तेन कुमरेण ईर्ष्यां कुर्वन् चन्द्रः मुखे मष्या अभिज्ञानं कृत्वा मुक्तः । किंभूतेन ? तेन सह चङ्गिम्ना वर्त्तते तादृशो वपुर्विभवो यस्य । कैरङ्गैः स्पर्द्धायाः उत्पादात्पुष्टिं कुर्वद्भिः ॥८३॥

हीसुं० **[1]केशोच्चयः स्फुरति तस्य स [2]नीलकण्ठ-पृष्ठे प्रविष्ट इव येन जितः [3]कलापः ।**
[4]आबाल्यतः कुटिलता [5]मनसोऽ[6]पनीता यं भेजुषी पुनरुपेत्य [7]कचच्छटासु ॥८३॥

(१) केशपाशः । (२) केकी शम्भुश्च । (३) मयूरपिच्छम् (४) बालत्वं मर्यादीकृत्वा । (५) चित्तात् । (६) बहिः कृता । (७) केशनिकरेषु "तटान्तविश्रान्ततुरङ्गमच्छटा" इति नैषधे छटा शब्दः समुदयेऽस्तीति ॥८३॥

हील० **केशो०** । अस्य स केशपाशो भाति । येन केशपाशेन जितः कलापः । ईशस्य मयूरस्य पृष्ठभागे प्रविष्टः । पुनर्येन कुमारेण शैशवं मर्यादीकृत्य मनसः कुटिलता निष्कासिता सती । यं कुमरं केशेषु समेत्य बभाज ॥८४॥

हीसुं० **[1]स्वध्यानलोपभवकोपपिनाकिजाग्र-दातङ्कशङ्कितमनःसुमनःशरस्य ।**
त्यागं[2] तनोर्विदधतः कृतवान्विधाता [3]छत्रेण यस्य किमु मौलिम[4]वाङ्मुखेन ॥८४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) निजध्यानस्य विघ्नविधानादुत्पन्नः क्रोधो यस्य तादृशात् शम्भोः प्रकटीभवता भयेन हननलक्षणां शङ्कां प्राप्तं हृदयं यस्य तथाविधस्मरस्य । (२) शरीरमुज्झतः । (३) स्मरछत्रेण । (४) न्यङ्मुखेन ॥८४॥

हील० स्वस्य ध्यानलोपोद्भूतकोपस्येशस्य भयभीतस्य, अत एव तनोस्त्यागं कुर्वतः कामस्य अधोमुखेन छत्रेण यस्य मस्तकं कृतम् ॥८५॥

हीसुं० उत्तुङ्गभावमथ[१] वर्त्तुलतां दधान-मुष्णीषमस्य [२]सुषमां स्म बिभर्त्ति मौलौ ।
यस्मिन्स[३]माजिगमिषोस्तरु[४]णत्वलक्ष्म्या [५]माङ्गल्यकुम्भ इव के[६]शरुहाश्रिताङ्कः॥८५॥

(१) उन्नतत्वं वृत्तत्वं च । (२) सातिशायिनीं शोभाम् । (३) समागन्तुमिच्छोः । (४) तारुण्यश्रियः । (५) कल्याणकारिकलश इव । (६) केशा एव दुर्वास्ताभिराश्रित उत्सङ्गो यस्य ॥८५॥

हील० उत्तु०। अस्य मौलौ वर्त्तुलं उष्णीषं सातिशायिशोभां दधार। उत्प्रेक्ष्यते। यस्मिन्हीरकुमरे आगन्तुकामा यौवनश्रियः । केशा एव रुहा दूर्वा तया श्रितः अङ्को यस्य तादृशः कल्याणकारी कुम्भः ॥८६॥

हीसुं० यश्च[१]न्द्रिकाङ्कितचतुर्द्विजराजराज-द्भालार्द्धशीतमहसो वहते स्म शश्वत् ।
[२]शुद्धाशयोऽ[३]मृतरसायितवाग्विलासो द्वासप्ततिः कलयतात्सकलाः कथं न ॥८६॥

(१) ज्योत्स्नाभिः संयुतैश्चतुः सङ्ख्याकैर्द्विजराजै राजदन्तै राजन्शोभमानः ललाट एवार्धः शशी तान् सार्द्धचतुश्चन्द्रान् । (२) निर्मलहृदयः । (३) सुधारस इवाचरिता वच[न]वैचित्री यस्य ॥८६ ।

हील० यश्च० । यो हीरकुमरः ज्योत्स्नासहितान् चतुःसङ्ख्याकान् राजदन्तान् चन्द्रांश्च । तथा राजत् दीप्यमानं यद्भालमेवार्द्धशीतमहास्तान्सार्द्धचतुश्चन्द्रान्धत्ते । स कुमारो द्वासप्ततिकलाः कथं न धत्ताम् । शेषं सुगमम् ॥८७॥

हीसुं० [१]भालस्थलप्रसृमरांशुपयःप्रवाहो-पान्तप्ररूढलतिकेव विभाति यद्भ्रूः ।
[२]शङ्खोऽप्यभूद्वद[३]नवारिजपार्थिवस्य [४]चन्द्रादिवैरिविजये किमु [५]वादनार्हः ॥८७॥

(१) ललाटरूपं यत्स्थलं प्रदेशविशेषस्तत्र प्रसरणशीला अंशव एव पानीयानां समीपसमुद्गतफलिनी वल्ली च । (२) ललाटश्रवणयोर्मध्ये प्रदेशविशेषः शङ्खः । (३) मुखराजस्य । (४) विधुप्रमुखद्विषत्परिभवसमये । (५) स्वविजयसूचनाय वादयितुं योग्यः ॥८७॥

हील० भाल० । यद्भ्रूर्भाति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । भालस्थलस्य विस्तरणशीला ये किरणास्त एव नीरप्रवाहस्तत्रोद्भूता लता । शङ्खोऽपि मुखराज्ञः चन्द्रदर्पणजये किमु वादनयोग्यः ॥८८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]लावण्यनीरनयनाब्जयदीयवक्त्र-कासारपालिरिव कर्ण युगं [1]विरेजे ।
[२]द्विपेषु सूचयति किं स्वमितेषु भावि-[३]श्लोकं शिशोः [४]श्रवणयोश्च नवद्वयाङ्कः ॥८८॥

(१) लवणिमैव जलं तथा नयने एव कमले यत्र तादृशहीरकुमारवदनतडाकस्य सेतुः पालिः -सरसो जलस्य रुन्धनस्थानम् । (२) अष्टादशद्वीपेषु । "अष्टादशद्वीपनिखात यूष" इति रघुवंशे । (३) यशः । (४) कर्णयोः आकृतिरुपो नवकाङ्को दृश्यते । यथा -"कर्णान्तरुत्कीर्ण-गभीरलेखः किं तस्य सख्यैव नवा नवाङ्कः" इति नैषधे ॥८८॥

हील० कर्णयुगं विभाति । उत्प्रेक्ष्यते । लावण्यमेव नीरं यस्य, नयने एव अब्जे यस्य, तादृशस्य यद्वक्त्रतटाकस्य पालिः । च पुनः कर्णयोर्न वेति सङ्ख्याकानां द्वयस्याङ्कः आकृतिरूपः अष्टादशवाची अष्टादशप्रमाणेषु द्वीपेषु भावियशः कथयतीव ॥८९॥*

हीसुं० [१]विद्वे[२]षिभावमपहाय परस्परेण [२]स्वर्भाणुशुभ्रकिरणाम्बुजबन्धवोऽमी ।
[३]केशच्छटारजतकाञ्चनकुण्डलाङ्गा यस्मिन्विधातुमिव [४]साप्तपदीनमीयुः ॥८९॥

(१) वैरभावं त्यक्त्वा । (२) राहु-चन्द्र-सूर्याः । (३) केशपाशरूप्यस्वर्णकर्णपूरकायाः । (४) सख्यम् । (५) आगताः ॥८९॥

हील० **विद्वे०** । द्वेषरहिताः पुनः केशपाशः स्फटिकहेमयोः कुण्डले तद्रूपा राहुचन्द्रार्काः यस्मिन् कुमाररूपसम्यक्स्थाने मैत्री कर्त्तुमागताः ॥९०॥*

हीसुं० [१]सक्तः [२]श्रुतौ शिशुशशी यदसावितीव तच्चक्षुषी [३]श्रुतियुगं [४]परिषस्वजाते ।
[५]नीलोत्पले उदयः(यतः) कुमदो[3]स्तदा(द)क्ष्णो-र्लक्ष्मीं [4]च ते तरलता[5]रकयोः श्रयेते ॥९०॥

(१) आसक्तः । (२) स रङ्गशास्त्रे ? । (३) श्रवणयुगलम् । (४) आलिङ्गतः । (५) यदि स्मेरकुमुदयोर्नीलकमले प्रादुर्भवतस्तदा विलस्त्कनीनिकयोः कुमारलोचनयोः श्रियं श्रयतः ॥९०॥

हील० **सक्त०**। असौ शास्त्रे सक्तः इति कारणात्तस्य नेत्रे कर्णद्वन्द्वं आलिङ्गतः स्म । यदि नीलोत्पले कैरवयोर्मध्ये उदयतस्तदा चलकनीनिकयोर्नेत्रयोर्लक्ष्मीं भजेते ॥९१॥*

हीसुं० [१]दृग्दोषखण्डनकृते [२]भ्रमरं तदीये चिह्नं [३]मषेरिव मुखे कृतवान्विर[४]ञ्चिः ।
[५]विश्वप्रदीपसदृशो यदसौ तदीया नासापि तद्व्रजति [६]दीपशिखोपमानम् ॥९१॥

(१) दृष्टिदोषनिवारणाय । (२) कुरलो भ्रमरालकम् । (३) कज्जललाञ्छनम् ।

1. विभाति हीमु० । 2. विद्वेषिभावमपहाय परस्परेण केशच्छटास्फटिकहाटककुण्डलाङ्गा। स्वर्भाणुशुभ्रकिरणाम्बु-जबन्धवोऽमी यस्मिन्विधातुमिव साप्तमदीनमीयुः ॥ हीमु० । 3. ०र्यदा० हीमु० तत्र बृहट्टीकायां तु 'तदक्ष्णोः' इत्येव पाठो व्याख्यातः। 4. तदा तरल० हीमु० । 4. तारिकयोः हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४) ब्रह्मा । (५) जगति प्रदीपस्य तुल्य । (६) कज्जलध्वजकलिकासाम्यम् ॥९१॥

हील० मषेर्लाञ्छनमिव शाकिन्यादिभयवारणार्थं ब्रह्मा कुरलं चकार । अग्रे सुगमम् ॥९२॥

हीसुं० **[१]चापल्यकेलिकलिते [२]असिताशये यन्नेत्रे मिथः [३]सदृशवैभवभाजिनी तत् ।
मा [४]द्रुह्यतां [५]कजभुवेति [६]तदन्तराले नासानिभेन विदधे किमु [७]सीमदण्डः ॥९२॥**

(१) चञ्चलतायाः क्रीडायां चटुलतया क्रीडने वा ललिते । शृङ्गारवती तत्र रसिके इत्यर्थः। (२) श्यामहृदये । (३) तुल्यलक्ष्मीधारिणी । (४) परस्परं द्रोहं मा कुरुताम् । (५) विधात्रा । (६) चक्षुषोर्मध्ये । (७) विभागदण्डः ॥९२॥

हील० चपले पुनः श्याममध्ये पुनः सदृशे अस्य नेत्रे वर्त्तेते । तस्मान्मा द्रोहं कुर्वाताम् इति कारणादेव ब्रह्मणा तयोर्मध्ये नासिका । उत्प्रेक्ष्यते । विभागयष्टिः कृत इव ॥९३॥

हीसुं० **स्थाणोः[१]शिरोनिवसनानशनाम्बुपानं [२]संतप्य दुस्तपतपो मणिदर्प्पणेन ।
[३]प्रापे परं [४]जनुरिवेदम[५]गण्यपुण्य-सम्प्रापणीयम[६]दसीयकपोलरूपम् ॥९३॥**

(१) स्थाणुरीश्वरः कीलकश्च तन्मूर्धनि वसनं तथा न विद्येते आहारजलपाने यत्र । (२) सम्यक् त्रिधा तप्त्वा । (३) लब्धम् । (४) अन्य जन्म । (५) प्रमातुमशक्येन सुकृतेन प्राप्तुं योग्यम् । (६) कुमारकपोलस्य रूपं यस्य ॥९३॥

हील० **स्थाणो०** । कीलकाग्रे वसनं, पुनरशनपानरहितं तपस्तप्त्वा रत्नादर्शेन अस्य कपोलरूपं प्रत्यक्षलक्ष्यं असङ्ख्यपुण्येन लब्धं, द्वितीयं जन्म प्राप्तमिव ॥९४॥

हीसुं० **यस्य [१]प्रशस्ययशसः [२]श्रुतिपाशमध्य-निष्पातिनक्रशुकचञ्चुपुटात्क[३]थञ्चित् ।
बिम्बीफलं विगलितं स्खलितं च[४] वक्त्र-पद्मोदरे किमु [५]रदच्छदनीबभूव ॥९४॥**

(१) श्लाघनीयकीर्त्तिः । (२) कर्णावेव पाशौ तयोर्मध्ये निपतनशीलस्य नासिकारूपकीरस्य वक्त्रपुटात् । (३) केनापि प्रकारेण । (४) वक्त्रोदरे स्थितम् । (५) अधरो जातः ॥९४॥

हील० **यस्य०** । बिम्बीफलं गोल्हकं यस्य कुमारस्य रदनछ(च्छ)दनीबभूव । उत्प्रेक्ष्यते । प्रशस्तकीर्त्तेर्यत्कुमारस्य कर्णावेव पाशौ बन्धनग्रन्थी तयोर्मध्ये निष्पातिनो निष्पतनशीलस्य नक्रशुकस्य नासिकारूपकीरस्य चञ्चुपुटात् शृपाटिकासम्पुटतः कथञ्चित्केनापि प्रकारेण स्वबन्धनभयाकुलितत्वेन विगलितं निष्पतितं सन्स्खलितं सन्मुखकमलमध्येऽधरो बभूव ॥९५॥

हीसु० **[१]रक्ताङ्कुरक्तमणिपल्लवपाटलश्री-पाटच्चरो यदधरः श्रियम[२]श्नुते स्म ।
[३]आस्थानवेदिरिव [४]वाङ्मयदेवताया आवासवेश्मनि[५] कुमारमुखारविन्दे ॥९५॥**

(१) विद्रुमपद्मरागरत्नकिसलयवद्रक्ता शोभा, तस्याः तस्करः । (२) धत्ते स्मेत्यर्थः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(३) सभायामुपविशनवेदिकेव । (४) सरस्वतीदेव्याः । (५) हीरकुमारवदनकमलरूपे वसनार्थं गृहे ॥९५॥

हील० रक्ता० । विद्रुमपद्मरागमणयः किशलयास्तेषां रक्तत्वतस्करः ओष्ठः शोभां व्याप्नोति । उत्प्रेक्ष्यते । सरस्वत्या मुखगृहे वेदिकेव ॥९६॥

हीसुं० [१]अभ्युद्गतैर्मु[२]खखनेरिव [३]वज्ररत्नै-र्दन्तैरदीप्यत कुमारपुरन्दरस्य ।
[४]वक्त्राब्जधाम्न इव वा श्रुतदेवतायाः [५]सेवासुखानुभवनागतगौरपत्रैः ॥९६॥

(१) प्रकटितैः । (२) वदनरूपवज्राकरात् । (३) हीरकनाममणिभिः । (४) वदनकमलमेव गृहं यस्याः (५) सेवया कृत्वा सुखं प्राप्तुं समेतैः हंसैः ॥९६॥

हील० दन्तैर्दीप्यते स्म । उत्प्रेक्ष्यते । वदनाकरादुद्गतैर्हीरकैरिव । वाथवा वक्त्रगृहे स्थितायाः सरस्वत्याः सेवायाः अनुभवार्थं आगतैर्हंसैः ॥९७॥

हीसुं० बि[१]म्बाधरे निपतिताभिरभासि यस्य [1]निर्द्धूत[२]मौक्तिकशुचिद्विजचन्द्रिकाभिः ।
[३]क्लृप्तेन्दुदर्प्पणपयोजजये कृताभि-र्नाभी[४]भुवेव सुम[५]वृष्टिभिरेत[६]दास्ये ॥९७॥

(१) बिम्बस्य गोह्लकस्य तुल्ये अधरे । (२) उत्तेजितमुक्ताफलवद्विशदाभिर्दशनकान्तिभिः । (३) कुमारवक्त्रेण यः कृतश्चन्द्रादर्शकमलानां विजयस्तत्र । तस्मिन् र(स)मये इत्यर्थः । (४) धात्रा । (५) पुष्पवृष्टिभिः । (६) कुमारमुखोपरि ॥९७॥

हील० बिम्बा० । रक्तोष्ठे पतिताभिर्मुक्तावदुज्ज्वलाभिर्दन्तज्योत्स्नाभिर्व्याप्तम् । उत्प्रेक्ष्यते । दर्पणादीनां जये कृते सति धात्रैतन्मुखे पुष्पवृष्टिः कृता ॥९८॥

हीसुं० [१]पूर्णामृतैररुणरत्नमनोज्ञमध्या [२]पङ्क्तीभवद्द्विजविराजिसवेशदेशा ।
[३]यस्याननान्तरनिकेतनवाक्त्रिदश्या वापीव खेलनकृते रसना बभासे ॥९८॥

(१) भृता पद्मरागै रचितत्वान्मनोहरमन्तरालं यस्याः । (२) श्रेण्या जायमानैर्द्विजैर्दशनैः विहङ्गैरर्थान्मरालैः शोभितः समीपभागो यस्याः । (३) वदनमध्ये गृहं यस्यास्तादृश्याः सरस्वत्याः ॥९८॥

हील० पूर्णा० । यज्जी(ज्जि)ह्वा रेजे । उत्प्रेक्ष्यते । मुखमध्ये निवासिन्यास्सरस्वत्या जलकेलिकृते अमृतैर्जलैर्वा पूर्णा रक्तरत्नघटितमध्या पुनः श्रेणीभवद्भिर्दन्तैः पक्षिभिर्वा शोभितः समीपदेशो यस्यास्तादृशी वापी ॥३८॥

हीसुं० [१]पूज्येषु [२]रञ्जि[२]तमना यदसौ कुमार-स्तस्य स्म रज्यत इतीव [३]रसज्ञयापि ।
[४]शुद्धाशयस्य दशनैरपि धार्यते स्म श्रीमत्कुमारवृषभस्य [५]विशुद्धिमत्ता ॥९९॥

(१) गुर्वादिषु । (२) रागयुक्तचित्तः । (३) जिह्वया । (४) निर्मलहृदयस्य । (५)

1. निद्धौत० । हीमु० । 2. रञ्जित० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्मलवत्ता ॥९९॥

हील० पू० । यदयं गुर्वादिषु सरागो भावीतिकारणात्तज्जी(ज्जि)ह्वया रक्तीभूतं पुनर्निर्मलचित्तत्त्वादेतद्दन्तैर्निर्मलीभूतम् ॥*१००॥

हीसुं० [१]रक्ताङ्कपल्लवमुखान्द्वि[२]षतो [३]जिगीषु-र्धत्तेऽसिकं [४]किमधरः स[५]विधेऽदसीयः[६] ।
भावी शिशुर्भुवि यदेष सुवृत्तशाली[७] भेजे तदस्य [८]चिबुकोऽपि सुवृत्तभावम्॥१००॥

(१) विद्रुमकिसलयप्रमुखान् । (२) रिपून् । (३) जेतुमिच्छुः । (४) अपराधःप्रदेशोऽसिकः । पक्षे असिस्तरवारिरिवासिकः 'स्वार्थे कः', तम् । (५) पार्श्वे । (६) कुमारसम्बन्धी ओष्ठः । (७) शोभनाचारेण शालते राजते इत्येवंशीलः । (८) वदनाधः कश्चित्प्रदेशविशेषः यत्र निम्नभागो भवेत् ॥१००॥

हील० रक्ताङ्कान् प्रवालादीन् जेतुकोऽधरः । असिरेवासिकस्तं खड्गं धत्ते । अन्योऽपि रिपून्विजेतुं करवालं कलयति । पुनरसौ शोभनाचारवान् भावीतीवास्यासिकाधः प्रदेशोऽपि शोभनाशयं सदाचरतां वास्तवार्थे तु शोभनवर्त्तुलतां भेजे ॥१०१॥

हीसु० द्वात्रिंशताजनि [४]रदैरपि लक्षणानि[१] द्वात्रिंशदा[२]कलयतः शि[३]शुवासवस्य ।
[५]पीयूषवर्षिसितरोचिरसूययान्त-[६]र्वाग्भिः सुधामिव [८]ववर्षमुखं तदीयम् ॥१०१॥

(१) करचरणयोश्छत्रचामरादीनि द्वात्रिंशन्मितानि लक्षणानि । (२) बिभ्रतः । (३) कुमारस्य । (४) दन्तैरपि द्वात्रिंशता जातम् । (५) अमृतवर्षणशीलस्य चन्द्रस्येर्ष्यया । (६) वाणीद्वारा । (७) अमृतम् । (८) वर्षति स्म ॥१०१॥

हील० द्वात्रिंशल्लक्षणवतस्तस्य द्वात्रिंशद्दन्तैर्जातम् । पुनस्तन्मुखं वाणीभिरमृतं वर्षति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । अन्तश्चित्तेऽमृतवर्षिणः सितरोचिषश्चन्द्रस्य ईर्ष्यया इव सुधामवर्षत् ॥१०२॥

हीसुं० [१]उद्धृत्य कण्टकगणान्किमु [२]वारिजन्म किं वा[३]त्मदर्शमपहृत्य[४] विचेतनत्वम् ।
[५]संतक्ष्य [६]लक्ष्मशितिमानमुता[७]मृतांशुं [८]राजीवभूरकृत हीरकुमारवक्त्रम् ॥१०२॥[1]

(१) कर्षयित्वा (२) कमलम् । (३) दर्पणम् । (४) निश्चे[त]नतां हृत्वा । (५) तनूकृत्य । (६) लाञ्छनकृष्णताम् । (७) चन्द्रम् । (८) विधाता ॥१०२॥

हील० उद्धृत्य० । कण्टकान्निष्कास्य कजं गृहीत्वा वा दर्पणं सचेतनं गृहीत्वा च निरङ्कमृगाङ्कमादाय ब्रह्मा हीरकुमारवक्त्रं रचयामास ॥१०३॥

हीसु० [१]निःशेषभूवलयकुण्डलिवेश्मनाकि-लोकत्रिके प्रसृमरैर्यशसां विलासैः ।
रेखा भविष्यति महत्सु यदस्य कण्ठे रेखात्रिकं किमिति [२]निर्मितवान्विधाता ॥१०३॥

(१) समग्रभूमण्डल-पाताल-स्वर्गाणां त्रये एतस्मात्परः कोप्येतादृग्गुणकलितस्त्रिभुवने नास्तीति

1. इति मुखम् हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रसिद्धिः । रेखा(?) । (२) चक्रे ॥१०३॥

हील० निःशेष० । समग्रपृथ्वीपातलस्वर्गाणां त्रयेऽपि विस्तरणशीलैर्यशोभिर्महत्सु रेखा भाविनी । इति कारणादस्य कण्ठे रेखात्रयं विधिः कृतवान् ॥१०४॥

हीसुं० भावी यदेष [1]वृषवज्जि[2]नधर्म्मधुर्यः स्कन्धोऽप्यभूत्किमिति [3]तत्ककुदोपमेयः ।
अर्भः [4]पुरा भवति येन [5]युगप्रधानो जज्ञेऽस्य [6]बाहुरपि तेन [7]युगप्रधानः ॥१०४॥

(१) वृषभ इव । (२) अर्हत्प्रणीतधर्मे धुरन्धरः । (३) तस्य वृषभस्य ककुदेन स्कन्धेन उपमातुं योग्यः । नैचिकं शिरो वा तत्तुल्यः (?) (४) पुरा भवत्यग्रे भविष्यति । "पुरा योगे भविष्यदर्थे वर्त्तमाना"। (५) युगे कलिकाले विशिष्टातिशयैः प्रधानो मुख्यः । (६) आजानुबाहुत्वात् । (७) युगवद्धूसर इव प्रधानः ॥१०४॥

हील० भावी०। वृषभ इव धर्मधुर्यत्वादस्य स्कन्धः वृषस्यस(स्यांस)कूटेनोपमातुं योग्योऽभूत् । पुनरर्भः युगे कलिकाले प्रधानः पुरा भवति भविष्यति । "यावत्पुरानिपातयोर्योगे लङ्" आभ्यां योगे भविष्यकाले वर्त्तमाना स्यादिति सिद्धान्तकौमुद्याम् । इत्यस्य बाहुर्धूसरोपमेयो जातः ॥१०५॥

हीसुं० उद्दामदुर्ग्गतिपुरे[1]ऽर्ग्गलतांगमी य-[2]त्तद्दोरितीव लभतेऽ[3]र्गलयोपमानम् ।
यस्ये[4]भशङ्खमकरान्कलयन्प्रवाल-शाली पुनः [5]श्रियम[6]सूत [7]शयः [8]समुद्रः ॥१०५॥

(१) बहुजनभीतिकरत्वात् उत्कटमुच्छृङ्खलं यत्कुगतिपुरं तत्र परिघभावमयं गमिष्यति । ये जना अमुं सेविष्यन्ते तान् दुर्गतिं गन्तुं न दास्यति । ततः इदं विशेषणम् । (२) कुमारभुजः (३) अर्गलासदृशो बभूव । (४) गज-कम्बु-मकरान् दधत् विद्रुमैः पल्लववच्च शालते इत्येवंशीलः । (५) शोभां कमलां च । (६) जनयति स्म । (७) शयः पाणिः । (८) सहमुद्रया साक्षराङ्गुलीयकेन वर्त्तते यः । पक्षे सागरः ॥१०५॥

हील० उद्दा० । पूर्वार्द्धं सुगमम् । पुना रेखाकारीभूतान् गजशङ्खमकरान् दधन् । अत एव समुद्रः सहोर्मिकया वर्त्तते । तादृशः पाणिः शोभां लक्ष्मीं अजीजनत् ॥१०६॥

हीसुं० तस्य [1]स्फुरद्द्युतिपयष्प(ः प)रिपूर्णबाहु-मूलालवालविलसद्भुजगण्डिभाजः ।
रेजुः [2]शयावनिरुहोऽङ्गुलयोऽनुशाखाष्का[3](ः का)माङ्कुशैष्कि[4](ः कि)सलयैरिव
शालमानाः ॥१०६॥

(१) विस्तरत्कान्तय एव जलानि तैष्प(ःप)रिपूरितं बाहोर्भुजस्य मूलं कोटरः स एव स्थानकं तत्र विलसन्प्रकटीभवन्बाहुरेव गण्डिर्मूलात् शाखावधिप्रदेशस्तं भजतीति । (२) हस्तद्रुमस्य (३) नखैः । (४) पल्लवैः ॥१०६॥

हील० तस्य० । तदङ्गुलयो रेजुः । उत्प्रेक्ष्यते । कान्तिजलपूर्णं यद्बाहुमूलं तदेवालवालं तत्र विलसन्यो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाहुरेव मूलाच्छाखावधिप्रदेशस्तद्धाजिनः । करवृक्षस्य किशलयै रम्याः शाखाः ॥१०७॥

हीसुं० [१]जानुस्पृशौ शिशुभुजौ [२]विनियन्त्रणाय पाशाविवा[३]ब्धिदुहितुस्त[४]रलाशयायाः ।
हस्तौ [५]समस्तकजराजतयाप्यमुष्य धात्राऽक्षतैरिव यवैः सम[६]पूजिषाताम् ॥१०७॥

(१) जानुप्रलम्बौ । (२) बन्धनाय । (३) लक्ष्म्याः । (४) चपलस्वभावायाः । (५) सर्वेषां पद्मानां राजत्वेन तत्सेव्यत्वादाकृत्या । (६) अर्चितौ ॥१०७॥

हील० जानु० । उरुपर्वयावत्प्रलम्बौ भूजावभूताम् । उत्प्रेक्ष्यते । चञ्चलाया लक्ष्म्या बन्धनाया पाशौ । पुनर्धात्रा हस्तौ सकलकमलराजत्वेनाखण्डैर्यवैरर्चिताविव ॥१०८॥

हीसुं० [१]वक्षःशिलाकलितमञ्जुलजातरूपो [२]नक्षत्रभूषिततनुश्च [३]नभोगयुक्तः ।
[४]स्वःशाखिरुङ्महिमधीरिमराजमानः शावस्सुपर्वशिखरीव पुपोष भूषाम् ॥१०८॥

(१) हृदयरूपशिलया युतस्तथा रम्यं स्वर्णं उत्पन्नं रूपं यस्य । (२) न निषेधे, क्षत्रत्वेन राजन्यत्वेन शोभितांङ्गः । वणिग्जातित्वात् नक्षत्रैर्ज्योतिर्भिः शोभितवपुः । (३) न नैव भोगेन वैषयिकसुखेन युतो बालत्वात्, विद्याधरैर्देवैर्वा युक्तः । (४) कल्पद्रुवत् तेषां च कान्तिर्यत्र माहात्म्येन धैर्येन(ण) शोभमानः । (५) मेरुरिव ॥१०८॥

हील० वक्ष० । हृदयमेव शिला तया युतस्तथोत्पन्नं रूपं यत्र स पुनर्नो क्षत्रत्वेन वणिग्जातित्वात् क्षत्रैर्वालङ्कृतकायः पुनर्न भोगैर्विषयैर्विद्याधरैर्वा चेष्टितः । कल्पवृक्षानां(णां)तद्वद्वा रुक् यस्य । पुनर्महिम्नाऽग्रे भविष्यता भाविनि भूतोपचारात् धैर्यण च शोभितो बालो मेरुरिवाभां बिभर्त्ति स्म ॥१०९॥

हीसुं० [१]प्रामाण्यमस्य वहतो महतां [२]सदस्य-[३]प्रामाण्यमाश्रयदुरस्तदिहास्ति चित्रम् ।
श्रीवत्स उल्लसति [४]तस्य पुनः स [५]वक्षः-स्थायी [६]गभीरिम[1]विभावनकौतुकीव॥१०९॥

(१) यथार्थवादितां मुख्यतां च । (२) सभायाम् । (३) अप्रमाणतां विशालताम् । (४) कुमारस्य । (५) हृदये वसति । (६) गाम्भीर्यस्य वीक्षणे कुतुकवानिव ॥१०९॥

हील० अस्य हृदयं प्रमाणातीतमित्यर्थः ॥*११०॥

हीसुं० [१]सान्द्रीभवत्तनुविभाभरनिर्झ[2]रिण्यां [२]सावर्त्तशोण इव नाभिरमुष्य रेजे ।
[३]वक्षःस्थलेन [४]विपुलेन [५]सहाभ्यसूया-माबिभ्रतीव कटिरप्य[भ]वद्विशाला॥११०॥

(१) निबिडां जायमानः शरीरप्रभासमूह एव नदी, तस्याम् । (२) जलावर्त्तयुक्तह्रद इव । (३) हृदयेन । (४) विशालेन । (५) ईर्ष्याम् ॥११०॥

हील० सान्द्री० । अस्य नाभिः शुशुभे । उत्प्रेक्ष्यते । बहुलो यः कायकान्तिभरः स एव नदी तस्य सावर्त्तो

1. विलोकन० हीमु० । 2. ०रिण्याः हीमु०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हृदः पुनर्वक्षःस्थलेनेर्ष्यया कटिर्विशालाभूत् ॥*१११॥

हीसुं० [१]कार्कश्यसंहृतिलघूकृतहस्तिहस्ता-वूरू कृताविव शिशोर्न[२]लिनासनेन ।
स्त[१]म्भोपमो [३]जिनमतावसथे स भावी [४]स्त[२]म्भोपमां किमिति तस्य बिभर्ति जङ्घा ॥१११॥

(१) कठिनतायाः संहरणेन कृत्वा अल्पौ हृस्वौ कृतौ करिकरौ । (२) विधात्रा । (३) जिनशासनरूपसद्मनि तद्द्वारधारणे स्तम्भतुल्यो भावी । "वज्रस्तम्भाविवैते" इति जिनशतके (४) स्तम्भसादृश्यं जङ्घायाः ॥१११॥

हील० कार्कश्यापनयनेन हृस्वौ कृतौ हस्तिहस्तौ । उत्प्रेक्ष्यते । धात्रा शिशोः सक्थिनी कृतौ पुनरर्हच्छासनसद्मनि स्थम्भतुल्यत्वादस्य जङ्घा स्थम्भसादृश्यं दधौ ॥*११२॥

हीसुं० [१]स्पर्द्धोदयान्निजविवृद्धिकृतौ यदूरू जङ्घे पुनः स[२]रसिजन्मभुवा वि[३]भाव्य ।
[४]त[३]द्युग्मविग्रहनिषेधविधिप्रभुष्णु-सीमाकरं वि[५]रचितं किमु जानुयुग्मम् ॥११२॥

(१) परस्परं स्पर्द्धायाः प्रादुर्भावादात्मनो विवृद्धिं कुर्वत इति । (२) धात्रा । (३) दृष्ट्वा । (४) तस्य कुमारस्य उरुजङ्घायुगलयोः क्लेशनिवारणप्रकारे समर्थमत एव विभागविधायकम् । (५) कृतम् । ११२॥

हील० स्पर्द्धो० । संहर्षादन्योन्यं वृद्धिं कृतौ यस्य उरू पुनर्जङ्घे दृष्ट्वा ब्रह्मणा तयोर्द्वन्द्वयोर्विग्रहनिषेधकं सीमाकरम् । उत्प्रेक्ष्यते । जानुयुग्मं निष्पादितम् ॥११३*॥

हीसुं० [१]शुश्रूषया[२]सनतयानिशमा[३]प्रसादा-ल्लब्ध्वा प्रसन्नमनसो वरमा[४]त्मयोनेः ।
[५]विश्वाङ्ककारविजयप्रभविष्णुलक्ष्मि [६]स्मेराम्बुजन्म किमु [७]यत्पदताम[८]वाप ॥११३॥

(१) सेवकतया । (२) पद्मस्यासनत्वेन । (३) प्रसादं मर्यादीकृत्य । (४) विधातुः । (५) जगति ये स्वविभवप्रतिमल्लास्तेषां विजये समर्थशोभाभृत् । (६) पद्मम् । (७) यस्य चरणकमलभावम् । (८) लेभे ॥११३॥

हील० शुश्रू० । निरन्तरं विष्टरभावेन प्रसादसमयं यावत्सेवया प्रसन्नात् आत्मयोनेः सकाशात् वरं प्राप्य । किमूत्प्रेक्ष्यते । विकचकजं कुमारस्य चरणत्वं पादावतारं लभते स्म । किंभूतं स्मेराम्बुजन्म ?। जगत्सु येऽङ्ककाराः प्रतिमल्लास्तेषां विजये प्रभविष्णुं समर्था लक्ष्मीर्यस्य तत्तादृशम् । "शुश्रूषा-राधनोपास्तिर्वरिवस्यापरिष्टयः" इति हैम्यामित्यवबोद्धव्यम् ॥११४॥

हीसुं० यत्पादपङ्कजयुगाङ्गुलिभिः स्वकीय-लक्ष्म्या पराभवपदं गमिताः प्रवालाः।
दुःखादिव [१]द्रुमशिखाशिखरान्तरेषु ति[२]त्यक्षवस्तनुलतां निज[३]मुद्बबन्धुः ॥११४॥

---

1. स्थम्भो० हीमु० । 2. स्थम्भो० हीमु० । 3. तद्द्वन्द्व० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) वृक्षशाखानां शिखराण्यग्राणि तेषां मध्येषु । (२) त्यक्तुमिच्छवः । (३) ऊद्ध्वं बध्नन्ति स्म । स्वं पाशयन्ति स्म ॥११४॥

हील० **यत्पाद०** । कुमारचरणाङ्गुलिभिः स्वशोभया पराभवस्थानं प्रापिताः प्रवाला द्रुमशिखराग्रान्तरेषु आत्मानामूद्ध्वं बबन्धुः । उत्प्रेक्ष्यते । कायं त(त्य)क्तुमिच्छवः ॥११५॥

हीसुं० **[१]कामद्विपेङ्कुश इवो[२]द्भवितायमेत[1]-त्का[३]माङ्कुशैष्कि(: कि)मिति सूचयति स्म वेधाः । [४]रत्नं यदेष भुवि सूरिभरेषु भावी रत्नश्रियं किमु पुन[५]र्निदधे स [६]तेषु ॥११५॥**

(१) मदनमत्तगजे । (२) प्रकटीभविष्यति । (३) नखैः । (४) सूरीन्द्रश्रेणीषु मणिरिव भावी । (५) स्थापयामास । (६) नखेषु ॥११५॥

हील० **काम०**। स्मरे सृणिवत्प्रादुर्भविष्यति । इत्येव नखैर्वेधाः सूचयति स्म । पुनर्न्यक्षसूरिषु नगीनो भावी, इत्येव स वेधाः नखेषु रत्नश्रियं दधौ ॥*११६॥

हीसुं० **[१]यन्मूर्त्तिदीधितिझरेषु किमु [२]प्ररोहा रोमाणि कामपि रमां कलयांबभूवुः । [३]ईदृग्विधा वयमि[४]हैव न [५]चाऽपरत्र वक्तुं गुणैष्कि(: कि)मिति [४]यत्र कृताः स्वरेखाः ॥११६॥**

(१) कुमारकायकान्तिनिर्झरेषु । (२) अङ्कुरा इव । (३) अद्वैतमाहात्म्यः । (४) कुमारे । (५) अपरस्मिन्स्थाने न स्मः ॥११६॥

हील० **यन्मू०**। यस्य शरीरस्य कान्तिनिर्झरेषु अङ्कुरा इव लोमाणि(नि) अपूर्वशोभां धारयन्ति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । औदार्यादिगुणैः स्वाः स्वाः सरूपाणामेकशेषे स्वाः सूक्ष्मा रेखाः कृताः । यदि(दी)-दृग्विधा वयमिहैव स्मः वर्त्तामहे । अपरस्मिन्स्थाने सर्वथापि न स्मः वक्तुम् ॥११७॥

हीसुं० **स्कन्धोपधेः [१]ककुदढौकनकं विधाय यस्मात्शिशोर्गतिरशिक्षि [२]ककुद्मतेव । [३]अभ्यस्यते गतिरिवास्य [४]गतानुकार-कामेन [५]विन्ध्यविपिनेष्वपि [६]हास्तिकेन ॥११७॥**

(१) ककुदं नैचिकं शिरस्तस्योपदाम् । (२) वृषभेण । (३) अभ्यासः क्रियते । (४) गमनस्य सादृश्याभिलाषेण । (५) विन्ध्याचलगह्वरेषु । (६) हस्तिनां समूहेन ॥११७॥

हील० **स्कन्धो०**। अंसमिषात् ककुदप्राभृतं कृत्वा वृषभेन(ण) **हीरकुमाराद्**गतिः शिक्षिता । पुनर्हस्तिसमूहेन अस्य गमनस्य सदृशीभवनं तत्राभिलाषुकेन(ण) विन्ध्यगिरिगह्वरेषु गमनं शिक्ष्यते वा ॥११८॥

हीसुं० **[१]लिप्ता द्रवैरिव [२]विलीनहिरण्यराशेः [३]सङ्कल्पितेव [४]नवगन्ध[3]फलीदलैर्वा । किं [५]रोचनाभीरथवा रचिता [६]स्मिताब्ज-गर्भैरिवाथ घटिता[७]स्य तनुश्च[4]कासे ॥११८॥[5]**

---

1. व कामा० हीमु० । 2. यन्त्र हीमु० । स पाठोऽशुद्धः प्रतिभाति ॥ 3. ०धकली० हीमु० । स चाशुद्धः पाठः 4. ०काशे हीमु० । 5. इति हीरकुमारसर्वाङ्गवर्णनम् हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) लिप्यते स्मेति लिप्ता, दिग्धा । (२) वह्निना गालितकनकनिकरस्य । (३) रचितेव । (४) चम्पकपत्रैः । "न षट्पदो गन्धफलीमजिघ्रदि"ति सूक्ते । (५) गोरोचनैः । (६) विकचकमलगर्भैः । (७) कुमारस्य ॥११८॥

हील० **लिप्ता०।** अस्य तनुर्दिदीपे । उत्प्रेक्ष्यते । गालितसुवर्णसमूहरसैर्दिग्धेव वाऽथवा गन्धकलीदलैश्चम्पककलिकापत्रैर्विरचिता वा गोपितविशेषद्रव्यै रचिता वा विकचकमलसारैर्घटिता ॥११९॥

हीसुं० [१]तस्मिन्पदं प्रविदधे [२]गुणधोरणीभिः सर्वाभिरर्णव [३]इवार्णववर्णिनीभिः ।
[४]आलोक्यते स्म च कदाचन नैष[५] [६]दोषै-र्दोषा[७]तनैरिव [८]तमोभिर[९]भीश्रुमाली ॥११९॥

(१) हीरकुमारे । (२) औदार्य-धैर्य-गाम्भीर्यादिगुणानां मण्डलीभिः । (३) समुद्रे नदीभिः । (४) दृष्टः । (५) कुमारः । (६) विरुद्धगुणैः । (७) रात्रिजातैः । (८) अन्धकारैः । (९) सूर्यः ॥११९॥

हील० **तस्मि०।** तस्मिन्शिशौ गुणश्रेणिभिः स्थानं कृतम् । यथार्णवपत्नीभिर्नदीभिः समुद्रे स्थानं प्रविधीयते । पुनरेषः शिशुरपगुणैः कस्मिन्नपि समये न दृष्टः । यथा भास्वान् रात्रिजातैरन्धकारैष्क(: क)दापि नालोक्यते–न प्रेक्ष्यते ॥१२०॥

हीसुं० [१]स्वस्पर्द्धिनः [२]शरभवप्रमुखानशेषा-[३]न्कान्त्या विजित्य [४]विजयीव [५]निजप्रतीपान् ।
स [६]व्यानशे [७]विसृमरैः स्वयशोभिराशा-देशान्मिल[८]त्परिमलैरिव पुष्प[९]कालः ॥१२०॥

(१) आत्मना स्पर्द्धनशीलान् । (२) स्वामिकार्तिकाद्यान् । (३) शोभया । (४) जिष्णुः । (५) आत्मनः शत्रून् । (६) व्याप्नोति स्म । (७) प्रसरणशीलैः । (८) विस्तरद्गन्धैः । (९) वसन्तः ॥१२०॥

हील० **स्वरूप०।** यथा विजयी राजा प्रतीपान् जयति तद्वत् स्मरप्रमुखान् स्वशत्रून् जित्वा आशादेशान्व्याप्नोति स्म । यथा वसन्तर्तुः परिमलैर्दिशो व्यश्नुते ॥१२१॥

हीसुं० [१]भूषाशनिस्फुरितशक्रधनुःसमुद्य-द्धाराङ्कितश्च [२]जलमुक्श्रित[३]जैनपादः ।
युक्तं यदा[४] स [५]सघनः [६]कमलोदयेन चित्रं तदेव सुदिनेन यदत्र जज्ञे ॥१२१॥[1]

(१) भूषाणामाभरणानां अशनिभ्यो वज्ररत्नेभ्यः प्रकटीभूतमिन्द्रचापं यत्र । "वृता विभूषा मणिर[2]श्मिकार्मुकै" रिति नैषधे । भूषा आभरणानि दीप्यमानमुक्तालताकलितः । (२) डलयोरेक्यात् जडसङ्गरहितः । (३) सेवितः अर्हत्सम्बन्धीचरणो येन । (४) स कुमारः । (५) निबिडः । (६) निर्भरलक्ष्म्या उदयेनाविर्भावेन मेघोऽपि भूषाकारिणी विद्युत्तथा शक्रचापश्च यत्र प्रकटीभवज्जलधारायुतः सलिलं मुञ्चतीति । सेवितः गगनः जिनोऽर्हन् बुद्धः कृष्णश्च । परस्मिन् एतदाश्चर्यं यतः शोभनेन दिवसेन जाते मेघे तु दुर्दिनं, कुमारस्य सदा मुदिता एव ॥१२१॥

1. इति कुमारगुणलक्षणभूषणादिवर्णनम् हील० । 2. रत्न० हीमु०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० **भूषा०**। स यत् लक्ष्म्या अभ्युद्गमेन घनो दृढ आस-बभूव । अथ च कमलानां पानीयानामुदयेन मेघो भवति । किंभूतः स मेघश्च ?। भूषाणां भूषणानामशनिभ्यो वज्ररत्नेभ्यः प्रकटितानि इन्द्रचापचक्राणि यत्र । तथा दीप्यमानेन हारेण कलितः । भूषाकारिणी अशनिर्यत्र । पुनः प्रादुर्भूतेन्द्रधनुः । पुनर्जलवृष्टिसहितः । अथवा जडानज्ञानमुञ्चन् श्रित आर्हतः विष्णोश्च क्रमो येन स युक्तम् । परमेतच्चित्रं यदत्र सुदिनेन जाते मेघे तु दुर्दिनेन जायते ॥१२२॥

हीसुं० **क्रीडन् [1]जयन्त इव [2]यज्ञभुजां कुमारैष्पौ[3](: पौ)राङ्गजैस्सह [4]वयोविभवानुरूपैः ।**
कालक्रमेण [5]परिवर्त्तमसौ दिनानां श्रीमत्कुमारमघवा [6]गमयांबभूव ॥१२२॥

(१) इन्द्रपुत्रः । (२) देवकुमारैः । (३) नागरिकबालकैः । (४) तस्य यादृक् वयो बाल्यरूपं विभवो द्रव्यं तत्तुल्यैः । (५) क्षयम् । (६) गमयति स्म ॥११२॥

हील० **क्रीड०**। देवकुमारैः क्रीडन् जयन्त इव स दिनानां क्षयमतिवाहयति स्म ॥१२३॥

हीसुं० **तस्यानुजो गजगतेः श[1]तकोटिपाणेः श्रीपाल इत्यजनि [2]विष्णुरिवा[3]द्रिदस्योः ।**
द्वे[4] अग्रजे स्म भवतष्पु(: पु)नरस्य जामी राणी परा च विमला [5]कमलानु-
रूपे ॥१२३॥

(१) शतसङ्ख्याकाः द्रव्यकोटयो हस्ते यस्य । वज्रकरस्य । (२) कृष्णः । (३) शक्रस्य । (४) वृद्धभगिन्यौ । (५) लक्ष्म्याः सदृशे ॥१२३ ॥

हील० तस्या० । गजस्तेन तद्वद् गमनस्य शतशो द्रव्यकोटयः करे प्राप्या यस्य वा वज्रपाणेस्तस्य लघुभ्राता **श्रीपालो** जातः । भगिनी **राणी** अन्या **विमला** एवं द्वे लक्ष्मीसदृशे भवतः स्म ॥१२४॥

हीसुं० **कृत्वा [1]विलासमवनीवलये [2]यथेच्छं सोत्कण्ठयोर्विल[3]सितुं [4]सुरसद्मनीव ।**
[5]पित्रोरथ [6]त्रिदशपद्मदृशां क्रमेण दृग्गोचरं गतवतोर्भजतोः [7]समाधिम् ॥१२४॥
कृत्वो[1]र्ध्वदेहिकमसौ [2]विधिना विधिज्ञो वंश्यै[3]र्निजैः सह [4]चिरस्य [6]निरस्य [5]शोकम् ।
[7]उक्तः कदापि मिलितुं विमलां [8]स्वजामिं जज्ञे महेभ्यकलभो[9] [10]जयवज्ज[11]यन्तीम्
॥१२५॥ युग्मम् ॥

(१) भोगादिक्रीडाम् । (२) स्वतन्त्रम् । (३) क्रीडितुम् । (४) देवलोके (५) जननीजनकयोः । (६) देवाङ्गनानाम् । (७) समाधिमरणेन ॥१२४॥

(१) पित्रोर्मरणादिवसे दानादि । (२) यथोक्तप्रकारेण । (३) निजगोत्रिभिः । (४) समम् । (५) चिरकालेन । (६) मुक्त्वा । (७) उत्कण्ठितः । (८) निजभगिनीविमलाम् । (९) हीरकुमारः । (१०) इन्द्रपुत्रः । (११) इन्द्रपुत्रीम् ॥१२५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० **कृत्वा०** । **कृत्वो०** । पृथ्वीमण्डले विलासं कृत्वा स्वर्लोके गन्तुं सोत्कण्ठयोः । पुनः समाधिं भजतोः स्वर्वधूनां दृष्टिपातं गतयोष्पि(ः पि)त्रोः दानजलाञ्जलिं दत्वा । पुनर्वंशोद्धूतनरैः । साकं चिरकालेन शोकं त्यक्त्वा कस्मिन्नपि समयेऽसौ कुमारो **विमलां** स्वभगिनीं मिलितुमुत्कण्ठितो जज्ञे । यथा इन्द्रपुत्रः जयन्तीं मिलितुमुत्को भवति ॥१२५ -१२६॥

हीसुं० गन्तुं ततः [1]स्पृहयता प्रति पत्तनं [2]स्व-भृत्येन तेन [3]सतुरङ्गयुगः श[4]ताङ्गः ।
[5]आनाप्यते स्म [6]नमुचेर्दमनेव(न) जम्बू-द्वीपविमानमिव [7]पालकनिर्ज्जरेण ॥१२६॥

(१) वाञ्छता । (२) निजसेवकेन । (३) अश्वयुगलयुतः । (४) रथः । (५) आनायितः । (६) इन्द्रेण । (७) पालकनामदेवेन ॥१२६॥

हील० **गन्तुं०**। ततो जामिमिलनोत्कण्ठानन्तरं पत्तनं यातुकेन तेन स्वभृत्येन तुरङ्गयुग्मसहितः शताङ्ग आनाय्यते स्म । यथा जम्बूद्वीपे गन्तुकेनेन्द्रेण पालकसुरेण तन्नाम्ना विमानमानाय्यते ॥१२७॥

हीसुं० तं [1]पारियानिकमसावधिरुह्य भूमी-मार्ग्गे [2]नभस्वदतिपातिरयाश्ववाह्यम् ।
हैमं [3]शताङ्ग[1]मिव सारथिना [4]सनाथं [5]पाथोज[2]बन्धुर[6]मराध्वनि [7]सम्प्रतस्थे ॥१२७॥

(१) अध्वरथः पारियानिकः । (२) पवनमतिक्रामतीत्येवं शीलो नभस्वदतिपाती वातादप्यधिको वेगो ययोस्तादृशाभ्यामश्वाभ्यां वहनयोग्यम् । (३) सुवर्णरथम् । (४) संयुतम् । (५) सूर्यः । (६) गगनमार्गे । (७) प्रचलति ॥१२७॥

हील० **तं पारि०** । असौ अध्वरथं वायुवेगाश्ववाह्यमारुह्य प्रतस्थे । यथा सौवर्णरथं सारथियुक्तं आश्रित्य सूर्यः गगने प्रतिष्ठते ॥१२८★॥

हीसुं० कालं [1]कियन्तमु[2]दयान्तरितं [3]तपस्या-साम्राज्यसङ्ग्रहविधौ [4]प्रविलम्बमानः ।
सम्प्राप्य पत्तनमसौ मुदितः स्वजामे-[5]श्चौलुक्यवद्[6]भवनभूमिमलञ्चकार ॥१२८॥

(१)कियत्प्रमाणमस्येति । (२) सूरिपदलक्षणमहोदयो व्यवधानं प्राप्तो यत्र । (३) दीक्षा एव साम्राज्यस्य उपादानप्रकारे । (४) विलम्बं कालक्षेपं कुर्वन् । (५) कुमारपाल इव । (६) भगिनीगृहभुवं भूषयति स्म ॥१२८॥

हील० **कालं०** । दीक्षाग्रहणे कियन्तं कालं सूरिपदान्तरितं विलम्बमानः । स पत्तनं प्राप्य मुदितः सन् भग(गि)नीगृहभुवमलङ्कुरुते स्म । यथा **कुमारपालः** राज्यग्रहणे विलम्बमानः स्वजामेर्गृहे स्थितः ॥१२९॥

हीसुं० तं [1]जङ्गमं [2]त्रिदशसालमिव [3]स्वपुण्य-प्राग्भारम[4]ङ्गि[3]नमिवागत[5]मात्मधाम्नि ।
[6]दृष्ट्या [7]निवातसरसीजसगर्भया स्वं बन्धुं [8]निपीय विमला मुमुदे हृदन्तः । १२९॥

---

1. ०मथ हीमु० । 2. ०जपाणिरिव नाकिपथे प्रतस्थे हीमु० । ३. ०मुतागत० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) चलन्तम् । (२) कल्पतरुम् । (३) निजपुण्यातिशयम् । (४) मूर्त्तिमन्तम् । (५) निजगृहे । (६) भाग्येन । (७) वातरहितस्य स्थिरस्य कमलस्य तुल्यया । (८) सादरमवलोक्य ॥१२९॥

हील० तं जङ्गमं० । चलन्तं कल्पवृक्षमिव । उतात्मगृहे आगतं मूर्त्तिमन्तं पुण्यौघमिव तं बन्धुं निर्वातनिःकम्पकजसदृशया दृष्ट्या दृष्ट्वा विमला हृदयमध्ये जहर्ष ॥*१३०॥

हीसुं० [1]कादम्बिनीव सलिलैः [2]सुरशैलशृङ्गं हर्षाश्रुभिः [3]स्वसहजं स्न[1]पन्त्य[4]मन्दम् ।
[5]संबिभ्रतं [6]कनककेतककान्तकायं तं [7]स्वागतादि भगिनी परिपृच्छति स्म ॥१३०॥

(१) मेघमाला (२) मेरुशिखरम् । (३) निजबान्धवम् । (४) बहु । (५) धारयन्तम् । (६) स्वर्णकेतकवन्मनोज्ञाङ्गम् । (७) सुखेनागतं कुशलप्रश्नमस्तीत्यादिप्रश्नम् ॥१३०॥

हील० काद० । यथा मेघमाला जलैर्मेरुशृङ्गं क्षालयति तद्वद्हर्षाश्रुभिः स्नपयन्ती भगिनी सुवर्णसदृशकायं बिभ्रतं तं स्वभ्रातरं कुशलादि पृच्छति स्म ॥१३१॥

हीसुं० [1]विज्ञातपूर्वजननीजनकप्रवृत्तेः प्रेम्णा [2]निगद्य कुशलादिक[3]मात्मजामेः ।
विद्याभृतां [4]कुमरवत्क[5]लधौतकान्तं वैताढ्यशृङ्गम[6]यमासनम[7]ध्युवास ॥१३१॥

(१) पूर्वं कुमारागमनात् प्राक्ज्ञाताऽवबुद्धा पित्रोर्वार्त्ता यया । (२) कथयित्वा । (३) निजभगिन्याः (४) विद्याधरकुमार इव । (५) कलधौतं-स्वर्णरुप्ययोः, तेन मनोहरम् । (६) <u>हीरकुमारः</u> । (७) आश्रयति स्म ॥ १३१॥

हील० विज्ञा०। ज्ञातजननीजनकप्रवृत्तेः स्वजामेः कुशलादिकं निगद्य स रजतेन हेमेन वा घटितं विष्टरमधिवसति स्म । यथा विद्याधरकुमारः रजतमयं वैताढ्यशृङ्गमधिवसति ॥१३२॥

हीसुं० [1]अनेन [2]गोष्ठीमनु[3]तिष्ठतात्मजामेर्मनोव्या[4]हृतिवैदुषीभिः ।
[5]अनन्यवृत्ति क्रियते स्म विज्ञै [6]रसातिरेकै [7]रसिकस्य यद्वत्[8] ॥१३२॥

(१) <u>हीरकुमारेण</u> । (२) वार्त्ताम् । (३) कुर्वता । (४) वचनवैचित्रीभिः । (५) न विद्यते अन्यत्रापरस्मिन्स्थाने वर्त्तनं यत्र तदेकतानम् । (६) शृङ्गारादिरसानामतिशयैः । (७) रसवतः । (८) यथा ॥१३२॥

हील० अने०। गोष्ठीं कुर्वतानेन व्याहारो-भाषितवचनं तस्य चातुरीभिः आत्मभगिन्याः मनो नास्ति अन्यस्मिन्वृत्तिर्यस्य तदेकतानं क्रियते स्म । यथा विज्ञै रसै रसिकमनोऽनन्यव्यापारं क्रियते ॥१३३॥

हीसुं० पदे[1]पदे यत्पुर[2]कौतुकानि [3]निरीक्षमाणः [4]क्षणदाकरास्यः ।
[2]व्यधत्त वासं हृदये [5]मनस्विनां निजैर्गु[6]णैर्हार इवैष [7]हीरः ॥१३३॥

---

1. <u>०पयत्य०</u> हीमु० । 2. <u>निजैर्गुणैर्हार इवैष हीरो व्यधत्त वासं हृदये मनस्विनाम्</u> हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) स्थाने स्थाने । (२) पत्तनकुतूहलानि । (३) पश्यन् । (४) चन्द्रवदनः । (५) पण्डितानाम् । (६) गुणा औदार्यादयः तन्तवश्च । (७) हीरकुमारः ॥१३३॥

हील० **पदे०** । पदे पदे वीप्सायां द्वित्वम् । **अणहिल्लपत्तन**कौतूहलानि प्रेक्ष्यमाणः एष **हीरकुमारः** निजैर्गुणैर्मनस्विनां हृदये वक्षसि हार इव वासं व्यधत्त । यथा हारः हृदये, तन्तुभिस्सूत्रप्रोतत्वेन हृदये तिष्ठति । "हृदयं मनो वक्षश्चे"त्येनेकार्थः । किंभूतः सः ? । क्षणदाकरश्चन्द्रस्तद्वदाननं यस्य सः ॥१३४*॥

हीसुं० **[१]हरिरिव [२]गिरिकुञ्जे मानसे [३]मानसौका इव [४]करकमले वा [५]श्रीपतेष्या(:पा)-[६]ञ्चजन्यः। [७]मुररिपुरिव वाद्‌र्धौ स [८]स्वसुर्धाम्नि तिष्ठन्कमपि कलयति स्म श्रीभरं [९]शावसिंहः ॥१३४॥**

इति पण्डितदेवविमलगणि विरचिते हीरसौभाग्य(सुन्दर) नाम्नि महाकाव्ये गर्भधारण-दोहदोत्पादकथन-गर्भसमय-लक्षणाविर्भावन-जन्म-तन्महोत्सव-बालक्रीडा-पठन-सर्वाङ्ग-लक्षणरूपवर्णनो नाम **तृतीयः सर्गः** ॥

(१) केसरीव । (२) पर्वतवने । (३) हंसः । (४) पाणिपद्मे । (५) कृष्णस्य । (६) कृष्णवादनशङ्खः (७) कृष्णः । (८) भगिन्या गृहे । (९) हीरकुमारः ॥१३४॥

इति तृतीयसर्गावचूर्णिः ॥

हील० **हरि०**। [यथा] सिंहः गिरिगह्वरे तिष्ठति । यथा मानससरसि हंसस्तिष्ठति । यथा लक्ष्मीपतेः कृष्णस्य पाणिपद्मे देवतादत्तः हरिणैववादनयोग्यः पाञ्चजन्यनामा शङ्खः स्थितिं विधत्ते । पुनर्यथा कृष्णो वार्द्धौ अर्थात्क्षीरसमुद्रे वसतिं विधत्ते । तद्वत्स्वभगिन्याः सदने तिष्ठन् कमप्यद्वैतं श्रीभरं शोभातिशयं दधार ॥१३५॥

हील० **→यं प्रासूतशिवाह्वसाधुमघवा सौभाग्यदेवी पुनः**
श्रीमत्कोविदसिंहसीह(सिंह)विमलान्ते वासिनामग्रिमम् ।
तद्ब्राह्मीक्रमसेविदेवविमलव्यावर्णिते हीरयुक्
सौभाग्याभिधहीरसूरिचरिते सर्गस्तृतीयोऽभवत् ॥१३६॥←

इति पं. देवविमलगणिविरचिते हीरसौभाग्यनाम्नि महाकाव्ये श्रीहीरविजयसूरिगर्भाधानइत्यादिपत्तनगमो नाम **तृतीयः सर्गः** ॥
→यं.प्रा.० ॥ १३६॥←

→← एतदन्तर्गतः पाठो हीसुंप्रतौ नास्ति ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐँ नमः ॥

अथ चतुर्थः सर्गः ॥

हीसुं० [1]अथो [2]पुरासन् [3]भरते [4]वृषाङ्कमुखाश्चतुर्विंशतितीर्थनाथाः ।
बाह्यान्यबाह्यानि [5]तमांसि हन्तुं [6]कृतद्विरूपा इव भानुमन्तः ॥१॥

(१) अथेति चतुर्थसर्गप्रारम्भः । (२) पूर्वं तृतीयचतुर्थारकयोः । (३) भरतक्षेत्रे । (४) ऋषभप्रमुखाः (५) अज्ञानानि पापानि वा । (६) निर्मितचतुर्विंशतिरूपा द्वादशसूर्या इव । द्वादशानां द्वित्वभावेन चतुर्विंशतिः स्यात् ॥१॥

हील० **अथौ०**। अथेति चतुर्थसर्गप्रारम्भे । पुरा पूर्वं तृतीयारकपर्यन्तचतुर्थारकमध्ये भरतनाम्नि क्षेत्रे ऋषभनाथप्रमुखाश्चतुर्विंशतिस्तीर्थकृतः आसन्नभूवन् । उत्प्रेक्ष्यते । बाह्यानि दृश्यमानान्यबाह्यानि जीवानामन्तरङ्गवर्त्तीनि तमांसि अन्धकाराणि पापानि वा व्यापादयितुं कृते द्वे रूपे यैस्तादृशा अंशुमन्तः ॥१॥

हीसुं० [1]इक्ष्वाकुवंशाम्बुधिशीतभासां द्वाविंशतिस्तीर्थकृतां बभूव ।
[2]यया [3]तमष्य(: प)ङ्कम[4]पास्य पन्थाः [5]प्राकाशि [6]सिद्धेः शरदेव विश्वे ॥२॥

(१) ऋषभदेवस्य बाल्ये शक्रप्राभृतानीतेक्षुयष्टेरास्वादनाशयेन शक्रप्रतिष्ठापितेक्ष्वाकुवंशः स एव समुद्रस्तत्र चन्द्राणाम् । (२) जिनद्वाविंशत्या । (३) पापकर्दमः अज्ञानकर्दमम् । (४) निराकृत्य । (५) प्रकटीकृतः । (६) मोक्षस्य ॥२॥

हील० **इक्ष्वा०** । द्वाविंशतिर्जिनेन्द्रा इक्ष्वाकुकुले जाता इत्यर्थः । यया द्वाविंशत्या तमः-पङ्कं निराकृत्य जगति मोक्षमार्गः प्रकाशितः । यथा शरत्कालेन पङ्कं विशोष्य पन्थाः प्रकटः क्रियते ॥२॥

हीसुं० बभूवतुर्द्वौ भुवनप्रदीपौ [1]जिनौ यदूनां[2]पुनर[1]न्वये च ।
[2]रथे [3]धूरीणाविव पुष्पदन्ता[4]विवाभ्रमार्गे च भुजा[5]विवाङ्गे ॥३॥[3]

(१) मुनिसुव्रत-नेमिनाथौ । (२) यादवकुले । (३) धुरन्धरौ वृषभौ । (४) नभसि सूर्याचन्द्रमसौ । (५) शरीरे बाहू ॥३॥

हील० बभू० । एकः नेमिरन्यो मुनिसुव्रतश्च, द्वौ जिनौ यदुवंशे जातौ । यथा इन्द्रियायतने शरीरे उर्ज्जस्वलौ दोर्दण्डौ ॥★३॥

हीसुं० [1]सिद्धार्थभूकान्तसुतो जिनानाम[2]पश्चिमोऽजायत [3]पश्चिमोऽपि ।
शशी [4]बभौ[4]पङ्किलपङ्कजास्यकादम्बवद्यस्य [5]यशःसुधाब्धौ ॥४॥

(१) <u>सिद्धार्थराजाङ्गजः</u> । (२) आद्यः । ''अपश्चिमो विपश्चिता''मिति चम्पूकथायाम् । (३)

---

1. <u>०पवाये</u> हीमु० । 2. <u>अरिष्टनेमिर्मुनिसुव्रतश्च स्फूर्जद्भुजाविन्द्रियवेश्मनीव</u> हीमु० । 3. <u>इति जिनाः</u> हील० । 4. <u>व्यभात्पङ्कि०</u> हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चरमोऽपि । (४) कर्दमाकलितकमलवदनः । हंस इव । (५) कीर्तिक्षीरसमुद्रे ॥४॥

हील० **सिद्धा०** सिद्धार्थराजसुतः । **श्रीमहावीर**श्चरमोऽपि सामान्यकेवलिनां मध्ये आद्योऽभूत् । यत्कीर्तिक्षीराब्धौ चन्द्रः । पङ्किलं कमलमास्ये यस्य तादृशो हंसस्तद्वद्भाति स्म ॥*४॥

हीसुं० [१]बाल्येऽपि [२]हेमाद्रिर[३]कम्पि येन [४]प्रभञ्जनेनेव [५]निकेतकेतुः ।
श्रीद्वादशाङ्गी च [६]यतः [७]प्रवृत्ता गुरो[८]र्गिरीणामिव [९]जह्नुकन्या ॥५॥[1]

(१) जन्ममहोत्सवसमये जातमात्रेऽपि । (२) मेरुः । (३) चालितः । (४) वायुनेव । (५) गृहोपरिध्वजः । (६) महावीरात् । (७) प्रादुर्भूता । (८) हिमाचलात् । (९) गङ्गा ॥५॥

हील० **बाल्ये०** । यथा वायुना गृहोपरिध्वजः कम्प्यते तद्वद्येन भगवता बाल्येऽपि मेरुः कम्पितः । यतः भगवतः सकाशात् गणिपिटकं प्रवृत्तम् । यथा हिमाद्रेर्गङ्गा प्रवृत्ता ॥५॥

हीसुं० एकादशासन्ग[१]णधारिधुर्याः [२]श्रीइन्द्रभूतिप्रमुखा[३]अमुष्य ।
[४]आर्योपयामे [५]पुन[६]रात्तमूर्त्ति [७]रुद्राः स्मरं हन्तुमिवेहमानाः ॥६॥

(१) गणधरवृषभाः । (२) गौतमाद्याः । (३) महावीरस्य । (४) पार्वतीविवाहे । (५) द्वितीयवारम् । (६) पूर्वशरीरापेक्षया लब्धशरीरम् । (७) एकादशापि रुद्रा इव । रुद्रा एकादशैवोच्यन्ते ॥६॥

हील० **एका०** । श्रीवीरस्य एकादशगणधरा बभूवुः । उत्प्रेक्ष्यते । पार्वतीपाणिग्रहे लब्धकायं स्मरं हन्तुं काङ्क्षन्तः रुद्राः ॥६॥

हीसुं० बभूव[१] मुख्यो [२]वसुभूतिसूनुस्तेषां [३]गणीनामिह[४]गौतमाह्वः ।
यो [५]वक्रभावं न बभार [६]पृथ्वी-सुतोऽपि नो [७]विष्णुपदावलम्बी ॥७॥

(१) प्रकृष्ट आदिमो वा । (२) गौतमः । (३) एकादशगणधराणाम् । (४) गौतमनामा । (५) कुटिलतां वक्रो मङ्गलश्च । तत्र त्वम् । (६) पृथ्व्या ब्राह्मण्या भूमेश्च । (७) नारायणचरणं गगनं वावलम्बते इत्येवंशीलः ॥७॥

हील० **बभूव०** । तेषामाद्यो **गौतमो**ऽभूत् । यः **पृथ्व्याः** ब्राह्मण्या क्षितेश्च सुतोऽपि वक्रतां न धत्ते स्म । "आरो वक्र लोहिताङ्गो मङ्गलोऽङ्गारकष्कु(: कु)ज "इति हैम्याम् । विष्णुपदमाकाशावलम्बी अपि न विष्णुभक्तः ॥७॥

हीसुं० [१]यत्पाणिपद्मः स[२]पुनर्भवोऽपि [1]दत्ते [३]नतानाम[४]पुनर्भवं यत् ।
शिष्यीकृता येन [५]भवं विहाय [६]शिवं श्रयन्ते च तदत्र[७]चित्रम् ॥८॥

(१) गौतमकरकमलम् । (२) नखयुक्तः । (३) प्रणतजनानाम् । (४) मोक्षम् । (५) संसारं ईश्वरं च । (६) मोक्षं शम्भुं च । (७) आश्चर्यम् ॥८॥

हील० **यत्पा०** । सह पुनर्भवैर्नखैर्वर्त्तते । तादृशः करो जनानां मोक्षं दत्ते । पुनर्येन शिष्यीकृता जना भवं -ईशं त्यक्त्वा शिवं-शम्भुं श्रयन्ते तच्चित्रम् । तत्त्वतस्तु संसारं मुक्त्वा मोक्षमाश्रयन्ते ॥८॥

---

1. इति वीरजिनः हील । 2. ०त्ते जनानाम० हीमु० ।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

हीसुं० [1][१]लूतास्यतन्तूनवलम्ब्य वज्रावलम्बरश्मीनिव यः शयाभ्याम् ।
नन्तुं जिना[२]नार्षभिक्लृप्तमूर्त्ती[३]नष्टापदोर्वीधरमारु[४]रोह ॥९॥
(१) कर्णनाभः कोलिकस्तद्वदनाद्विनिर्गतजालतन्तवः रज्जवस्तान् कराभ्यामाश्रित्य वज्ररज्जव इव हस्ताभ्याम् । (२) भरतचक्रिनिर्मितप्रतिमान् । (३) अष्टापदपर्वतम् । (४) चटितः ॥९॥

हील० [सूर्य० । र]ज्जूरिव सूर्यकिरणान् कराभ्यामवलम्ब्य भरतचक्रिकारितजिनबिम्बानि नन्तुं यो गौतमोऽष्टापदपर्वतमधिरूढवान् ॥*९॥

हीसुं० [१]कथं लभेतास्य [२]तुलां सुरद्रुर्यद्यस्य नामापि [३]पिपर्त्ति [४]कामान् ।
[५]तपस्विनोऽप्य[६]भ्यवहारयन्यो द्विधा[७]मृतास्वादजुषः पुपोष ॥१०॥[2]
(१) केन प्रकारेण । (२) साम्यम् । (३) पूरयति । (४) अभिलाषान् । (५) तापसान् । (६) भोजयन् । (७) सुधा मोक्षश्च, तस्यास्वादो-भोगस्तं सेवन्ते इति ॥१०॥

हील० [कथं ल० ।] सुरद्रुः साम्यं कथं प्राप्नुयात्, यदि अस्य नाम समीहितानि पूरयति । परं कल्पवृक्षनाम्ना कोऽप्यर्थो न सरीसर्त्ति । पुनर्यस्तपस्वि[नो भोजयंश्च] द्विधा सुधाया मोक्षस्य च स्वादधारिणः कृताः ॥१०॥

हीसुं० आसीत्सु[१]धर्म्मा ग[२]णभृत्सु तेषु [३]श्रीवर्धमानप्रभुपट्टधुर्यः ।
विहाय[५] विश्वे [४]सुरभीतनु(नू)जं कः स्तात्परो[६] [७]धुर्यपदावलम्बी ॥११॥
(१) सुधर्मस्वामी । (२) गणधरेषु । (३) महावीरपट्टधुरन्धरः । (४) वृषभम् । सुरभीशब्दः दीर्घ ईकारान्तोऽपि दृश्यते । यथा कल्पकिरणावल्यां स्वप्नाध्याये - "स्वप्ने मानवमृगपतितुरङ्गमातङ्गवृषभसुरभीभि"रिति । (५) त्यक्त्वा । (६) अन्यः । (७) धुरीणस्थानकाश्रयः ॥११॥

हील० तेषु सुधर्मास्वामी पट्टधारी अभूत् । जगति वृषभं त्यक्त्वा धुरन्धरः कः [स्तात् ॥११॥]

हीसुं० यः पञ्चमोऽभूद्[१]गणपुङ्गवानां किं [२]पञ्चमीं [३]स्वेन गतिं [४]यियासुः ।
[५]यत्रोक्तिभि[६]स्तीर्थकृतां दिदीपे शुक्तिव्रजे वारिमुचामि[७]वाद्भिः ॥१२॥
(१) गणधरेन्द्राणाम् । (२) मोक्षलक्षणाम् । (३) आत्मना । (४) गन्तुमिच्छुः । (५) सुधर्म्मस्वामिनि । (६) महावीरवचनैः । (७) मेघपानीयैः ॥१२॥

हील० यः प०। यः सुधर्मा गणधारिणां मध्ये पञ्चमोऽभूत् । किम् ?। उत्प्रेक्ष्यते । आत्मना मुक्तिं गन्तुक इव यत्रागमैर्दीप्यते । यथा मेघजलैः शुक्तिषु मौक्तिकीभूय दीप्यते ॥१२॥

हीसुं० [१]सरस्वतीशालिलसज्जिनश्री[२]रगाधमध्यो [३]रसभासमानः ।
सिद्धान्त आस्ते [४]यदुपज्ञमुद्या[५](द्य)[६]दभङ्गभङ्गः [७]सरितामिवेशः ॥१३॥[3]
(१) सरस्वत्या श्रुतदेवतया सरः प्रसरणं मुखेऽस्त्यस्यास्तत्रत्वेन शोभते इत्येवंशीलः । पक्षे -नदीभिः दीप्यमाना तीर्थकृतां चतुस्त्रिंशदतिशयादिलक्ष्मीर्यत्र । पक्षे-स्फुरन्त्यौ कृष्णलक्ष्म्यौ

1. सूर्यस्य रश्मीनवलम्ब्य हीमु० । 2. इति श्री गौतमस्वामी हील० । 3. इति सुधर्मस्वामी[१] हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यत्र । (२) महार्थतया अथासपारः अतलस्पृक्, मध्यश्च । (३) शान्तरसादिभिः पानीयैश्च शोभमानः । (४) यः सुधर्मास्वाम्येवाद्यं ज्ञानं यत्र । सुधर्मस्वामिकृत इत्यर्थः । (५) प्रकटीभवन्तः । (६) सम्पूर्णा रचनास्तरङ्गाश्च यत्र । (७) समुद्रः ॥१३॥

हील० सरस्व०। यः सुधर्मास्वामी उपज्ञा आद्यज्ञानं यत्र तत्कर्तृकत्वात् सिद्धान्तः समुद्र इवास्ते । किंभूतः सिद्धान्तः समुद्रश्च ? । श्रुतदेव्या नद्या च शाली दीप्यन्ती (दीप्यमाना) जिनानां श्रीर्यत्र। पक्षे क्रीडत्कृष्ण-लक्ष्मीवान् । पुना रसै रसेन जलेन च शोभितः । पुनः प्रकटीभवन्तोऽभङ्गा भङ्गास्तरङ्गाश्च यत्र ॥१३॥

हीसुं० [1]गणीन्दुना [2]पट्टरमा [3]गणीन्दुः [4]पट्टश्रिया च [5]व्यतिभासते स्म ।
निशा [6]निशेशेन निशा [7]निशेश इवापि [8]शंभोष्य[9](:प)रिचारिचेताः ॥१४॥

(१) सुधर्मस्वामिना । (२) पट्टश्रीः । (३) सुधर्मस्वामी । (४) पट्टश्रिया । (५) परस्परं शोभते स्म । (६) रात्रिश्चन्द्रेणेव । (७) रात्र्याचन्द्र इव । (८) तीर्थकृत् ईश्वरश्च, तस्य । (९) सेवासक्तमानसः ॥१४॥

हील० गणी० । सुधर्मस्वामिना पट्टश्रीः, पट्टश्रिया स शोभते स्म । यथा चन्द्रेण निशा, निशा कृत्वा चन्द्रः शुशुभे । सोऽपीशसेवकः, अयमपि श्रीवीरसेवकः ॥१४॥

हीसुं० यशःश्रिया[1]धःकृतकुन्दकम्बुर्जम्बूकुमारोऽजनि तस्य पट्टे ।
[2]लघोरपि [3]स्वस्य यतोऽभि[4]भूतिं पश्यन्ह्रिया[5]दृश्य इव स्मरोऽभूत् ॥१५॥

(१) तिरस्कृतमुचकुन्दशङ्खः । (२) बालादपि । (३) आत्मनः । (४) पराभवम् । (५) अनङ्गः ॥१५॥

हील० यशः०। तत्पट्टे श्रीजम्बूकुमारोऽजनि । शिशोरपि यतः कुमारात् स्वपराभवं पश्यन् स्मरः । उत्प्रेक्ष्यते । लज्जयेवादृग्गोचरः अभूत् ॥१५॥

हीसुं० [1]उज्झांचकारैष महेभ्यकन्या [2]मदेन्दिरामूर्त्तिमतीरिवाष्टौ ।
नवाधिकां [3]यो नवतिं [4]हिरण्य[1] कोटीश्च चेटीरिव [5]दोषराजा(ज्ञा)म् । १६॥

(१) त्यजति स्म । (२) मदलक्ष्मीं । (३) नवनवतिम् । (४) स्वर्णकोटिम् । (५) अष्टादशदोषभूपानां दासीरिव ॥१६॥

हील० उज्झा० । अष्ट पदानिवैष अष्टौ कन्यास्त्यजति स्म । पुनर्यो नवनवति सुवर्णकोटीस्त्यजति स्म। उत्प्रेक्ष्यते । अष्टादशदोषभूपचेटीस्त्यजति स्म ॥१६॥

हीसुं० [1]वशंवदीभूतजगत्त्रयस्य न [2]पुस्फुरेऽस्मिन्कमनस्य[3] शक्त्या ।
[4]हविर्भुजो [5]भस्मितकाननस्य विस्फूर्ज्यते किं [6]महसा[7]म्बुराशौ ॥१७॥

(१) वश्यं जातं त्रिभवुनं यस्य । (२) न स्फुरितम् । (३) मदनसामर्थ्येन । (४) अग्नेः । (५) ज्वालितवनस्य । (६) प्रतापेन । (७) समुद्रे ॥१७॥

हील० वशं० । अस्मिन् कामशक्त्या न स्फुरितम् । यथा वह्नेर्महसां प्रतापेन । किमिति प्रश्नेऽब्धौ स्फूर्ज्यते । अपि पुनः ॥१७॥

---

1. ०कोटीनु हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० पश्यन्तु [1]वैदुष्यममुष्य जम्बूप्रभोर्व[2]पुर्भर्त्सितमत्स्यकेतोः।
विश्वं [3]वृषस्यन्त्यपि [4]पांशुलेव [5]वशीकृता येन [6]शिवस्मि[1]ताक्षी ॥१८॥[2]
(१) चातुर्यम् । (२) शरीरसौन्दर्यनिर्जितमदनस्य । (३) भुवनमप्यभिलषन्ती । (४) व्यभिचारिणीव। (५) निजवशे कृता । त्वया सङ्गं विधाय नान्यं भारतमानुषमथाभिलषामीत्यर्थः। (६) सिद्धिश्रीः ॥१८॥

हील० पश्यन्तु चातुर्यमस्य यत्पांशुलेव विश्वं कामुकी अपि मुक्तिर्येन स्वायत्ता कृता ॥*१८॥

हीसुं० अलंचकार प्रभवप्रभुस्तत्पट्टश्रियं पुण्ड्र[1] इवे[2]न्दुवक्त्राम् ।
[3]स्तेनोऽपि सार्थेश[4] इवा[5]ङ्गिनो यः [6]श्रेयःश्रियं प्रापयदत्र चित्रम् ॥१९॥
(१) तिलक इव। (२) कान्ताम्। (३) चौरोऽपि। (४) सार्थनाथ इव। (५) प्राणिनः। (६) मुक्तिलक्ष्मीम् ॥१९॥

हील० जम्बूस्वामिपट्टं प्रभवस्वामी भूषयति स्म । यथा चन्द्रमुखीं तिलक[मलंकुरुते ।] यश्चौरान्सन् सार्थपतिरिव जनान् कुशलेन लक्ष्मीं-मोक्षलक्ष्मीं च लम्भयति स्मेति चित्रम् ॥१९॥

हीसुं० किं [1]वर्ण्यते [2]वर्ण्यगुणस्य [3]चौर्यचातुर्यमस्य प्रभवस्य भर्तुः ।
[4]अहार्यमप्येष मनोनिधान-मपाहरद्य[5]त्त्रिदिवेन्दिरायाः ॥२०॥[4]
(१) प्रशस्यते। (२) लोकोत्तरगुणस्य। (३) तस्करतायाः निपुणताम्। (४) हर्त्तुमशक्यमपि। (५) स्वर्गलोकलक्ष्म्याः ॥२०॥

हील० किं[वर्ण्य० । अस्य] चौर्यचातुर्यं किं वर्ण्यते । यत् स्वर्वधूनां अहार्यमपि देवाश्रयत्वान्मनोनिधानं अयं जहार । मुक्तिगमनाभावात् स्वर्लोक[मेवालंकृतवा]नित्यर्थः ॥२०॥

हीसुं० शय्यंभवोऽभूषयदस्य पट्टं सिंहासनं [5]पै[2]त्र्यमिवावनीन्द्रः ।
[3]कलिन्दिका [4]मौक्तिकमालिकेव यत्कण्ठपीठे [5]विलुठत्यकुण्ठा ॥२१॥
(१) प्रभवप्रभोः। (२) पितृसम्बन्धि। (३) सर्वविद्या। (४) हारयष्टिरिव। (५) स्फुरन्ती ॥२१॥

हील० शय्यं०। शय्यंभवः अस्य पट्टं अभूषयत्। यथा राजा पितुः सिंहेनोपलक्षितमासनं भूषयति। [मुख एव] कलिन्दिका सर्वविद्या मुक्ताहारलतेव दीप्यमाना विलुठति ॥*२१॥

हीसुं० [1]यूपादधस्तः प्रतिमां [2] जिनेन्दोर्वाचा स[3] वाचंयमपुङ्गवस्य ।
[4]दृक्संज्ञयेव [5]स्वगुरोष्कि[6](: कि)रीटी [7]नाराचगङ्गां [8]प्रकटीचकार ॥२२॥
(१) यज्ञस्तम्भादधोविभागात् । (२) शान्तिनाथबिम्बम् । (३) शय्यंभवगुरुवचनात् । (४) दृष्टेश्चेष्टया-भ्रूभङ्गविकारेण (५) द्रोणाचार्यस्य (६) अर्जुनः । (७) बाणगङ्गाम् । (८) प्रकटीकृतवान् ॥२२॥

हील० यूपा०। यः प्रभवप्रभोर्वाचा यूपात् अधस्तात् शय्यंभवभट्टः श्रीशान्तिनाथप्रतिमां कर्षति स्म ।

1. ०तास्या हीमु० । 2. इति जम्बूस्वामी[२] हील० । 3. त्रिदिवानायाः हील० । 4. इति प्रभवस्वामी[३] हील० ।
5. पित्र्य० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यथा किरीटी गुरुगाङ्गेयदृष्ट्या बाणगङ्गां प्रकटीकरोति स्म ॥२२॥

हीसुं० **वगाह्य[१] शास्त्रं [२]मनकाह्वसूनोः कृतेऽकृत श्री[३]दशकालिकं यः ।**
हरिः सुधामु[४]द्धृतवान्सु[५]पर्ववर्गस्य [६]निर्मथ्य यथा[७]म्बुनाथम् ॥२३॥[1]

(१) चतुर्दशपूर्वान् निर्मथ्य । (२) मनकनामनन्दनकृते । (३) दशवैकालिकं कृतवान् । (४) कृष्टवान् । (५) देवगणस्य । (६) विलोड्य । (७) समुद्रम् ॥२३॥

हील० **वगा०।** यः समयमवगाह्य मनककृते दशवैकालिकं सूत्रं चक्रे । यथा कृष्णः समुद्रं विलोड्य देववृन्दकृते सुधामुद्धृतवान् ॥*२३॥

हीसुं० **सम्पूरयन्कीर्ति[१]नभोनदीभिर्दिशो यशोभद्रगणाधिराजः ।**
व्यभूषयत्पट्टममुष्य [२]भूभृदधित्यकां दस्युरिवद्विपानाम् ॥२४॥

(१) गङ्गाप्रवाहैः । (२) शैलोपरिभूमीम् । (३) केसरीव ॥२४॥

हील० **यशोभद्रसूरिरस्यं** पट्टं विभूषयति स्म । यथा केसरी शैलोद्ध्र्वभूमीं भूषयति ॥२४॥

हीसुं० **[१]एतद्यशः क्षीरधिनीरपूरैः स[२]म्पूरितायां परितस्त्रिलोक्याम् ।**
[३]अबुध्यमानोऽ[४]म्बुनिधिं [५]स्वशय्यां [६]पद्मेशयोऽभूदिव [७]पद्मनाभः ॥२५॥[2]

(१) <u>यशोभद्रसूरि</u>कीर्तिक्षीरसमुद्रप्रवाहैः । (२) धवलीकृतायाम् । (३) अजानन् । (४) समुद्रम् । (५) निजशयनयोग्यम् । (६) पद्मे शेते इति व्युत्पत्त्या पद्मेशयः । (७) कृष्णः॥२५॥

हील० **एत०** । **श्रीयशोभद्र**यशोभिर्धवलितायां भुवि स्वशय्यां अजानन् कृष्णः पद्मशायी जातः ॥२५॥

हीसुं० **[१]संभूतिपूर्वो विजयो गुरुस्तत्पट्टं श्रिया पल्लवयांचकार ।**
[२]कदम्बजम्बूकुटजावनीजकुञ्जं [३]नभोम्भोद इवाम्बुवृष्ट्या ॥२६॥

(१) <u>संभूतिविजय</u>गुरुः । (२) नीपः 'कुडउ' इति प्रसिद्धः । त्रयोऽपि द्रुमाः प्रावृषि पुष्यन्ति । (३) श्रावणजलधरः ॥२६॥

हील० **सम्भूतिविजयोऽस्य पट्टमभूषयत्।** यथा श्रावणमेघः कदम्ब-जम्बू-कुटजान् वृक्षान् पल्लवयति॥२६॥

हीसुं० **[१]संहर्षरोषात्स्व[२]जिघांसुमेतत्प्र[३]तापमार्त्तण्डमवेक्ष्य साक्षात् ।**
[४]युयुत्सया हैह[५]यवत्सहस्रं [६]सहस्रभासेव [७]करा ध्रियन्ते ॥२७॥[3]

(१) स्पर्धात् क्रोधात् । (२) निजं हन्तुमिच्छन्तम् । (३) सूर्यम् । (४) सङ्ग्रामं कर्त्तुमिच्छया । (५) कार्त्तवीर्य इव "ङ्ग्राममनिर्विष्टसहस्रबाहु" रिति रघुवंशे तथा -"बाहुसहस्रार्जुनः पिशुन" इति सूक्ते । (६) भानुनेव । (७) किरणा हस्ताश्च ॥२७॥

हील० **संहर्ष०** । स्पर्द्धया क्रोधात् स्वं हन्तुमिच्छुं अस्य प्रतापसूर्यं दृष्ट्वा सूर्येण सहस्रं किरणा ध्रियन्ते । यथा योद्धुमिच्छया अर्जुनः सहस्रपाणीन् धत्ते ॥२७॥

---

1. <u>इति शय्यंभवगणधरः</u> [४] हील० । 2. <u>इति यशोभद्रसूरिः</u> ५ हील० । 3. <u>इति सम्भूतिविजयसूरिः</u> ६. हील ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० स तत्स[1]तीर्थ्योऽजनि भद्र[1]बाहुसूरिः स[2]मग्रागमपारदृश्वा ।
[3]दशाश्रुतस्कन्धत [4]उद्दधार [5]वज्राकराद्व[6]ज्रमिवात्र [7]कल्पम् ॥२८॥

(१) सतीर्थ्यास्त्वेकगुरवः । (२) समस्तसिद्धान्तपारगामी । (३) नवमपूर्वे दशाश्रुत-स्कन्धाध्ययनात् (४) उद्धृतवान् । (५) हीरकखनेः । (६) हीरकमणि । (७) कल्पसूत्रम् ॥२८॥

हील० स त० । स **भद्रबाहुः स्वामी सम्भूतिविजयस्य** गुरुभ्राताऽभूत् । यः प्रत्याख्यानाभिधे नवमपूर्वे दशाश्रुतस्कन्धाध्ययनतः कल्पं उद्धृतवान् । यथा कश्चिद्भाग्यवान् हीरकाणामाकराद्रत्नमुख्यमुद्धरति ॥*२८॥

हीसुं० [1]उपप्लवो [2]मन्त्रमयोपसर्गहरस्तवेना[3]वधि येन सङ्घात् ।
[4]जनुष्मतो [5]जाङ्गुलिकेन [6]जाग्रद्गरस्य [7]वेगष्कि(: कि)ल [8]जाङ्गुलीभिः ॥२९॥

(१) वराहमिहिरव्यन्तरविनिर्मितसङ्घजनोपद्रवम् । (२) विषधरस्फुलिङ्गनाममन्त्रसङ्कलितोपसर्गहरस्तवनेन कृत्वा । (३) निवारितः । (४) जनस्य । (५) विषभिषजा । (६) प्रसरद्भुजङ्गमविषस्य । (७) विस्तारः (८) भुजगविषापहारिणीविद्याभिः ॥२९॥

हील० **येनोपसर्गहरस्तवेन** सङ्घात् उपद्रवो हतः । यथा जाङ्गुलिकेन स्वविद्याभिर्जनात् प्रसरद्विषवेगो हन्यते ॥२९॥

हील० **यत्कीर्त्तिगङ्गां प्रसृतां त्रिलोक्यामालोक्य किं षण्मुखतां दधानः ।
जयद्भ्रमीभिर्जननीं दिदृक्षुर्गङ्गासुतोऽध्यास्त मयूरपृष्ठम् ॥३०॥**

इति भद्रबाहुस्वामी, द्वयोरेकपट्टधरत्वम् ।

यत्कीर्त्तिगङ्गां व्याप्तां दृष्ट्वा मुखषट्केन स्वमातरं द्रष्टुं कुमारो मयूरमारुरोह ॥३०॥

हीसुं० श्रीस्थूलभद्रेण नि[1]जान्ववायस्त्रोतस्विनीनायककौस्तुभेन ।
विश्वत्रयी [2]तद्यशसेव शोभामलम्भि त[3]त्पट्टपयोधिपुत्री ॥३०॥

(१) स्वकीयो यो नागरनामब्राह्मणवंशः स एव सागरस्तत्र कौस्तुभरत्नसदृशः । नारायण-भुजस्थास्तुः कौस्तुभो मणिः । (२) स्थूलभद्रस्य कीर्त्येव । (३) संभूतिविजयप्रभुपट्टश्रीः ॥३०॥

हील० यथा **स्थूलभद्र**कीर्त्या जगच्छोभायितं तथा कौस्तुभतुल्येन **स्थूलभद्रेण**पट्टलक्ष्मीः शोभां प्रापिता ॥३१॥

हीसुं० [1]प्रवालमुक्तामणिमञ्जिमश्रीचित्राप्सरः स्वर्द्विरदाश्वदृश्यम् ।
कोशागृहं [2]प्रावृषि यो[2] निषेवे हरिर्घन[3]च्छायमिवाम्बुराशिम् ॥३१॥

---

1. भद्रबाहुः सू० हीमु० । 2. यः सिषेवे हिमु० ।

(१) विद्रुममौक्तिकरत्नानां चारुतायाः शोभा यस्मिन्, तथा आलेख्यीकृतैरप्सरोभिरैरावणै-रुच्चैःश्रवोभिश्च द्रष्टुं योग्यम् । समुद्रे तु चित्रमाश्चर्यकारि अप्सर ऐरावणोच्चैःश्रवो दर्शनार्हम् । सर्वेषां समुद्रोत्पन्नत्वात् । (२) वर्षाकाले । (३) निबिडा मनोज्ञा मेघानां च शोभा प्रतिच्छायिका च यत्र ॥३१॥

हील० य: **कोशा**गृहे प्रथमं चतुर्मासकं कृतवान् । यथा कृष्णः समुद्रं यातः । किंभूतं कोशागृहं समुद्रं च ?। प्रवालादियुतं श्रीयुतं चित्रितदेवी-एरावणोचैःश्रवैः प्रेक्ष्यम् । घना सान्द्रा वा मेघस्य छाया यत्र ॥*३२॥

हीसुं० [१]पण्याङ्गनायाष्कि[२](: कि)लकिञ्चितानि न लेभिरे यस्य हृदि प्रवेशम् ।
[३]धनुर्भृतः सा[४]नुमतः शिलायां [५]पृषत्कपङ्क्तेः [६]प्रहतानि [७]यद्वत् ॥३२॥

(१) कोशावेश्यायाः । (२) विलासविशेषः (३) धनुर्धरस्य । (४) गिरेः । (५) शरराज्याः । (६) प्रहाराः । (७) यथा ॥३२॥

हील० **पण्या०**। वेश्यायाः विलसितानि यच्चेतसि न प्रविष्टानि । यथा धनुर्धरस्य बाणश्रेणिप्रहाराः शैलशिलायां न लगन्ति ॥३३॥

हीसुं० [१]प्राग्निर्ज्जित श्रीरथनेमिमुख्यवीरावलीनामिव [२]वैरशुद्धेः ।
[३]विधित्सया[४]ध्यास्य [५]तदाश्रयं यो [६]ध्यानाऽसिनाऽ[७]नङ्गनृपं जघान ॥३३॥

(१) पूर्वकाले पराजितनेमिनाथलघुसहोदररथनेमिप्रमुखसुभटश्रेण्याः । (२) वैरप्रतिक्रियायाः । (३) कर्त्तुं काङ्क्षया । (४) आश्रित्य-प्रविश्य । (५) कोशारूपं मदनमन्दिरम् । (६) प्रणिधानखड्गेन । (७) स्मरराजम् ॥३३॥

हील० **प्रा०** । स्मरजितानां रथनेमिप्रमुखाणां वीराणां वैरशोधनस्य कर्तुमिच्छया यः कोशागृहाश्रितं कामं जघान ॥३४॥

हीसुं० [१]चक्रीव रत्नानि [२]चतुर्दशापि पूर्वाणि धत्ते[३]स्म [४]पतिर्यतीनाम् ।
यश्च [५]क्वचिद्देवकुले [1][६]स्वजामीश्चि[७]त्रीयितुं [2]तथ्य [८]इवास सिंहः ॥३४॥

(१) चक्रवर्त्तीव । (२) चतुर्दशरत्नानीव चतुर्दशपूर्वाणि । (३) चारयति स्म । (४) स्थूलभद्रः । (५) कुत्रचिद्यक्षाद्यायतने । (६) निजभगिनीर्यक्षा-यक्षदिन्नाप्रमुखाः । (७) आश्चर्यमुत्पादयितुम् । (८) सत्य इव ॥३४॥

हील० यः चक्रीव चर्तुदश पूर्वाणि क्वचित्सूत्रतः क्वचित्सूत्रार्थतः धत्ते स्म । पुनर्यः क्वचिद्देवगृहे स्वजामीश्चित्रयुक्ताः कर्तुं सिंहरूपधारको बभूव । यथा सत्यः पञ्चाननो भवति ॥*३५॥

---

1. स्वजामीः स्वजामिं वा इति हीलप्रतौ पाठः । 2. सत्य हीमु०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]धर्म्मोपदेशच्छलतः[1] [२]स्वपाणिसंज्ञाज्ञया [३]स्तम्भतलाददर्शि ।
निधिः स्वनिक्षिप्त [४]इव [५]प्रवासिसुहृद्गृहिण्या[2] [६]गृहमे[७]त्य येन ॥३५॥[3]

(१) धर्मदेशनाव्याजात् । (२) निजहस्तदर्शनरूपादेशेन । (३) स्तम्भाधःप्रदेशात् । (४) आत्मना भूमौ स्थापित इव । (५) परदेशगतनिजमित्रप्रियायाः । (६) मित्रमन्दिरम् । (७) आगत्य ॥३५॥

हील० येनो०। परदेशगतस्य मित्रस्य पत्न्या गृहे आगत्य येन उपदेशमिषात् स्वकरसंज्ञादेशेन स्थम्भतलान्निधिरदर्शि । यथा स्वनिक्षिप्तो दर्श्यते ॥*३६॥

हीसुं० पट्टेऽथ [१]तस्यार्यमहागिरिश्चापरः[२]क्रमादार्यसुहस्तिसूरिः ।
बभूवतुर्धर्म्मधुरं दधानौ रथे यथा सारथिकस्य [३]रथ्यौ ॥३६॥

(१) स्थूलभद्रस्य । (२) आर्यमहागिरि-आर्यसुहस्तिनामानौ । (३) रथस्य वोढारौ वृषभौ ॥३६॥

हील० तत्पट्टे द्वौ पट्टधरो बभूवतुर्यथा नियन्तुः रथे द्वौ वृषभौ भवतः ॥३७॥

हीसुं [१]मरुद्गृहा[२]दार्यसुहस्तिमूर्त्तिर्म[३]रुद्रुमः[4] क्षोणिमिवोत्ततार ।
[४]कृपार्णवेन [५]द्रमकोऽपि येन [६]त्रिखण्डभूमीप्रभुता[७]मलम्भि ॥३७॥

(१) स्वर्ग्गलोकात् । (२) आर्यसुहस्तिसूरिशरीरः । (३) कल्पवृक्षः । (८) दयासमुद्रेण । (५) भिक्षुकोऽपि । (६) षोडशसहस्रदेशाधिपत्यम् । (७) प्रापितः ॥३७॥

हील० मरु० । स्वर्गात् आर्यसुहस्तिमिषात्सुरतरुरवातरत् । यत्प्रसादाद् द्रमकोऽपि त्रिखण्डभूमी जातः ॥*३८॥

हीसुं० [१]भूसुभ्रुवो भर्तृतया [२]प्रगल्भभूषाविशेषानिव [३]शातकौम्भान् ।
सपादलक्षानिह संप्रतिर्यो निर्मापयामास [४]महाविहारान् ॥३८॥

(१) भूमीस्त्रियाः । (२) मनोज्ञाभरणविशेषान् । (३) सुवर्णसम्बन्धिनः । (४) उत्तुङ्गशृङ्गप्रासादान् ॥३८॥

हील० यः इह जगति सपादलक्षान्महाविहारान् शिल्पिभिः कारयामास । उत्प्रेक्ष्यते । पृथ्व्याः पतित्वेन कारितान्प्रगल्भान्मनोज्ञान्भूषार्थं तिलकानिव ॥३९॥

हीसुं० यः संप्रतिक्षोणिपतिः सपादकोटीर्नु पेटीः स्वयशोनिधीनाम्
[१]स्याद्वादिनां [२]सद्मसु [३]शिल्पिसङ्घै[४]रचीकर[५]त्पारगतीयमूर्त्तिः(र्त्तीः) ॥३९॥

1. येनोपदे० हीमु० । 2. ०ण्याः सदने समेत्य हीमु०। 3. इति स्थुलभद्रस्वामी ७ हील०। 4. भूमौ मरुद्रुक्ष इवोत्त० । हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) जिनानाम् । (२) गृहेषु प्रासादेषु । (३) सूत्रधारनिकरैः । "सङ्घसार्थौ तु देहिनां [1]समूहे" । (४) कारयति स्म । (५) तीर्थकृतां प्रतिमाः ॥३९॥

हील० यः सम्प्रतिराजा स्वकारितप्रासादेषु सूत्रधाराणां समूहैः कृत्वा सपादकोटीर्जिनानां प्रतिमा अचीकरन्निर्मापयामासिवान् । नु इति वितर्के । आत्मनो यशांस्येव निधयो-निधानानि तेषां मञ्जूषा इव ॥४०॥

हीसुं० [१]नक्तं [२]नलिन्यादिमगुल्मनामविमानमार्ग्गः प्रभुणा च येन ।
[३]स्नेहप्रियेणेव महेभ्यसूनोरदर्श्यवन्तीसुकुमालनाम्नः ॥४०॥

(१) रात्रौ । (२) नलिनीगुल्मविमानमार्गः तपस्याग्रहणपूर्वश्मशानकायोत्सर्गपरीषहसहनलक्षणः । (३) प्रदीपेन ॥४०॥

हील० नक्तं० । येनावंतीसुकुमालस्यः नलिनीगुल्मविमानमार्गः दर्शितः । यथा प्रदीपेन मार्गः दर्श्यते ॥४१॥

हीसुं० [१]स्थाने [२]गतस्य त्रिदिवं [२]स्ववपुर्व्यधाद[३]वन्तीसुकुमालसूनुः ।
नाम्ना महाकाल इतीह [४]पुण्यपानीयशालामिव सार्वशालाम् ॥४१॥

(१) देवलोकगमनभूमौ । (२) निजतातस्य । (३) अवन्तीसुकुमालस्य नन्दनः । (४) सुकृतप्रपाप्रसादम् ॥४१॥

हील० स्थाने० । अवन्तीसुकुमालपुत्रः उज्जयिन्याष्प(: प)रिसरवर्त्तिकन्थेरिकावनश्मशाने अवन्तीपार्श्वनाथ-प्रासादं चकार । यथा प्रपा कार्यते ॥*४२॥

हीसुं० [१]श्रीमत्सुहस्तिव्रतिवासवस्य श्रीसुस्थितः सुप्रतिबद्धसूरिः ।
पदं [२]विनेयौ नयतः स्म लक्ष्मीं क्रमं [३]मुरारेरिव [४]पुष्पदन्तौ ॥४२॥

(१) सुहस्तिसूरीन्द्रस्य । (२) शिष्यौ । (३) गगनम् । (४) सूर्यचन्द्रौ ॥४२॥

हील० श्रीसुहस्तिसूरिपट्टे द्वौ विनेयौ भवतः स्म । यथा मुरारिचरणे आकाशे पुष्पदन्तौ सूर्याचन्द्रमसौ । पुष्पदन्तौ "पुष्पदन्तावेकोक्त्या शशिभास्करौ" शुशुभाते ॥४३॥

हीसुं० प्रीतिं सृजन्ती [१]पुरुषोत्तमानां [२]दुग्धाम्बुराशेरिव [३]पद्मवासा ।
[४]हृदा [५]जिनं बिभ्रत आविरासीत्त[६]त्सूरियुग्मादिह [७]कौटिकाख्या ॥४३॥[3]

(१) पुरुषश्रेष्ठानां विष्णूनां च । (२) क्षीरसमुद्रात् । (३) लक्ष्मीः । (४) मनसा मध्येन च । (५) अर्हन् विष्णुश्च । (६) सुस्थित-सुप्रतिबद्धसूरिद्वन्द्वात् । (७) कौटिकशाखा ॥४३॥

हील० प्रीतिं० । यथा कृष्णस्य प्रीतिकारिणी लक्ष्मीः समुद्रादुत्पन्ना तथा तस्मात्सूरियुग्मात् कोटिकगण इति

---

1. वृन्दे हीमु० । 2. स्ववपुस्त्रिदिवं गतस्य व्य० हीमु० । 3. इति सुस्थित-सुप्रतिबद्धसूरी, एकपट्टधरौ ९ हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाम बभूव । किंभूतात् तत्सूरियुग्मात् दुग्धाम्बुराशेश्च ?। हृदयेन मध्येन च तीर्थङ्करं कृष्णं च धारयतः ॥४४॥

हीसुं० [1]श्रीइन्द्रदिन्नव्रति[१]सार्वभौमस्त[२]त्पट्टलक्ष्मीतिलकं बभूव ।
[३]निशुम्भ्यते [४]दाम्भिकता स्म येन [५]कलिन्दकन्येव [६]हलायुधेन ॥४४॥

(१) चक्रवर्ती । (२) सुस्थित-सुप्रतिबद्धसूरिपट्टश्रियास्तिलकम् । (३) हन्यते स्म । (४) कापट्यम् । (५) यमुनेव । (६) बलभद्रेण ॥४४॥

हील० तत्पट्टे **श्रीइन्द्रदिन्नसूरि**र्जातः । येन कापट्यं निर्दलितम् । यथा बलभद्रेण यमुना पराभूता । ''रुक्मिप्रलम्बयमुनाभिदनन्तभाल'' इति हैम्याम् ॥४५॥

हीसुं० [१]पक्षद्वयं [२]भिन्नतमोभरेण [३]पित्रोष्प(: प)वित्रीक्रियते स्म येन ।
[४]कुबेरदिग्दक्षिणयोष्प[५](: प)दव्यो[६]र्द्वन्द्वं प्रियेणेव [७]पयोजिनीनाम ॥४५॥[2]

(१) जननीजनकसम्बन्धिकुलद्वन्द्वम् । (२) निहताज्ञानान्धकारनिकरेण । (३) जननीजनकयोः । (४) उत्तरादक्षिणयोः । (५) मार्गयोः । (६) युगलम् । (७) भानुनेव ॥४५॥

हील० **पक्ष**०। येन मातृपित्रोर्वंशद्वन्द्वं पावनीचक्रे । यथा सूर्येणोत्तरायाम्योर्मार्गयोर्द्वन्द्वं पवित्र्यते । येन भानुना च किंभूतेन ?। भिन्नः पाप्मनां वा ध्वान्तानां भरः समूहो येन स, तेन ॥४६॥

हीसुं० श्रीदिन्नसूरिर्गुण[१]भूरिर[२]स्मात्स[३]मर्षिभूर[४][3]ङ्गिरसाद्यथासीत् ।
येनानुरागोऽ[५]वधि [६]कालनेमिः [७]कल्लोलिनीवल्लभशायिनेव ॥४६॥

(१) प्रभूतगुणः । (२) इन्द्रदिन्नसूरेः । (३) बृहस्पतिः । (४) अङ्गिरा नाम तापसविशेषः । (५) हतः । (६) दैत्यविशेषः । (७) कृष्णेन ॥४६॥

हील० **श्रीदि**०। अस्माद्गुणबहुलः **श्रीदिन्नसूरि**र्जातः । यथाङ्गिरसस्तापसाद्बृहस्पतिर्जातः । येनानुरागो हतः । यथा नारायणेन कालनेमिर्हन्यते स्म ॥★४७॥

हीसुं० [१]पञ्चाशुगान्यः समितीर्विधाय बभञ्ज [२]पञ्चाशुगपञ्चबाणीम् ।
शरेण केनापि न चेत्कदाचित्कस्मान्न तं स [३]प्रभवेद्ध[४][4]नुष्मान् ॥४७॥[5]

(१) पञ्चसङ्ख्याकान् बाणान् । (२) स्मरपञ्चशरान् । (३) समर्थीभवेत् । (४) धनुर्धरः ॥४७॥

हील० **पञ्चा**०। पञ्चसमितिरूपैः पञ्चबाणैः कामस्य पञ्चानां बाणानां समाहारं चिच्छेद । एवं चेन्न तर्हि स स्मरधनुर्द्धरः केनापि शरेण कस्मिन्नपि प्रस्तावे कस्मात्तं दिन्नसूरिं न प्रहरेत् ॥४८॥

---

1. अत्र गणस्य द्वितीयनामाजनि हील०। 2. इति श्रीइन्द्रदिन्नसूरिः१० हील०। 3. ०रसो यथा० हीमु०। 4. ०द्वपुष्मान् इति हीमु० दृश्यते । स चाशुद्धः । 5. इति श्रीदिन्नसूरिः११ हील०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० **सूरीश्वरस्सी(सिं)हगिरिः क्रमेण [1]व्यभासयत्त[2]त्प्रभुपट्टलक्ष्मीम् ।**
जिनस्य [3]पादं शिरसा स्पृशन्तीं [4]निकाय्यराजीमिव [5]केतुवारः ॥४८॥

(१) भूषयति स्म । (२) दिन्नसूरिपट्टश्रियम् । (३) विष्णुपदं गगनम् । (४) गृहश्रेणीम् । (५) ध्वजव्रजः ॥४८॥

हील० **सूरी०। सी(सिं)हगिरिः** तत्पट्टलक्ष्मीं भूषयति स्म । यथा ध्वजौघः सौधधोरणीं भासयति । पट्टलक्ष्मीं निकाय्यराजीं च किंभूताम् ?। मस्तकेनार्हत्पादं आकाशं वा शृङ्गेण स्पृशन्तीम् ॥४९॥

हीसुं० **[1]विन्ध्यं [2]निपीताब्धिरिव व्रतीन्द्रो य [3]एधमानं [4]निषिषेध कोपम् ।**
[5]यद्वाक्तरङ्गैश्च [6]जिताभ्रसिन्धुस्त्र[7]पातिरेकादिव [8]निम्नगासीत् ॥४९॥[1]

(१) विन्ध्याचलम् । (२) अगस्तिमुनिरिव । (३) वर्द्धमानम् । (४) निवारयति स्म । (५) यस्य वचनविलासैः । (६) गगनगङ्गा । (७) लज्जातिशयात् । (८) निम्नं नीचैर्गच्छतीति अधोमुखा ॥

हील० **विन्ध्यं०।** यः कोपं निषेधयामास । यथागस्तिर्विन्ध्यं निषेधते स्म । यद्वाग्विलासैर्जिता स्वर्गङ्गा नीचैर्गतिर्जाता ॥५०॥

हीसुं० **[1]तमोभरोर्व्वीधरभेदवज्रिव्रजोऽथ वज्रप्रभुरेतदीयम् ।**
पट्टं परां प्रापयति स्म भूषां [2]माणिक्यकोटीर [3]इवोत्तमाङ्गम् ॥५०॥

(१) अज्ञाननिकरपर्वतभेदने शक्रकुलिशः । (२) रत्नमुकुट इव । (३) मस्तकम् ॥५०॥

हील० **त०।** अज्ञानच्छेदने वज्रतुल्यः **वज्रस्वामी** पट्टं भूषयति स्म । यथा मणिमुकुटः शीर्षं श्रियं नयति ॥५१॥

हीसुं० **[2]यः [1]शैशवादेव [2]जहौ [3]निजाम्बां वेलामिव [4]क्षीरनिधिः(धेः)सु[5]धांशुः ।**
[6]अध्यैष्ट यष्या(ः पा)लनके शयानोऽप्येकादशाङ्गीं [7]स्मृतपूर्वजन्मा ॥५१॥

(१) बाल्यात् । (२) मुक्तवान् । (३) रोदनकपटेन स्वजननीम् । (४) क्षीरसमुद्रवेलाम् । (५) चन्द्रः । (६) पठति स्म । (७) जातिस्मरणेन ज्ञातप्राचीनभवः ॥५१॥

हील० आबाल्यादेव यो निजजननीं तत्याज । यथा चन्द्रो मथ्यमानक्षीरनीराकरस्य वेलां जहाति स्म । यः पालने स्वपन्नपि एकादशाङ्गानां समाहारं अधीतवान् ★॥५२॥

हीसुं० **[1]यष्पु(ः पु)ष्पदष्प[2](ः प)ल्लवलीलयेव वैराग्यलक्ष्म्यालमकारि [3]बाल्ये ।**
[4]प्राग्जन्ममित्रत्रिदशान्न[5]भोगविद्यां [6]पुनर्वैक्रिलब्धि[7]मापत् ॥५२॥

(१) वृक्षः । (२) किसलयश्रिया । (३) बाल्यावस्थायाम् । (४) पूर्वसुरभवसम्बन्धिमित्र-

1. इति सी(सिं)हगिरिः१२ हील०। 2. आशैश० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुरात् तिर्यग्जृम्भकात् । (५) आकाशगामिनीं विद्याम् । (६) वैक्रियलब्धिं च । (७) प्राप्तवान् ॥५२॥

हील० यः पु०। यथा वृक्षः पल्लवलीलावान्स्यात्तथा वैराग्यवान्स जातः । यः पूर्वजन्ममित्राद्देवादाकाशगामिनीं विद्यां वैक्रियलब्धिं च लेभे ॥५३॥

हीसुं० [१]दुर्भिक्षवर्षेषु [२]सुभिक्षभूमीं सङ्घं [३]कृपानीरनिधे[४]र्निनीषोः ।
वज्रप्रभोर्यस्य [५]पटष्य[६](: प)टीयान् [७]विमानव[८]द्व्योमनि दीप्यते स्म ॥५३॥

(१) दुःकालवर्षेषु । (२) सुकालशालिमण्डलम् । (३) दयासमुद्रस्य । (४) प्रापयितुकामस्य । (५) कल्पो-वपुराच्छादनवसनम् । (६) अतिशयवृद्धिं प्राप्तः । (७) सुरविमान इव । (८) गगने ॥५३॥

हील० दुर्भिक्षवर्षेषु सत्सु सुभिक्षभूमिं सङ्घं नेतुमिच्छोर्वज्रस्वामिनः पटो विमानवद्दृष्टः ॥५४॥

हीसुं० सहैव[१] देहेन समग्रसंङ्घं नयत्यसौ [२]सिद्धिपुरीमिवैनम् ।
जनैरिति [३]व्योमनि [४]तर्क्यमाणः पटः [५]प्रभोर्बौद्धपुरीमवाप ॥५४॥

(१) वर्त्तमानेनैवोदारिकशरीरेण । (२) मोक्षनगरीम् । (३) आकाशे । (४) विचार्यमाणः । (५) <u>वज्रस्वामिनः</u> ॥५४॥

हील० सहै०। असौ औदारिककायेनैव सङ्घं सिद्धिपुरीं प्रापयति इति जनैर्गगने तर्क्यमाणः पटः कल्पः बौद्धपुरीं गतः ॥५५॥

हीसुं० [१]ध्यातुर्वरं[२] श्रीः श्रुतदेवतेव यस्यादरात्प[४]द्ममदत्त [५]पद्मा ।
[६]वनात्पितुर्मित्रहुताशनस्याग्रहीच्च यो विंशतिलक्षपुष्पान् ॥५५॥

(१) ध्यानकर्त्तुः । (२) इष्टसिद्धिम् । (३) सरस्वतीव । (४) सहस्रपत्रम् । (५) लक्ष्मीः । "पद्महृदे गतस्य <u>वज्रस्वामिनः</u> श्रीः सहस्रदलकमलं दत्तवतीति श्रुतिः" । (६) <u>धनगिरि-मित्रहुताशननाम</u> देवाद्विंशति लक्षकुसुमानि गृहीतवान् ॥५५॥

हील० ध्या०। यस्यादेशात् श्रीः सहस्रदलकमलं दत्तवती । यथा सरस्वती ध्यातुर्वरं दत्ते । यष्पि(: पि)-तु[र्मित्रस्य] वनाद्विंशतिलक्षसुमानि अग्रहीत् ॥५६॥

हीसुं० [१]मूर्त्तैरिव स्वस्य गुणैः [२]प्रफुल्लत्पुष्पोत्करै[३]ष्प(: प)र्युषणाक्षणेषु ।
[४]समुन्नतिं [५]शांभवशासनस्य तस्यां [६]सुनन्दातनयस्ततान ॥५६॥

(१) अङ्गयुतैः । (२) विकचत्कुसुमसमूहैः । (३) पर्युषणादिनानामुत्सवेषु । (४) प्रभावनाम् । (५) जिनशासनस्य । (६) <u>सुनन्दा</u>नाम्नी <u>वज्रस्वामि</u>जननी, तस्यास्तनयः पुत्रः ॥५६॥

हील० मूर्त्तै०। धनगिरिपत्नीसुतो वज्रस्वामी पुष्पोत्करैः बौद्धनगर्यां जिनशासनप्रभावनां चकार । उत्प्रेक्ष्यते । स्वैर्गुणैः ॥५७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]प्राबोधय[२]त्बौद्धपुरीप्रभुं यः सा[1]र्द्धं[३] समग्रैरपि पौरलोकैः ।
साकं [४]शकुन्तैरिव [५]पङ्कजानां [६]कुञ्जं [७]समुद्यद्गगनाध्वनीनः ॥५७॥

(१) प्रतिबोधयति स्म । श्रावकश्चक्रे । (२) बौद्धनगरस्वामिनम् । (३) नगरजनैः सार्द्धम् । (४) पक्षिभिः । (५) कमलानाम् । (६) वनम् । (७) उदयमानभानुः ॥५७॥

हील० प्राबो०। यः सुगतनगरीस्वामिनं जैनं चकार । यथोदितो रविः कुञ्जं विकाशयति ॥*५८॥

हीसुं० [१]अपास्यति [२]स्माढ्यसुतां [३]सरागां [2]सुवर्णकोटीः[४] सह रुक्मिणीर्यः ।
[५]क्रीडन्मृगेन्द्रां स्मित[६]सल्लकीभिर्नि[७]कुञ्जराजीमिव [८]कुञ्जरेन्द्रः ॥५८॥[3]

(१) त्यजति स्म । (२) व्यवहारिपुत्रीम् । (३) सस्नेहाम् । (४) कनककोट्या समम् । (५) रममाणसिंहाम् । (६) विकसितगजप्रियतरुयुक्ताम् । "सल्लकी तु गजप्रिया" । (७) वनमालाम् । (८) गजेन्द्रः ॥५८॥

हील० अपा०। यः रुक्मिणीं कन्यां सरागामपि तत्याज । यथा गजेन्द्रः मृगेन्द्रसहितां वनराजीं त्यजति ॥*५९॥

हीसुं० श्रीवज्रसेनोऽथ [१]तदीयपट्टं [२]व्यभासयत्प्री[३]णितजन्तुजातः ।
[४]स्फुरन्मदोद्भेद इव [५]द्विपेन्द्रकपोलमा[६]नन्दितचञ्चरीकः ॥५९॥

(१) वज्रस्वामिसम्बन्धिपदम् । (२) शोभयति स्म । (३) प्रतिबोधप्रदानेन तृप्तियुक्ताः कृता जन्तूनां-प्राणिनां समूहा येन । (४) प्रकटीभवन्मदवारिण उदयः । (५) करिकपोलस्थलम् । (६) प्रमोदितमधुकरः ॥५९॥

हील० श्री वज्रसेनः तदीयपट्टं व्यभासयत् । यथा माद्यद्भ्रमरो मदोद्भावः गजकपोलं विभासयति ॥६०॥

हीसुं० [१]दुर्भिक्षके [२]पायसमे[३]क्ष्य [४]लक्षपक्वं महेभ्यस्य[५] गृहे प्रभुर्यः ।
दिने [६]द्वितीये [७]कुलदेवतेव [८]न्यवेदयद्भा[९]विसु[4]भिक्षमस्य ॥६०॥

(१) दुष्कालवर्षेषु । (२) परमान्नम् । (३) दृष्ट्वा । (४) लक्षसुवर्णैः शालि-दुग्ध-घृत-खंडादि मेलयित्वा राद्धम् । (५) कस्यचिद्व्यवहारिणो मन्दिरे । (६) आगामिदिवसे । (७) इष्टगोत्रसुर इव । (८) कथयति स्म । (९) भविष्यन्तं सुभिक्षं सुकालम् । (१०) व्यवहारिणः ॥६०॥

हील० यः भाविनं सुकालं कथयति स्म ॥*६१॥

हीसुं० [१]चत्वार एतत्तनुजा[5] विनेयाः शाखाभृतस्तस्य विभोर्बभूवुः ।
इवा[२]मरद्वेष्ठि(षि)चमूजयश्रीजुषः [३]सुरेन्द्रद्विरदस्य [४]दन्ताः ॥६१॥[6]

---

1. समं हीमु०। 2. यो रुक्मिणीं काञ्चनकोटिभिश्च हीमु०। 3. इति वज्रस्वामी १३ हील०। 4. ०सुकाल० हीमु० ।
5. ०नुया वि० हीमु० । 6. इति वज्रसेनः ४ हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) तस्य महेभ्यस्य चतुःसङ्ख्याका नन्दनास्तस्य वज्रसेनस्य गुरोर्विनेया भूत्वा नागेन्द्र-चन्द्र-निर्वृत्ति-विद्याधराख्याशाखाधरा आसन्। (२) दैत्यसेनाविजयलक्ष्मीधारिणः। (३) ऐरावणस्य। (४) दन्तकोशाः ॥६१॥

हील० चत्वा०। तस्य चत्वारः नागेन्द्र-चन्द्र-निर्वृत्ति-विद्याधरेति शाखाधराः शिष्या अभवन्। उत्प्रेक्ष्यते। दैत्यसेनाभंजकाः ऐरावणस्य दन्ताश्चत्वारः सन्ति ॥*६२॥

हीसुं० भर्त्ता [१]सुराणामिव लोकपालेष्वेतेषु [२]सौदर्ययतीश्वरेषु[1] ।
श्रीचन्द्रनाम्ना मुनिपुङ्गवेषु(न) [३]तत्पट्टपूर्वा प्रमदेन भेजे ॥६२॥

(१) इन्द्रः। (२) भ्रातृसूरिषु। (३) वज्रसेनसूरिपट्टप्राचीदिग् ॥६२॥

हील० भर्त्ता०। एतेषु चतुर्षु भ्रातृसूरिषु मध्ये श्रीचन्द्रनाम्ना सूरिणा वज्रसेनपट्टप्राची हर्षेण सिषेवे। यथा लोकपालेषु चतुर्षु मध्ये इन्द्रेण प्राची दिग् सेव्यते ॥६३॥*

हीसुं० राजा [१]स्वयं [२]राजनतं [३]सदोषो [४]निर्दोषमङ्कोपगतो [५]निरङ्कम् ।
[६]सास्तो [७]निरस्तं च निजाधिकं चं समीक्ष्य चिक्षाय [८]शशी [९]किमर्त्या ॥६३॥

(१) आत्मना। (२) भूपैः प्रणतः। (३) दोषा रात्रयः अपगुणाश्च। (४) समग्रगुणः। (५) कलङ्करहितः (६) सदोदयः (७) क्षयति स्म। (८) चन्द्रः। (९) चिन्तया ॥६३॥

हील० राजा०। शशी किं अर्त्त्या क्षीणो जातः। किंकृत्वा?। यं दृष्ट्वा। किंभूतं यम्? किंभूतम्? शशी-राजा तं राजनतम्। पुनः किंभूतम्? सदोषस्तं निर्दोषम्। स्वयं कलङ्की तं निष्कलङ्कं, स्वयं अस्तवान् तं सदोदयं, अतोऽर्त्तिः ॥६४॥

हीसुं० श्रीचन्द्रसूरेरथ चन्द्रगच्छ इति [१]प्रथा [२]प्रादुरभूद्गणस्य ।
[३]भागीरथीनाम [४]भगीरथाख्यमहीमहेन्द्रादिव [५]देवनद्याः ॥६४॥[2]

(१) ख्यातिः। (२) गच्छस्य। (३) गङ्गा। (४) सगरचक्रिसूनुजह्नुनन्दनो भगीरथनामा भूमीपुरन्दरः। (५) गङ्गायाः ॥६४॥

हील० श्रीचन्द्रसूरेश्चन्द्रगच्छनाम जातम्। यथा भगीरथाद् भागीरथी उत्पन्ना ॥६५॥

हीसुं० [१]कल्लोलिकारुण्यरसान्वितस्य सामन्तभद्रप्रभुरस्य पट्टम् ।
[२]व्यराजयद्वा[३]रिरुहाकरस्य [४]मध्यं यथो[५]न्मुद्रित[3]पुण्डरीकम् ॥६५॥

(१) अतिशयप्रवर्द्धमानस्तरङ्गितः कल्लोलितः स वासौ कृपारससमस्तेन कलितः। (२) भूषयति स्म। (३) सरसः। (४) विचालम्। (५) विकसितं सिताम्भोजम् ॥६५॥

---

1. सौदर्य० हीमु०। स चाशुद्धः प्रतिभाति। 2. इति चन्द्रसूरिः[१५]। चन्द्रगच्छ तृतीयं नाम गणस्य ३ हील०।

3. ०थोन्निदि० हीमु०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० **कल्लो**०। बहुलकरुणारसान्वितस्यास्य पट्टं **सामन्तभद्रसूरि** र्भूषयति स्म । यथा तराकमध्यं विकसितं श्वेतकमलं विराजयति ॥★६६॥

हीसुं० **[१]वैमुख्यभाग् यो [२]विषयात्कु[३]रङ्गद्वेषीव जज्ञे [४]विपिने [५]निवासी ।**
तस्मान्मु[६]नीन्दोर्व[७]नवासिसंज्ञा परा पुनः प्रादुरभून्मुनीनाम् ॥६६॥[1]

(१) पराङ्मुखतां सेवमानः । मनोमात्रमप्यकुर्वाणः । (२) शब्दादिकात् गोचराद्देशाच्च । (३) केसरीव । (४) वने । (५) निवसनशीलः । (६) सामन्तभद्रप्रभोः । (७) वनवासीति नाम ॥६६॥

हील० **वैमु**०। यथा देशाद्विमुखः सिंहः वनवासी भवेत्, तथा यः पञ्चकामात्पराङ्मुखः वनवासी जातः । पुनस्ततः **वनवासी** नाम जातम् ॥६७॥

हीसुं० **[१]कोरण्टके [२]वीरजिनेन्द्रमूर्त्तिं [३]दृक्पांथवृत्तिं [४]कृतपुण्यपाकाम् ।**
यः [५]प्रत्यतिष्ठत्किमु [६]सत्रशालां स वृद्धदेवोऽजनि तस्य पट्टे ॥६७॥[2]

(१) कोरण्टकनामनगरे । (२) महावीरप्रतिमाम् (३) नेत्रपथिकानां वर्त्तनं यत्र । दृग्तुल्या भ्रमणशीलत्वात्पथिकास्तेषां वृत्तिराजीवो यस्याम् । (४) निर्मितः सुकृतस्य पाकः फलप्रदानाभिमु[ख]ता यया पक्षे रचितः पवित्रः पाकोऽन्नादिसंस्कारो यस्याम् । (५) प्रतिष्ठितवान् । (६) दानशालाम् ॥६७॥

हील० **कोर**०। दृश एव पान्थास्तेषां वृत्तिर्यत्र, ताम् । पुनः कृतः पुण्यस्य पाकः फलाभिमुखता यया । तादृशीं **वीरजिन**प्रतिमां यः प्रतिष्ठितवान् । उत्प्रेक्ष्यते । सत्रसा(शा)लां निर्मितवान् । स **वृद्धदेवसू**रिस्तत्पट्टे अभवत् ॥६८॥

हीसुं० **[१]प्रद्योतनाह्वप्रभुणाप्य[२]मुष्य [3]पट्टष्य(: प)रं वैभवमाबभार ।**
[३]त्रैलोक्यलक्ष्मीतिलकायितेन पितुः [४]स्वपुत्रेण यथा[५]न्ववायः ॥६८॥

(१) प्रद्योतननामसूरिणा । (२) वृद्धदेवसूरिशक्रस्य । (३) भुवनत्रयश्रियस्तिलकवदाचरितेन । (४) स्वस्य पितुरेव नन्दनेन । (५) वंशः ॥६८॥

हील० **प्रद्योतनसू**रिस्तत्पट्टे जातः । यथा राज्ञोऽन्वये उत्तमः पुत्रो भवति ॥६९॥

हीसुं० **[१]प्रबोधयन्भ[२]व्यसरोजराजीः सं[३]शोषयन्दु[४]र्णा(र्न)यकर्दमांश्च ।**
[५]दोषोदयं [६]निर्दलयन्म[७]हस्वी [८]प्रद्योतनोऽन्यः किमभूद्भु[९]वोऽयम् ॥६९॥[4]

(१) प्रतिबोधयुक्तान्कुर्वन् विकाशयंश्च । (२) भविककमलमालाः । (३) नाशयन् विरलीकुर्वन्वा । (४) मिथ्यादृग्जम्बालान् । (५) अपगुणानां-रात्रीणां चाविर्भावम् । (६)

---

1. इति सामन्तभद्रसूरिः[१६] । वनवासीति गच्छस्य चतुर्थं नाम । हील० । 2. इति वृद्धदेवसूरिः १७ हील० । 3. **पट्टं** हीमु०।
4. इति प्रद्योतनसूरिः १८ हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विध्वंसयन् । (७) तेजस्वी । "पडिरूवो तेयस्सी" त्युपदेशमालावचनम् । असाधारण एव । (८) सूर्यः । (९) पृथिव्याः ॥६९॥

हील० प्रबो०। भव्यसरोजं प्रबोधयन्, पुनर्मिथ्यादृश एव पङ्कास्तान् शोषयन्, पुना रात्रीणामुदयं निर्दलयन् प्रतापवान् एतादृशोऽन्यः किं पृथिव्याः अयं सूर्यः ॥७०॥

हीसुं० [1]धिया [2]जयंश्चित्र[3]शिखण्डिसूनुं [4]गङ्गातरङ्गायितवाग्विलासः ।
श्रीमानदेवष्प(ः प)दमेतदीयं [5]सभ्यः सभास्थानमिवा[6]ध्युवास ॥७०॥

(१) बुद्ध्या । (२) पराभवन् । (३) बृहस्पतिम् । "विचित्रवाक्चित्रशिखण्डिनन्दन" इति नैषधे । (४) सुरसरितः कल्लोला इवाचरितां वाचां वैचित्र्यो यस्य । (५) सभायां साधुः । (६) आश्रितवान् ॥७०॥

हील० धिया०। बुद्ध्या बृहस्पतिसदृशः श्रीमानदेवसूरिरेतत्पट्टं आश्रितवान् ॥७१॥

हीसुं० [1]पदप्रदानावसरे समीक्ष्य [2]साक्षात्त[3]दंसोपरि [4]वाणिपद्मे ।
राज्यादिव [5]क्षोणिपुरंदरस्य भ्रंशोऽ[6]स्य [7]भावी नियमस्थितेर्हा ॥७१॥

[1]इत्थं [2]गुरुं स्वं विमनायमानमालोक्य लोकेश्वरगीतकीर्त्तिः ।
तत्याज यः षड्[3]विकृतीर्व्रतीन्द्रः [4]षडन्तरारीनिव [5]जेतुकामः ॥७२॥ युग्मम् ॥

(१) सूरिपदस्य दानावसरे । (२) प्रत्यक्षलक्ष्ये । (३) मानदेवसूरिस्कन्धोपरि । (४) सरस्वती-लक्ष्म्यौ । (५) राज्यादिव राज्ञः (६) चारित्रादस्य पतनम् । (७) भविष्यति ॥७१॥

(१) अनेन प्रकारेण । (२) विरुद्धमनसं गुरुं दृष्ट्वा । "चिराय तस्थे विमनायमानये"ति नैषधे । (३) घृतादिकाः । (४) षट्सङ्ख्याकानान्तरान् शत्रून् । काम १ क्रोध २ मद ३ मत्सर ४ माया५लोभा६ख्यान् (५) पराभवितुमिच्छन् ॥७२॥

हील० पद०। पदप्रदानसमये तत्स्कन्धयोरुपरि सरस्वतीलक्ष्म्यौ दृष्ट्वा अस्य चारित्राद्भ्रंशो भविष्यति इति विमनायमानं गुरुं दृष्ट्वा यः षट्विकृतीस्तत्याज । उत्प्रेक्ष्यते । कामक्रोधमदमत्सरमायालोभादीन् प्रतीपान्जेतुम् ॥७२-७३॥

हीसुं० [1]चमूभि[2]रुर्व्वीन्द्र इवा[3]मरीभिरु[4]पास्यमानं यमवेक्ष्य कश्चित् ।
किं स्त्रीयुतोऽसाविति [5]संशयानो नड्डूलकेऽ[7]शिक्ष्यत [8]ताभिरेव[9] ॥७३॥[1]

(१) सेनाभिः । (२) नृपः । (३) जया-विजया-अपराजिता-पद्माख्याभिर्देवीभिः । (४) सेव्यमानम् । (५) मरकबाहुल्यात्सङ्कृतकायोत्सर्गप्रभावागतशासनदेवीकथितमानदेवसूरि-प्रभावोत्सुकीभूततक्षशिलानगरीसङ्घेन स्वमरकशमनाय प्रेषितः कोऽपि श्राद्धः । (६) संशयं कुर्वन् । (७) कुट्टितः । (८) गुरुवचसैव मुक्तः । (९) दवीभिः ॥७३॥

1. इति श्रीमाननदेवसूरिः १९ हील०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० **चमू०** । यथा सेनाभिः पतिः सेव्यते तथा देवीभिः सेव्यमानं यं दृष्ट्वा ? किं स्त्रीयुक्तोऽसौ, इति संशयं कुर्वाणः श्राद्धः ताभिरेव शिक्षितः ॥७४॥

हीसुं० [१]तदीयपट्टाम्बरभानुमाली [२]श्रीमानतुङ्गः[1] श्रमणेन्दुरासीत् ।
य [३]औजिढत्साधुजना[४]न्निजाज्ञां [५]नाथान्पृथिव्या इव [६]सार्वभौमः ॥७४॥

(१) मानदेवसूरिपट्टाकाशभास्करः । (२) मानतुङ्गसूरिः । (३) वाहयति स्म । (४) स्वस्याज्ञाम् । (५) नृपान् । (६) चक्रवर्त्ती ॥७४॥

हील० **तदी०**। तत्पट्टे **श्रीमानतुङ्गसूरि**र्जातः । यः साधून्निजाज्ञां वाहयामास । यथा चक्रवर्ती नृपतीन् निजाज्ञां ग्राहयति ★॥७५॥

हीसुं० [१]भक्तामराह्वस्तवनेन सूरि[२]र्बभञ्ज योऽ[३]ङ्गान्निगडान्नशेषान् ।
[४]प्रवर्त्तितामन्दमदोदयेन [६]गम्भीरवेदीव [५]म[2]हीमघोनः ॥७५॥

(१) भक्तामरनामस्तोत्रेण कृत्वा । (२) निजशरीरादष्टचत्वारिंशत्शृङ्खलाः । (३) भनक्ति स्म । (४) प्रवाहमानातिशायिमदवारिप्रादुर्भावेन । (५) राज्ञः । (६) करी । "त्वग्भेदाद्रुधिर-श्रावादामांसव्यथनादपि । संज्ञां न लभते यस्तमाहुर्गम्भीरवेदिनम्" ॥

हील० **भक्ता०**। यो **भक्तामर**स्तोत्रेण निजाङ्गलग्नानष्टचत्वारिंशत् शृङ्खलान् भनक्ति स्म । यथावमताङ्कुशः राज्ञष्क(: क)री मदाविर्भावात् श्रृङ्खलान् त्रोटयति । "त्वग्भेदाद्रुधिरश्रावादामांसव्यथनादपि । संज्ञां न लभते यस्तमाहुर्गम्भीरवेदिनम्" ॥७६॥★

हीसुं० श्रीमानतुङ्गष्क(: क)रणेन भक्तामरस्तुतेस्तं [१]क्षितिशीति(त)कान्तिम् ।
चकार [२]नम्रं फलपुष्पपत्रभारेण यद्व[३]त्फलदं वसन्तः ॥७६॥

(१) राजानम् । (२) नमनशीलम् । (३) वृक्षम् ॥७६॥

हील० **श्रीमानतुङ्गसूरिः** राजानं नम्रं चकार । यद्वद्वसन्तर्तुः फलभारेण वृक्षं नम्रं निर्माति ॥७७॥

हीसुं० भयादिमेनाथ [१]हरस्तवेन यो [२]दुष्टदेवादिकृतोपसर्ग्गान् ।
श्रीभद्रबाहुः[३] स्वकृतोपसर्ग्गहरस्तवेनेव [४]जहार [५]सङ्घात् ॥७७॥[3]

(१) नमिऊणनाम्ना भयहरस्तोत्रेण । (२) दुष्टसुरनिर्मितोपसर्ग्गम् । (३) श्रीभद्रबाहुस्वामीव निजरचितोपसर्गहरस्तवनेनेव (४) निवारयति स्म । (५) संघमध्यात् ॥७७॥

हील० **भयादि०**। यथोपसर्गहरस्तोत्रेण **भद्रबाहुस्वामी** सङ्घादुपसर्गान् जहार तद्वदयमपि "नमिऊण पणय०" इत्यादि स्तोत्रेण हरति स्म ॥७८॥

1. ०तुङ्गश्रम० हीमु०। 2. करी धरेन्दोः हीमु०। 3. इति श्रीमानतुङ्गसूरिः २०. हील०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]सद्ध्याननागेश्वररश्मिसाम्यमन्थाद्रिणा[२]लोड्य मदाम्बुराशिम् ।
तत्पट्टलक्ष्मीरथ वीर[३]नाम्नाचार्येण [४]वव्रे [५]वनमालिनेव ॥७८॥[1]

(१) ध्यानरूपशेषनागरश्मिकृष्टसमतापरिणामरूपमन्दरगिरिणा । (२) निर्मथ्य । (३) वीराचार्येण । (४) वृता । (५) श्रीकृष्णेन ॥७८॥

हील० **सद्ध्या०**। सद्ध्यानमेव शेष एव रस्मि(श्मि)र्मथनरज्जुस्तद्युक्तो यः समतामन्दरस्तेन मदार्णवं निर्मथ्य तत्पट्टश्री**र्वीराचार्येण** वृता । यथा कृष्णेन वृता ॥७९॥

हीसुं० ततोऽजनि श्रीजयदेवसूरिर्दूरीकृता शेषकुवादिवृन्दः ।
यद्वाग्विलासै[१]रवहे[२]लितेव सुधा किमु [३]क्षीरनिधौ [४]ममज्ज ॥७९॥[3]

(१) निर्नाशित निखि[ल]दुर्वादिवृन्दः । (२) विजिता । (३) समुद्रे । (४) निमग्ना ॥७९॥

हील० ततः **श्रीजयदेवसूरि**रभवत् । यद्वाक्चातुर्यैरवहेलिता माधुर्यश्रीर्यस्यास्तादृशी सुधा क्षीरार्णवे ब्रूडितेव ॥*८०॥

हीसुं० [१]स्वष्का(:का)मिनीकीर्त्तितकीर्तिदेवानन्दश्चि[२]दानन्दमना मुनीन्द्रः ।
[३]तारुण्यमेणा[४]ङ्कमुखीमिवैतत्पट्टश्रियं [५]वैभवमा[६]निनाय ॥८०॥[4]

(१) देवाङ्गनागीतकीर्त्तिः । (२) मुक्तौ मनो यस्य । (३) यौवनावस्था । (४) वनितामिव । (५) श्रियम् । (६) प्रापयति स्म ॥८०॥

हील० **स्वःका०** । मोक्षकामो **देवानन्दमुनि**स्तत्पट्टं शोभां नयति स्म । यथा यौवनं एणाङ्कमुखीं श्रियं लम्भयति ॥८१॥

हीसुं० श्रीविक्रमः सूरिपुरंदरोऽभूत्त[१]त्पट्टदुग्धाब्धिसुधामरीचिः ।
[२]तमश्चमूं हन्तुमनाः समग्रां किं [३]विक्रमोऽ[४]ङ्गीकृतकाययष्टिः ॥८१॥[5]

(१) देवानन्दसूरिपट्टक्षीरसमुद्रे चन्द्रतुल्यः वृद्धिकारित्वात् । (२) अज्ञानसेनाम् । (३) पराक्रमः (४) स्वीकृतशरीरः ॥८१॥

हील० **श्रीविक्रमसूरि**स्तत्पट्टे जातः । उत्प्रेक्ष्यते । अज्ञानसेनां हन्तुं किं मूर्त्तिमान्पराक्रमः ॥८२॥

हीसुं० आसीत्ततः श्रीनरसिंहसूरिः स [१]वाङ्मयाम्भोनिधिपारदृश्वा ।
[२]अत्याजि यक्षः[३] किल येन मांसं [४]स्वापं [५]जग[६]द्वारिजबन्धुनेव ॥८२॥[6]

(१) शास्त्रसमुद्रपारगामी । (२) त्याजितः । (३) कश्चिद्यक्षः । अनिर्दिष्टनाम किल इति श्रूयते शास्त्रोक्त्या। (४) निद्राम् । (५) भुवनम् । (६) सूर्येण ॥८२॥

हील० **आसी०**। ततः **श्रीनरसिंहसूरि**र्जातः । येन सूरिणा यक्षः मांसं अत्याजि-त्याजितः । यथा सूर्येण विश्वं स्वापं निद्रवस्थां त्याज्यते ॥८३॥

---

1. इति वीराचार्यः २१. हील० । 2. ०लितश्रीः हीमु० । 3. इति श्रीजयदेवसूरिः २२. हील० । 4. इति श्री देवानन्दसूरिः २३. हील० । 5. इति श्रीविक्रमसूरिः २४.हील० । 6. इति श्रीमान् [नर]सिंहसूरिः २५. हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]महर्घ्यमाणिक्यमिवा[२]ङ्गुलीयं [३]खोमाणभूपालकुलप्रदीपः ।
पट्टश्रियं श्रीनरसिंहसूरेरलङ्करोति स्म समुद्रसूरिः ॥८३॥

(१) महामूल्यरत्नम् । (२) मुद्रिकाम् । (३) खोमाणनामानो नृपास्तेषां वंशे प्रदीपः ॥८३॥

हील० महo । नरसिंहसूरेः पट्टं खोमाणज्ञातीयः समुद्रसूरिरलङ्कुरुते स्म । यथा बहुमूल्यं रत्नं मुद्रिकामलङ्कुरुते ॥८४॥

हीसुं० [१]दिग्वाससो [२]येन विजित्य वादे [३]नागहृदे [४]नागनमस्यतीर्थम् ।
[५]स्ववश्यमानीयत [६]भूमिभर्त्रा [७]दुर्गः [८]प्रतीपानिव [९]सम्पराये ॥८४॥[1]

(१) दिगम्बरान् । (२) समुद्रसूरिणा । (३) नागहृदनगरे । (४) श्रीपार्श्वनाथं धरणेन्द्रनमस्करणीयं सप्रभावम् । (५) आत्मायत्तं स्वकीयम् । (६) राज्ञा । (७) कोटः । (८) शत्रून् । (९) युद्धे ॥८४॥

हील० दिग्वा० । आशाम्बरान् विजित्य नागहृदे नागनमस्करणीयं पार्श्वबिम्बं श्वेताम्बरसङ्घायत्तं आनीयत । यथा रणे रिपून् जित्वा नृपेन(ण) दुर्गः कोट्टः स्ववश्यः क्रियते ॥ इति श्रीसमुद्रसूरिः समभवत् २६ ॥८५॥

हीसुं० स मानदेवोऽजनि तस्य पट्टे [१]वाग्देवता [२]यन्मुखपद्मसद्मा ।
[३]तृप्तामृ[४]तैश्चा[५]रुवचोविलासच्छलादिवो[६]द्गारमिवातनोति ॥८५॥[2]

(१) सरस्वती । (२) श्रीमानदेवसूरिमुखमन्दिरा । (३) तृप्तिं प्राप्ता सती । (४) पीयूषैः । (५) प्रभुवचनवैचित्र्यव्याजात् । (६) अमृतोद्गारम् ॥८५॥

हील० समा० । तत्पट्टे श्रीमानदेवसूरिर्जातः । यन्मुखे स्थिता सरस्वती अमृतोद्गारं कुरुते ॥८६॥

हीसुं० पदे तदीये विबुधप्रभेण स्म भूयते सूरिपुरंदरेण ।
येनाभिभूत(:) किल [१]पुष्पधन्वा [२]पुनर्यु[३]युत्सुर्विष[४]मायुधोऽभूत् ॥८६॥[3]

(१) कामः । (२) व्याघुट्य । (३) सङ्ग्रामं कर्त्तुमिच्छुः । (४) विषमान्यप्रतिहतानि भयङ्कराणि वा शस्त्राणि यस्य । पञ्चबाणः ॥८६॥

हील० पदे० । तत्पट्टे विबुधप्रभसूरिणा जातम् । येन पराभूतः कामष्पु(: पु)नर्योद्धुमिच्छुस्तीक्ष्णास्त्रः समजनि ॥८७॥

हीसुं० [१]तत्पट्टपङ्केरुहमानसौकाः श्रीमान्जयानन्दविभुर्बभूव ।
यस्या[२]शये[३]ऽमात्समयोऽप्यशेषः [४]कुम्भोद्भवस्य [५]प्रसृताविवा[६]ब्धिः ॥८७॥[4]

1. इति श्रीसमुद्रसूरिः २६. हील० । 2. इति श्रीमानदेवसूरिः २७. हील० । 3. इति श्रीविबुधप्रभसूरिः २८. हील० ।
4. इति जयानन्दसूरिः २९. हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) पट्टकमलमरालः । (२) आशयं हृदयम् । "दयासमुद्रे स तदाशयेऽतिथीचकार कारुण्यरसापगा गिरः" इति नैषधे । (३) ममौ प्रविष्टो वातिलीनो वा । (४) अगस्तिमुनेः । (५) प्रसारिताङ्गुलिः पाणिस्तत्र । (६) समुद्रे(द्रः) ॥८७॥

हील० तत्पट्टे राजहंसतुल्यः **जयानन्दसूरिर्जज्ञे** । यद्धृदये समग्रः सिद्धान्तः अमात् । यथागस्तिप्रसृतौ अब्धिर्मातः ॥८८॥

हीसुं० **यस्या[१]ननं [२]चन्द्रति दन्तकान्ति[३]ज्योत्स्नायते भ्रूयुगम[४]ङ्कतीह[५] ।**
वाचां विलासोऽपि सुधायते तत्पदे मुनीन्द्रः स रविप्रभोऽभूत् ॥८८॥[1]

(१) मुखम् । (२) चन्द्र इवाचरति । "सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विप् वा आचारे" इति क्विप् प्रत्यये । तदुदाहरणानि कृष्णति स्वति कृष्णामास स्वामासेति प्रक्रियाकौमुद्याम् । (३) चन्द्रिकेवाचरति । (४) लाञ्छनमिवाचरति । (५) इह मुखचन्द्रे ॥८८॥

हील० **यस्या०। रविप्रभसूरेर्वदनं** चन्द्रतुल्यं दन्तानां द्योतिर्ज्योत्स्नासमं भ्रूद्वयं अङ्कतुल्यं वाग्विलासोऽपि सुधातुल्यः स **रविप्रभस्तत्पट्टेऽभवत्** ॥८९॥

हीसुं० **[१]वर्द्धिष्णुयत्कीर्त्तिसुधार्णवेन [२]व्यलुम्पि नामाप्य[३]सितादिभावैः ।**
[४]अर्हन्महिम्नेव जगत्प्र[५](त्य)जन्यैः सोऽभूद्यशोदेवविभुष्य(:प)देऽस्य ॥८९॥[2]

(१) वर्द्धनशील<u>यशोदेवसूरि</u>कीर्त्तिक्षीरसमुद्रेण कृत्वा । (२) लुप्तम् । (३) कृष्ण-नील-पीत-रक्तपदार्थैः । (४) तीर्थकरमाहात्म्येन । (५) ईतिभिः । "अजन्यमीतिरुत्पात" इति हैम्याम् ॥८९॥

हील० **वर्द्धि०** । वर्द्धमानेन यत्कीर्त्तिक्षीरार्णवेन श्यामादिभावैः स्वं नाम विलुप्तम् । यथा तीर्थकरमाहात्म्येन विश्वे ईतिभिः लुप्यते । स **यशोदेवसूरिर्जातः** ॥९०॥

हीसुं० **प्रद्युम्नदेवोऽथ पदे तदीये [१]प्रद्युम्नदेवोऽ[२]भिनवो बभूव ।**
भिन्दन्भ[३]वं [४]मुक्तरतिर्द[५]वीयो भवन्म[६]धुर्वि[७]श्वविभाव्यमूर्त्तिः ॥९०॥[3]

(१) कन्दर्पदेवः । (२) नवीनः प्राचीनाद्विलक्षणः । (३) ईश्वरं संसारं च । (४) कामकान्ता क्रीडा च । (५) दूरीभूतः । (६) वसन्तो मद्यं च । (७) जगज्जनलोचनकच्चोलकपीयमाना सादरावलोक्यमाना तनुर्यस्य । स्मरस्त्वेवंविधो न ॥९०॥

हील० **प्रद्यु०** । तत्पट्टे **प्रद्युम्नदेवः** समजनि । उत्प्रेक्ष्यते । भवं शंकरं संसारं छिदन् सहितो रतिरहितः पुनर्दूरे जातं मधुर्मद्यं वसन्तो वा यस्य । पुनर्जगद्दृग्गोचरो नूतनः कामः ॥९१॥

---

1. <u>इति रविप्रभसूरि [३०]</u> हील० । 2. <u>इति यशोदेवसूरिः ३१.</u> हील० । 3. <u>इति प्रद्युम्नदेवः ३२.</u> हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० श्रीमानदेवेन पुनः स्व[१]कीर्त्तिज्योत्स्नावदातीकृतविष्टपेन ।
एतत्पदश्रीर[२]गमि प्रतिष्ठां [३]शक्तित्रयेणेव [४]नरेन्द्रलक्ष्मीः ॥९१॥[1]

(१) कीर्त्तिकौमुदीधवलीकृतविश्वेन । (२) अगमि प्रापिता । "निन्ये विजनमजागरि रजनिमगमि मदमयाचि संभोगम् । गोपीहावमकार्यत भावश्चैनामनन्तेन" । "न्यादयो ण्यन्तनिष्कर्म्मगत्यर्था मुख्य कर्मणि । प्रत्ययं यान्ति दुह्यादिर्गौणेऽन्ये तु यथारुचि" ॥ इत्यस्योदाहरणानि । (३) प्रभुत्वोत्साहमन्त्रलक्षणेन । (४) राज्यश्री : ॥९१॥

हील० **श्रीमा०**। कीर्त्त्या धवलीकृतलोकत्रयेण **श्रीमानदेवेन** (त)त्पट्टश्रीं शोभां लम्भिता । यथा प्रभुत्वोत्साहमन्त्रलक्षणेन शक्तित्रिकेण राज्यश्रीः प्रतिष्ठां प्राप्यते ॥९२॥

हीसुं० वाचंयमेन्द्रा[१]द्विमलादिचन्द्रात्प[२]दाब्जभृङ्गीभवदिन्द्रचन्द्रात् ।
अमुष्य[३] पट्टः श्रियमश्नुते स्म [४]परंतपाद्भूप इव प्रतापात् ॥९२॥[2]

(१) विमलचन्द्रसूरीन्द्रात् । (२) चरणकमले भ्रमरीभूतशक्रशशाङ्कद्या यस्य । (३) श्रीमानदेवसूरिपट्ट : । (४) परं वैरिणं तापयतीति सत्यार्थात् ॥९२॥

हील० **वाचं०** । अस्य पट्टः इन्द्रचन्द्रसेवितात् **विमलचन्द्रसूरेः** शोभां प्राप्तः । यथा राजा परं तापयतीति तादृशात्प्रतापात् लक्ष्मीं प्राप्नोति ॥९३॥

हीसुं० र(रे)जेऽस्य पट्टे [१]स्मररूपधेयः सूरीन्दुरुद्योतननामधेयः ।
[२]दिग्वारणेन्द्रा इव सूरिचन्द्राः सञ्जज्ञिरे [३]यत्पदधारिणोऽष्टौ ॥९३॥

(१) कन्दर्प इव रूपस्यातिशयो यस्येति गर्त्तितोपमा । "रूपधेयभरमस्य विमृश्ये" ति नैषधे । (२) दिग्गजाः । (३) उद्योतनसूरिपट्टधराः ॥९३॥

हील० रे० । स्मरवत्प्रशस्तरूपः उद्योतनसूरिस्तत्पट्टेऽभूत् । यत्पट्टधारिणोऽष्टौ आचार्या जाताः ॥९४॥

हीसुं० [१]मुहूर्त्तमद्वैतमवेत्य टेलीग्रामस्य यः सीम्नि [२]बृहद्वटाधः ।
अस्थापयच्चै[३]त्यतरोस्तलेऽष्टौ [४]पार्श्वो[3] गणीन्द्रानिव [५]काशिकुञ्जे ॥९४॥

(१) समग्रग्रहगोचरनवासा(वांशा)दिविशुद्धामसाधारणां वेलां विज्ञाय । (२) महतो न्यग्रोधद्रुमतले । (३) समवसरणस्थसर्वजनच्छायाकारिभगवत्केवलज्ञानोत्पाद स्थानक-तरुश्चैत्यद्रुमः । (४) पार्श्वनाथेनाष्टौ गणधराः स्थापिताः । (५) वाराणसीवने ॥९४॥

हील० **मुहू०** । यः **टेलीग्राम**सीम्नि वृद्धवटस्याधो अष्टावाचार्यान् स्थापयत् । यथा पार्श्वनाथो वाराणसीवने अष्टगणधरान् स्थापितवान् ॥९५॥

1. इति तृतीयमानदेवसूरिः ३३. हील० । 2. इति श्रीविमलचन्द्रसूरिः ३४. हील० । 3. **पार्श्वे गणे०** हीमु० । **पार्श्वे** इति अशुद्ध आभाति .

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]शाखाप्रशाखाभिरमुष्य वृद्धिर्बृ[२]हद्वटस्येव यतो [३]भवित्री ।
ततो [४]बृहद्गच्छ इतीह नामापरं गणस्य प्रकटीबभूव ॥९५॥[1]

(१) शाखा वयरीप्रमुखाः प्रशाखास्तदुद्भवा अपरापरनामधेयरूपाः । (२) वृद्धन्यग्रोधस्येव । (३) भाविनी । (४) वडगच्छः ॥९५॥

हील० **शा०** । शाखाभिरस्य गणस्य वृद्धिर्भाविनी । अतो **बृहद्गच्छ** इति गणस्य नाम जातम् ॥९६॥

हीसुं० [१]माहात्म्यनम्रीकृतसर्वदेवः पदे तदीयेऽजनि सर्वदेवः ।
[२]तारापतिस्ता[३]रकपर्षदेव गुणाश्रिया यः प्रभुर[४]न्वयायि ॥९६॥

(१) प्रभावेण नमनशीलीकृतसमस्तसुरः । (२) चन्द्रः । (३) ताराश्रेण्येव । "उडुपरिषदः किं नार्हन्ती[त्त्वं] निशः किमनौचिती"ति नैषधे । (४) अनुगतः ॥९६॥

हील० **माहा०** । इन्द्रचन्द्रादिनतः **सर्वदेवसूरि**स्तत्पट्टे जातः । यः सूरिर्गुणलक्ष्म्या आश्रितः । यथा नक्षत्रमण्डल्या चन्द्रः अनुगम्यते ॥९७॥

हीसुं० यो [१]रामसेनाह्वपुरे व्रतीन्दुर्लब्धिश्रियं गौतमवद्दधानः ।
[२]नाभेयचैत्ये महसेनसूनो[३]र्जिनस्य [४]मूर्त्तेर्विद[५]धे प्रतिष्ठाम् ॥९७॥

(१) रामसेणिनगरे । (२) ऋषभदेवप्रासादे । (३) चन्द्रप्रभस्वामिनः । (४) प्रतिमायाः । (५) चकार ॥९७॥

हील० यो **रामसेणिनगरे श्रीऋषभदेवचैत्ये** प्रासादे चन्द्रप्रभस्वामिनः प्रतिमायाश्र(: प्र)तिष्ठां कृतवान् ॥९८॥

हीसुं० चन्द्रावतीशस्य [१]नृपस्य नेत्र इवास योऽ[२]शेषविशेषदर्शी ।
तं [३]क्लृप्तचैत्यं प्रतिबोध्य वाचा [४]प्राव्राजयत्कु[५]ङ्कुणमन्त्रिणं यः ॥९८॥

(१) चण्डाउलिनृपस्य । (२) समस्तकर्त्तव्यकुशलः । (३) कृतप्रासादम् । (४) दीक्षयामास । (५) कुङ्कुणनामानं प्रधानम् ॥९८॥

हील० **चन्द्रा०** । यः प्रधानश्च**ण्डाउलि**नगरनृपस्य नेत्र इव जातः । पुनः क्लृप्तं चैत्यं येन स तं तादृशं **कुङ्कुण**नाम्ना(नामानं) मन्त्रिणं स्ववचनेन प्रतिबोध्य दीक्षयामास ॥९९॥

हीसुं०- [१]कुर्वन्निवासं [२]गवि [३]गौरवश्रीर्गिराम[४]धीशो [५]विबुधैरुपास्यः ।
श्रीदेवसूरिष्कि(: कि)मु [६]देवसूरिः पदे तदीयेऽप्यजनि क्रमेण ॥९९॥[3]

(१) वसति । (२) स्वर्गे भुवि च । (३) गुरुत्वेन बृहस्पतित्वेन महत्त्वेन वा शोभा यस्य । (४) वाक्पतिः । (५) पण्डितैर्देवैश्च । (६) बृहस्पतिः ॥९९॥

---

1. इति उद्योतनसूरिः ३५. । अत्र गच्छस्य 'बृहद्गच्छ', 'वडगच्छ' इति पञ्चमं नाम जातम् । हील० । 2. इति सर्वदेवसूरिः ३६. हील० । 3. इति देवसूरिः ३७. हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० **कुर्वन्नि०** । तत्पट्टे **देवसूरि**र्जातः । किंभूतो देवसूरिः ?। गवि स्वर्गे पृथिव्यां च निवासं कुर्वन् गौरवेन (ण) श्रीः शोभा यस्य । पुनर्वाचामीशो देवैः पण्डितैर्वा सेव्यः । अत एव देवाचार्यः बृहस्पतिः ॥१००॥

हीसुं० **[१]दोषोदयोदीततमःप्रपञ्चव्यापादनव्यापृतिदीक्षितेन ।**
श्रीसर्वदेवेन पदं तदीयमदीपि दीपेन यथा [२]निकेतम् ॥१००॥[1]

(१) अपगुणानां निशानां वा संभवेनाविर्भूतानि अज्ञानानि तिमिराणि च तेषां विस्तारविनाशन-व्यापारे गृहीतव्रतेन । (२) गृहम् ॥१००॥

हील० दोषाणां दोषाया वा उदयेन प्रकटीभूतं अज्ञानमन्धकारश्च तस्य ध्वंसकरणे सज्जेन । गृहीतव्रतेनेत्यर्थः । तादृशेन **सर्वदेवे**न तस्य पट्टमदीपि । यथा दीपेन गृहं दीप्यते ॥१०१॥

हीसुं० **श्रीमद्यशोभद्रगणावनीन्द्रः श्रीनेमिचन्द्रव्रतिपुङ्गवश्च ।**
[१]तत्पट्टमाकन्दमुभौ भजेते शुकोऽ[२]न्यपुष्टश्च यथा [३]विहंगौ ॥१०१॥[2]

(१) सर्वदेवसूरिपट्टसहकारतरुम् । (२) कीरकोकिलौ । (३) पक्षिणौ ॥१०१॥

हील० **श्रीम०** । तत्पट्टसहकारं उभौ संश्रयेते । यथा कीरकोकिलौ सहकारं संश्रयेते ॥१०२॥

हीसुं० **[१]तयोष्प(: प)दे श्रीमुनिचन्द्रसूरिरभूत्ततो [२]निर्मितनैकशास्त्रः ।**
शास्त्रे न कुत्रापि तदीयबुद्धिश्च[३]स्खाल वीङ्खेव [४]समीरणस्य ॥१०२॥

(१) यशोभद्र-नेमिचन्द्रयोः । (२) विरचितविविधग्रन्थः । (३) स्खलिता । (४) पवनस्य गतिः ॥१०२॥

हील० तयोः पट्टे **श्रीमुनिचन्द्रसूरि**रभूत् । तस्य धीः कुत्रापि शास्त्रे न स्खलति स्म । यथा वायोर्वेग(गो) गतिः क्वापि वनगहनादौ न स्खलति ॥१०३॥

हीसुं० **[१]भूपीठखण्डानिव [२]चक्रवर्त्ती [३]यतीभवन्षड्विकृती[४]र्जहौ यः ।**
कदापि काये न दधन्म[५]मत्वं पपौ पुनर्यः स[६]कृदा[७]रनालम् ॥१०३॥[3]

(१) गङ्गासिन्धुनदीभ्यां विभक्तान् वैताढ्यद्विभागीकृतोत्तरार्द्धदक्षिणार्द्धभरतस्य षट्खण्डान् । (२) द्वात्रिंशत्सहस्रदेशाधिपतिश्चक्रीत्युच्यते । (३) साध्वाचारं गृह्णन् । (४) त्यजति स्म । (५) मम इत्यस्य भावो ममत्वम् । (६) एकवारम् । (७) काञ्जिकम् ॥१०३॥

हील० **भूपी०** । यथा यतीभवन् चक्री षट्खण्डान् त्यजति तथा यः सूरिः षड्विकृतीस्तत्याज । पुनष्का(: का)ये निर्ममत्वात्स एकवारं काञ्जिकं पिबति स्म ॥१०४॥

---

1. इति द्वितीयसर्वदेवसूरिः ३८. । हील० । 2. इति द्वितीययशोभद्र-नेमिचन्द्रसूरीन्द्रौ ३९. हील० । 3. इति श्रीमुनिचन्द्रसूरिः ४०. हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]निर्जीयते स्म क्वचनापि नायं [२]कृतोपसर्ग्गैरपि देववर्गैः ।
इतीव नाम्ना [३]भुवि [४]विश्रुतेन जज्ञेऽस्य पट्टेऽजितदेवसूरिः ॥१०४॥[1]

(१) न जितः । (२) विविधमनोवचनकायक्षोभकरणप्रकारैः । (३) भूमौ । (४) विख्यातेन ॥१०४॥

हील० निर्जी० । कदाप्ययं उपसर्गं कुर्वद्भिरसुरसुरसमूहैर्न निर्ज्जीयते स्म । इति कारणात् पृथ्वीविख्यातेन नाम्नाऽजितदेवसूरिरितत्पट्टे समजनि ॥१०५॥

हीसुं० [१]जगत्पुनानः [२]सुमनःस्त्रवन्तीरयो जटाजूटमि[३]वेन्दुमू(मौ)लेः ।
अमुष्य पट्टं [४]विजयादिसिंहोऽ[५]ध्यासांबभूवाथ [६]तपस्विसिंहः ॥१०५॥[2]

(१) विश्वं पवित्रीकुर्वाणः । (२) गङ्गाप्रवाहः । (३) ईश्वरस्य कपर्द्दमिव । "कपर्दस्तु जटाजूट" इति हैम्याम् । (४) विजयसिंहसूरिः । (५) आश्रयति स्म । (६) श्रमणकेसरी ॥१०५॥

हील० जग० । अस्य पट्टं विजयसिंहसूरिः आश्रयति स्म । यथा सुरसिन्धुप्रवाहो रुद्रजटां श्रयते । स च किंकुर्वाणः ?। जगद्विश्वं पवित्रीकुर्वाणः ॥१०६॥

हीसुं० सोमप्रभः श्रीमणिरत्नसूरी [१]अमुष्य पट्टं नयतः स्म लक्ष्मीम् ।
[२]इक्ष्वाकुवंशं भरतश्च बाहुबलिस्तनुजाविव[३] नाभिसूनोः ॥१०६॥[3]

(१) अजितदेवसूरेः (विजयसिंहसूरेः) । (२) ऋषभदेवस्य बाल्यावस्थायामिक्षुयष्टेर-भिलाषादिन्द्रेण स्थापित ईक्ष्वाकुवंशः । (३) ऋषभदेवपुत्रौ ॥१०६॥

हील० सोम० । तत्पट्टं द्वौ अभूताम् । यथा ऋषभनाथस्य द्वौ सुतावभूताम् ॥१०७॥

हीसुं० श्रीमज्जगच्चन्द्र [१]इदंपदश्रीललामलीलायितमा[२]ततान ।
येनो[३]ज्झि [४]शैथिल्यपथस्त[५]डा[4]गो [६]घनाविलो [७]मानसवासिनेव ॥१०७॥

(१) अनयोः सोमप्रभमणिरत्नयोराचार्ययोः पट्टस्य लक्ष्म्यास्तिलकलीलाचरितम् । (२) कुरुते स्म (३) त्यक्तः । (४) शिथिलीभूतानां मुनीनां मार्गः । (५) सरः (६) मेघजलैः पङ्किलीकृतः । (७) हंसेन ॥१०७॥

हील० श्रीमज्ज० । श्रीजगच्चन्द्रसूरिः अस्य पदस्य लक्ष्म्यास्तिलकस्य लीलावदाचरितं कुरुते स्म । येन मुत्कलता त्यक्ता । यद्वद्धंसेन कलुषीभूतस्तटाक उज्झ्यते ॥★१०८॥

हीसुं० [१]द्वात्रिंशदाशावसनैर[२]भेद्यो वादं सृजन्ही[३]रकवद्यदासीत् ।
[४]आघाटभूपेन स[५] हीरलाद्यो नाम्ना जगच्चन्द्र [5]इदं [६]न्यगादि ॥१०८॥[6]

---

1. इति श्रीअजितदेवसूरिः ४१. हील० । 2. इति श्रीविजयसिंहसूरिः ४२. हील० । 3. इति सोमप्रभमणिरत्नसूरि ४३. हील० ।
4. ०टाको हीमु० । 5. इति हीमु० । 6. अत्र हीरलाजगच्चन्द्रसूरिरिति नामस्थापना हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) द्वात्रिंशत्सङ्ख्याकैर्दिगम्बरैर्वादिभिः । (२) जेतुमशक्यः । (३) वज्रमणिस्वि । (४) आघाटनामनगरस्वामिना । लोके 'आहडनगर'मिति प्रसिद्धिः । (५) हीरलाजगच्चन्द्रसूरिः । (६) कथितः ॥१०८॥

हील० द्वात्रिंशद्दिगम्बराचार्यैः समं वादं विदधन् यः हीरावज्जातः । स आहडनगरराज्ञा 'हीरलाजगच्चन्द्र' इति नाम्ना कथितः ॥१०९॥

हीसुं० [१]आचाम्लकैर्द्वादशहायनान्ते [२]तपेत्यवापद्विरुदं मुनीन्दुः ।
[३]महाहवैर्वै[४]रिविनिर्जयान्ते भे(भ)त्तेंव भूमे[५]र्जितकाशिसंज्ञाम् ॥१०९॥

(१) द्वादशसंवत्सरं यावन्निरतं[न्तरं] कृतैराचाम्लैः कृत्वा । (२) भूमीपालात्तपा इति बिरुदं प्रभुः प्राप्तवान् । (३) महद्भिः सङ्ग्रामैः कृत्वा । (४) रिपूणां विजयावसाने । (५) जिताहव इति संज्ञां लभते । "जिताहवो जितकाशी"ति हैम्याम् ॥१०९॥

हील० **आचा०** । यः आचाम्लकैः कृत्वा द्वादशवर्षप्रान्ते 'तपा'बिरुदमाप । यथा समस्तारिजयाद्राजा 'जिताहव'संज्ञां लभते ॥११०॥

हीसुं० [१]अस्मात्त[२]तः प्रादुरभूत्तपाख्या नेत्रादि[३]वात्रे[४]र्द्विजराजलेखा ।
अदीपि यस्माच्च [५]मुमुक्षुलक्ष्म्या वसन्तमासादिव [६]भानुभासा ॥११०॥[1]

(१) जगच्चन्द्रसूरेः । (२) तद्दिवसादारभ्य । (३) अत्रिनामतापसलोचनात् । (४) चन्द्रमण्डली । (५) साधुश्रियाः । (६) सूर्यद्युत्या ॥११०॥

हील० अस्माज्जगच्चन्द्रसूरेः सकाशाद्बृहद्गच्छस्य 'तपागच्छ' इति षष्ठं नाम जातम् । यथात्रेर्नेत्राच्चन्द्ररेखा जाता । पुनर्यस्माद्यतिलक्ष्म्या अधिकं दीप्यते स्म । यथा वसन्तमासाद्भास्करस्य प्रभया दीप्यते ॥१११॥

हीसुं० [१]देवेन्द्रकर्णाभरणीभवद्भिर्यशोभिरु[२]द्भासितविष्टपेन ।
[३]देवेन्द्रदेवेन बभेऽस्य पट्टे विष्णोर्यथा वक्षसि [४]कौस्तुभेन ॥१११॥[2]

(१) समस्तसुरपतिकर्णपूरतां प्राप्नुवद्भिः । गीतगोष्ठीषु तुंबुरुप्रमुखगान्धर्वगणगीयमान-यद्गुणश्रवणैकतानाः सुरेन्द्राः संजायन्ते । (२) शोभितभुवनेन । (३) देवेन्द्रनामसूरीन्द्रेण । "पादा भट्टारको देवः प्रयोज्याः पूज्यनामत" इति हैम्याम् । (४) रत्नविशेषेण ॥१११॥

हील० देवेन्द्राणां कर्णयोराभरणीभवद्भिः कर्णपूरयमाणैर्यशोभिर्द्योतितविश्वेन **देवेन्द्रसूरिणा** अस्य पट्टे शोभितम् । यथा कृष्णहृदये कौस्तुभरत्नेनोद्भास्यते । "पादा भट्टारको देवः प्रयोज्याः पूज्यनामतः" इति हैम्याम् ॥११२॥

1. इति श्रीजगच्चन्द्रसूरिः ४४. । इति बृहद्गच्छस्य तपगच्छ इति षष्ठं नाम सञ्जातम् ६. हील० । 2. श्रीदेवेन्द्रसूरिः ४५. । हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० निजाङ्गनोद्गीतयदीय[1]कीर्तिं [2]शुश्रूषुरक्षिश्रवसामृ[3]भुक्षाः ।
चक्षुस्सहस्त्रे[4] रसिकष्कि(: कि)मा[धा]त्पट्टे स तस्याऽजनि धर्म्मघोषः ॥११२॥

(१) स्वकामिनीभिः मिथो धर्मगोष्ठ्यां गीयमानां धर्मघोषसूरिकीर्त्तिम् । (२) श्रोतुमिच्छुः । (३) नागेन्द्रः । अक्षिणी एव श्रवसी येषां तेषां नागानां इन्द्रः । (४) द्वे सहस्त्रे नयने ॥११२॥

हील० निजवधूभिर्गीतां यस्य कीर्त्तिं श्रोतुमिच्छुर्नागेन्द्रो नयनानां [सहस्त्र]द्वयं रसिकः सन्नकरोत् । तत्पट्टे स धर्मघोषसूरिर्जातः ॥११३॥

हीसुं० [1]मिथ्यामतोत्सर्पणबद्धकक्षं प्रेक्ष्य क्षितौ जीर्णकपर्द्दिनं यः ।
प्रबोध्य[2] वाचा [3]जिनराजबिम्बाधिष्ठायकं पूर्वमिव व्यधत्त ॥११३॥

(१) वज्रस्वामिमाहात्म्यान्नवीनोत्पन्नकपर्दिना त्याजितशत्रुञ्जयं जीर्णकपर्दिनं भूमौ मिथ्यात्वमुत्सर्प्पणैकरङ्गं दृष्ट्वा । (२) मधुरगिरा प्रतिबोध्य । (३) शत्रुञ्जयप्रतिमाधिष्ठायकमिव ॥११३॥

हील० **मिथ्या०** । यः पृथिव्यां मिथ्यात्ववृद्धिविधाने सज्जीभूतं गोमुखयक्षं प्रतिबोध्य, यथा पूर्वं अधिष्ठायकोऽभूत्तथैव तत्राप्यकृत ॥११४॥

हीसुं० [1]शिष्यार्थनानिर्मितसंस्तवस्यानुभावतो [2]देवकपत्तनेऽब्धिः ।
भूपस्य शुश्रूषुरिवास्य रत्नं [3]तरङ्गहस्तैरुपदीचकार ॥११४॥

(१) कौतुकान्निजशिष्याभ्यर्थनया मन्त्रमयस्तुतिकरणप्रभावतः । (२) देवकपत्तनसमीपसमुद्रेन(ण) रत्नं तरङ्गहस्तोपरिदर्शितम् ॥११४॥

हील० शिष्याणामाग्रहेण कृतमन्त्रमयस्तोत्रप्रभावात् **देवकपत्तन**निकटवर्त्ती अब्धिः अस्य **धर्मघोषसूरे** रत्नं तरङ्गरूपहस्तैर्ढौकयामास । निर्ग्रन्थत्वेन ग्रहणाभावाद्दर्शयामासेत्यर्थः । यथा सेवाकर्त्तुमिच्छुर्नरो राज्ञो रत्नमुपदीकुरुते ॥११५॥

हीसुं० विद्यापुरे योऽ[1]खिलशाकिनीनामुपद्रवं द्रावयति[2] स्म सूरिः ।
श्रीहेमचन्द्रो भृगुकच्छसंज्ञे पुरे [3]यथा दुर्द्धरयोगिनीनाम् ॥११५॥

(१) शाकिनीनां उपद्रवं पट्टकादिमण्डनं रजन्यां पट्टिकोत्पाद्व(ट)नचत्वरानयनं वटकादिविहारणं इत्याद्युप्रद्रवम् । (२) हन्ति स्म । (३) यथा भृगुकच्छे स्वनिर्मापितमुनिसुव्रतस्वामिप्रासादे सन्ध्यायां प्रह्लादान्नर्त्तनावसरे चतुः षष्टियोगिनीदोषे जाते विज्ञातं वृत्तेन हेमसूरिणा समेत्य यशोभद्रगणिना हक्कादानोदूखलखण्डनादिना उपद्रवो द्रावितः सज्जितश्राम्रभट्टमन्त्री ॥११५॥

हील० **विद्यापुरे** यः सूरिः पट्टकमण्डनगुरुशयनपट्टिकोत्पाटनादिविद्यात्रीणां श्राविकाणां उपसर्गं निवारितवान् । यथा **हेमसूरिणा** निवारितः ॥११६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० यो योगिनं [१]पुष्पकरण्डिनीस्थं दुश्चेष्टितैर्भापनबद्धकक्षम् ।
पदावनम्रं [३]विदधेऽ[४]न्तिमोऽर्हन्निवा[५]स्थिकग्रामिकशूलपाणिम् ॥११६॥

(१) उज्जयिनीस्थाष्णु:(स्नुः) । (२) कोऽपि सिद्धचेटकपेटको योगी । साधूनां दन्तदर्शनेन तथोपाश्रये उन्दुर-बिडाल-वृश्चिक-भुजगादिदर्शनेन चाचार्यमपि भापनोद्यतः प्रभुणा जैनमन्त्रानुभावतो बद्ध्वा प्रासादशिखरे सङ्कुट्यमानास्फाल्यमानाङ्गः पूत्कुर्वता गगनमार्गेना-(णा)लये आनीतः । (३) प्रभुं प्रणेमे । (४) महावीरः । (५) अस्थिकग्रामवासिशूलपाणियक्षम् ॥११६॥

हील० यो यो० । यथा वीरजिनेन शूलपाणिः शिक्षितस्तथा सूरिरुज्जयिन्यां भयोत्पादने क्षमं योगिनं नतं विदधे ॥११७॥

हीसुं० [१]यस्योपदेशान्नृ[२]पमन्त्रिपृथ्वीधरश्चतु[३]र्भिः सहितामशीतिम् ।
ज्ञातीरिवोद्धर्त्तुमिदंमिताः स्वा व्यधापयत्तीर्थकृतां विहारान् ॥११७॥

(१) श्रीधर्मघोषसूरेरुपदेशात् । (२) पेथडदेनामा मण्डपाचलपातिसाहिप्रधानः । (३) चतुरशीतिर्जिनप्रासादकारितवान् रैवते च षट्पञ्चा(श)त्स्वर्णधटीभिरिन्द्रमालां परिहितवांश्च ॥११७॥

हील० यस्योपदेशान्मालवदेशे मण्डपाचलपातिसाहेर्मन्त्री पेथडदे ८४ ज्ञातीरुद्धर्तुं ८४ जिनप्रासादानकरोत् ॥११८॥

हीसुं० [१]दंशादहेर्ग्राहितकाष्ठभारविषौषधीसज्जतनुर्निशान्ते ।
महात्मवद्यो विकृतीर्विहाय वृत्तिं व्यधादेव युगन्धरीभिः ॥११८॥[1]

(१) एकदा नक्तं सर्पदंशाद्विषेण घूर्णं तं गुरुं दृष्ट्वा किंकर्त्तव्यमूढं सङ्घं विज्ञाय गुरुः सङ्घं प्रति प्राह-प्रातर्या काष्ठभारिका समेति तस्या विषापहारिणीमौषधीं गृहीत्वा वल्लीं घृष्ट्वा मड्डुके देया सज्जो भविष्यामीति श्रुत्वा सङ्घेन तथाकृते सज्जीभूतः प्रभुस्तदादिषड्विकृतीस्तत्याज ॥११८॥

हील०- दंशा० । अहेर्दंशादानायितात्काष्ठभारात् विषस्यावहारिण्यौषध्या सज्जतनुर्निशान्ते प्रातः षट्(ड्)-विकृतीस्त्यक्त्वा । यथा सज्जनः परद्रोहादीन् त्यजति तद्वद्यः युगंधर्यैवाहारमकरोत् ॥११९॥

हीसुं० यस्माद्विदीपे चरणस्य [१]लक्ष्मीर्ज्योत्स्ने(त्स्ने)व [२]चान्द्री शरदोऽ[३]नुषङ्गात् ।
सोमप्रभाख्यो जनदृक्चकोरीसोमप्रभः सूरिरभूत्पदेऽस्य ॥११९॥[2]

(१) चारित्रश्रीः । (२) राशिसम्बन्धिनी । (३) मेघात्ययस्य सङ्गात् ॥११९॥

---

1. इति श्रीधर्मघोषसूरिः ४६. हील० । 2. इति श्रीसोमप्रभसूरिः ४७. हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० यस्माच्चारित्रश्रीर्दिदीपे । यथा शरदि चन्द्रिका दीप्तिमती भवति । स सोमप्रभसूरिः जनानां दृश एव चकोर्यस्तासां चन्द्रतुल्यः । सोऽस्य पट्टे समभवत् ॥१२०॥ इति श्रीसोमप्रभसूरि ४७ ॥

हीसुं० तेनापि सोमतिलकाभिधसूरिरात्म-पट्टे [1]न्यवेशि [2]वशिलक्ष्मिलसल्ललामम् ।
वादेषु येन परवादिकदम्बकस्या[3]-[2]नध्यायता प्रतिपदेव मुखे [4]न्यवासि ॥१२०॥[3]

(१) स्थापितः । (२) यतिश्रियाः स्फुरत्तिलकम् । (३) तूष्णीकता मौनमित्यर्थः । (४) वासिता ॥१२०॥

हील० तेनापि **सोमतिलकसूरिः** पट्टे स्थापितः । येन परवादिमुखे तूष्णीकता मौनं स्थापिता । यथा प्रतिपदा छात्राणां मुखेऽनध्यायता वास्यते ॥१२१॥

हीसुं० संस्थापितो निजपदे प्रभुणाथ[1] तेन श्रीदेवसुन्दरगुरुः [2]सुरसुन्दरश्रीः ।
[3]अह्नोमुखेन तिमिरेण [4]तमस्विनीव येन [5]व्यपास्यत समं मदनेन माया ॥१२१॥[4]

(१) <u>सोमतिलकेन</u> । (२) देवतुल्यसुन्दरशोभः । (३) प्रभातेन । (४) रात्रिः । (५) निरस्ता ॥१२१॥

हील० **संस्था०** । तत्पट्टे सुरवत्सुन्दरः **देवसुन्दरसूरिः** जज्ञे । येन कामेन सह मायापास्ता । यथा प्रभातेनान्धकारेण सह रात्रिर्व्यपास्यते ॥१२२॥

हीसुं० घूकैर[1]र्कमिव [2]द्विषद्भिरुदये हन्तुं [3]परैष्प्रे[4](: प्रे)षितं
कञ्चिच्च[5]न्द्ररुचा प्रमादविमुखं स्वापेऽपि दृष्ट्वा प्रभुम् ।
क्षाम्यन्तं गदिताखिलव्यतिकरं सम्बोध्य योऽदीक्षय-
त्स श्रीमानथ सोमसुन्दरगुरुर्भेजे तदीयं पदम् ॥१२२॥[5]

(१) सूर्यम् । (२) वैरायमाणैः । (३) परपक्षियैः । (४) घातुकम् । (५) चन्द्रोदये रजोहरणेन संस्तारकं स्वपृष्ठं च प्रमार्ज्य पार्श्वं परावर्त्तयन्तं वीक्ष्याहो ! अमी निद्रायामपि जीवरक्षाकारिणस्तत्कथमन्यान्द्रुत्यन्तीति वितर्कपूर्वं गुरुं प्रबोध्य स्वव्यतिकरं ज्ञापितवान् दीक्षां ग्राहितवान् ॥१२२॥

हील० **धूकै०** । सूर्यं प्रति घूकैरिव परैर्द्विषद्भिः प्रभुं हन्तुं प्रेषितं कञ्चित्पुमांसं प्रतिबोध्य यः प्राव्राजयत् । स तत्पदेऽभूत् ॥१२३॥

हीसुं० पट्टश्रियास्य मुनिसुन्दरसूरिशक्रे सम्प्राप्तया [1]कुवलयप्रतिबोधदक्षे ।
कान्त्येव [2]पद्मसुहृदः [3]शरदिन्दुबिम्बे प्रीतिष्प(: प)रा [4]व्यरचि लोचनयोर्जनानाम् ॥१२३॥

---

1. **०ल्ललामः** हील० । 2. **०नध्यायिता** हील० । 3. <u>इति श्रीसोमतिलकसूरिः [४८]</u> हील० । 4. <u>इति श्रीदेवसुन्दरसूरिः ४९.</u> हील० । 5. <u>इति श्रीसोमसुन्दरसूरिः ५०.</u> हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) नीलोत्पलं भूवलयं च तस्य प्रतिबोधे विकाशे देश-सर्वविरत्यादिदाने चतुरे । (२) सूर्यस्य । (३) शरत्कालसम्बन्धिचन्द्रमण्डले । (४) कृता ॥१२३॥

हील० पट्ट० । मुनिसुन्दरसूरौ आगतया पट्टलक्ष्म्या जनानां नेत्रयोः प्रकृष्टा प्रीतिर्विरचिता । यथा सूर्यस्य कान्त्या शरच्चन्द्रमण्डले सम्प्राप्तया जननयनयोः प्रीतिर्विरच्यते । किंभूते मुनिसुन्दरसूरिशिक्रे शरदिन्दुबिम्बे च ? कुवलयं, भूवलयं उत्पलं च तस्य बोधिबीजप्रदाने विकाशने च दक्षे ॥१२४॥

हीसुं० [1]योगिनीजनितमार्युपप्लवा येन[2] [3]शान्तिकरसंस्तवादिह ।
[4]वर्षणादिव [5]तपर्तुतप्तयो [6]नीरवाहनिवहेन [7]जघ्निरे ॥१२४॥

(१) दुष्टयोगिनीनिर्मितमरकोपद्रवः । (२) मुनिसुन्दरसूरिणा । (३) "संतिकरं संतिजिण" मित्यादिस्तवनेन । (४) वृष्टेः । (५) ग्रीष्मतापाः । (६) मेघव्रजेन । (७) हताः ॥१२४॥

हील० योगिनीभिर्दुष्टव्यन्तरीभिः कृतोपद्रवा येन निवारिताः । यथा मेघौघेन ग्रीष्मर्त्तोस्तापानि हन्यन्ते ॥१२५॥

हीसुं० [1]बाल्येऽपि [2]रश्मीन्निस[3](न्स)रसीजबन्धुरिवावधानानि [4]वहन्सहस्रम् ।
अष्टोत्तरं [5]वर्त्तुलिकानिनादशतं स्म[6]वेवेक्ति धियां निधिर्यः ॥१२५॥

(१) बालभावेऽपि । (२) किरणानिव । (३) रविः । (४) सहस्रावधानधारकः । (५) अष्टोतरशतवर्त्तुलिकाशब्दानाम् । (६) पृथक् पृथक् वक्ता ॥१२५॥

हील० बाल्ये० । यथा रविः सहस्रकिरणान्धत्ते तथा बाल्येऽपि यः सहस्रावधानधारी १०८ वर्त्तुलिकास्वरं पृथक्-पृथक् कृत्वा कथयति स्म ॥१२६॥

हीसुं० [1]अलम्भि [2]याम्यां दिशि येन काली सरस्वतीदं बिरुदं बुधेभ्यः ।
रवेरु[3]दिच्यामिव तत्र तेजोऽ[4]तिरिच्यते यत्पुनरत्र [5]चित्रम् ॥१२६॥[1]

(१) प्राप्तम् । (२) दक्षिणस्याम् । (३) उत्तरस्याम् । (४) अधिकीभवति । (५) आश्चर्यम् ॥१२६॥

हील० अल० । येन दक्षिणस्यां दिशि '**कालीसरस्वती**'ति बिरुदमाप्तम् । यथा रवेरुत्तरस्यां तेजोवृद्धिः तद्वदेतस्य दक्षिणस्यामपि तेजोऽधिकं जातमिति आश्चर्यकारि ॥१२७॥

हीसुं० सूरेस्ततोऽजायत रत्नशेखरः श्री[1]पुण्डरीको [2]वृषभध्वजादिव ।
[3]बाम्बीति नाम्ना द्विजपुङ्गवेन न्यगादि यो [4]बालसरस्वतीति ॥१२७॥[2]

(१) भरतचक्रिप्रथमसुतः । (२) ऋषभदेवात् । (३) स्तम्भतीर्थे बाम्बीनाम्ना द्विजेन । (४) बालसरस्वतीति बिरुदं दत्तम् ॥१२७॥

---

1. इति श्री मुनिसुन्दरसूरिः ५१. हील० । 2. इति श्रीरत्नशेखरसूरिः ५२. हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० **सूरे०** । यथा भरतचक्रिणः प्रथमसुतः पुण्डरीकः वृषभदेवगणभृदभूत् तथा तत्पट्टे **रत्नशेखरसूरिः** समभवत् । यः **बाम्बीद्विजेन बालसरस्वती** कथितः ॥१२८॥

हीसुं० **लक्ष्मीसागरसूरिशीतमहसा लक्ष्मीरवापे ततो**
दीपेनेव [१]गुणोदयं [२]कलयता ज्योतिर्बृ[३]हद्भानुतः ।
गायन्तीः सुरसुन्दरीर्गुणगणान्यस्याष्ट[४]दिगस(क्स)ङ्गिनी-
[५]र्विज्ञाया[६]ष्ट विनिर्ममे किमु विधिः [७]श्रोतुं [८]श्रुतीरात्मनः ॥१२८॥[1]

(१) गुणाः शमदमार्जवमार्दवादयः वृत्तिश्च तेषामभ्युदयम् । (२) दधता । (३) वह्नेः । (४) दिक्षु विदिक्षु च स्थिताः । (५) ज्ञात्वा । (६) अष्टसङ्ख्याकाः । (७) श्रवणाय । (८) कर्णान् ॥१२८॥

हील० **लक्ष्मीसागरसूरिणा** ततः शोभाप्ता । यथा दीपेन गुणवताऽग्नेः कान्तिराप्यते । यस्य गुणान् अष्टासु दिक्षु गायन्तीर्देववधूर्दृष्ट्वा स्रष्टा तान श्रोतुं स्वास्याष्ट कर्णान् करोति स्म ॥१२९॥

हीसुं० **सुमतिसाधुरभूदथ तत्पदे [१]त्रिजगतीजननेत्रसुधाञ्जनम् ।**
[२]समकुचत्त्र[३]पया हृदि यद्गिरां[४]मधुरिमाधरिता किमु गो[५]स्तनी ॥१२९॥[2]

(१) त्रैलोक्यलोकनेत्राह्लादकः । (२) सङ्कुचति स्म । (३) लज्जया । (४) सुमति-साधुसूरिवचनविलासमाधुर्यधिक्कृता । (५) द्राक्षा ॥१२९॥

हील० **सुम०** । जगज्जननयनासेचनकत्वादमृताञ्जनं **सुमतिसाधुसूरि**स्तत्पदेऽभवत् । यस्य वाचां मधुरिम्ना हीनीकृता (द्राक्षा) पुनर्मनसि लज्जया सङ्कोचं प्राप्तवती ॥१३०॥

हीसुं० **[१]शीलेन [२]जम्बुगणनाथ इवात्र वज्र-स्वामी परः किमथ वा [३]महिमोदयेन ।**
जज्ञे [४]नवद्वयशतव्रतिसेव्यमानो नाम्नाथ हेमविमलप्र(लः प्र)भुरस्य पट्टे ॥१३०॥[3]

(१) ब्रह्मचर्येण । (२) जम्बूस्वामी । (३) माहात्म्याविर्भावेन । (४) अष्टादशशतसाधुश्र-(से)व्यक्रमः ॥१३०॥

हील० **शीले०** । अस्य पट्टेऽष्टादशयतिसेव्यमानः **श्रीहेमविमलसूरि**रभवत् । यः शीलेन जम्बूस्वामी पुनर्यः महिमोदयेन वज्रस्वामीव जज्ञे ॥१३१॥

हीसुं० **विभूषाम[१]द्वैतामकलयदथानन्दविमल[4]-व्रतीन्द्रे [२]विद्राणाखिलकुदृशि तत्पट्टकमला ।**
वसन्ते वासन्तीततिरिव पुन[३]र्धर्मजय(यि)नि, [४]क्षितीन्द्रे राज्यश्रीरिव [५]विजित-विश्वप्रतिभटे ॥१३१॥

---

1. इति लक्ष्मीसागरसूरिः ५३. हील० । 2. इति श्रीसुमतिसाधुसूरिः ५४. हील० । 3. इति श्रीहेमविमलसूरिः ५५. हील० ।
4. ०ले व्रती० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) असाधारणाम् । (२) प्रणष्टकुमतिगणे । (३) धर्मिष्ठे । (४) राजनि । (५) पराभूतसमस्तशत्रौ ॥१३१॥

हील० **विभू०** । विद्राणाः पलायिता न्यक्षाः कुपाक्षिका यस्मात्तादृशे **आनन्दविमलव्रतीन्द्रे** तत्पट्टलक्ष्मीः असाधारणीं शोभां दधार । यथा वसन्ते अतिमुक्तकीलतापङ्क्तिरनन्यां श्रियमश्नुते । पुनर्यथा धर्मेण जयोऽस्यास्तीति तादृशे । पुनर्जितवैरिसमूहे राज्ञि राज्यलक्ष्मीः शोभां विभर्त्ति ॥१३२॥

हीसुं० **त्यक्त्वा[१]शेषकुपाक्षिकांश्च कुदृशः [२]किंपाकभूमीरुहा-**
न्नो[३]लम्बैरिव [४]पारिजातशिखरी यो [५]जन्मिभिः शिश्रिये ।
येनात्मा[६]शिथिलीभवन्मु[७]निपथादप्युद्धृतः सूरिणा
संसाराम्बुनिधेरिवोद्धतकु[८]दृग्यादोव्रजव्याकुलात् ॥१३२॥

(१) समस्तमतानि । (२) विषवृक्षान् । (३) भ्रमरैः । (४) कल्पद्रुविशेषः । "कल्पद्रुमाणामिव पारिजात" इति रघौ । (५) भव्यैः । (६) प्रमादपदवीपरिगतान् । (७) मुनिमार्गात् । (८) कुमतिमकरनिकराकुलात् ॥१३२॥

हील० **त्यक्त्वा०** । कुपाक्षिकान् लुम्पाकप्रमुखान् कुदृशः सौगतादीन् विमुच्य यः सूरिः प्राणिभिः श्रितः । यथालिभिर्महाकालमहीरुहांस्त्यक्त्वा मन्दारः सेव्यते । पुनर्येन मुनिमार्गाच्छिथिलः स्वजीव उद्धृतः । उत्प्रेक्ष्यते । कुमतमीनाकुलात्संसारार्णवात् पारं प्रापितः ॥१३३॥

हीसुं० **शुद्ध[1]क्रिया[१]मुद्धरतोऽस्य भाविनी[२]मद्वत्प्रवृद्धिस्तमितीव [३]शंसितुम् ।**
स्वप्नेऽ[४]नुयुक्तेरनु कस्यचि[५]ज्जिनध्यातु[६]र्द्वितीयेन्दुरदर्शयन्निजम् ॥१३३॥

(१) आद्रियमाणस्य । (२) चन्द्र इव । (३) कथयितुम् । (४) प्रश्नादनु । (५) पार्श्वनाथमन्त्रध्यातुः । (६) द्वितीयाचन्द्रः ॥१३३॥

हील० **शुद्धां०** । कस्यचित्पार्श्वनाथमन्त्राराधकस्य श्राद्धस्यानुयुक्तेः प्रश्नादनु पश्चात्स्वप्ने द्वितीयेन्दुरागतः । उत्प्रेक्ष्यते । मद्वृद्धिवत् तवापि भाविनीति गदितुम् ॥*१३४॥

हीसुं० **[१]जैनार्चाश्रमणाद्यभावभणनाम्भःप्लाव्यमानात्मनां**
जज्ञे[२]द्वीप इव व्रतीशितुरिहोद्धारः [३]क्रियाया [४]नृणाम् ।
विद्यासागरनामवाचकवरो यस्याथ [५]दुर्दृग्गणा-
[६]न्सेनानीरिव [७]चक्रिणो [८]रिपुनृपा[2]न्सर्वा[९]न्स्ववश्यान्व्य[१०]धात् ॥१३४॥

(१) जिनप्रतिमासाधूनामभावम् । नास्ति जिनप्रतिमा-साधवश्चेति कथनमेव लुम्पाककटुकमति-पाक्षीय वचनमेव पानीयपूरेणोपद्रूयमाणात्मनाम् । (२) जलमध्यतट इव । (३) क्रियोद्धारः । (४) भव्यानाम् । (५) कुमतिव्रजान् । (६) सेनापतिरिव । (७) चक्रवर्त्तिनः । (८)

---

1. ०द्धां क्रि० हीमु० । 2. ०पान्प्राकृस्वस्य वश्या० हीमु० । प्रत्यक्स्ववश्या० हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विरोधिनरपतीन् । (९) निजप्रणतान् स्वाज्ञाविधायिनो वा । (१०) चक्रे ॥१३४॥

हील० **जैना०** । इह भरतक्षेत्रदक्षिणार्द्धमध्यखण्डे **श्रीआणन्दविमलसूरेः** क्रियोद्धारः ब्रूडतां प्राणिनां द्वीपतुल्यो जातः । यस्य **विद्यासागर**नाम्ना वाचकः कुमतान्स्वायत्तान्कुरुते स्म । यथा चक्रिसेनानी वैरिणः स्वायतान्कुरुते ॥१३५॥

हीसुं० **[१]प्रातः सा[२]धुवृतस्त्व[३]दापणपुरो यो या[४]ति [५]सूरीशिता**
सम्यक्संयमवान्स[६] पूर्वगणिवत्से[७]व्यस्त्वयाऽहर्निशम् ।
[८]स्वप्नेऽ[९]स्वप्नगिरेति [१०]यं निजगृहे नीत्वातिभक्त्या प्रभुं
श्राद्धः [११]कश्चन [१२]मण्डपाद्रिवसति[१३]र्भेजे सगोत्रैः[१४] समम् ॥१३५॥

(१) प्रभाते । (२) यतिभिष्प(: प)रिवृतः । (३) तव हट्टस्याग्रे । (४) व्रजति । (५) आचार्यः । (६) अस्मिन्कलिकाले पूर्वाचार्य इव स सूरिः शुद्धचारित्रवान् विज्ञेयः । (७) पुनस्त्वया स एव सेव्यः, नित्यं सेवायोग्यः । (८) स्वापस्य निद्राया अवस्थायाम् । (९) देववचसा । (१०) आणंदविमलसूरीन्द्रम् । (११) कटुकश्राद्धः । (१२) मण्डपदुर्गगृहः । (१३) सेवते स्म । (१४) स्वस्वजनैः सार्द्धम् ॥ १३५॥

आदेशं स्थापयित्वा जिनस्य शीर्षां सौराष्ट्रनामा देशेषु प्रभाते मुनिगणैष्प(: प)रिवारितः । तव हट्टस्याग्रे सूरीन्द्रः, अस्मिन्कलिकाले सुविशुद्धचारित्रयुक्तः पूर्वाचार्य इव, त्वया नित्यं सेवनीयः । "अनूचानः प्रवचने साङ्गेऽधीती गणिश्च स" इति हैम्याम् । स्वापावस्थायाम्-निद्रायामित्यर्थः देववचनेन आत्ममन्दिरे आनीय । मण्डपाचलवास्तव्यः । स्वस्वजनैः सार्द्धम् ॥१३५॥

हील० प्रातः साधुपरिवाराञ्चितः यः सूरीशः तव हट्टपुरः प्रयाति । स सम्यक्क्रियावान् गौतम इवाराधनीयः । तस्याभिज्ञानं तव हस्ते कुसुमान्यर्पयामीति जागरणेऽपि पुष्पानि(णि) दृष्टवान् स्वजनानां प्रातर्दर्शितावांश्चेति काव्येऽनुक्तमपि जातत्वादुक्तं कारिकायाम् । इति देवगिरा स गोत्रैः सह **मण्डपाचली**यष्क(: क)-श्चित् श्राद्धीभूय तमाराधयति स्म ॥१३६॥

हीसुं० **[१]तमःस्तोमप्राये [२]कुनयनगणैर्दारु[३]णातमे,**
कलौ श्रीसूरी[1]न्द्रः शरणमभवद्यो [४]जनिमताम् ।
[५]मृगारातिव्यालद्विरदशबरव्यूहबहुले,
गिरेर्दु[६]: सञ्चारे [७]गहन इव सार्थष्प[८](: प)थिजुषाम् ॥१३६॥

(१) अज्ञानबहुले । (२) परपक्षीयैः कुमतैश्च । (३) भयकारिणि । (४) प्राणिनाम् । (५) सिंह-सर्प-गज-भिल्लगणभृते । (६) दुःखेनोल्लङ्घयितुं शक्ये । (७) अटव्याम् । (८) पान्थानाम् ॥१३६॥

---

1. ०रीन्दुः हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० य: सूरि: कलौ शरणं जात: । यथा सिंहभुजङ्गहस्तिभिल्लैर्व्याप्ते पुनर्दुर्लङ्घ्ये गिरिवनकुञ्जे सार्थ: पान्थानामाश्रयो भवति ॥*१३७॥

हीसुं० [१]गभीरिम्ना(म्णा)[२]पाथोनिधिरिव [३]महिम्नाऽपर[४]मे(म)रु-
द्रिरि[५]श्चेतोजन्मप्रतिभटतया वा [६]गगनजित् ।
[७]प्रसारै रश्मीनां सरसिरुहिणीनामिव[८] पति:
पवित्रीचक्रे यो [९]विहृतिभिरशेषा अपि दिश: ॥१३७॥

(१) गाम्भीर्येन(ण) । (२) समुद्र: । (३) महत्त्वेन । (४) मेरु: । (५) कन्दर्प्पस्य शत्रुत्वेन । (६) बुद्ध: । (७) किरणविस्तारै: । (८) सूर्य: । (९) विहारै: ॥१३७॥

हील० य: गभीरिम्ना(म्णा) समुद्र: । पुनर्यो महतो भावेनापरो देवगिरि: । य: स्मरदमनेन खजित् बुद्ध: । "मार १ लोक २ ख ३ जिद्धर्मराजो विज्ञानमातृक" इति हैम्याम् । यो विहारैर्दिश: पावनीचक्रे । यथा सूर्य: किरणप्रचारैर्दिश: प्रकाशयति ॥१३८॥

हीसुं० यो दक्षिणावर्त्त इव [१]स्त्रवन्तीपतिप्लवे [२]कम्बुकदम्बकेन ।
[३]वाचंयमानां निवहेन [1]भूमीपीठे [४]परीतो विजहार सूरि: ॥१३८॥

(१) समुद्रपूरे । (२) शङ्खव्रजेन । (३) यतीनाम् । (४) परिवृत: ॥१३८॥

हील० यो दक्षिणावर्त्त इव मुनिमण्डलीवृत: भूमण्डले विहरति स्म ॥*१३९॥

हीसुं० [१]भागीरथीव [२]यद्ब्राह्मी [३]पुनीते भुवनत्रयम् ।
[४]परं विशेषष्को(: को)ऽप्यस्या [५]निम्नगा न कदाचन ॥१३९॥

(१) गङ्गेव । (२) यस्य वाणी । (३) पवित्रीकरोति । (४) अन्तरम् । (५) अवद्यगामिनी न ॥१३९॥

हील० **भागी०** । स्वर्धुनीव यस्य वाणी त्रिभुवनं पवित्रयति । परमयं विशेष: यद्वाण्या निम्नं नीचैरवद्यं गच्छति तत्त्वं नास्ति । गङ्गा तु नीचगामिनी ॥१४०॥

हीसुं० ये [१]कर्णाभरणीबभूवुरनिशं [२] विश्वत्रयीजन्मिनां
[३]सान्द्रोन्निद्रितचन्द्रिका इव शु[४]चीचक्रुस्त्रिलोकीमपि ।
यान्संस्तोतुमिवाभवद्धु[५]जगराड्जिह्वासहस्त्रद्वय-
[६]स्तेषां सूरिपुरन्दर: स समभूदेको गुणानां निधि: ॥१४०॥

(१) कर्णपूरीभवन्ति स्म । (२) त्रैलोक्यलोका अपि सोत्कण्ठमहर्निशमाकर्णयन्तीत्यर्थ: । (३) निबिडप्रकटीभूतत्वं चन्द्रज्योत्स्ना इव । (४) धवलयन्ति स्म । (५) शेषनाग: ।

1. **पृथ्वी०** हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(६) पूर्वोक्तविशेषण विशिष्टानाम् ॥१४०॥

हील० ये गुणाः कर्णाभरणायमाना अभूवन्। पुनर्ये चन्द्रिका इव जगद्धवलयन्ति स्म। यान्गुणान्स्तोतुं शेषः सहस्रजिह्वो जातस्तेषां गुणानां निधानं श्रीआनन्दविमलसूरिर्बभूव ॥१४१॥

हीसुं० [१]अश्रोत्रैः [२]श्रोतुकामैर्भु[३]जगपरिवृढैर्य[४]ज्जगद्गीतकीर्त्ति
[५]शब्दाधिष्ठानसृष्ट्यै [६]शतदलनिलयो याचितस्तां[७] [८]चिकीर्षुः।
[९]न्याय्या नासौ मयाति[१०]क्रमितुमिह [११]जगत्सर्गभङ्गीव्यवस्था
शक्तिं शब्दं गृहीतुं किमिति स कृतवानेव [१२]तद्दृष्टिसर्गे ॥१४१॥

(१) कर्णरहितैः। (२) भगवद्गुणाकर्णनोत्कण्ठितैः। (३) नागेन्द्रैः। (४) श्रीआनन्दविमलसूरीन्द्रस्य भुवनैर्गीयमानां कीर्त्तिम्। (५) कर्णनिर्माणाय। (६) ब्रह्मा। (७) कर्णसृष्टिम्। (८) कर्त्तुमिच्छुः। (९) योग्या। (१०) उल्लङ्घयितुम्। (११) विश्वनिर्माणरचनापरिपाटी। (१२) दृक्कर्णाः कृताः ॥१४१॥

हील० अश्रो०। कमलवसतिर्ब्रह्मा अकर्णैर्नागनायकैः श्रोतुं(तु)कामैः यस्य कीर्त्तिं श्रोत्रसृष्ट्यै याचितः सन् तां कर्णसृष्टिं कर्त्तुमिच्छुस्तेषां नागेन्द्राणां लोचनानां निर्माणे एव शब्दं गृहीतुं शक्तिं किमिति कारणादेव कृतवान्। इतीति मम सृष्टिरचना-स्थापना त्यक्तुं न न्याय्या ॥१४२॥

हीसुं० भूरेषा किमु [१]चन्द्रचन्दनरसैरालिप्यते सर्वतो
[२]दुग्धाब्धिप्रसरत्तरङ्गितपयष्पू(:पू)रैरिवाप्लाव्यते।
[३]क्षोदैर्मौक्ति[४]कजैर्विली[५]नतुहिनैः [६]कुन्दैरिवापूर्यते
यत्कीर्त्तिं प्रसृतां विभाव्य विबुधैरित्यन्तरा[७]रेक्यते ॥१४२॥[1]

(१) कर्पूराकलितश्रीखण्डद्रवैः। (२) क्षीरसमुद्रस्य विस्तरद्भिः कल्लोलयुक्तैर्भवद्भिः जलप्रवाहैः। (२) चूर्णैः। (४) मौक्तिकेभ्यो जातैः। (५) द्रवीभूतहिमैः। (६) मुचकुन्दकुसुमैः। (७) विचार्य्यते ॥१४२॥

हील० भूरे०। यस्य श्रीआनन्दविमलसूरेः कीर्त्तिं प्रसृतां दृष्ट्वा कविभिरेवं विचार्यते स्म। इतीति किम्?। एषा भूः कर्पूरचन्दनद्रवैर्धवलीक्रियते वा क्षीराब्धेः पानीयैर्मध्यगतेव क्रियते। अथवा मौक्तिकचूर्णैर्वा हिमैर्वा मुचकुन्दकुसुमैर्वा निर्भरं भ्रियते इत्यारेका ॥१४३॥

हीसुं० विजयदानमुमुक्षुपुरन्दरष्प(:प)दममुष्य ततः समभूषयत्।
[१]उदयभूमिभृतः शिखरं [२]शरद्विशददीप्तिरिवा[३]म्बरकेतनः ॥१४३॥

(१) उदयाचलस्य शृङ्गम्। (२) मेघात्ययेन विमलकान्तिः। (३) सूर्यः ॥१४३॥

1. इति श्रीआनन्दविमलसूरिः ५६ हील०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील०- **विजयदानसूरिः** अस्य पट्टं अभूषयत् । यथा मेघापगमेन क्रूरकान्तिर्भास्वानुदयाचलचूलां भूषयति ॥१४४॥

हीसुं० [१]आज्ञां [२]यस्य [1]निधाय [३]मूर्द्धनि मुदा [2]शीर्षामि[४]वाप्तप्रभोः
सौराष्ट्रेषु [५]जगर्षिनामविबुधाधीशा विहारैर्निजैः ।
लुम्पाकान्य[६]रिवर्त्तमारुत इव प्रोन्मूल्य[७] मूलाद्द्रुमा-
[3]न्श्री[८]सम्यक्त्वकृषिं ततष्फ[९](: फ)लवतीं [१०]चक्रे [११]नभोम्भोदवत् ॥१४४॥

(१) आदेशम् । (२) विजयदानसूरेः । (३) मस्तके धृत्वा । (४) जिनेन्द्रस्य शेषामिव । 'सेस' इति प्रसिद्धिः । (५) जगउ ऋषि इति नाम पण्डितेन्द्राः । (६) कल्पान्तकालवायुरिव । (७) उत्खन्य । (८) सम्यक्त्वनाम्नीं कृषिम् । (९) सफलाम् । (१०) चकार । (११) श्रावणमेघ इव ॥१४४॥

हील० **आज्ञां०** । यस्यानन्द**विमलसूरे**राज्ञां शिरसि धृत्वा । यथा भुवनाधीशस्य शीर्षां 'सेस' इति प्रसिद्धां मस्तके ध्रियते । तद्वज्जगर्षिनामविबुधाः सौराष्ट्रदेशे स्वविहारैः । यथा कल्पान्तकालमरुद्बुध्ना-द्द्रुमानुन्मूलयति तद्वल्लुम्पाकान्प्रोन्मूल्य '**लुंका**' इत्यभिधानाद्दूरीकृत्य सम्यक्त्वनाम्ना कृषिं फलयुतामकरोत् । यथा श्रावणमेघः कृषिं निष्पादयति ॥★१४५॥

हील०→ **प्राबोधयद्दुःशकनैकतीव्रतपोमि[हा]तप्तोक्तिकृतोक्तियुक्तिभिः ।**
स तत्र लुम्पाकजनं यतीन्द्रो भास्वानिवाम्भोजवनं मरीचिभिः ॥१४६॥←

प्राबो० । यस्तपोभिः पुनः सिद्धान्तयुक्तिभिः **लुम्पाक**जनं प्रतिबोधयति स्म । यथा रविः किरणैः अम्बुजवनं प्रबोधयति विकाशयति ॥१४६॥

हीसुं० [१]यद्वाचा [२]गलराजमन्त्रिमुकुटो निर्माप्य षाणमासिकीं
मुक्तिं [३]सिद्धगिरौ व्यधाद्भरतवद्यात्रां समं [४]यात्रिकैः ।
[५]पञ्चाक्षीं [६]दमितुं च पञ्चविकृतीस्तत्याज यः सर्वदा
[७]प्राणश्यंस्तर[८]णेर्ग्रहा इव पुनर्यस्योदये [९]दुर्दृशः ॥१४५॥

(१) विजयदानसूरीन्द्रोपदेशेन । (२) 'गल्लो महतो' इति नामा । (३) शत्रुञ्जये । (४) यात्राकारकैर्लोकैः । (५) पञ्चेन्द्रियाणि । (६) नियन्त्रयितुम् । (७) प्रणष्टाः । (८) सूर्यस्योदये । (९) कुपाक्षिकाः ॥

हील० यद्वाचा **गलराज**मन्त्री शत्रुञ्जये षणमासं यावन्मुक्तिं 'मुगतउ' केनापि कस्यापि पार्श्वे शुल्कद्रविणं न मार्गणीयम् । अहमेव श्रीमदीप्सितं द्रव्यं दास्यामीत्यकरोत् । यः सूरिः पञ्चइ(ञ्चे)न्द्रियाणि दमि[तुं]

1. विधाय हीमु० । 2. शेषा० हील० । 3. न्सम्यक्त्वाख्यकृषिं हीमु० । →← एतदन्तर्गतः पाठो हीसुंप्रतौ नास्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चविकृतीस्तत्याज । यस्मात्कुपाक्षिका नष्टाः । यथा रवेर्ग्रहा नश्यन्ति ॥१४७॥

हीसुं० [1][१]यत्कीर्त्तिगङ्गां प्रसृतां [२]त्रिलोक्या[३]मालोक्य किं षण्मुखतां [४]दधानः ।
[५]जगद्भ्रमीभिर्जननीं [६]दिदृक्षुर्गङ्गासुतोऽध्यास्त [७]मयूरपृष्ठम् ॥१४६॥

(१) श्रीविजयदानसूरिकीर्तिनाम्नीं गङ्गाम् । (२) त्रैलोक्यव्यापिनीम् । (३) वीक्ष्य । (४) विलोकनाय षट्सङ्ख्याकानि मुखानि धारयन् । (५) भुवनेषु भ्रमणेन पर्यटनेन ।" अपि भ्रमीभङ्गिभिरावृताङ्गी"-मिति नैषधे । (६) गङ्गासुतत्वान्मातरं द्रष्टुमिच्छु : । (७) मयूरवाहनत्वात् स्वामिकार्त्तिकः ॥१४६॥

हीसुं० रत्नानामिव[१]रोहणोऽ[२]म्बुरुहिणीप्रेयानिव [३]ज्योतिषां
विन्ध्याद्रिष्किर(: करि)णामि[४]वामरगिरिः [५]स्वर्भूरुहाणामिव ।
लब्धीनां [६]वसुभूतिनन्दन इवाम्भोधिः सुधानामिव
श्रीमत्सूरिशतक्रतुर्भुवि चिरं जीयाद्गुणानां निधिः ॥१४७॥

इति पण्डितदेवविमलगणिविरचिते श्रीहीरसौभाग्यनाम्नि महाकाव्ये श्रीमहावीरजिनेन्द्रमारभ्य श्रीविजयदानसूरीन्द्रं यावत्पट्टपरंपराप्रादुर्भावनो नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ग्रन्थाग्रं २२२॥

(१) रत्नशैलः । (२) सूर्यः । (३) किरणानाम् । (४) मेरुः । (५) कल्पवृक्षाणाम् । (६) गौतमस्वामी ॥१४७॥

इति चतुर्थः सर्गः ॥ ग्रन्थाग्रं २५६॥

हील० यथा मणीनां गृहं रोहणः, यथा रविर्धाम्नां गृहं, यथा विन्ध्याद्रिर्गजानां गृहं, मेरुः कल्पवृक्षाणां, गौतमः लब्धीनां, अब्धिरमृतानां गृहं भवति तद्वद्गुणानां गृहं श्रीसूरिश्चिरं जीयात् ॥१४८॥

हील०→ यं प्रासूत शिवाह्वसाधुमघवा सौभाग्यदेवी पुनः,
पुत्रं कोविदसिंहसीहविमलान्तेवासिनामग्रिमम् ।
तद्ब्राह्मीक्रमसेविदेवविमलव्यावर्णिते हीरयुक्-
सौभाग्याभिधहीरसूरिचरिते सर्गश्चतुर्थोऽभवत् ॥१४९॥←

इति श्रीसीहविमलगणिशिष्यपं.देवविमलगणिविरचिते हीरसौभाग्यनाम्नि महाकाव्ये श्रीमन्महावीरदेवपट्ट-परंपरावर्णनो नाम चतुर्थः सर्गः ।

1. अयं श्लोको हीलप्रतौ ३०तमश्लोकत्वेन श्रीभद्रबाहुस्वामिवर्णने दृश्यते । हीमु० अपि तथैव । किन्तु, हीसुं प्रतौ अयं श्लोकोऽस्यैव सर्गस्य १४६तमश्लोकरूपेण श्रीविजयदानसूरीश्वरवर्णने लिखितोऽस्ति ॥

→← एतदन्तर्गतः पाठो हीसुंप्रतौ नास्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐँ नमः ॥

अथ पञ्चमः सर्गः ॥

हीसुं० [1]आजगाम विहरन्स[2]धरित्र्यां पत्तने विजयदानमुनीन्द्रः ।
राजहंस इव [3]जह्नुसुतायाः [4]प्रोल्लसत्कमलशालिनि नीरे ॥१॥

(१) आगतः । (२) गूर्ज्जरदेशे विहारं कुर्वन् । (३) गङ्गायाः । (४) विकचकमलैः शोभमाने । पक्षे-प्रकर्षेण निरन्तरं वासत्वादुल्लसन्ती हृष्यमाणा कमला लक्ष्मीर्यत्र तथा शोभमाने ॥१॥

हील० आज० । अधिकलक्ष्मीकलिते पत्तने विजदानसूरिरागच्छति स्म । यथा गङ्गायाः कमलकलिते नीरे राजहंसः समेति ॥१॥

हीसुं० [1]साम्प्रतीनयुगजन्तुपवित्रीकर्त्तुरर्हत इव व्रतिभर्तुः ।
आगमं [2]श्रवणगोचरयित्वा नागरा हृदि [3]ननन्दुरमन्दम् ॥२॥

(१) आधुनिकयुगः कलियुगस्तस्य प्राणिनः पवित्रीकारकस्य । (२) कर्णयोर्गोचरं कृत्वा, श्रुत्वा । (३) जहृषुः । "परिचरणामन्दनन्दन्नखेन्दु" रिति नैषधे ॥

हील० साम्प्र० । श्रीसूरेरागमं श्रवणयोर्गोचरं विधाय पौरा मनसि जहृषुः । उत्प्रेक्ष्यते । कलियुगप्राणिनां पवित्रयितुं तीर्थकरस्येवागमनमिवानन्दकारणम् ॥२॥

हीसुं० व्याहृता[1]मितमधु [2]स्पृहयद्भिर्नागरैरुपगतैर्गणधारी ।
[3]दानवारि [4]मधुकृन्निकुरम्बै[5]र्गन्धसिन्धुर इवैष नि(सि)षेवे ॥३॥

(१) वचनाप्रमाणमाद्वी(ध्वी)कम् । (२) वाञ्छद्भिः । (३) मदजलम् । (४) भ्रमरनिकरैः । (५) गन्धहस्ती ॥३॥

हील० व्याहृ० । भाषितवचनमेवामेयं मधु क्षौद्रं काङ्क्षद्भिः । अत एवागतैः नगरलोकैः एष सूरिर्भेजे । यथा मधुपकलापैः अमितं मदोदकं काङ्क्षद्भिः गन्धेनोपलक्षितो वारणराजः सेव्यते, तद्वत् ॥३॥

हीसुं० [1]सूरिशक्रपरिषत्कृतभूषैस्त[2]द्वेषणरसाद[3]निमेषैः ।
[4]वाक्सुधारसपिबैष्पु(: पु)रलोकैर्भूगतैरिव बभे सुरलोकैः ॥४॥

(१) सभामध्ये निर्मितशोभैः । "पर्षत्परिषदा सहे"ति शब्दप्रभेदे । (२) सूरीन्द्रमुखालोकनरसेन । (३) निर्निमेषैः । (४) वचनामृतरसपायिभिः ॥४॥

हील० सूरि० । पुरलोकैर्नगरजनैः शुशुभे । किंभूतैः पुरलोकैः ? सूरिशक्रस्याचार्यपुरन्दरस्य विजयदान-सूरेष्प(: प)र्षदि पर्षदार्थं निष्पादिता भूषा यैस्तादृशैः । पुनः किंभूतैः पुरलोकैः ?। तस्य सूरीन्द्रस्य अर्थाद्गुरुमुखस्य यद्दर्शनं तस्य रसान्निमेषरहितैः वचनामृतपिबैः । उत्प्रेक्ष्यते । भूगतैर्देवलोकैः ॥४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]आत्मनामिव [२]वतंसविधित्सात्युत्सुकै[३]र्विकचकोकनदेन ।
पौर[४]मौलिभिरचुम्ब्यत सूरेः संमदात्पदयुगं [५]युगबाहोः ॥५॥[1]

(१) स्वेषाम् । (२) अवतंसानां कर्त्तुमिच्छयाऽतिशयेनोत्कण्ठितैः । (३) स्मेररक्तकमलेन । (४) नगरलोकमस्तकैः । (५) धूसरप्रमाणभुजस्य । आजानुबाहुत्वादिदं विशेषणम् ॥५॥

हील० आत्मना० । नगरजनोत्तमाङ्गैः युगपद्वाहूर्यस्य तादृशसूरेश्चरणयुगं अचुम्ब्यत नम्रीभूतमित्यर्थः । उत्प्रेक्ष्यते । विकचेन कोकनदेन रक्तोत्पलेन आत्मनां-स्वेषां अवतंसस्य या विधातुमिच्छा-कर्त्तुमिच्छा तत्रातिशयेनोत्सुकैरुत्कण्ठितैः । 'वष्टि भागुरि'रिति सूत्रेणावाप्योरकारलोपः ॥५॥

हीसुं० आगमं गणधरस्य कुमारो ज्ञातवानथ मिथो [१]जनवाग्भिः ।
[२]कोकपोत इव [३]नक्तविरामे [४]ताम्रचूडवचनैस्त[५]पनस्य ॥६॥

(१) परस्परभाषमाणजनालापैः । (२) चक्रवाकबालकः । (३) रात्रेरन्ते । (४) कुर्कुटवाक्यैः । (५) सूर्यस्य ॥६॥

हील० आग० । अन्योन्यं नागरिकवचनैः सूरेः पत्तने आगमनं ज्ञातवान् । यथा कुर्कुटवचनैर्निशात्यये चक्रवाकबालकः सूर्योदयं जानाति ॥६॥

हीसुं० [१]बालसाल इव [२]कोरकभूषामुद्वहन्वपुषि [३]कण्टकलेखाम् ।
[४]तं मुदा [५]नमसितुं [६]स्पृहयन्मो[७]ऽध्यास [८]सारथिसनाथरथाङ्कम् ॥७॥

(१) लघुवृक्षस्य । (२) कलिकाशोभाम् । (३) रोमाञ्चराजीम् । (४) विजयदानसूरिम् । (५) नमस्कर्त्तुम् । (६) वाञ्छन् । (७) अधिरोहति स्म । (८) सारथियुक्तं रथमध्यम् ॥७॥

हील० बालवृक्षः मुकुलशोभां धत्ते, तद्वद्वपुषि रोमाञ्चतां वहन् । पुनः सूरिं नन्तुं काङ्क्षन् स कुमारः सारथियुक्तं रथमधिरोहति स्म ॥७॥

हीसुं० [१]रंहसास्य मनसो [२]विभुवीक्षोत्कण्ठितस्य दधता किमु मूर्त्तिम् ।
सञ्चर[३]त्पथि रथेन स तेन प्राप्तवानु[४]पमुनीन्द्रनिकेतम् ॥८॥

(१) वेगेन । (२) सूरिदर्शनोत्सुकितस्य । (३) मार्गे चलन् । (४) विजयदानसूरिरुपाश्रय समीपम् ॥८॥

हील० रथेन सह स गच्छन् उपाश्रयसमीपं गतवान् । उत्प्रेक्ष्यते । मूर्तिमता मनोवेगेन रथेनेत्यत्रोत्प्रेक्षा ॥८॥

हीसुं० [१]स्यन्दनान्म[२]णिहिरण्यवरेण्यश्रीजुषः [३]प्रमदमेदुरिताङ्गः ।
[४]स्वर्गिवर्ग इव [५]नाकिविमानादुत्ततार भुवि हीरकुमारः ॥९॥

(१) रथात् । (२) रत्नस्वर्णप्रकृष्टशोभाभाजः । (३) प्रीतिपुष्टकायः । (४) देवव्रजः । (५)

---

1. इति गुरोः पौरागमनवन्दने हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवानां विशेषणत्वाद्विद्याधरविमानसद्भावेऽपि देवयानादिति ॥९॥

हील० स्यन्द० । रत्नजटितस्यन्दनात्कुमारः सूरिं नन्तुमुत्तरति स्म । यथा देवयानाद्देवव्रजो जिनं नन्तुमुत्तरति ॥९॥

हीसुं० [1]सूरिवक्त्रविधुवीक्षणजन्मानन्ददुग्धनिधिफेन इवो[2]द्यन् ।
[3]चन्द्रिकाच्छुरितरुक्द(ग्द)शनानामानने स्मितमनेन वितेने ॥१०॥

(१) गुरुवदनचन्द्रदर्शनोद्भूतप्रमोदक्षीरसमुद्रस्य फेन इव । (२) प्रकटीभवन् । (३) दन्तानां कान्तिश्चन्द्रिकेत्युच्यते । यथा रघुवंशे- ''दशनचन्द्रिकया व्यवभासित'' मिति । व्याप्तकान्तिः ''चन्दनच्छुरितं वपु''रिति पाण्डव चरित्रे ॥१०॥

हील० सूरि० । दशनकान्त्या व्याप्ता रुक् यस्य तादृशमीषद्धसितं चक्रे । उत्प्रेक्ष्यते । श्रीसूरिमुखचन्द्रालोकनेनोत्पद्यमानः क्षीराब्धिफेनः ॥१०॥

हीसुं० [1]सूरिराजचरणाम्बुजयुग्मे [2]नेमुषो मुखम[3]मुष्य बभासे ।
आगतो मिलितुमत्र [4]वसन्तीं जामिमा[5]त्मन इव [6]श्रियमिन्दुः ॥११॥

(१) गुरुचरणकमलयामले । (२) प्रणतस्य । (३) कुमारस्य । (४) गुरुचरण वासिनीम् । (५) स्वस्यभगिनीम् । (६) लक्ष्मीम् । द्वयोरपि समुद्रोत्पन्नत्वाद्भ्रातृभगिन्योर्व्यवहारः ॥११॥

हील० सूरि० । सूरिचरणाम्बुजयुग्मे प्रणतस्यास्य मुखं रेजे । उत्प्रेक्ष्यते । अत्र चरणाब्जे वसन्तीं स्वभगिनीं श्रियं मिलितुमागतश्चन्द्रः ॥११॥

हीसुं० भाति [1]तत्पदरजोऽस्य[2] ललाटे [3]पूर्वमेव तिलकं कृतमेतत् ।
[4]त्वय्यथ त्वरितमेव समेष्ये भाषितुं किमिति तत्पदलक्ष्म्या ॥१२॥

(१) गुरुचरणरेणुः । (२) कुमारभाले । (३) प्रथममेव तिलकं कृतम् । (४) गुरोः पदस्य चरणस्याथ च पट्टस्य लक्ष्म्या इति वक्तुम् । इति किम् ?। यदहं त्वयि विषये शीघ्रमेव समेष्यामीति ॥१२॥

हील० भाति० । सूरिचरणरेणुः तल्ललाटे लग्नः । उत्प्रेक्ष्यते । तत्पट्टलक्ष्म्या इति वक्तुं तिलकं कृतम् । इतीति किम् ? । अहं त्वयि सद्यः समागमिष्यामि ॥१२॥

हीसुं० तस्य[1] लोचनपथे [2]पृथुकेन्द्रस्तस्थिवानथ यथासनमेषः ।
[3]सत्क्रियेव [4]विधिना परिषत्सा तेन[5] काञ्चिदपुषच्च विभू[6]षाम् ॥१३॥[1]

(१) गुरोरग्रे । (२) हीरकुमारः । (३) शोभनानुष्ठानमिव । (४) शास्त्रोक्तप्रकारेण । (५) कुमारेण । (६) अपूर्वां शोभाम् ॥१३॥

हील० तस्य० । सूरेर्लोचनमार्गे कुमारेन्द्रो यथास्थानं उपतिष्ठः । तेन कुमारेण सभा शोभां पुष्णाति स्म ।

1. इति हीरकुमारागमन-गुरु वन्दने हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यथा शास्त्रोक्तप्रकारेण सत्क्रिया क्रियमाणा शोभते, तद्वत् ॥१३॥

हीसुं० **देशनां [१]शमवतां [२]शतमन्युः स प्रबोधयितुम[३]ङ्गिसमाजम् ।**
प्रादिशद्व[४]रयिता [५]वसतीनां [६]कौमुदीमिव वनं कुमुदानाम् ॥१४॥

(१) मुनीनाम् । (२) शक्रः । (३) भव्यसभाम् । (४) भर्त्ता । (५) रात्रीणाम् । (६) चन्द्रिकाम् ॥१४॥

हील० **देश०** । साधूनामिन्द्रः भव्यसभां प्रतिबोधयितुं देशनां ददौ । यथा रात्रिकान्तश्चन्द्रः कुमुदवनं प्रतिबोधयितुं चन्द्रिकां प्रदिशति ॥१४॥

हीसुं० **[१]इन्द्रवारणमिवेयमसारा [२]संसृतिः [३]कृतदुरन्तविकारा ।**
[४]पङ्किलावट इवात्र [५]निमग्ना निर्गमेन भविनः [७]प्रभवन्ति ॥१५॥

(१) कटुकफलम् । (२) संसारः । (३) विहितः दुष्टोऽन्तो दु[:]खदमवसानं यस्य तादृग्विकारो -विकृतिर्यया । (४) कर्दमकलितकूपे । (५) ब्रूडिताः । (६) निर्गन्तुम् । (७) समर्थीभवन्ति ॥१५॥

हील० **इन्द्र०** । इयं संसृतिरिन्द्रवारणफलमिव रम्यातिकटुका, कृतः दुष्ट अन्ते विकारो यया, सास्ति । यथा पङ्किलकूपे पतिता न निर्गच्छन्ति, संसृतौ पतिता अपि निर्गन्तुं न समर्थीभवन्ति ॥१५॥

हीसुं० **[१]नारकादिगतयोऽत्र चतस्रः संस्फुरन्त्यसुमतामिव[२] पुर्यः ।**
सन्ति [३]भूपतिपथा इव लक्षा[४]योनयश्चतुरशीतिरमूषु ॥१६॥

(१) नरक-तिर्यक्-मनुष्य-देवगति लक्षणा । (२) प्राणिनां स्थातुं नगर्यः । (३) राजमार्ग्गाः । (४) चतुरशीतिजीवयोनिलक्षाः ॥१६॥

हील० नारकादिगतयष्पु(: पु)र्य इव सन्ति । पुरीषु राजमार्गाश्चतुरसी(शी)तिलक्षा योनयो विद्यन्ते ॥१६॥

हीसुं० **[१]मर्त्त्यजन्मनगरीम[२]धिगत्य प्राणिनो [३]भ्रमिवशेन [४]कथंचित् ।**
[५]दर्शनादिवरवस्त्वनवाप्तेरायुरेव धनवत्क्ष[६]पयन्ति ॥१७॥

(१) मनुष्ययोनिनामपुरीम् । (२) प्राप्य । (३) भवपरिभ्रमणप्रकारेण । (४) महता कष्टेन । (५) सम्यक्त्वप्रमुखविशिष्टपदार्थानामलाभात् । (६) निष्ठापयन्ति ॥१७॥

हील० मर्त्यभवमासाद्य रत्नत्रयानवाप्तेर्जना नीवीद्रव्यमिव आयुः क्षपयन्ति ॥१७॥

हीसुं० **[१]निर्गतायुरखिलद्रविणास्ते [२]रङ्कवन्न[३]रकवर्त्म [४]भजन्तः ।**
[५]हा [६]दुरागतदशा [७]अशरण्या [८]नित्यदुःखम[९]नुभूय म्रियन्ते ॥१८॥

(१) निष्ठापितनिखिलजीवितद्रव्याः । (२) द्रमका इव । (३) नारकमार्गम् । (४) श्रयन्तः । (५) हा इति खेदे । (६) दुष्टा निन्द्या समेता अवस्था येषाम् । (७) शरणरहिताः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(८) सदा । (९) भुक्त्वा ॥१८॥

हील० निर्गतायुर्बला जीवा नरकनिगोदादिषु दुःखमनुभूय म्रियन्ते ॥१८॥

हीसुं० **धर्ममा[१]र्हतमतो [२]जनिमन्तो [३]यानपात्रमिव [४]सङ्ग्रहयध्वम् ।**
[५]तस्थुषीं [६]भवपयोनिधिपारे मुक्तिनामनगरीं च [७]जिहीध्वम् ॥१९॥

(१) जिनप्रणीतम् । (२) जन्तवः । (३) वाहनमिव । (४) सङ्ग्रहं कुरुध्वम् । (५) स्थिताम् । (६) भवसमुद्रस्य परस्मिन् पारे । (७) गच्छत ॥१९॥

हील० **धर्म०** । अत आर्हतं धर्मं यूयं सङ्ग्रहयध्वम् । यदि संसारपारस्थितां शिवपुरीं जिहीध्वं यूयं गच्छत ॥१९॥

हीसुं० **[१]द्वे [२]महोदयपुरस्य [३]पदव्यौ प्रध्वरा च विषमा च जिनोक्ते ।**
आदिमा ननु [४]महाव्रतनामा पश्चिमा [५]पुनरणुव्रतरूपा ॥२०॥

(१) उभे । (२) मुक्तिनगरस्य । (३) मार्ग्गौ । (४) साधुमार्गः । (५) श्रावकमार्गश्च ॥२०॥

हील० **द्वेम०** । भो भव्याः ! द्वौ मौक्षमार्गौ वर्त्तेते । आद्या पञ्चमहाव्रतलक्षणान्या द्वादशव्रतरूपा ॥२०॥

हीसुं० **[१]तूर्णमस्ति यदि [२]तत्र [३]यियासा प्रध्वरे [४]पथि ततः [५]प्रयतध्वम् ।**
[६]सौगतोदितपदार्थ इवास्ते यद्भवः [७]स्फुरदशाश्वतभावः ॥२१॥

(१) शीघ्रम् । (२) मुक्तिपुरे । (३) गन्तुमिच्छा । (४) साधुमार्ग्गे । (५) उद्यमं कुरुत । (६) बौद्धमतकथितपदार्थे सर्वं क्षणिकमित्यादिके । (७) प्रकटीभवन्नश्वरत्वं यत्र ॥२१॥

हील० **तूर्ण०** । भो भव्या ! स्तत्र मोक्षपुरे यदि यातुमिच्छा सतूरमास्ते तर्हि साधुमार्गरूपे मार्गे प्रयत्नं कुरुध्वम् । बौद्धकथितवस्तुव्रजे सर्वं क्षणिकमित्यादि वाक्यात् यावत्पदार्थसार्थे अनित्यतास्ति तद्वद्भवः -संसारः स्फुरन्नशास्व(श्व)तः भावः स्वरूपं यस्य तादृशः समस्ति ॥२१॥

हीसुं० **[१]सान्ध्यराग इव जीवितमास्ते यौवनं च सरितामिव वेगः ।**
यत्क्ष[२]णेव [३]कमला [४]क्षणिकेयं तत्त्व[५]रध्व[६]मनिशं जिनधर्म्मे ॥२२॥[1]

(१) सन्ध्यासम्बन्धी राग इव । (२) विद्युदिव (३) लक्ष्मीः । (४) क्षणस्थायिनी । (५) शीघ्रीभवत । (६) नित्यम् ॥२२॥

हील० यद्यस्मात्सन्ध्याराग इव जीवितव्यं आस्ते, यौवनं नदीपूरमिव त्वरितं प्रयाति, लक्ष्मीरपि विद्युदिवास्थिरास्ति, तत्तस्माद्भो भव्याः ! जिनधर्मे त्वरां कुरुध्वम् ॥२२॥

हीसुं० **[१]भारतीमि[२]ति [३]निशम्य [४]शमीन्दोः [५]कल्पिताप्लव इवामृतः(त)कुण्डे ।**
[६]उल्लसत्पुलकपल्लविताङ्ग[७]श्चेतसीति [८]वि[२]ममर्श कुमारः ॥२३॥

1. इति गुरु देशना हील० । 2. विततर्क हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) वाणीम् । (२) देशनारूपाम् । (३) श्रुत्वा । (४) गुरोः । (५) कृतस्नानः । (६) प्रकटीभवद्रोमाञ्चेन कोरकयुक्तकायः । (७) चित्ते । (८) विचारयति स्म ॥२३॥

हील० भारती० । गुरोर्वाणीं श्रुत्वा कृतामृतस्नान इव रोमाञ्चितः कुमारश्चेतसि चिन्तयामास ॥★२३॥

हीसुं० **अस्ति कश्चन न कस्यचनापि भ्रातृपुत्रपितृमित्रजनादि ।**
[१]संसृतौ [२]क्षणिकतां [३]कलयन्त्यां नानुषा(या)ति[४] परलोकजुषं यत् ॥२४॥

(१) संसारे । (२) क्षणिकत्वं 'जे पुव्वह्ने दिट्ठा ते अवरह्ने न दीसन्ती'त्यादिना । (३) बिभ्रत्याम् । (४) अन्यभवे कश्चित्सार्द्धं न याति । एक एव जीवो व्रजति ॥२४॥

हील० अस्ति० । संसारे कश्चित् कस्यापि नास्ति । अन्यच्चान्यस्मिन्भवे न कोऽपि सार्द्धं याति । एक एव जीवो यातीत्यर्थः ॥२४॥

हीसुं० **[१]वल्लभीभवति यद्भ[२]वभाजां [३]स्वार्थ एव न[४]तथात्र परार्थः ।**
[५]पर्वणीन्दु[६]रपि [७]पङ्कजपाणिं यात्यसौ [८]वसुकृतेऽ[९]परथा नो ॥२५॥

(१) इष्टो भवति । (२) प्राणिनाम् । (३) स्वकीयोऽर्थः । (४) तेन प्रकारेण परेषामर्थो न द्र(दृ)ष्टः । (५) अमावस्यायाम् । (६) चन्द्रः । (७) सूर्यः(र्यम्) । (८) कान्तिकृते । (९) अर्थे सृते पुनः पार्श्वे नायाति । "प्रकारवचने थाल्" । "सामान्यस्य भेदको विशेष-प्रकारस्तद्वृत्तेः किमादेस्थाल् स्यात् सर्वप्रकारेणेति सर्वथा अन्यथा इतरथा अपरथा" इति प्रक्रियाकौमुद्याम् ॥२५॥

हील० इह जगति निजकार्यमेव वल्लभम्, अन्यकृत्यं न वल्लभम् । यथा क्षीणश्चन्द्रः अमावस्यां(स्यायां) कान्तिकृते सूर्यपार्श्वे याति ॥२५॥

हीसुं० **[१]कार्यकाल [२]इतरोऽपि नरेणा[३]दीयते तदनु मुच्यत एव ।**
[४]विभ्रमाय विधृतो हृदि हारो [५]हीयते [६]रहसि [७]सोममुखीभिः ॥२६॥

(१) कार्यस्य समये-वेलायाम् । (२) अन्योऽपि । (३) गृह्यते । (४) विलासार्थम् । (५) त्यज्यते । (६) एकान्ते । (७) स्त्रीभिः ॥२६॥

हील० कृत्यसमये इतरोऽपि स्वीक्रियते । यद्वत्स्त्रीभिरेकान्ते धृतोऽपि हार उत्तार्यते ॥२६॥

हीसुं० **[१]जन्मिनाम[२]यम[३]कृत्रिममित्रं [४]श्रेयसे तदुदयेज्जिनधर्म्मः ।**
[५]वैभवाय [६]परिशीलनभावं [७]लम्भितः [८]क्षितिशशीव कृतज्ञः ॥२७॥

(१) प्राणिनाम् । (२) अनौपाधिकः । (३) स्वाभाविकः । (४) मोक्षाय । (५) विभूतये । (६) सेवागोचरताम् । (७) नीतः । (८) सेवितः राजा ॥२७॥

हील० जन्मिनां-प्राणिनां अयं धर्मः स्वाभाविकसुहृत्, तस्मात्स कल्याणाय प्रकटीभवेत् । पुनः सेवितः भूतये स्यात् । यथा कृतज्ञः राजा सेवितः भूतये भवति ॥२७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]स्वानुजन्मभगिनीकुलवृद्धाना[२]ददे तदनु[३]युज्य [४]ते(त)पस्याम् ।
[५]पारलम्भनविभुर्भव[६]वार्द्धेर्य[७]त्तरीव नियमस्थिते(ति)रेषा[८] ॥२८॥[1]

(१) निजलघुभ्रातृजामिगोत्रवृद्धान् । (२) गृह्णा(ह्णा)मि । (३) पृष्ट्वा । (४) दीक्षाम् । (५) परतीरप्रापणाय समर्थाः । (६) भवसमुद्रस्य । (७) वेडेव (८) दीक्षा ॥२८॥

हील० स्वानु० । अहं भ्रातृभगिन्यादीन् पृष्ट्वा दीक्षां गृह्णामीति । यतो भवसागरपारप्रापणे नौरिव दीक्षास्ति ॥२८॥

हीसुं० [१]सूरिसिन्धुरपुरः स कुमारो [२]व्याजहार मनसीति विमृश्य ।
[३]दन्तकान्तिमुचकुन्दसुमैस्त[४]त्पादयोरिव सृजन्नु[५]पहारम् ॥२९॥

(१) गुरोरग्रे । (२) उवाच । (३) दशनदीप्तिकुन्दपुष्पैः । (४) गुरुचरणयोः । (५) पूजां कुर्वन् ॥२९॥

हील० सूरि० । स कुमारः चित्ते विचार्य सूरिराजपुरो वदति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । दन्तानां कान्तय एव मुचकुन्दपुष्पानि(णि) तैस्तस्य सूरेः पादयोः पूजां कुर्वन्निव ॥२९॥

हीसुं० प्राप्य तावककरादिह दीक्षा[१]माहितायतिहितामिव शिक्षाम् ।
सेवितुं [२]चरणतामरसं ते [३]मानसं मुनिप [४]कामयते स्म ॥३०॥

(१) स्थापितमुत्तरकाले हितं यया । (२) पदपद्मम् । (३) मनः । (४) वाञ्छति ॥३०॥

हील०- प्राप्य० । स्थापितमुत्तरकाले हितं यया तादृशीं शिक्षामिव तव कराद्दीक्षां प्राप्य हे मुनिप ! त्वच्चरणाब्जं सेवितुं मे मनो वाञ्छति ॥३०॥

हीसुं०- एवमुक्तवति हीरकुमारे [१]सूरिशीतकिरणः स्म[२] गृणाति ।
[३]मथ्यमानमकराकररावं लज्जयन्निव [४]गभीरविरावैः ॥३१॥

(१) गुरुः । (२) भाषते स्म । (३) हरिणा मन्दरेऽप्यालोड्यमानसमुद्रशब्दम् । (४) गम्भीरध्वनिभिः ॥३१॥

हील०- एवमु० । हीरकुमारं प्रति सूरीशः कथयति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । मन्द्रध्वनिभिर्विलोड्यमानसमुद्रगभीरनिर्घोषं लज्जयन्निव ॥३१॥

हीसुं०- मा कृथाः क्वचन [१]तत्प्रतिबन्धं बान्धवस्वजनमित्रजनेषु ।
[२]गन्धवाह इव [३]भूधरसिन्धुग्रामसीमपुरभूमिधुनीषु ॥३२॥

(१) ममत्वेन कृत्वा संसारे स्थायिभावम् । (२) वायुरिव । (३) गिरिनदीलघुपुरग्रामबहिस्थ-प्रदेशनगरपृथ्वीनदीषु ॥३२॥

1. इति हीरकुमारस्य संसारासारताविचारणा हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० **मा कृथाः०** । हे कुमार ! यद्येवं तवाशयस्तर्हि क्वचन प्रतिबन्धं मा कृथाः । वायुरिवाप्रतिबद्धो भव ॥३२॥

हीसुं० **यैर[1]वर्द्धि(र्द्धि) जिन[2]धर्मसुरद्रुः पूर्वजन्मनि जनैरिह तेषाम् ।**
[3]तद्दलानि [4]कमलाकमलाक्षी-सार्वभौमपदवीप्रमुखानि ॥३३॥
[1]तत्सुमानि [2]सुरवैभवलम्भः कीर्त्तयष्प(: प)रिमलोऽप्य[3]दसीयः ।
[4]सिद्धिमुग्धमृगदृक्परिरम्भारम्भणानि पुनरस्य फलानि ॥३४॥ युग्मम् ॥

(१) वर्द्धितः । (२) धर्मकल्पवृक्षः । (३) कल्पद्रुमपर्णानि । (४) लक्ष्मी-लक्ष्मीतुल्यवनिता-चक्रवर्त्तिपदवीमुख्यानि ॥३३॥

(१) धर्मकल्पद्रुमपुष्पाणि । (२) देवलोकलक्ष्मीप्राप्तिः । (३) एतत्सम्बन्धी । (४) मुक्तिकान्तालिङ्गनप्रकाराः-फलानि ॥३४॥

हील० यैर्जिनधर्मकल्पतरुर्वर्द्धितः तेषां जनानां तस्य धर्मकल्पतरोः पत्राणि लक्ष्मी-वधू-चक्रि-पदप्रमुखानि तत्पुष्पाणि स्वर्गसुखं, परिमलः कीर्त्तयः, पुनरस्य धर्मतरोः फलानि सिद्धिवध्वालिङ्गनारम्भणानि वर्त्तन्ते ॥३३-३४॥

हीसुं० **धर्म्म एव [1]मनुजैरिह मन्त्रः सा[2]र्वकामिक इवैष निषेव्यः ।**
येन [3]वाङ्मनसपारगतं यत्तत्करोति [4]करसात्त[5]रसा[6]सौ ॥३५॥[1]

(१) मनुष्यैः । (२) सर्वान्कामान्करोति-समस्तानभिलाषान्पूरयतीति सार्वकामिकः । (३) वाङ्मनसयोः पारगतं वन(च)नमनसोर्गोचरातीतं यत्र । वाचो मनसश्च गोचरो न भवतीत्यर्थः । (४) करसात्-हस्तप्राप्तम् । (५) वेगेन । (६) धर्मः ॥३५॥

हील० धर्म एव सार्वकामिकमन्त्र इव विबुधैः सेव्यः । येन कारणेनासौ धर्मः वचनमनसोर्गोचरं यद्भवति तत्कराधीनं करोति ॥३५॥

हीसुं० **तां [1]निपीय [2]मुनिवासववाचं [3]स्मेरदृग्प्र[4]बुबुधे स कुमारः ।**
[5]कैरवाकर इव [6]स्मितकोशश्चन्द्रिकां [7]कुमुदिनीरमणस्य ॥३६॥

(१) सादरं श्रुत्वा । (२) गुरुदेशनागिरम् । (३) हर्षेण हसितनयनः । (४) प्रतिबोधं प्राप्तः । (५) कुमुदनिकरः । (६) विकसितः कुड्मलो यस्य । (७) चन्द्रस्य ॥३६॥

हील० तां वाचं निपीय हसितलोचनः स कुमारः प्रबुद्ध्यते स्म । यथा चन्द्रस्य चन्द्रिकां पीत्वा विकसिताः कोशा यस्य तादृशः कुमुदप्रकरः विकाशं लभते ॥३६॥

हीसुं० **[1]निश्चिकाय [2]विनयानतकायस्त[3]त्पुरः शि[4]शुशशी [5]स्वतपस्याम् ।**
[6]शंभुसुभ्रुव इवाम्बु[7]जनाभः प्रत्यगाच्च भवनं [8]निजजामैः(मेः) ॥३७॥[2]

1. इति गुरुवाक्यम् हील० । 2. इति विजयदानसूरिपुरो हीरकुमारस्य दीक्षाग्रहणे निश्चयकरणम् हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) निश्चयं कृतवान् । (२) विनयेन नम्रशरीरः । (३) गुरोरग्रे । (४) <u>हीरकुमारः</u> । (५) आत्मनो दीक्षाग्रहणम् । (६) पार्वत्याः । (७) कृष्णः । अम्बुजनाभः, अम्भोजनाभ इत्यादि प्रयोगाः पाण्डवचरित्रे । (८) "भवानी कृष्णमैनाकस्वसे"ति हैम्याम् ॥३७॥

हील० **निश्चि०** । विनयनम्रः स शिशुचन्द्रः सूरिपुरः दीक्षां निश्चिनोति स्म । पुनः स कुमारः स्वभगिनीगृहं प्रत्यगात् । यथा कृष्णः पार्वत्या गृहं प्रति गच्छति । भवानी हि कृष्णभगिनी । "भवानी कृष्णमेनाकस्वसे"ति हैम्याम् ॥३७॥

हीसुं० **इच्छता हृदि [1]महोदयलक्ष्मीसङ्गदूतिमिव जैनतपस्याम् ।**
[2]तन्निकेतनमुपेत्य बभाषे तेन [2]भावयतिना [3]निजजामिः ॥३८॥

(१) मुक्तिश्रियो महाभ्युदयश्रियश्च सङ्गमे दूतिः सन्देशहारिकामिव दूतिरिति । दूतिशब्दश्चम्पूकथायाम् । (२) भावपरिणामे मनसि वा चारित्रमस्यास्तीति । (३) स्वभगिनी ॥३८॥

हील० **इच्छता०** । मनसि मुक्तिस्त्रीदूतीरूपां जैनदीक्षां वाञ्छतानेन कुमारेण गृहं गत्वा भगिनी भाषिता ॥★३८॥

हीसुं० **[1]धारिणीसुत इवाद्य [2]सुधर्म्मस्वामिनं विजयदानमुनीन्द्रम् ।**
वन्दितुं [3]विजयसिंहमहोभ्याम्भोजदृग्गत [4]इतोऽहमभूवम् ॥३९॥

(१) जम्बूकुमार इव । (२) महावीरजिनपञ्चमगणधरः । (३) <u>हीरकुमारस्य</u> भगिनीपतिः । (४) तव गृहात् ॥३९॥

हील० **धारि०** । यथा ऋषभव्यवहारिपत्नी धारिणी तत्सुतो जम्बूकुमारः सुधर्मस्वामिनं नन्तुं गतस्तद्वत् हे विजयसिंहव्यवहारिप्रियतमे ! हे जामे ! इतो गृहाद्विजयदानसूरिं वन्दितुं गतोऽभूवम् ॥३९॥

हीसुं० **[1]कीलनैकललितं कलयन्ती या [2]कशेव तुरगस्य [3]भवस्य ।**
देशनाश्रवणगो[च]रभावं [4]लम्भिता [5]श्रमणशीतमरीचेः ॥४०॥

(१) ताडने एकाद्वितीयव्यवसायम् । "व्रजते हेलिहयालिकीलना"मिति नैषधे ! (२) चर्मदण्डः । (३) संसारस्य । (४) श्रुता । (५) <u>विजयदानसूरीन्द्रस्य</u> ॥४०॥

हील० **कील०** । चर्मदण्डसदृशा भवाश्वस्य ताडने देशना श्रुता ॥४०॥

हीसुं० **[1]उन्नमज्जलधरादिव जामे सूरिराजवदना[2]दुदयद्भिः ।**
[3]वाणिवैभवरसैर्द्वयमेत[त्] पूर्यते स्म मम [4]कर्णकलश्योः ॥४१॥

(१) वर्षोन्मुखीभवन्मेघात् । (२) प्रकटीभवद्भिः । (३) वचोविलाससलिलैः । (४) श्रवणकुण्डलद्वयम् । "अवलम्बितकर्णशष्कुलीकलशीकं रचयन्नवोचते"ति नैषधे ॥४१॥

हील० उन्नमज्जलधरसदृशात्सूरिवदनात् उद्भूतवाग्जलैर्मे कर्णकलशीद्वयं पूरितम् ॥४१॥

---

2. <u>भाष्यते स्म भवनं प्रविभूष्यानेन भावय०</u> हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० सूरिभर्तुरमृतादपि[1] वाचो दृश्यते जगति कोऽपि[2] विशेषः ।
[3]त्यक्तमन्यवे(व)[4]इदंरसिका यन्मन्युबद्धमनसस्त्व[5]मृताशाः ॥४२॥

(१) अनिर्वचनीयः । (२) महदन्तरम् । (३) उज्झितक्रोधाः । (४) गुरुवचनसुधारसिकाः । (५) मौलामृतपायिनो देवास्तु यज्ञोत्कण्ठितहृदयास्तद्भोजित्वात् । "स्वाहा स्वधा क्रतु सुधाभुज" इति हैम्याम् ॥४२॥

हील० अमृतादप्यधिको वाग्विशेषः । यत्कारणाद्देववाण्या रसिकास्त्यक्तकोपा जाताः । तत्त्वतस्तु यज्ञोत्कण्ठितहृदयास्तदशनत्वात् ॥४२॥

हीसुं० [1]सांप्रतं भगिनि तेन मुनीन्दोः[2] सन्निधौ ग्रहयितुं व्रतलक्ष्मीम् ।
[3]उत्सुकोऽहमभवं भवभग्नो [4]धारिणेय इव वीरजिनेन्दोः ॥४३॥

(१) अधुना । (२) श्रीविजयदानसूरि पार्श्वे । (३) उत्कण्ठितः । (४) मेघकुमार इव ॥४३॥

हील० साम्प्रतं सूरिसमीपं दीक्षां आदातुमहमुत्सुकोऽभवम् । यथा मेघकुमारः श्रीमहावीरजिनपार्श्वे व्रतं गृ(ग्र)हीतुमुत्सुको जज्ञे ॥४३॥

हीसुं० [1]सेतुबन्धमिव [2]संसृतिसिन्धोस्तद्व्रताय मम देहि [3]निदेशम् ।
[4]विघ्नयेन्न हि [5]महोदयलक्ष्मीसम्मुखं [6]निजजनं हितकाङ्क्षी ॥४४॥[1]

(१) पाजविरचनम् । (२) संसारसमुद्रस्य । (३) आदेशम् । (४) विघ्नमन्तरायं कुर्यात् । (५) महानुदय ऐश्वर्यप्राप्तिर्मोक्षश्च तल्लक्ष्म्या अभिमुखम् । (६) स्वकीयम् ॥४४॥

हील० सेतु० । संसारार्णवस्य पद्या तुल्यं व्रतनिर्दे(दे)शं मे देहि । हि यस्मान्मुक्तिश्रीसम्मुखीभूतं स्वकीयं जनं हितार्थी जनो न विघ्नयेत् -नान्तरायी भवति ॥४४॥

हीसुं० [1]तद्व[2]चो [3]विरचितं सहजेन [4]प्राप्तमात्रमपि [5]कर्णपुटान्तः ।
क्षिप्त[6]तप्तगुरुपत्रमिवास्या दुःखम[7]प्रतिममातनुते स्म ॥४५॥

(१) तत्पूर्वोक्तलक्षणम् । (२) वचनम् । (३) कथितम् । (४) आगतमात्रम् । (५) कर्णयोः । (६) उष्णीकृतत्रपुरिव । (७) असाधारणम् ॥४५॥

हील० तद्व० । भ्रात्रा रचितं दीक्षादेशमार्गणरूपं वचः कर्णमध्ये गतमात्रमप्यसाधारणं दुःखं कुरुते स्म । यथा क्षिप्तं त्रपु कर्णयोरतिदुःखदं स्यात्, तद्वत् ॥४५॥

हीसुं० [1]डिम्भलम्भितविडम्बनभाजा दुःखतष्य[2](: प)रभृतेव भगिन्या ।
स [3]न्यगादि मृदुगद्गदवाचा [4]साधिमाधरितपुष्पधनुःश्रीः ॥४६॥

(१) बालकेन प्रापिता या विडम्बना तां भजतीति । (२) कोकिलया । (३) भाषितः ।

1. इति भगिनीं प्रति दीक्षादेशमार्गणवचनम् । हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४) शरीरसौन्दर्यनिर्जितकन्दर्पशोभः । "चयादृतः किं नरसाधिमभ्रमः" इति नैषधे ॥४६॥

हील० डिम्भ० । डिम्भेन प्रापितं यत्सन्तापनं तद्व्रजति । तादृश्या भगिन्या गद्गदितस्वरेण साधिम्ना शरीरसौन्दर्येण हीनीकृता कामस्य श्रीः शोभा येन तादृशः स कथितः ॥४६॥

हीसुं० [1]सांप्रतं [2]व्यतिकरस्तव कोऽयं [3]वार्द्धकोचितविधेश्च[4]रणस्य ।
[5]लीढि [6]वत्स [7]विषयस्य [8]रसालस्येव [9]पक्त्रिमफलस्य रसांस्त्वम् ॥४७॥

(१) अधुना, बाललीलायाम् । (२) समयः -प्रस्तावः । (३) वृद्धावस्थायोग्यक्रियस्य । (४) चारित्रस्य । (५) आस्वादय । 'लिहींक आस्वादने' । (६) हेः प्रयोगः । (७) शब्दादिरूपस्य । (८) आम्रस्य । (९) परिपक्वफलस्येव ॥४७॥

हील० वृद्धोचितस्य चारित्रस्य का वार्त्ता ? त्वमिदानीं विषयरसानास्वादय । यथा पक्वमाम्रफलमास्वाद्यते ॥४७॥

हीसुं० [1]भाग्यभाजि [2]जलजन्मगृहे[1]वा[3]गन्तुका [4]तरुणता त्वयि वत्स ।
[5]कामकेलिवसतौ रतिसख्यां त्वं रमस्व युवतीभिरमुष्याम् ॥४८॥

(१) पुण्यवति । (२) लक्ष्मीः (३) आगमनोत्सुका । (४) यौवनावस्था । (५) कन्दर्पक्रीडासदने ॥४८॥

हील० यथा लक्ष्मीः पुण्यवति समेति तथा त्वयि तारुण्यमागमिष्यति । पुना रतेः सख्यामस्यां स्मरक्रीडावसतौ स्त्रीभिः सह त्वं रमस्व ॥४८॥

हीसुं० [1]यौवनेऽ[2]र्जय यशोगुणलक्ष्मीः [3]क्षोणिमानिव [4]महःक्षितिकोशान् ।
[5]आर्हतं तम(द)नु धर्म्ममपि[2] त्वं [6]स्थाविरे स्थिरतया [7]विदधीथाः ॥४९॥

(१) तारुण्ये । (२) उपार्जय । (३) राजा । (४) प्रतापपृथ्वीभाण्डागारान् । (५) जिनप्रणीतम् । (६) वृद्धावस्थायाम् । (७) कुर्याः ॥४९॥

हील० यथा राजा प्रतापं कोशमर्जयति तद्वत्त्वं कीर्त्त्यादीनर्जय । अनु पश्चाद्धर्मं कुर्वीथाः ॥४९॥

हीसुं० [1]मौक्तिकेन [2]किल [3]सोदर ! सर्वैः श्लाध्यतेऽ[4][त्र]भवता [5]पितृवंशः ।
[6]भ्रातृम[3]त्यहमपि त्वयकास्मि श्रीरिवा[7]मृतकरेण [8]वरेण ॥५०॥

(१) मुक्ताफलेन । (२) किलेति इवार्थे । (३) भ्रातः !। (४) अत्र जगति त्वया पूज्येन मान्येन वा । अत्रभवत्तत्रवत्शब्दौ पूज्यार्थे निपात्येते । (५) कुंरासाहिकुलम् । (६) सहोदरसहिता । (७) चन्द्रेण । (८) श्रेष्ठेन ॥५०॥

हील० मौक्ति० । यथा मुक्ताफलेन पिता-वंशो जनैः श्लाध्यते तथा सर्वैः हे सोदर ! त्वया पितुर्वंशः

---

1. ०गृहैवा० इति हीमु० । स चाशुद्धो भाति । 2. ०मयि हीमु० । 3. ०वत्य० इति हीमु० । स चा शुद्धः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्लाध्यते । अहमपि भ्रातृमती, यथेन्दुना श्रीः ॥५०॥

हीसुं० [१]त्वद्वधूमुखसुधांशुसुधायाः पानमुत्सुकतया [२]प्रविधित्सू ।
[३]मद्विलोचनचकोरशकुन्तौ [४]चापलं रचयतश्चिरमेतौ ॥५२॥

(१) तव पत्नीवदनचन्द्रामृतस्य । (२) कर्त्तुमिच्छू । (३) मम नेत्रचकोरपक्षिणौ । (४) चपलत्वम् । उत्कण्ठामित्यर्थः ॥५१॥

हील० हे सोदर ! त्वद्वधूमुखचन्द्रदर्शनोत्सुकौ मल्लोचनचकोरौ चपलौ वर्त्तेते ॥५१॥

हीसुं० [१]वाङ्मयैर्विरचितैरि[२]दमाद्यैः [३]श्रोत्रपत्रपथिकैः स्वभगिन्याः ।
प्रेरितो [४]निगदति स्म कुमारो [५]गर्जितैरिव [६]शिखी [७]घनपङ्क्तेः ॥५२॥[1]

(१) वाचां प्रपञ्चैः । "इतीदृशैस्तं विरचय्य वाङ्मयै" रिति नैषधे । (२) इत्यादिभिः । (३) कर्णप्राघुर्णैः । श्रुतैरित्यर्थः । (४) बभाषे । (५) गर्जारवैः । (६) मयूरः । (७) मेघमालायाः ॥५२॥

हील० स्वजामिवचनैः प्रेरितः कुमारो गदति स्म । यथा मेघगर्जितैः प्रणोदितो मयूरो वक्ति ॥५२॥

हीसुं० [१]जीवितं [२]कुशशिखास्थमिवा[३]म्भष्यां[४](: पां)शुलेव [५]तरला [६]कमलापि ।
[७]ऐक्षवाग्रमिवयौ[८]वतमेतत्प्रे[९]क्षणक्षण इव स्वजनोऽपि ॥५३॥

(१) जीवितव्यम् । (२) दर्भशिखरस्थितम् । (३) पानीयम् । (४) व्यभिचारिणीव । (५) चपला । (६) लक्ष्मीः (७) इक्षुसम्बन्धिप्रान्तम् । (८) स्त्रीगणः । (९) रामलक्ष्मणादिरूप-दर्शननाटक प्रकार इव ॥५३॥

हील० हे जामे ! जीवितव्यं दभा(र्भा)ग्रस्थमम्भ इवास्थायुकम् । पुनर्लक्ष्मीरपि व्यभिचारिणीव चपला । युवतीनां समूह इक्षूणां प्रान्त इव नीरसः । परिजनोऽपि नाटकप्रस्ताव इव क्षणदृष्टनष्टः स्यात् ॥५३॥

हीसुं० यद्गमिष्यति ममा[१]र्भकभावोऽलंकरिष्यति तनुं च [२]युवश्रीः ।
[३]वार्धकं पुनरमा[४]त्यमिव स्वं भूषयिष्यति [५]क [६]इत्य[७]वगच्छेत् ॥५४॥

(१) बालभावः । (२) तरुणताश्रीः । (३) वृद्धावस्था । (४) प्रधानम् । (५) कः पुमान् । (६) इदम् । (७) जानाति ॥५४॥

हील० यद्ग० । हे जामे ! मम शैशवं यास्यति तारुण्यं आगमिष्यति । पुनर्वृद्धावस्था आत्मानं भूषयिष्यति । यथा राजा-ऽमात्य-भिषग्-मुनीन् स्थाविरं भूषयति । इदमवस्थात्रयं भावीति कोऽवबुध्येत ॥५४॥

हीसुं० [१]जन्तुरेष इह [२]जामिकलत्रभ्रातृमातृपितृपुत्रविशेषैः ।
बम्भ्रमीति परमाणुरिवैको [३]नीलिमारुणिमपीतिमरागैः ॥५५॥

---

1. इति विमलाया भगिन्याः हीरकुमारं प्रति प्रथमोक्तिः हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) जीवः । (२) भगिनी-स्त्री-सहोदर-जननी-जनक-सुतविशेषैः । (३) नीलत्व-रक्तत्व-पीतत्वं रङ्गैः ॥५५॥

हील० जन्तुः -प्राणी नानाप्रकारैरतिशयेन पर्यटति । यथाणुर्नानारङ्गैर्भुवने भ्राम्यति ॥५५॥

हीसुं० [१]सौरभेन(ण)[२]मलयद्रुरिवात्मा यस्य [३]धर्म्मविधिना स्म विभाति ।
तेन [४]विष्टपम[५]शेषम[६]भूषि प्रोच्यते स्म किमुता[७]भिजनादि ॥५६॥

(१) परिमलेन । (२) चन्दनद्रुमः । (३) धर्मसम्बन्धिप्रकारेण । (४) विश्वम् । (५) समस्तम् । (६) शोभितम् । (७) वंशादि तु सुखेनैव भूष्यते ॥५६॥

हील० सौरभेण चन्दनतरुर्विभाति तथा यस्यात्मा धर्माचरणेन विभाति तेन पुंसा त्रिजगद्भूषितम् । स्ववंशादि तु भूषितमेवेति बोद्धव्यम् ॥५६॥

हीसुं० [१]निम्नगेव परिसर्प्पति निम्नं या दधाति [२]पितृसूरिव रागम् ।
[३]भोगिनीव [४]कुटिला [५]कमलाक्षी सा सताम[६]नुचिता[७]भ्युपगन्तुम् ॥५७॥

(१) निम्नं-नीचैर्गच्छतीति निम्नगा, नीचगामिनी नदी । (२) सन्ध्येव । (३) सर्पिणीव । (४) वक्रगतिः । (५) स्त्री । (६) अयोग्या । (७) अङ्गीकर्त्तुम् ॥५७॥

हील० या नीचगामिनी, सन्ध्येव क्षणरागिणी, सर्पिणीव वक्रगामिनी सा स्त्री सेवितुं न योग्या ॥५७॥

हीसुं० या [१]जहाति न कदाप्य[२]नुषङ्गं या [३]विरागवति चाधिकरागा ।
तां [४]जगज्जनमनष्क(: क)मनीयां लिप्सते [५]शिवकनीं मम चेतः ॥५८॥[1]

(१) त्यजति । (२) सङ्गम् । (३) वैराग्यशालिनि । (४) त्रैलोक्यैरप्यभिलषणीयाम् । (५) मुक्तिकन्याम् ॥५८॥

हील० या वधूः पार्श्वं न मुञ्चति, या वैराग्यभाजिनि रागिणी, जगद्विख्यातां शिवकन्यां मे चित्तं वाञ्छति ॥५८॥

हीसुं० [१]निश्चिकाय वचनैरथ तैस्तैस्तस्य सा [२]व्रतविधौ [३]द्रढिमानम् ।
[४]मौक्तिकस्त्रजमिवाश्रु[2]कणैः सा तन्वती हृदि पुनस्त[५]म[६]वोचत् ॥५९॥

(१) निर्द्धारं कृतवती । (२) दीक्षाग्रहणप्रकारे । (३) दृढताम् । (४) मुक्ताहारमिव । (५) भ्रातरं हीरकुमारम् । (६) उवाच ॥५९॥

हील० सा भगिनी तैर्वचनैर्दीक्षाग्रहणे दृढतां निर्द्धारयामास । पुनः हृदि अश्रुबिन्दुभिर्मौक्तिकमालां कुर्वन्ती(ती) तं भ्रातरं वक्ति स्म ॥★५९॥

हीसुं० वत्स [१]वत्सलतया तव किञ्चिद्व[२]च्मि [३]कर्णपथिकीकुरु तत्त्वम् ।
यद्र[४]सायनमिव स्वजनानामस्ति [५]वाग्विरचना हितगर्भा ॥६०॥

1. इति तपस्याद्दढतायां भगिनीं प्रति कुमारवचः हील० । 2. ०कणौघैस्त० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) हितकृत्त्वेन । (२) कथयामि । (३) श्रवणगोचरं कुरु। श्रूहीत्यर्थः(श्रुणिवत्यर्थः) । (४) तुष्टि- पुष्टिकृद्भेषजमिव । (५) हितशिक्षा ॥६०॥

हील० हे वत्स ! हितकृत्त्वेन यदहं कथयामि तत्त्वं श्रृणु । यद्यस्मात्स्वजनानां हितशिक्षारसायनमिव च तुष्टिपुष्टिदा स्यात् ॥६०॥

हीसुं० [१]अङ्गनाङ्गपरिरम्भहसन्तीगर्भगेहनिवहान्प्रविहाय ।
[२]मर्षयिष्यसि कथं वद [1]शैष्यं भूमिमानिव भटानरिसैन्यम् ॥६१॥[2]

(१) कामिन्याः कायेन सहाश्लेषणं, शीतकाले तस्योष्णत्वेन, तथाग्निशकटिका तथा अपवरकास्तान् त्यक्त्वा । (२) सहिष्यसे । (३) शिशिरम् । उपलक्षणत्वात् हेमन्तशिशिरौ, द्वाभ्यां कृत्वा शीतकाल उच्यते । (४) नृप इव । (५) सुभटान्मुक्त्वा । (६) कटकम् ॥६१॥

हील० अङ्ग० । हे वत्स ! वधूकायाश्लेषणं, शकटिकां, मध्यगृहाणि मुक्त्वा त्वं हैमन्तं कथं सहिष्यसे। यथा राजा भटान्मुक्त्वा वैरिसैन्यं कथं सहते ॥६१॥

हीसुं० [१]चन्द्रचन्दनशिरोगृहशय्यावारवामनयनावनकेलीः ।
[२]अन्तरेण [३]तरणीरिव [४]सिन्धुर्ग्रीष्म[५] एष किमु [६]निस्तरणीयः ॥६२॥[3]

(१) चन्द्रशालाशयनीयम्, वारविलासिनीवन क्रीडा । (२) विना । (३) वेडाः । (४) समुद्रः । (५) उष्णकालः । वसन्तग्रीष्मौ द्वावप्युष्णसमयः । (६) अतिक्रमणीयः ॥६२॥

हील० चन्द्रचन्दनादि विना एष ग्रीष्मः कथमतिक्रमणीयः । यथा वेडा विनार्णवः कथं निस्तीर्यते ॥६२॥

हीसुं० क्रीडितुं रतिपतेरिव रे(गे)हाः प्रावृषेण्यदिवसाः कथमेते ।
गीतनृत्ययुवतीजनलीलामुख्यसौख्यविमुखेन विषह्याः ॥६३॥[4]

(१) कन्दर्पस्य । (२) वर्षाकालसम्बन्धिनो दिनाः । (३) गाननाटकस्त्रीवर्गक्रीडादिम-सुखपराङ्मुखेन । (४) सहनीयाः । उपलक्षणान्मेघात्ययेऽपि वासरास्तेष्वपि कदापि मेघानां सद्भावात् वार्षिका एव दिनाः ॥६३॥

हील० कामस्य क्रीडनाय गृहाणि तादृशानि दिनानि गीतादिपराङ्मुखेन त्वया कथं सहनीयाः ॥६३॥

हीसुं० [१]जृम्भमाणजलजद्वितयी[२]वांह्रिद्वयी [३]प्रदधती [४]म्रदिमानम् ।
[५]क्षोणिचङ्क्रमणदुःखमियं ते [६]मर्षयिष्यति कथं कथयैतत् ॥६४॥

(१) विकचकमलयुग्मम् । (२) चरणद्वन्द्वम् । (३) धारयन्ती । (४) सुकुमालताम् । (५) पृथ्वीपर्यटनदुःखम् । (६) सहिष्यते ॥६४॥

हील० यथा स्मेरत्कमलयामलं म्रदिमानं धत्ते तद्वन्मृद्वी पदद्वयी इयं कठिनभूपीठे पर्यटनदुःखं कथं सहिष्यते। हे भ्रात ! स्तत्त्वं कथय ॥६४॥

---

1. सैष्यं इति हीमु० । स चाशुद्धो भाति । 2. शीतकालकाव्यम् हील० । 3. ग्रीष्मर्तुकाव्यम् हील० । 4. वर्षासमयकाव्यम् हील०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]वक्त्रवारिजधिया समुपेतां [२]षट्पदावलिमिवालकमालाम् ।
[३]लुञ्चयिष्यसि कथं [४]मुखलक्ष्मीन्युञ्छितामृतमयूख [५]सगर्भ ! ॥६५॥

(१) मुखे कमलबुद्ध्या । (२) भृङ्गश्रेणीम् । (३) उत्पाटयिष्यति । (४) मुखलक्ष्म्या उपरि लुञ्छनीकृत: चन्द्रो यस्य । (५) भ्रात: ! ॥६५॥

हील० वक्त्र० । हे मुखशोभाया उपरि न्युञ्छनीकृत्य क्षिप्तोऽमृतमयूखश्चन्द्रो यस्यार्थाद्धात्रा, स तस्य सम्बोधनम् । हे सगर्भवक्त्राब्जे ! आगतामलिपङ्क्तिमिव श्यामां कचछटां कथमुत्पाटयिष्यसि ॥६५॥

हीसुं० राशिना[१] सुमनसामिव [२]सर्पिस्तर्पितोद्धतधनञ्जयकीला ।
तत्परीषहततिष्क्वि(: कि)मसह्या [३]विग्रहेण मृदुना तव सह्या ॥६६॥[1]

(१) पुष्पप्रकरेण । (२) घृतेन दीपितोत्कटवह्निज्वाला । (३) शरीरेण ॥६६॥

हील० रा० । तव मृदुना येन असह्या क्षुधादिपरीषहाणां श्रेणी केन प्रकारेण सोढव्या । यथा पुष्पाणां प्रकरेण सर्पिषा-घृतेनोद्दीपित उद्धत उत्शिखो वा यो वह्निस्तस्य कीलां कथं क्षम्यते ॥६६॥

हीसुं० [१]कुन्दकुड्मलजयं [२]सृजतेवाभीश्रुभि: [३]प्रसृमरैर्द[४]शनानाम् ।
[५]प्रत्यवादि वदतां[६] विदुरेणानेन [७]जामिरिति नीतिमता सा ॥६७॥

(१) मुचकुन्दकोशानां पराभवम् । (२) कुर्वतेव । (३) विस्तरणशीलै: । (४) दन्तानाम् । (५) प्रतिभाषिता । (६) वक्तृषु चतुरेण । (७) भगिनी ॥६७॥

हील० कुन्द० । मुचकुन्दकलिकानां पराभवं विस्तरणशीलैर्दन्तकिरणै: कुर्वतेव । पुनर्वक्तृणां मध्ये विदग्धेन, पुनर्नययुक्तेन तेन भगिनी प्रत्युत्तरीकृता । प्रत्युत्तरो दत्त इत्यर्थ: ॥६७॥

हीसुं० [१]वर्णिनीव विरति: कृतसङ्गा ध्यानसन्ततिरसौ ह[२]सनीव ।
[३]शान्ततापवरकष्क्वि(: कि)मु जामे [४]शर्म्मणे शमवतां [५]तुहिनर्त्तौ ॥६८॥[2]

(१) स्त्रीव । (२) अङ्गारशकटी । (३) शमनामापवरक: । (४) सुखाय । (५) हिमसमये । शीतकाले ॥६८॥

हील० वर्णि० । शीतकाले साधूनां अमी सुखाय भवन्ति । यत्र विरति: कान्तेवास्ते, ध्यानं शकटीवास्ते, तथा शमपरिणामो गर्भागार इवास्ते । हे जामे ! शीतं सुखदम् ॥६८॥

हीसुं० [१]अङ्गराग इव [२]सद्गुरुशिक्षा श्रीजिनस्य च विधोरिव सेवा ।
केलिर[३]ब्जसरसीव च योगे प्रीणयन्ति [४]शमिनोऽपि नि[५]दाघे ॥६९॥[3]

(१) विलेपनम् । (२) गुरुणां शिक्षा । (३) कमलोपलक्षिततटाके । (४) चारित्रिण: । (५) उष्णकाले ॥६९॥

---

1. इति हीरकुमारं प्रति शीतातपाद्यसह्यसूचकविमलावाक्यानि हील० । 2. कुमारोक्तं यतिसातकृत् शीतकाल काव्यम् हील० ।
3. कुमारोक्तं मुनिमन:सुखकृत् ग्रीष्मर्तुकाव्यम् हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० अङ्क० । साधूनां ग्रीष्मसमये चन्द्रसदृशा गुरुशिक्षा । पुनः कमलकलितसरःसदृशे योगे केलिः । एतेऽर्थाः निदाघे प्रीतिदाः ॥६९॥

हीसुं० **यत्र गीतय इवा[१]गमघोषास्ता[२]ण्डवा इव पुन[३]र्भवभावाः ।**
[४]वारिवाहदिवसाः शमभाजां नित्यमुत्सवमया इव सन्ति ॥७०॥[1]

(१) सिद्धान्तपठनध्वनयः । (२) नृत्यानि । ताण्डवाः पुंक्लीबे । (३) संसारस्वरूपानि(णि) । (४) मेघदिनानि ॥७०॥

हील० यत्र समयघोषा एव गीतानि । पुनः ससारस्वरूपाणि नृत्यानि । ताण्डवशब्दः पुंनपुंसके । "पूर्वत्रिदिवताण्डवा" इति लिङ्गानुशासने । अत एव प्रावृड्वासराः साधूनां महामहमयाः सन्ति ॥७०॥

हीसुं० **यो विजेतुमिव [१]वारिजराजीं पश्यतस्तत इतः [२]क्रमणेन ।**
पल्लवांश्च [३]विभवैर[४]तिदृप्तौ तौ क्रमौ [५]कलयतष्कि(ः कि)म[६]सातम् ॥७१॥

(१) कमलमालाम् । (२) पर्यटनेन । (३) स्वशोभाभिः । (४) दर्पाध्मातौ । (५) धारयतः । (६) दुःखम् ॥७१॥

हील० यौ चरणौ कमलश्रेणीं जेतुं इतस्ततः पर्यटनेन पश्यतः पुनः प्रवालान् नेतुं पश्यतस्तौ सातासातं न गणयतः ॥७१॥

हीसुं० **[१]द्वेषिणामिव गणाः[२] शितिमानं [३]वक्रभाव[४]मपि ये कलयन्ति ।**
को [५]महाभट इवा[६]त्महितैषी [७]नोच्छिनत्ति [८]ननु तानिह [९]केशान् ॥७२॥

(१) शत्रूणाम् । (२) श्यामताम् । (३) कुटिलताम् । (४) च । (५) बलिष्ठसुभट इव । (६) आत्मनो हितस्याभिलाषी । (७) न उच्छेदयति । (८) ननु प्रश्ने । (९) कुन्तलान् । कुत्सितान् ईशान् - कुभूपानित्यर्थः ॥७२॥

हील० शत्रव इव द्रोहं कुटिलतां च ये बिभ्रति तान् केशान् को नोच्छेदयति ?। यथा सुभटः कुत्सितानीशान् शत्रूनुच्छेदयति । ननु इति प्रश्ने । हे जामे ! सम्यगवधार्यम् ॥७२॥

हीसुं० **[१]जैम[२]नीयमनुजा इव[२] दैवे विग्रहे न शमिनः कृतयत्नाः ।**
[३]क्षेत्रम[४]त्र हि [५]तपोविधि[३]सीरोल्लेखितं दिशति[६] निर्वृतिसस्यम् ॥७३॥

(१) जैमनीयमतभाजो मनुजा इव । (२) देवतासम्बन्धिनि शरीरे न कृतोद्यमास्ते हि दैवं वपुर्न मन्यन्ते । "[4]तस्य जैमनिमुनित्वमुदीये विग्रहं मखभुजामसहिष्णु" रिति नैषधे । चारित्रिणोऽपि मेघकुमार इव शरीरे ममत्वपरिणामरहिताः स्युः । (३) क्षेत्रं – शरीरं कृषिभूमिश्च ।

1. कुमारोक्तं श्रमणस्वान्तस्वास्थ्यकारि वर्षासमयकाव्यम् हील० । 2. जैमि० हीमु० । 3. ०सीरक्षोडितं दिश० हीमु० । 4. "विग्रहं मुखभुजामसहिष्णुस्तस्य जैमिनिमुनित्वमुदीये" हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४) इहलोके । (५) तपःक्रियाहलेन [1]क्षेडितं त्रिसतीकृतं सत् । (६) यद्ददाति सुखेन धान्यादि मोक्षफलं च । सस्यं धान्यफलयोरिति ॥७३॥

हील० यथा जैमनीया देवतासम्बन्धिशरीरे न कृतोद्यमास्तथा यतयो गात्रे ममत्वरहिताः । पुनः क्षेत्रं-शरीरं तपोहलक्षेडितं मोक्षफलं दत्ते ॥*७३॥

हीसुं० इन्द्रियाण्यनिशमु[१]त्पथगानि [२]शूकलानिव वहन्श[३]मरश्मीन् ।
यो नि[४]यन्त्रयति जन्तुर[५]विघ्नं प्राप्य [६]निर्वृतिपुरीं स सुखी स्यात् ॥७४॥

(१) उन्मार्गं प्रचलन्ति इन्द्रियाणि । (२) दुर्विनीताश्वान् । (३) समतापरिण[ति]कशाः । (४) स्वायत्तान् वशान्वा कुरुते । (५) निरन्तरायम् । (६) मुक्तिनगरीम् ॥७५॥

हील० इन्द्रियाणि शूकलाश्वसदृशानि उपवासकशया योऽनिशं अङ्कति सोऽङ्गी मोक्षपुरीं प्राप्य सुखी स्यात् ॥७५॥

हीसुं० [१]मानवान्स्व[२]यम[३]सौच्छ[४]लदर्शी[५]च्छाययास्त्यनुसरन्निव [६]कालः ।
[७]आयतौ हितमतष्क[८](: क)रणीयं [९]तज्जिनक्रमयुगं [१०]शरणीयम् ॥७५॥[2]

(१) मनुष्यान् । (२) आत्मना । (३) प्रत्यक्षलक्षः । (४) छिद्रान्वेषी । (५) वपुः प्रतिच्छायिकया । (६) यमः । "छायामिसेण कालो सव्वजियाणं च्छलं गवेसंतो । पासं कहवि न मुंचइ [ता धम्मे उज्जमं कुणह ॥"] इति वचनात् । (७) उत्तरकाले । (८) कार्यम् । (९) भगवत्पदद्वन्द्वम् । (१०) आश्रयितव्यम् ॥७५॥

हील० यद्यस्मात् अयं कालः छलान्वेषी सन् छायादम्भान्मनुष्याननुगच्छन्निवास्ति । अतः उत्तरकाले हितं कर्त्तव्यम् । उत् तद्विख्यातमर्हत्पदद्वयमाश्रयितव्यम् ॥७५॥

हीसुं० [१]वाङ्मयैर्जित[२]सुधामधुदुग्धैर्निर्जयं विदधतीव शुकीनाम् ।
[३]इत्थमुक्तवति हीरकुमारे सा बिभेद [४]वदनाम्बुजमुद्राम् ॥७६॥

(१) वचःप्रपञ्चैः । (२) पराभूतामृतमधुपयोभिः । (३) अमुना प्रकारेण । (४) मुखकमलमुद्रणं मौनतालक्षणम्, बभाषे इत्यर्थः ॥७६॥

हील० वाग्विभ्रमैः सूत्रकण्ठाङ्गनानां जयन्ती सा हीरकुमारकथनानन्तरं मुखाब्जमुद्रणं बिभेद । बभाषे इत्यर्थः ॥७६॥

हीसुं० [१]नार्हती [२]व्रतविधौ तव तेनाऽद्यापि यत्स्फुरति [३]शैशवमङ्गे ।
[४]योद्धुरा[५]हव इवा[६]पटुतायां तेन तिष्ठ कियतीः [७]शरदस्त्वम् ॥७७॥[3]

(१) न योग्यता । अर्हतो भाव आर्हती । अर्हतो नुम्वेति विभाषया नुम् विधानादार्हन्ती

1. 'खेड्युं' इति गूर्जरगिरायाम् । 2. इति हीरकुमारस्य स्वभगिनीं प्रति द्वितीयवारं प्रत्युत्तरवचनानि हील० ।
3. विमलायास्तृतीयवारं वाक्यम् हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आर्हतीति रूपद्वयम् । ''उडुपरिषदः किं नार्हन्ती निशः किमनौचिती''ति नैषधे । (२) दीक्षाग्रहणे । (३) बालावस्था । (४) सुभटस्य । (५) सङ्ग्रामे । (६) असामर्थ्ये । (७) वर्षाणि कतिचित् ॥७७॥

हील० हे वत्स ! तव व्रतग्रहणे न आर्हती-न योग्यता । यतस्त्वं शिशुः । यथा भटस्यापटुतायां सत्यां सङ्ग्रामे नार्हती, तेन कारणेन कियद्वर्षाणि तिष्ठ ॥७७॥

हीसुं० [१]शैशवे[1] [२]मदनमोहमहेभान् [३]सिंहशाव इव [४]हिंसितुमी[५]शः ।
तत्स[६]मादिश ममा[७]स्य [८]निदेशं [2][९]तामिदं तदनु सोऽपि जगाद ॥७८॥[3]

(१) बाल्येऽपि । (२) स्मरमोहादिहस्तिनः । (३) केसरिकिशोरक इव । (४) हन्तुम् । (५) समर्थः । (६) देहि । (७) व्रतस्य । (८) आदेशम् । (९) भगिनीम् ॥७८॥

हील० शैशवे० । हे जामे ! अहं शैशवेऽपि मदमोहहस्तीन् निहन्तुं केसरीव समर्थोऽस्मि । तस्मादाज्ञां देश(हि) । तदनु स बभाषे ॥*७८॥

हीसु० तस्य वीचिभिरि[१]वामरसिन्धोरुक्तियुक्तिभिरितो[२]ऽप्य[३]पराभिः ।
ओमिति प्रवदति स्म कथञ्चित्सापि [४]बाष्पभरगद्गदवाग्भिः ॥७९॥[4]

(१) गङ्गाकल्लोलैरिव । (२) अस्या अपि । (३) अन्याभिः । (४) निर्गच्छन्नयनाश्रुभिर्गद्गदाभिरस्पष्टाभिर्वाणीभिः ॥७९॥

हील० गङ्गाया रङ्गत्तरङ्गैरिव तस्य वचनैः पूर्वोक्तादप्यपरैः सा दुःखाश्रुभरेण गद्गदितस्वरैः ओमिति- एवमस्त्विति वदति स्मादेशं ददौ ॥७९॥

हीसुं० [१]पूर्वमेव [२]नियमस्थितिकालात्सा [३]गलद्बहुलदृग्जलपूरैः ।
भ्रातरं [४]स्वयमिव स्नपयन्ती[५]दं पुन[६]र्गदितुमारभते स्म ॥८०॥

(१) प्रथमेव । (२) दीक्षाग्रहणावसरात् । (३) निः सरदस्वल्पलोचननीरपूरैः । (४) आत्मनेव हीरकुमारम् । (५) वक्ष्यमाणम् । (६) भाषितुम् ॥९०॥

हील० पूर्व० । दीक्षाग्रहणकालात्पूर्वमेव सा जामिर्गलदश्रुपूरैः सहोदरं स्नपयन्ती सती इदं कथयति स्म ॥८०॥

हीसुं० [१]यादसां [२]भवधुनीधवमध्ये [३]मादृशा[४]मतिदुराकलनीयः ।
संयमः [५]सुकृतविप्रयुतानां भ्रातर[६]ल्पतरसामिव [७]दुर्गः ॥८१॥

(१) नक्रादिजलचरजन्तुसदृशानाम् । (२) संसार समुद्रमध्ये । (३) अस्मत्सदृशानाम् । (४) दुःखेनादरणीयः । (५) निष्पुण्यानाम् । (६) स्तोकबलानाम् । (७) कोट्टः ॥८१॥

1. ०वेऽपि मदमोह० हीमु० । 2. तायिनं हील० । 3. विमलां प्रति कुमारस्यापि तृतीयवारं प्रतिवाक्यम् हील० । 4. इति विमलाया दीक्षादेशादानम् हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० हे भ्रातः ! सुकृतरहितानां मीनसदृशां मादृशां संसारसरित्पतिमध्ये संयमश्चारित्रं दुर्ग्राह्यः । यथा स्तोकबलानां राज्ञां कोट्टः दुर्ग्राह्यः स्यात् ॥८१॥

हीसुं० [१]सन्ततोपचितकर्मगणस्या[२]नादिधाभवपरंपरयास्ते ।
[३]क्रीतभृत्य इव [४]भर्त्तृजनस्या[५]यत्तधीरिह [६]सुधीरपि बन्धो ॥८२॥

(१) निरन्त[र]पुष्टिकृतकर्मव्रजस्य । (२) सुरनरनारकतिर्यग्रूपानेकप्रकारया संसार-संतत्योपार्जितकर्मव्रजस्य । ''अनादिधाविश्वपरंपराया''मिति नैषधे । (३) मूल्यगृहीत सेवक इव । (४) स्वामिनः । (५) वशः । (६) पण्डितोऽपि ॥८२॥

हील० **सन्त०** । निरन्तरं निबिडा जायमानस्य कर्मसमूहस्य भवश्रेण्या आदिर्नास्ति । यद्यस्माद्बुद्धिमानपि कर्मायत्तबुद्धिर्भवति । यथा द्रव्यमूल्यगृहीतो डिंगरः स्वस्वामिन आयत्तधीर्भवति । हे बन्धो ! इदमवसेयम् ॥८२॥

हीसुं० [१]कर्मसंततितिरोहितभावश्चेष्टतेऽत्र [२]निरवग्रहचेष्टः ।
लोक एष निखिलोऽपि [३]पिशाचावेशिताशय इव व्रतकाङ्क्षिन् ॥८३॥

(१) कर्मश्रेण्या आवृतः सम्यग्ज्ञानरूपो जीवस्य भावो यस्य । (२) स्वेच्छया क्रीडति । (३) प्रेताधिष्ठितमनः ॥८३॥

हील० हे दीक्षाभिलाषुक ! एषः समस्तोऽपि लोकः कर्मसन्तत्या आवृतो भावः -सम्यक्ज्ञानं यस्य । अत एव पिशाचगृहीतचित्तजन इव स्वतन्त्रं हास्यविनोदादिकरणे न चेष्टते विलसति ॥८३॥

हीसुं० [१]संसृतौ[1] सुखम[२]शेष[३]ममुष्यां[2] बान्धवामृतमिवानुभवन्ति ।
[४]हीनसङ्गममिवा[५]रमणीयं [६]जानते ननु जनाष्प[७](:प)रिणामे ॥८४॥

(१) संसारे । (२) समस्तम् । (३) अस्यां संसृतौ । (४) नीचैष्प(:प)रिचयम् । (५) विरसम् । (६) वदन्ति । (७) प्रान्ते ॥८४॥

हील० **संसृते०** । हे बान्धव ! अस्य संसारस्य सुखं जना अमृतमिवानुभवन्ति । परं परिणामे -अन्ते नीचसङ्गम इव विरसं नैव विदन्ति ॥★८४॥

हीसुं० संसृतेर्म[१]तिमतां [२]वर तस्यास्त्वं पृथग्भवितुमिच्छसि वत्स !।
[३]पुण्डरीकमिव [४]पल्वलपङ्कात्तत्स[५]गर्भ्म ! भुवि धन्यतमस्त्वम् ॥८५॥[3]

(१) बुद्धिभाजाम् । (२) श्रेष्ठः । (३) कमलम् । (४) सरःकर्दमात् । (५) भ्रातः ! ॥८५॥

हील० **संसृ०** । हे मतिमतां वर ! हे वत्स ! तस्याः संसृतेस्त्वं त्यक्तुं वाञ्छति । यथा सरःकर्दमात् कमलं भिन्नं भवति । हे सहज ! त्वं धन्यतमोऽसि ॥८५॥

---

1. ०सृतेः हीमु० । 2. ०मुष्या० हीमु० । 3. दीक्षानुज्ञानन्तरं धर्मकारकत्वेन भगिनीस्तुतिः हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [1]एतदा[2]लपितमात्मभगिन्याः श्रोत्रपत्रपुटकेन निपीयः ।
[3]सातमा[4]प [5]मृ[1]दुतैत्तिरपिच्छस्पर्शजातमिव हीरकुमारः ॥८६॥

(१) पूर्वोक्तम् । (२) भाषितम् । (३) सुखम् । (४) लेभे । (५) तित्तिरपक्षिसम्बन्धिपिच्छस्य मृदुलेन स्पर्शेन कर्णेऽतीव सुखं जायते । "[2]अन्तस्तैत्तिरपक्षिपत्रमथवा मन्दं मृदु भ्राम्यति" ॥८६॥

हील० भगिनीवाक्यं श्रुत्वा सुखं प्राप । यथा श्रवणयोर्मध्ये सुकुमालतित्तिरपक्षिपिच्छादिस्पर्शात्सातं भवति ॥८६॥

हीसुं० रोम[1]हर्षणमिषात्तद[2]नुज्ञोद्वेलहर्षजलधौ [3]शिशुकाये ।
[4]उत्स्व(च्छ्व)सन्ति किमु किञ्चन लोलद्बालशालिशफराष्प(: प)रितोऽमी ॥८७॥

(१) रोमाञ्चव्याजात् । (२) भगिन्या आदेशरूपोत्कण्ठप्राप्तप्रमोदसमुद्रो यत्र । (३) हीरकुमार-शरीरे । (४) किञ्चिच्चपला लघवः शोभमानाः उच्छलन्ति ।

हील० रोम० । तस्या आदेशदानाद्वेलामतिक्रम्य प्रसरति हर्षसागररूपे बालकाये रोमोद्गममिषाच्चञ्चलाः सूक्ष्माः लघवः अमी मीनाः ॥८७॥

हीसुं० एतया [1]ध्वनिनिरस्तविपञ्च्या [2]भूतलोपगतयेव [3]घृताच्या ।
त्वं गृहाण च [4]सगोत्रजनेभ्यः [5]शासनं [3]पुनरिदं जगदे सः ॥८८॥

(१) वाणीविजितवीणया । (२) भूमण्डलं आगतया । (३) घृताचीनामाप्सरसा । (४) स्वस्वजनेभ्यः । (५) दीक्षादेशम् ॥८८॥

हील० वीणास्वरया पुनर्घृताचीसदृशया एतत्कथितम् हे वत्स ! त्वं स्वजनवर्गेभ्यः सकाशात् आदेशमादत्स्व ॥८८॥

हील०→ भारतीं श्रुतियुगाञ्जलिना तां स्वस्वसुर्मधुसखीं विनिपीय ।
शैक्षवन्निजगुरोर्हितशिक्षां स स्म भूत्प्रमदमेदुरिताङ्ग : ॥८९॥←

तां वाचं श्रवणयुगेन पीत्वा हर्षपुष्टः स समजनि । यथा प्राथमकल्पिकः निजगुरोरैहिकामुष्मिक-साधनकारिणीं शिक्षां सादरं श्रुत्वा हृष्टो भवति । किंभूतां भारतीम् ?। मधुनः -क्षौद्रस्य सखीं-वयसीं मधुमृष्टाम् ॥८९॥

हीसुं० [1]स्वानुजादिनिखिलस्वजनेभ्यः [2]शासनं व्रतविधेः [3]पृथुकोऽपि ।
आददे पुनरसौ [4]व्यवहारी लाभव[5]द्विविधवस्तुगणेभ्यः ॥८९॥[4]

(१) निजलघुभ्राता श्रीपालनामा तत्प्रमुखसमस्तगोत्रिवर्गात् । (२) दीक्षादेशम् । (३)

1. ०दुतित्तिर० हीमु० । 2. अन्तस्तित्ति० हीमु० । 3. स पुनरेतदवादि हीमु० । —><— एतदन्तर्गतः पाठो हीसुंप्रतौ नास्ति । 4. इति भगिन्या दीक्षादेशानन्तरं तद्वचसैव स्वभ्रातृस्वजनवर्गादेशादानम् हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीरकुमारः । (४) व्यापारकर्ता । (५) बहुविधक्रियाणकेभ्यः ॥८९॥

हील० **स्वानुजा०** । स्वस्य अनुजो लघुभ्राता श्रीपालनामा स आदौ येषां तादृशा ये स्वजनास्तेभ्यः आदेशं आददे-गृहीतवान् । यथा व्यापारी वस्तुगणेभ्योऽधिकं अधिकं फलं गृह्णाति ॥९०॥

हीसुं० **भूचरानिव विधेरनुवादान्सोपवीतकृतवेदनिनादान् ।**
राजहंसगकमण्डलुपाणीनाजुहाव गणकान्स सुवाणीन् ॥९०॥

(१) भूमीसञ्चारिणः । (२) अनुवदन्तीत्यनुवादाः स्वरुपाणि । (३) यज्ञोपवीतयुक्तान्कृत-वेदोच्चारांश्च । (४) राजहंसगमनान् कमण्डलुहस्तान् । (५) आकारयामास । (६) ज्योतिर्विदः ॥९०॥

हील० **भूच०** । यज्ञोपवीतयुक्तान्, कृतवेदोच्चारान्, पुना राजहंसगमनान्, पुनः कमण्डलुकरान्, सुवाणीन्, दैवज्ञान् स कुमार आकारयति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । भुवि प्राप्तान् ब्रह्मानुकारान् ॥९१॥

हीसुं० **[१]आत्मकामितमुखानिव मूर्त्तान् पुष्पपल्लवफलाक्षतपुञ्जान् ।**
[२]तत्पुरोऽयमु[३]पहृत्य [४]सगोत्रैः पृच्छति स्म चरणस्य मुहूर्त्तम् ॥९१॥

(१) स्वस्य वाञ्छितस्य प्रारम्भान् । (२) ज्योतिषिकानामग्रे । (३) ढोकयित्वा । (४) गोत्रवृद्धैस्सार्द्धम् ॥९१॥

हील० **आत्मका०** । तेषां पुरः पुष्पानि(णि), किशलयानि, फलानि, तण्डुलाश्च, तेषां व्रजान् उपहृत्य -ढोकयित्वा । उत्प्रेक्ष्यते । स्ववाञ्छितप्रारम्भान् मूर्त्तिमतः ढौकयित्वा स्वजनैः समं स कुमारश्चारित्रमुहूर्त्तं पृच्छति स्म ॥९२॥

हीसुं० **[१]पूर्वनिर्मितपरस्परतर्कैर्नि[२]श्चितोच्चपदसंपदुदर्कैः ।**
तैरथोच्यत [३]महोदयसद्मद्वारवद्व्र[४]तदिनं पृथुकेन्दोः ॥९२॥

(१) प्रथमं कृतोऽन्योन्यं विचारो यैः । (२) निर्द्धारितोऽस्य हीरकुमारस्य उच्चैरतिशायिगण-धरादिपदस्य लक्ष्म्या उत्तरफलं यैः । (३) मोक्षमन्दिरस्य द्वारम् । (४) दीक्षाग्रहणदिवसम् ॥९२॥

हील० **पूर्व०** । कृतविचारैः पुनर्निश्चितः उच्चपदस्य सम्पदो लक्ष्म्या उदर्कस्तद्भवं फलं यैस्तादृशैस्तैः कुमारस्य दीक्षादिनं उक्तम् । उत्प्रेक्ष्यते । मुक्तिद्वारम् ॥९३॥

हीसुं० **[१]स्वर्णरुप्यमणिमौक्तिकदानैरी[२]श्वरानिव विधाय विधिज्ञः ।**
[३]निश्चितव्रतमुहूर्त्तदिनस्तान्व[४]र्णिनः स विससर्ज्ज कुमारः ॥९३॥

(१) व्यवहारिणः अतिदानैः । (२) महेभ्यान् । (३) निर्द्धारितो दीक्षायाः सम्यग्दिवसः । (४) ब्राह्मणान् ॥९३॥

हील० स्वर्णादीन् दत्वा, इभ्यान् कृत्वा, निश्चितदीक्षादेशदिनः स तान् दैवज्ञान् यथागतं प्रैषीत् ॥९४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० आगतेऽ[1]ह्नि [2]सुहृदीव [3]तदुक्ते [4]शुद्धगोचरनवांशकयुक्ते ।
संमदाद्वि[5]जयसिंहमुखेभ्याः प्रारभन्त [6]चरणक्षणमस्य ॥९४॥

(१) दिवसे । (२) मित्र इव । (३) मौहुर्त्तिककथिते । (४) निर्दोषा ग्रहा गोचरा रेखादानादयः नवांशकास्तैः सहिते । (५) कुमारभगिनीपतिप्रमुखव्यवहारिणः । (६) दीक्षामहोत्सवम् ॥९४॥

हील० तैरुक्ते वासरे आगते । यथा मित्रमागच्छति । पुनः शुद्धे गोचरे रेखादानादौ नवांशके लग्नमध्यगतविशिष्टवेलायां स्वभगिन्या **विमलाया** भर्त्ता **विजयसिंह**नामा स इभ्यस्तत्प्रमुखाश्चारित्रोत्सवमुपक्रामति स्म ॥९५॥

हीसुं० केचिदु[1]च्चमणिपीठनिषन्नं(ण्णं) [2]गन्धबन्धुरपयोभृतकुम्भैः ।
निर्जरा[3] इव जिनावनिजानिं दीक्षणस्य [5]समयेऽस्नपयंस्तम् ॥९५॥

(१) उन्नते रत्नमयासने स्नानार्थमुपविष्टम् । (२) पुष्पादिभिर्वासितैष्प(: प)यसां घटैः । (३) देवा इव । (४) जिनेन्द्रस्य । (५) दीक्षासमये ॥९५॥

हील० **केचि०** । केचिज्जना उच्चासनस्थं तं दीक्षासमये स्नपयन्ति स्म । यथा जिनं सुराः स्नपयन्ति ॥९६॥

हीसुं० [1]साम्प्रतं [2]कथममुष्य [3]जडेनाश्लेषणं [4]विबुधकैरवबन्धोः ।
[5]कोऽप्यरुक्षयदितीव तदीयं वाससा[6]तिमृदुलेन [7]शरीरम् ॥९६॥

(१) युक्तम् । (२) कुमारस्य । (३) डलयोरैक्याज्जलेन-पानीयेन अथ च मूर्खेण । (४) पण्डितपुरंदरस्य । ''पण्डितो हि मूर्खसङ्गं न कुर्या''दिति ख्यातिः । (५) निर्नीरयामास । (६) सुकुमारवस्त्रेण । (७) कुमारकायम् ॥९६॥

हील० **साम्प्र०** । कोऽपि तस्य कायं कोमलांशुकेन, इति कारणात् निर्नीरयामास । इतीति किम ? इदानीं पण्डितचन्द्रस्यास्य डलयोरैक्यात् जलेन मूर्खेण सङ्गः कः ॥९७॥

हीसुं० [1]काञ्चनप्रतिमयेव [2]नितान्तोत्तेजना[3]दनुपमप्रभयास्य ।
[4]मार्ज्जनान्मृ[5]दुलगन्धदुकूलैर्निर्म्मलेन वपुषा पुपुषे[6] श्रीः ॥९७॥

(१) सुवर्णमूर्त्या । (२) अतिशयेन निर्मलीकरणात् । (३) असाधारणकान्त्या । (४) निर्नीरीकरणात् । (५) सुकुमालसुरभिवसनैः । (६) शोभा ॥९७॥

हील० **काञ्च०** । निरन्तरं निर्मलीकृतकाञ्चनप्रतिमानुरुपेन(ण) निजवपुषा शोभा पुष्टा कृता ॥९८॥

हीसुं० [1]तत्कलाकुशलमानववर्ग्गस्तं [2]प्रसाधयितुमारभते स्म ।
[3]स्वस्तरूनिव [4]निपातयितुं [5]श्रीगर्व्वपर्व्वतशिखामधिरूढान् ॥९८॥

(१) प्रसाधव(?)नं मण्डनं तस्य कलायां विज्ञाने चतुरो जनः । (२) मण्डयितुम् भूषयितुम् । (३) कल्पवृक्षान् । (४) अधःक्षेप्तुम् । (५) स्वशोभाभिमानगिरिशिखराध्याश्रितान् ॥९८॥

हील० प्रसाधनपण्डितस्तं मण्डयितुं उपक्रामति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । गर्वाद्रेः स्वस्तरून् पातयितुम् ॥९९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]सान्द्रवा(च)न्द्रनिकुरम्बकरम्बीभूतनूत(त्न)घुसृणद्रवचर्च्चा ।
तत्तनौ विलसति स्म सुमेरौ [२]चन्द्रिकाखचितसान्ध्यरुचीव ॥९९॥

(१) स्निग्धं बहुलं वा कर्पूरसम्बन्धिवृन्दं ते[न] व्याप्तं नवीनं कुङ्कुमजलविलेपनम् । "चन्द्रो विधौ कर्पूरे स्वर्णे चे"त्यनेकार्थः । (२) चन्द्रज्योत्स्नामिश्रितसन्ध्याभ्रककान्तिः । "रुच्यो रुचीभिर्जितकाञ्चनाभि"रिति नैषधे ॥९९॥

हील० कर्पूरमिश्रकुङ्कुमद्रवविलेपनं तत्काये शुशुभे । यथा मेरौ चन्द्रिकामिश्रसन्ध्यारागः ॥१००॥

हीसुं० [१]सौरभं सुमनसां[२] समुदायोऽ[३]ध्यापयेद्यदि [४]महारजतस्य ।
[५]अङ्गरागललितार्भकमूर्त्तेस्तल्लभेत तुलनां [६]कलयापि ॥१००॥

(१) सुगन्धताम् । (२) पुष्पप्रकरः । (३) पाठयेत् । (४) सुवर्णस्य । (५) विलेपनेन मनोज्ञकुमारशरीरस्य । (६) अंशेन ॥१००॥

हील० सौर० । यदि पुष्पप्रकरः सुवर्णस्य स्वपरिमलं पाठयेत् । दद्यादित्यर्थः । तदा विलेपनेन मनोज्ञाया बालस्य मूर्त्तेः अंशेनापि सदृशीभावं सुवर्णं प्राप्नुयात् ॥१०१॥

हीसुं० [१]विश्वजैत्रमिव [२]मोहमहीन्द्रं हन्तुम[३]र्भधरणीरमणेन ।
खड्गरत्नमिव केश[४]कलापो [५]धूपधूमपटलीभिर[६]धूपि ॥१०१॥

(१) जगज्जयनशीलम् । (३) मोहराजम् । (३) हीरकुमारेण । (४) केशपाशः । (५) उत्क्षिप्यमाना(णा)गरुधूमवृन्दैः । (६) धूपितः ॥१०१॥

हील० कुमरेण केशपाशो धूपितः । उत्प्रेक्ष्यते । मोहनामानं राजानं हन्तुं खड्गरत्नं धूपितम् । राज्ञापि वैरिणं व्यापादयितुं खड्गरत्नं धूप्यते ॥१०२॥

हीसुं० [१]स्वं [२]क्षणात्क्षय[३]मवेक्ष्य [४]सृजद्भिष्पा[५](: पा)रलौकिकसुखाय तपांसि ।
[६]धूमपानमिव धूपजधूमव्याजतस्तदलकैः क्रियते स्म ॥१०२॥

(१) आत्मीयम् । (२) स्वल्पकाले विनाशं लोचलक्षणम् । (३) ज्ञात्वा । (४) कुर्वद्भिः । (५) परलोकसम्बन्धिसुखाय । (६) केशपाशधूपनार्थं निर्मितधूमस्य कपटीधूमपानं क्रियते ॥१०२॥

हील० स्वं-आत्मीयं क्षयं दृष्ट्वा तपः कुर्वद्भिस्तस्य कचैर्धूपधूममिषात् धूमपानं क्रियते ॥१०३॥

हीसुं० [१]मानिनीजनमनोनयनस्वं यैरनीयत[२] हृतेर्विषयत्वम् ।
[३]पारिपन्थिकभरैरिव लेभे बन्धनं किमिति [४]तच्चिकुरैस्तैः ॥१०३॥

(१) नागरिकस्त्रीलोकस्य हृदयनेत्ररूपविभवः । (२) अपहृतः । (३) तस्करनिकरैरिव । (४) कुमारस्य केशैः ॥१०३॥

हील० मानि० । किमिति कारणात्तत्केशैर्बन्धनं लब्धम् । यथा तस्करा बध्यन्ते । यैः केशैः स्त्रीणां मनांसि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नेत्राणि तान्येव द्रव्यं अपहरणगोचरतां प्रापितमपहृतमित्यर्थः ॥१०४॥

हीसुं० [1]सूनसङ्गतशिलीमुखलेखासूनसायक धनुः शरराशेः ।
संश्रयन्श्रियमि[2]वार्भकमल्लीकुड्मलाकलितकुन्तलहस्तः ॥१०४॥

(१) पुष्पेषु मकरन्दपानार्थं मिलिता या भृङ्गमाला सैव पुष्पबाणस्य-कामस्य कार्मुकबाणगणस्तस्य । (२) कुमारस्य मूर्ध्नि मल्लिकामुकुलमण्डितकेशपाशः ॥१०४॥

हील० सूनेषु पुष्पेषु आगता ये भ्रमरास्तेषां लेखा श्रेणी सैव सूनसायकस्य धनूंषि शरा बाणास्तेषां समूहस्य श्रियं श्रितोऽर्भकस्य मल्लिकाकोशरचितकेशपाशो भाति ॥१०५॥

हीसुं० मूर्ध्नि तस्य मुकुटेन दिदीपेऽ[1]नर्घ्यरत्नपटलीललितेन ।
[2]बर्हचामरजयं चिकुराणां विभ्रमैरिव विधाय धृतेन ॥१०५॥

(१) बहुमूल्यमणिगणमण्डितेन । (२) मयूरपिच्छरोमगुच्छानां विजयम् ॥१०५॥

हील० तन्मूर्ध्नि मुकुटेन रेजे । उत्प्रेक्ष्यते । शिखिपिच्छानां चामराणां जयं धृतेन ॥१०६॥

हीसुं० [1]पट्टिकाऽर्भकविभोष्क(: क)नकस्या[2]लीकमण्डलम[3]लंकुरुते स्म ।
[4]विभ्रमेण [5]चिकुराम्बुधराणां [6]ह्लादिनीव [7]निकटे [8]विलुठन्ती ॥१०६॥

(१) स्वर्णपट्टिका कश्चित् आभरणविशेषः । "नलस्य भाले मणिवीरपट्टिका" । तथा दमयन्त्या अपि । "धृतैकया हाटकपट्टिकालिके " इति स्त्रीपुरुषयोरपि भाले पट्टिकाख्यमाभरणविशेष इति नैषधे (२) भालस्थलम् । (३) भूषयति स्म । (४) बुद्ध्या । (५) केशरूपमेघानाम्। (६) विद्युत् । (६) समीपे । (८) मिलन्ती ॥१०६॥

हील० हेम्नः पट्टिका शिशुस्वामिनः भालस्थलमलङ्कुरुते । चिहु(कु)रा एव मेघास्तेषां भ्रमेण समीपवर्त्तिनी विद्युदिव ॥१०७॥

हीसुं० [1]दि[1]द्युते [2]मणिकरम्बितयास्ये [3]शातकुम्भकृतपट्टिकयास्य ।
स्वैरमात्मन इवा[4]ननलक्ष्म्या निर्मितेन [5]वरणेन [6]निवस्तुम् ॥१०७॥

(१) शुशभे । (२) रत्नखचितया । (३) स्वर्णनिर्मितपट्टिकया । (४) वक्त्रश्रिया । (५) प्राकारेण । (६) वासार्थम् ॥१०७॥

हील० दि० । अस्यास्ये कनकघटितया पट्टिकया दिद्युते । उत्प्रेक्ष्यते । मुखलक्ष्म्या स्वेच्छया वसितुं निर्मितेन प्राकारेण ॥१०८॥

---

1. हीसुं प्रतौ एतच्छ्लोकं लिखित्वा तदनन्तरं तस्य निम्नलिखितं पाठान्तरं तदुत्तरार्धस्य टीका च दृश्यते-
दीप्यते स्म मणिमण्डितयास्ये हाटकैर्घटितपट्टिकयास्य ।
*इन्दुपद्ममुकुराद्यभिभावोद्भूतनूतमहसेव मुखस्य ॥ पाठः
पाठान्तरे - चन्द्रकमलदर्पणादीनां विजयकरणोद्भूतनवप्रतापेन अर्थाद्वक्त्रस्य ॥
हीलप्रतौ तु एतच्छ्लोकस्योत्तरार्धस्य पाठान्तरमेवं दृश्यते-
इन्दुपद्ममुकुटाद्यभिभावोद्भूतनूतमहसेव मुखस्य ॥ पाठान्तरम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० भालमण्डलममण्ड्यत राजज्जातरूपतिलकेन तदीयम् ।
तस्थुषाऽत्र चरणक्षणवीक्षाकाङ्क्षिणाल्पवपुषांशुमतेव ॥१०८॥

(१) शोभमानकनकतिलकेन । (२) कुमारसम्बन्धि । (३) ललाटपट्टस्थितवता । (४) भाले । (५) चारित्रमहोत्सवदर्शनाभिलाषिणा । (६) लघुशरीरेण । (७) सूर्येन(ण) ॥१०८॥

हील० भाल० । शोभमानकनकतिलकेन तदीयं भालं भूषितम् । उत्प्रेक्ष्यते । चारित्रोत्सवं दर्शनाभिलाषिणा लघुना भाले स्थितवता भास्करेण ॥१०९॥

हीसुं० [1]यस्य [2]भालतलचन्दनबिन्दोर्दम्भतो [3]वदनकैरवबन्धुः ।
[4]कोपनां [5]प्रियतमामिव तारामा[6]नुकूल्यविधये व्यधिता[7]ङ्के ॥१०९॥

(१) कुमारस्य । (२) ललाटोदरे कृतश्रीखण्डस्य मण्डलाकारस्तिलकः । (२) मुखचन्द्रः । (३) क्रोधवतीम् । (४) अतिशयेन वल्लभाम् । (६) अनुकूलीकरणाय । (७) कृता । (८) उत्सङ्गे ॥१०९॥

हील० यस्य भाले चन्दनबिन्दुमिषाद्वदनचन्द्रः अत्यमर्षणां वल्लभां कामपि तारिकां अनुकूलीकरणायोत्सङ्गे कृतवान् ॥११०॥

हीसुं० यस्य [1]चान्दन उपभ्रु बभासे [2]बिन्दुरङ्गजभटं प्रणिहन्तुम् ।
[3]नासिकानलिकया [4]गुलिकेयं येन मोक्तुमनसा विधृतेव ॥११०॥

(१) भ्रुवोःसमीपे चन्दनबिन्दुर्भाति । (२) स्मरवीरं । (३) नासा नाम नलिकया । नालिबन्धू(दू)क इति नामानि । (४) इयं चन्दनबिन्दुनाम्नी गुलिका । 'जीरगोली' ति प्रसिद्धा ॥११०॥

हील० यस्य भ्रुवोः समीपे बिन्दुः शोभते । उत्प्रेक्ष्यते । येन क्षेप्तुकामेन कामभटं प्रणिहन्तुं नासिका-बन्धूकेन गुलिका धृता इव ॥१११॥

हीसुं० [1]अस्तु [1]वाम[2]निशम[3]भ्युपगम्योऽ[4]तष्प(:प)रं [5]चटुलताप्रतिषेधः ।
[6]एतदालपितु[7]मञ्जनरेखा कल्पिता नयनयोरिव तस्य ॥१११॥

(१) युवयोः । (२) नित्यम् । (३) आदरणीयः । (४) अद्यदिनादारभ्य यावज्जीवम् । (५) चापल्यनिषेधः । (६) इदं कथयितुम् । (७) लोचनयोः कज्जलरेखा कृता ॥१११॥

हील० चाप० । तस्य नेत्रयोः इति वक्तुं अञ्जनरेखा कृता । इतीति किम् ? । अतः परं युवाभ्यां चापल्यं न विधेयमिति कारणान्नेत्रे अञ्जिते ॥*११२॥

हीसुं० [1]ख[2]ञ्जनाम्बुजचकोरमुखारीन् [2]यद्विलोचननृपौ [3]परिभूय ।
[4]सालयोः सुखमिवा[5]ञ्जनरेखानीलरत्नकृतयोर्वसतः स्म ॥११२॥

1. चापलस्य नियमोऽभ्युपगम्योऽतः परं द्युनिशमत्र युवाभ्याम् हीमु० ॥ 2. उत्पलाब्जकुमुदादिमदस्यून् हीमु० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) खञ्जरीटः । "गंगेटिउ" इति लोकप्रसिद्धस्तथा कमलचकोरास्तत्प्रमुखशत्रून् । (२) कुमारनेत्रनामराजानौ । (३) जित्वा (४) प्राकारयोः । (५) कज्जललेखारूपमरकतमणिनिर्मितयोः ॥११२॥

हील० उत्पलं नीलकमलं पद्मं श्वेतकमलं एतानि जित्वा तस्य नेत्रनृपौ अञ्जनरेखा एव नीलरत्नं तत्कृतयोर्दुर्गयोर्मध्ये सुखेन वसतः स्म ॥*११३॥

हीसुं० [१]भृङ्गसङ्गतवतंससरोजे तस्य कर्णयुगले शुशुभाते ।
[२]विग्रहीतुमनसी नयनाभ्यामागते किमि[३]तरेतरवैरात् ॥११३॥

(१) भ्रमरयुक्तावतंसकमले । (२) योद्धुकामे । (३) शोभया कृत्वा परस्परविरोधात् ॥११३॥

हील० भृङ्गयुक्ते कमले तत्कर्णयोः रेजतुः । उत्प्रेक्ष्यते । नेत्राभ्यां सह योद्धुकामे आगते । ११४॥

हीसुं० [१]श्रोत्रपत्रयुगमाश्रितवत्या दिद्युते [२]मणिवतंसिकयास्य ।
[३]अर्चिषेव [४]वदनान्तरमा[५]न्त्या [६]पिण्डभावमितया स्थितयास्मिन् ॥११४॥

(१) कर्णयुगलम् । (२) रत्नावतंसिकया । (३) "विदर्भसु[1]भ्रूश्रवणावतंसिके"ति नैषधे । (३) अर्चिः कान्तिवाची स्त्रीक्लीबलिङ्गः । (४) मुखमध्ये । (५) बाहुल्यात्स्थातुमशक्नुवत्या । (६) पिण्डीभूतया ॥११४॥

हील० श्रोत्रश्रितेन रत्नोत्तंसेन शोभितम् । उत्प्रेक्ष्यते । मुखमध्ये अमान्त्या अत एव पिण्डीभूतया अस्मिन्कर्णे स्थितया कान्त्या ॥११५॥

हीसुं० [१]मन्महे [२]सकलशीतला(ल)भासां [३]सार्वभौममिदमाननचन्द्रम् ।
[४]कुण्डलच्छलतमीरमणाभ्यामन्यथा कथमुपास्यत एषः ॥११५॥

(१) वितर्क्कयामः । (२) समस्तचन्द्राणाम् । (३) चक्रवर्तिनम् । (४) कुण्डलकपटाच्चन्द्राभ्याम् ॥११५॥

हील० **मन्म०** । वयं अस्य मुखचन्द्रं सकलचन्द्राणां चक्रवर्तिनं मन्महे विचारयामः । एवं चेन्न तर्हि कुण्डलच्छलाच्चन्द्राभ्यामेतन्मुखचन्द्रः कथं सेव्यते ॥११६॥

हीसुं० कुण्डले [१]कलयती प्रतिबिम्बे [२]गण्डयोर्वहति हीरकुमारः ।
[३]क्रोधमुख्यचतुरात्मविपक्षान् भेत्तुकाम इव [४]चक्रचतुष्कम् ॥११६॥

(१) सङ्क्रान्ती । (२) कपोलयोः । (३) चतुष्कषायद्वेषिणः । (४) चक्राणामायुधविशेषाणां चतुष्टयम् ॥११६॥

हील० **कुण्डले०** । द्वे प्रतिमे बिभ्रती । कुण्डले प्रति **हीरकुमारो** धारयति । उत्प्रेक्ष्यते । क्रोधादीन् चतुःकषायान् हन्तुं चक्राणां चतुष्टयं बिभर्त्ति ॥११७॥

---

1. <u>पुत्री०</u> हीमु. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]व्यालवल्लिदलखण्डनजन्मा [२]शोणिमाधरदले विललास ।
[३]एतदीयहृदयादनुरागो निः सरन्बहिरिव स्थित एषः ॥११७॥

(१) नागवल्लीपत्रचर्वणोद्भूतः । (२) रक्तता । (३) कुमारमनसः ॥११७॥

हील० व्याल० । ताम्बूलशोणिमा अधरपत्रे बभासे । इदं हृदयान्निः सरन्राग एव बहिः स्थित एव ॥११८॥

हीसुं० [१]रागसङ्गिरदनच्छदराजत्त[२]त्स्मितं [३]दशति(न)दीधितिमिश्रम् ।
[४]पल्लवोदरविहारिहिमाम्भोविभ्रमं किमु [५]जिघृक्षति लक्ष्म्या ॥११८॥

(१) नागवल्लीदलास्वादनजातरक्तिमाकलिताधरे शोभमानम् । (२) कुमारहसितम् । (३) दन्तकान्तिमिश्रम् । (४) प्रवालमध्यविलसत्तुहिना(न)जलशोभाम् । (५) ग्रहीतु-मिच्छति ॥११८॥

हील० राग०। ताम्बूलरागस्य सङ्गो यस्मिन्तादृशेऽधरे शोभमानं पुनर्दन्तकान्तिमिश्रं तस्य स्मितं प्रवालान्तः-स्थानां हिमाम्भसां विलासं किमु ग्रहीतुमिच्छति ॥११९॥

हीसुं० [१]रज्यते स्म [२]दशनप्रकरेणामुष्य [३]कुण्डल(लि)पुरन्दरबाहोः ।
[४]रागिणीं [५]सविधगां च [६]रसज्ञां प्रेक्ष्य कैर्न ध्रियते ह्यनुरागः ॥११९॥

(१) रक्तीभूय[ते] स्म । (२) दन्तनिकरेण (३) शेषनागसदृशभुजस्य । (४) रागयुक्ताम् । (५) पार्श्वस्थायिनीम् । (६) विविधरसेषु चतुराम् ॥११९॥

हील० नागेन्द्रवद्दीर्घबाहोः कुमारस्य दन्ता रक्ताः कृताः । तद्युक्तं हि यस्मात् रक्तां नवरसज्ञां पार्श्वे दृष्ट्वा कै रागो न ध्रियते ॥१२०॥

हीसुं० [१]संयमाध्यवसितिप्रथमानप्रावृषेण्यजलवाहघटायाः ।
[२]बिन्दुवृन्द[३]मुदियाय किमेतत्कण्ठपीठकृतमौक्तिकहारः ॥१२०॥

(१) चारित्रपरिणामनामविस्तरद्वर्षाकालसम्बन्धिमेघमालायाः । (२) जलकणनिकर. । (३) प्रकटीभूता(त)म् ॥१२०॥

हील० संय० । एतत्कण्ठस्थापितहारः । किमुत्प्रेक्ष्यते । चारित्राध्यवसाय एव विस्तृतमेघघटाया बिन्दुवृन्दं प्रकटीभूतम् ॥१२१॥

हीसुं० [१]एतदीयवदनामृतभासा स्पर्द्धयेव सह शीतलभासा ।
[२]भूत(नूत्न)तारकततिर्ध्रियते स्मा[३]मुक्तमौक्तिकलताकपटेन ॥१२१॥

(१) कुमारमुखचन्द्रेण सह । (२) नवीनतारमण्डली । (३) परिधृतमुक्ताहारा मौक्तिकव्याजेन ॥१२१॥

हील० एतन्मुखचन्द्रेण अन्यचन्द्रस्पर्द्धया परिहितमौक्तिकहारमिषात् । किमुत्प्रेक्ष्यते । नवीनतारकश्रेणिर्धृता ॥१२२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]भारसासहितया [२]जितशेषः किं श्रितो [३]वलयमस्य विभाति ।
[४]मोहशूरमसुभिः [५]प्रवियुज्यानेन वीरवलयं [६]विधृतं वा ॥१२२॥

(१) संयमभारसहनशीलतया । (२) पराभूतशेषनागः । (३) कनककटकं स शेषः । (४) मोहनामानं वीरम् । (५) व्यापादयित्वा । (६) वीरवलयं धृतम् ॥१२२॥

हील० भार० । अस्य वलयं विभाति । उत्प्रेक्ष्यते । भारसहनेन जितः शेषः श्रितः वा मोहराजानं प्रायो पृथक्कृत्वा वीरवलयं धृतम् ॥१२३॥

हीसुं० योगिनेव [1]वहतात्मनि [१]मुद्रामूर्[२]म्मिकां च दधताम्बुधिनेव ।
[३]फुल्लपल्लवविलासजुषा तत्पाणिनाध्रियत कापि विभूषा ॥१२३॥

(१) मुद्रिकां योगमुद्रां च साक्षराङ्गुलीयकम् । (२) कल्लोलं च । (३) विकसितकिसलय-शोभाभृता ॥१२३॥

हील० यथा योगिनात्मनि मुद्रां मुद्रणं उह्यते तद्वत्साक्षरोर्मिकां दधता । यथार्णवेन ऊर्मय एव ध्रियन्ते तद्वन्निरक्षरोर्मिकां दधता तत्पाणिनाद्वैता श्रीर्धृता ॥१२४॥

हीसुं० पाणिना विरुरुचे [१]पविरोचिश्चापचक्रविलसत्कटकेन ।
[२]गन्धसिन्धुरतुरङ्गशताङ्गालंकृतेन [३]जगतीपतिनेव ॥१२४॥

(१) वज्रमणिनिर्गतकान्तय एवेन्द्रधनुर्मण्डलं तेन दीप्यमानं वलयम् । "वृता विभूषा मणिरश्मिकार्मुकै" रिति नैषधे । तथा-"विविधरत्नप्रभासंवलितं शक्रधनु" रिति कविप्रसिद्धिः । वज्रकान्तिस्तथा धनुश्चक्राणि शस्त्राणि तेन विलसत्सैन्यं यस्य । (२) गजहयरथाकारविभूषितेन चतुरङ्गसेनाकलितेन । (३) राज्ञेव ॥१२४॥

हील० पाणि० । वज्ररत्नकान्त्योत्पन्नधनुर्मण्डलैः शोभमानः कटको यस्य तादृशेन । पुनर्लक्षणीभूतैर्गजतुरगरथैरलङ्कृतेन करेण शोभितम् । उत्प्रेक्ष्यते । राज्ञा इव जज्ञे ॥१२५॥

हीसुं० [१]रामणीयकहृतापरचित्तं तत्कलत्रमवलोक्य युवेव ।
[३]जातरूपकलितो [४]गुणशाली [५]शृङ्खलष्कि(: कि)मकरोत्प[६]रिरम्भम् ॥१२५॥

(१) मनोज्ञतयाहृतं अपरेषां मनो येन । (२) कुमारस्य कटिं जायां च । (३) स्वर्णेन उत्पन्नेन रूपेण च युक्तः । (४) रज्जवः औदार्यादयश्च । (५) "सा शृङ्खला पुंस्कटिस्था" । स्वर्णकटिदवरकः । (६) आलिङ्गनम् ॥१२५॥

हील० राम० चारुत्वे[न] हृतं चितं येन तादृशं कलत्रं कटीं स्त्रियं च वीक्ष्य हेमगुणशाली कटिदवरक आलिङ्गनमकरोत् ॥१२६॥

हीसुं० भूषणैष्क[१](: क)नकरत्ननिबद्धैर्भूषितो [२]व्यरुचदेष कुमारः ।
[३]मञ्जरीभरकरम्बितकायष्क(: क)ल्पसाल इव [४]भूतलशाली ॥१२६॥

---

1. दधता० हीमु०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) स्वर्णमणिरचितैः । (२) शुशुभे । (३) कलिकानिकरकलितवपुः । (४) भूमीमण्डलस्थास्नुः ॥१२६॥

हील० भूषणैरेष कुमारः शुशुभे । उत्प्रेक्ष्यते । भुवि आगतः कल्पवृक्षः ॥१२७॥

हीसुं० **दर्प्पणेष्विव [1]गवेषयति [2]स्वं भूषणेषु [3]किरणाङ्कुरितेषु ।**
[4]दर्प्पणार्प्पणविधाभिर[5]मुष्मि[6]न्निष्फलाभिर[7]जनि स्वजनानाम् ॥१२७॥

(१) पश्यति । (२) आत्मानम् । (३) कान्तिप्ररोहवत्सु । (४) आदर्शदर्शनप्रकारैः । (५) कुमारे । (६) निःप्रयोजनाभिः । (७) जातम् ॥१२६॥

हील० यथा कश्चिद्दर्पणेषु स्वं पश्यति तद्वदाभरणे आत्मानं पस्य(श्य)ति । अमुष्मिन् कुमारे स्वजनानां दर्पणार्पणप्रकारैर्निष्प(ष्फ)लैर्जातमित्यर्थः ॥१२८॥

हीसुं० **दीप्यते किमधिकं सुषमा[1] नोऽ[2]मुष्य वा [3]मुषितमन्मथकान्तेः ।**
भूषणानि [4]मृगयन्त इतीव [5]स्फाररत्ननयनैरिदम[6]ङ्गम् ॥१२८॥

(१) नः-अस्माकं भूषणानां सातिशायिनी शोभा । (२) कुमारस्य वा । (३) अपहृतस्मरशोभस्य । (४) पश्यन्तः । (५) दीप्यमानमणिनेत्रैः । (६) कुमारशरीरम् ॥१२८॥

हील० **दीप्य०** । भूषणानि अस्याङ्गं स्फाररत्नैरेव नेत्रैः पश्यन्तीव । नोऽस्माकं शोभाधिका एतस्य वा इतीव ॥१२९॥

हीसुं० **[1]तद्विभूषणमणीनिकुरम्बैः [2]स्पर्द्धिभिष्प्र[3](: प्र)तिभटैरिव [4]भूत्या ।**
प्राप्य [5]तन्मृधधरां दधिरे [6]स्वज्योतिरङ्कुरसुरेन्द्रधनूंषि ॥१२९॥

(१) कुमाराभरणरत्नवि(नि)करैः । (२) स्पर्द्धां कुर्वद्भिः । (३) वैरिभिः । (४) लक्ष्म्या । (५) कुमाररूपसङ्ग्रामभूमीम् । (६) निजकान्तिप्ररोहरूपेन्द्रचापाः ॥१२९॥

हील० अन्योन्यं स्पर्द्धावद्भिराभरणरत्नैः कुमार एव सङ्ग्रामभूमीं प्राप्य स्वज्योतींषि एव सुरेन्द्रचापा धृताः । यथा भटैर्धनूंषि धृ(ध्रि)यन्ते ॥१३०॥

हीसुं० **[1]भूरुहैर्विह[2]सितैरिव [3]कुञ्जः [4]सौरभैरिव [5]सरोरुहपुञ्जः ।**
[6]सान्द्रचन्द्रकिरणैरिव [7]दोषा भूषणैरपुषदेष [8]विभूषाम् ॥१३०॥

[1]इति कुमारशृङ्गारः ।

(१) वृक्षैः । (२) स्मितैः । (३) वनम् । (४) परिमलैः । (५) कमलव्रजः । (६) ज्योत्स्नाभिः । (७) रात्रिः । (८) शोभाम् ॥१३०॥

हील० **भूरु०** । एषः शोभां बिभर्त्ति स्म । शेषं सुगमम् ॥१३१॥

---

1. इति दीक्षासमये हीरकुमारस्य शृङ्गाराभरणादिवर्णनम् हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० निर्जितेन यशसा [१]सितभासा [२]प्राभृतीकृतमि[३]वैत्य [४]नभस्तः ।
आनयन्नथ तुरङ्गममुष्यारोहणार्थं[५]मनघस्य मनुष्याः ॥१३१॥

(१) चन्द्रेण । (२) ढौकितम् । (३) आगत्य । (४) गगनात् (५) प्रशस्य । १३१॥

हील० नरा अस्यारोहणार्थं अश्वं आनयन्ति । उत्प्रेक्ष्यते । यशःश्वैत्यश्रिया जितेन चन्द्रेण आकाशादागत्य ढौकितमिव ॥१३२॥

हीसुं० [१]यन्नभस्वदतिपातिरयेन [२]न्यक्कृतेन [३]विनतातनयेन ।
[४]तत्तुलां [५]कलयितुं [६]बलिदस्युः [७]सेवनाम[८]गमि [९]यानतयेव ॥१३२॥

(१) तुरगस्य वातजित्वरवेगेन । (२) जितेन (३) गरुडेन । (४) तद्वेगसाम्यम् । (५) प्राप्तुम् । (६) कृष्णः । (७) सेवाम् । (८) प्रापितः । (९) वाहनत्वेन ॥१३२॥

हील० यस्य तुरगस्य समीरणजयकृद्रयेन(ण) जितेन गरुडेन तुरगवेगसादृश्यं प्राप्तुं वाहनत्वेन कृष्णः सेवां गमित इव ॥१३३॥

हीसुं० यो [१]दृशा भुवि पुनर्दिवि [२]फालैर्ना[३]गवेश्मनि [४]खुरोत्खननैश्च ।
[५]स्फूर्त्तिभिस्तत इतस्त्रिजगत्यां [६]स्वाङ्ककारमिव पश्यति जेतुम् । १३३॥

(१) दर्शनेन । (२) उच्चैरुत्पतनलक्षणेन । (३) पाताले । (४) नखविलिखनैः । (५) स्वबलोर्जितैः । (६) आत्मनो जैत्रमल्लम् । "दूरं गौरगुणैरहङ्कृतिभृतां जैत्राङ्ककारे चर(रे)ती" ति नैषधे ॥१३३॥

हील० यो दृशा० । कोऽश्वः इतस्ततः संस्फुरणैः कृत्वा जगत्त्रये स्वस्पर्द्धिनं पराभवितुं पश्यतीवः ॥१३४॥

हीसुं० स्पर्द्धयाऽ[१]र्क्कतुरगान्स्व[२]जिगीषून्धूननेन[३] शिरसः स[४]मराय ।
[५]अङ्ककारविभवाभिभवाहंपूर्विकाभिरह[?]यमाह्वयतीव ॥१३४॥

(१) रविहयान् (२) निजं जेतुमिच्छन् । (३) कन्धराकम्पकरणेन । (४) सङ्ग्रामाय । (५) जैत्रमल्लशोभापराभवकरणोद्भूताभिमानेन । (६) आकारयति ॥१३४॥

हील० उत्प्रेक्ष्यते । सूर्याश्वान् प्रति सङ्ग्रामाय समस्तकधूननेन अयं तुरङ्ग आह्वयतीव । काभिः ? स्वजैत्रप्रतिमल्लस्य विभवस्य योऽभिभवस्तेनाहंपूर्विका गर्वविशास्ताभिराकारयतीव ॥१३५॥

हीसुं० [१]आत्मफेनहरिचन्दनसान्द्रस्यन्दचर्चनविधाभिरिवार्व्वा[२] ।
[३]पत्प्रहारभव[४]मम्बुधिनेमेः स्वापराधम[५]धरीकुरुते [६]यः ॥१३५॥

(१) निजमुखलालाफेनरूपश्रीखण्डस्निग्ध इव पूजाविधिभिः । (२) तुरगः । (३) चरणताडनजनितम् । (४) भूमेः । (५) शामयति । निवारयति । (६) हयः ॥१३५॥

हील० आत्म० । योऽर्व्वा स्वास्यलाला एव श्रीखण्डस्य स्निग्धा ये स्यन्दा-रसा द्रवा वा तैः पूजनप्रकारैः पदप्रहारभवं स्वापराधं अम्बुधिनेमेर्भूमेः क्षामयतीव ॥१३६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [1]वृत्तशात्रवतुरङ्गमुख्यान्वै[2]भवेन [3]परिभूय तुरगा(ङ्गा)न् ।
[4]स्कन्धकेसरसटाकपटात्त[5]च्चिह्नचामरमिवायमधत्त ॥१३६॥

(१) इन्द्रस्योच्चैःश्रवःप्रमुखान् । (२) शोभया । (३) जित्वा । (४) स्कन्धप्ररूढ-केशनिकरव्याजात् । (५) जयसूचकम् । ''मिषेण पुच्छस्य च केसरस्य चे''ति नैषधे ॥१३६॥

हील० वृत्र० । इन्द्राश्वमुख्यान् तुरङ्गान् जित्वा स्कन्धे प्ररूढानां केसरश्रेणीनां मिषात् अयं तस्य जयस्य चिह्नं चामरं बिभर्त्ति स्म ॥१३७॥

हीसुं० [1]रोहिणीकमलिनीरमणाश्वा[2]न्स्वोपरिस्थितिजुषः सुष[3]माभिः ।
निर्जिगीषुरिव [4]निर्ज्जरमार्ग्गे [5]फालकेलिमयमातनुते स्म ॥१३७॥

(१) चन्द्ररवितुरगान् । (२) ऊर्ध्वगामित्वेन निजोपरिस्थितान् । (३) सातिशायिशोभाभिः । (४) गगने । (५) उच्चैरुल्ललनक्रीडाम् ॥१३७

हील० चन्द्रसूर्ययोः अश्वान् जेतुमिच्छुरिवायं आकाशमार्गे उच्चैरुल्ललनस्य गतिविशेषस्य विलासं आतनुते स्म ॥१३८॥

हीसुं० [1]अर्जितानि गरुडस्य च [2]गत्या निर्ज्जयैर्हरि[3]हरेश्च[4]विभूत्या ।
[5]उद्गिरन्निव यशांसि [6]हरिर्यष्फे[7](: फे)नपिण्डपटलीकपटेन ॥१३८॥

(१) उपार्जितानि । (२) गमनेन । (३) इन्द्राश्वस्य । (४) स्वलक्ष्म्या । (५) प्रकटीकुर्वन् । (६) अश्वः । (७) मुखनिर्गतफेनगणदम्भात् ॥१३८॥

हील० अर्जि० । गत्या गरुडस्य जये सि(स)ञ्चितानि । पुनर्विभूत्या इन्द्राश्वस्य जये अर्जितानि यशांसि यः । पतत्फेनपिण्डकपटेन प्रकटीकुर्वन्निवास्ते ॥१३९॥

हीसुं० आरुरोह [1]जितजिष्णुहयं तं [2]श्वैत्यतष्फ[3](: फ)णिपतिं च [4]जयन्तम् ।
वाजिनं [5]कनकवैभवभाजं कै[6]टभारिरिव [7]नीडजराजम् ॥१३९॥

[1]इत्यश्ववर्णनम् ॥

(१) परिभूतोच्चैःश्रवसम् । (२) धवलतया । (३) नागेन्द्रम् । (४) पराभवन्तम् । (५) सुवर्णभूषणशोभाफलितम् । (६) विष्णुरिव । (७) गरुडम् ॥१३९॥

हील० आरु० । जितेन्द्रहयं तं तुरगं अध्यासामास । यथा कृष्णः पक्षिराजमारोहति ॥१४०॥

हीसुं० तत्र [1]भावयतिनष्पु[2](: पु)लकोद्यत्कञ्चुकानणुमहष्क(: क)टकोघाः ।
[3]मुक्तिपत्तनजिघृक्षुमनस्कौत्सुक्यभाज इव राजकुमाराः ॥१४०॥
[1]भूविहारिहयवाहनशस्याऽनेकमूर्त्तय इवो[2]त्सवपश्याः ।
वाहपृष्ठमधिरुह्य कुमारा आगमन्नपि परे [3]जितमाराः ॥१४१॥ युग्मम् ॥

1. इति दीक्षासमये कुमारारोहणार्थमानीताश्ववर्णनम् हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) भावचारित्रिणः । (२) रोमाञ्चस्फुरत्सन्नाहाः, बहुलैः किरणैः प्रतापैश्च युक्ता[नां] वलयानां सैन्यानां च समूहा येषाम् । (३) शिवनगरं ग्रहीतुमिच्छन्मनस्काः उत्सुकताकलिताः ॥१४७॥

(१) महीतलक्रीडत् रेवतस्य प्रकृष्टानेककायाः । (२) उत्सवावलोकिनः । (३) विजितकन्दर्पाः ॥१४१॥

हील० तत्र० भुवि० । परेऽपि भावचारित्रिणः कुमारा अश्वमारुह्यं समागताः । पुलक एवोद्युत्सन्नाहो येषां तादृशाः । पुनः प्रचुरकान्तियुक्ता वलयौघा येषां ते । कर्मधारय । एवं विधां मुक्तिनगरीं ग्रहीतुमिच्छु मनो येषां तादृशाः सन्तः उत्सुका राजकुमाराः । इवोप्रेक्ष्यते । भूविहारिण्यः एवं तस्य शस्याः श्लाघ्या मूर्त्तयः शरीराणि ॥१४१-१४२॥

हीसुं० [१]पद्मिनीप्रियतमो [२]दिवासादौ [३]पावकादिव सहस्रमयूखैः ।
[४]पूरुषैर्नि[५]खिलमण्डलमध्यात्तत्क्षणादु[६]पगतैष्य(: प)रिवव्रे ॥१४२॥

(१) सूर्यः । (२) प्रभाते । (३) अग्नेः सकाशात् । "दिनान्ते निहितं तेजः सवित्रेव हुताशन" इति रघुवंशे । (४) नरैः । "पुरुषः पूरुषो नर" इति हैम्याम् । (५) समस्तदेशमध्यात् । (६) आयातैः ॥१४२॥

हील० पद्मि० । यथा सूर्य : प्रभाते वह्नेः समागतैः किरणैः परिव्रियते । सूर्यो हि सायं स्वकिरणान् वह्नौ निक्षिपति, प्रातर्गृह्णाति इति कविसमयः । तद्वत्सकलदेशजनैः स परिवृतः ॥१४३॥

हीसुं० तत्र [१]तद्व्रतमहो[1]पनतानां [२]मेलकः स्फुरति [३]पञ्चजनानाम् ।
कौतुकेन [४]निजशक्तिदिदृक्षोर्नाकिनष्कि(: कि)मिह [५]कायनिकायः ॥१४३॥

(१) कुमारदीक्षामहोत्सवे आगतानाम् । (२) जनसङ्गमः । (३) मनुष्यानाम्(णाम्) । (४) स्वसामर्थ्यं द्रष्टुमिच्छोः । (५) देहनिवहः ॥१४३॥

हील० तत्रागतजनौघः स्फुरति । उत्प्रेक्ष्यते । वैक्रियलब्धि द्रष्टुमिच्छोः सुरस्य देहव्रज इव ॥१४४॥

हीसुं० [१]निष्पतन्मदविलोलकपोलास्तत्पुरः समचरन्द्विरदेन्द्राः ।
[२]विन्ध्यभूध्र इव [३]निर्झरशाली जङ्गमष्क[४](: क)रणबंहिममाली ॥१४४॥

(१) निःसरद्दानवारिचञ्च[ल]गण्डस्थलाः । (२) विन्ध्याद्रिः । (३) निर्ज्झरणयुतः । (४) शरीरबाहुल्यधारी ॥१४४॥

हील० निष्प० । तस्य पुरः समदा गजाः सञ्चरन्ति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । कायानां बंहिमा-बाहुल्यं मलते-धारयति, तादृशो विन्ध्याचलः ॥१४५॥

हीसुं० [१]स्यन्दनैः स्य[२]दविगानितवातैस्तत्पुरोऽ[३]ङ्कविलसज्जनजातैः ।
पुस्फुरे [४]सुरसमूहसनाथैः [५]क्ष्मागतैरिव [६]मरुद्रथसार्थैः ॥१४५॥

---

1. ०पगतानां हिमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) रथैः । (२) वेगविजितवातैः । (३) उत्सङ्गे शोभमानजनसमूहैः । (४) सुरवर्गयुतैः । (५) पृथ्वीसमेतैः । (६) देवरथैः ॥१४५॥

हील० स्यन्द० । क्रोडस्थितजनैः पुनर्वाताधिकगमनै रथैः शोभितम् । उत्प्रेक्ष्यते । देवयुक्तैर्देवरथैः ॥१४६॥

हीसुं० [१]स्वर्णपल्ययनपल्लविताङ्गाः तत्पुरः प्रविचरन्ति तुरङ्गा ।
तत्तुरङ्गविजिताश्श[२]शिभास्वद्वाजिनष्कि(: कि)मु निषेवितुमेताः ॥१४६॥

(१) सुवर्णपर्याणमण्डितकायाः । (२) चन्द्रसूर्याश्वाः ॥१४६॥

हील० स्वर्ण० । हेम्नः पर्याणेन मण्डिताङ्गास्तुरङ्गास्तस्य पुरः प्रविचरन्ति । उत्प्रेक्ष्यते । कुमारतुरगजिताः चन्द्ररविहयाः सेवितुमागताः ॥१४७॥

हीसुं० [१]मागधा मधुरमङ्गलवाचः प्रोच्चकैरुदचरन्पुरतोऽस्य ।
[२]आह्वयन्त इह(व) दर्शयितुं किं [३]दिग्महेन्द्रनिवहान्म[४]हमेनम् ॥१४७॥

(१) बन्दिनः । (२) आकारयन्त इव । (३) दिगीशगणान् । "आखण्डलो दण्डधरः शिखावान्पतिः प्रतीच्या इति दिग्महेन्द्रा" इति नैषधे । (४) दीक्षोत्सवम् ॥१४७॥

हील० माग० । मङ्गलपाठका मङ्गलमुच्चरन्ति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । दीक्षोत्सवं दर्शयितुं लोकपालौघं आकारयन्त इव ॥१४८॥

हीसुं० [१]गायनैरयम[२]गायि समेतैः [३]स्वर्गृहात्किमिह [४]तुम्बुरुवर्गैः ।
[५]अभि(भ्य)षिच्यत सुधाप्य[६]वसीये वेणुभिः [७]स्त्र(श्र)वसि [८]वैणविकौघैः ॥१४८॥

(१) गीतगातृभिः । (२) गीतः । (३) देवलोकात् । (४) देवगायनैः । (५) अभिषिक्ता । (६) कुमारसम्बन्धिनि । (७) कर्णे । (८) वंशवादकवृन्दैः ॥१४८॥

हील० गाय० । तुम्बुरुसदृशैर्गायनैर्यो अगायि । वैणविकैरस्य श्रोत्रे सुधा सिक्ता ॥१४९॥

हीसुं० [१]घोषणाऽस्य यशसामिव [२]भेरीभाङ्कृतिर्व्यरचि कैश्चन मार्गे ।
किन्नरालिरिव [३]वैणिकपङ्क्तिः संमदात्तमु[४]पवीणयति स्म ॥१४९॥

(१) पटहध्वनिः । (२) भेरीध्वनिः । (३) वीणावादकमाला । (४) वीणया गायति स्म ॥१४९॥

हील० कैनरैर्मार्गे दुन्दुभीभाङ्कारो निष्पादितः । पुनर्वीणावादकस्तं वीणया गायति स्म ॥१५०॥

हीसुं० [१]साङ्गजे प्रबलमोहमहीन्द्रे प्रापिते [२]पितृपतेरतिथित्वम् ।
यस्य [३]चञ्चुपुटचञ्चुररावा [४]मङ्गलध्वनितय(म)ष्कि(: कि)[५]मुदीर्णा ॥१५०॥

(१) समदेन सपुत्रे च । (२) यमप्राघुणताम् । (३) तालानां प्रकृष्टध्वनयः । (४) मङ्गलगीतय इव । (५) प्रकटा कृता गीताः ॥१५०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० साङ्ग० । तालवादकैः चञ्चुपुटयस्तालास्तेषां रवाः प्रकटीकृताः । उत्प्रेक्ष्यते । सहाङ्गजेन स्मरेण-पुत्रेण च वर्तते, तादृशे मोहराज्ञि पञ्चत्वं प्रापिते सति मङ्गलशब्दा इवोदीर्णाः ॥१५१॥

हीसुं० [१]ताण्डवं व्यरचि [२]वारवधूभिस्तत्पुरष्कि(: कि)मु [३]सुपर्व्ववधूभिः ।
[४]तथ्यवत्प[५]थिमिथः[६] [७]पृथु [८]मिथ्यायुद्ध[९]मुद्धतनरैर्निरमायि ॥१५१॥

(१) नृत्यम् । (२) वाराङ्गनाभिः । (३) देवीभिः । (४) सत्यमिव । (५) मार्गे । (६) परस्परम् । (७) बहुलम् । (८) मृषासङ्ग्रामम् । (९) उत्कटपुरुषैः, शस्त्रशर्म्मकारिभिः ॥१५१॥

हील० ताण्ड० । देवाङ्गनासदृशाभिर्वाराङ्गनाभिस्तस्य पुरा नृत्यं विरचितम् । पुनरुद्धतपुरुषैर्मार्गे अन्योन्यं बहुलं मिथ्यायुद्धं निर्मितम् । यथा उद्धता नराः सत्यं युद्धं विदधते ॥१५२॥

हीसुं० दुन्दुभिध्वनितिभिर्जयशब्दं तस्य बन्दिवदु[१]दीरयतीव ।
[२]तग्द्गुणानिव [३]मुदा [४]निगदन्ती [५]दन्धवनीति [६]मधुरापि [1]नफेरी ॥१५२॥[2]

(१) उच्चरति स्म (२) कुमारगुणान् (३) हर्षेण (४) कथयन्ती (५) अतिशयेन शब्दायते (६) मधुरध्वनिः ॥१५२॥

हील० दुन्दुभि० । मदनभेरीशब्दैः कृत्वा जयारवं वदति । अपि पुनर्न फेरी न तद्गुणान्वदति ॥१५३॥

हीसुं० [१]क्षात्रियैरिव सुतैर्युवराजोऽ[२]लंकृतैष्प(: प)रिवृतोऽन्यकुमारैः ।
[३]प्रस्थितिं पथि चकार कुमारोऽ[४]नल्पकल्पितमहेषु [५]सगोत्रैः ॥१५३॥

(१) क्षत्रियाणां सम्बन्धिभिः । (२) भूषितः(तैः) । (३) प्रचचालः । (४) बहुरचितोत्सवेषु । (५) स्वजनैः । १५३॥

हील० क्षा० । कुमारे दीक्षायै प्रतस्थे ॥१५४॥

हीसुं० [१]हेषितैर्हय[२]गणस्य गजानां गर्ज्जितैश्च रथचीत्कृतिभिश्च ।
[३]रोदसी जनरवैरपि [४]शब्दाद्वैतवादकलिते इव जाते ॥१५४॥

(१) "हेषा ह्रेषा तुरङ्गाणां गजानां गर्ज्जबृंहिते" इति हैम्याम् । (२) अश्वव्रजस्य । (३) भूमीनभसी । (४) केवलं शब्दमये इव सम्पन्ने ॥१५४॥

हील० हेषि०। हयहेषारवैर्गजगर्जारवै रथचीत्कारैरपि पुनर्जनकोलाहलैर्द्यावापृथिव्यौ शब्दमये इव जाते ॥१५५॥

हीसुं० [१]रेणुभिः स[२]मुदडीयत रङ्ग[३]द्वाजिवारणरथाभ्युदिताभिः ।
[४]दिक्पतीन्नि[५]गदितुं महमत्राऽ[६]भूतभाविनमिवोत्सुकिताभिः ॥१५५॥

(१) रजोभिः । रेणुशब्दः स्त्रिलिङ्गः । (२) उच्चैर्गतम् । (३) प्रचलद्गजहयरथप्रथोत्थिताभिः ।

---

1. न(नु)भेरी हीमु० 2. इति दीक्षाग्रहणप्रस्थाने पुरस्तौर्यत्रिकम् हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४) इन्द्रादिलोकपालान् । (५) कथयितुम् । (६) अजातमनुत्पत्स्यमानम् ॥१५५॥

हील० रेणु० । रङ्गन्तः उपर्युपरि चलन्तो ये अश्वगजरथास्तेभ्य उत्थिताभिः रेणुभिरुड्डीतम् । उत्प्रेक्ष्यते । लोकपालान् न कदाचिज्जातं न कदापि भविष्यन्तं एतादृशं उत्सवं गदितुमुत्कण्ठिताभिः । रेणुशब्दस्त्रिलिङ्गे, अतः स्त्रीलिङ्गे विवक्षितः ॥१५६॥

हीसुं० [1]तद्व्रजादमरभारम[2]सह्यं, स्वेन वीक्ष्य [3]निरपेक्षमहीन्द्रः ।
[4]याचितेन [5]जलजन्मभुवेवा[6]चीकरत्कु[7]लगिरीन्स्व[8]सहायान् ॥१५६॥

[1]इति स्वजनकृतोत्सवः ॥

(१) तस्मिन्महोत्सवे समागतगजाश्वरथजनानां भारम् । (२) सोढुमशक्यम् । (३) निर्गता अपेक्षा परसहा[यस्य] यत्र एवं यथा स्यात्तथा एकेनात्मना वोढुमशक्यं भारं ज्ञात्वा । (४) प्रार्थितेन भारवहनसंविभागिनम् । (५) विधात्रा । (६) कारयति स्म । (७) अष्टौ महाकुलाचलान् । भूमिभारधारिणः । (८) आत्मनो भारधरणसहायान् ॥१५६॥

हील० तद्ग० । तत्समयानीतगजाश्वादिभारं सहायमन्तरा असह्यं दृष्ट्वा धात्रा कृत्वा स्वसखा(हा)यान् भूभारोद्धरणक्षमान् कुलाचलान् शेषनागः कारयामास ॥१५७॥

हीसुं० [1]तद्विलोकनरसस्तिमितानां [2]चित्रविभ्रममिवोप[3]गतानाम् ।
त[4]त्पुरालयविलासवतीनां [5]चेष्टितैरिति तदा[6]विरभावि ॥१५७॥

(१) कुमारदर्शनरसेन निश्चलीभूतानाम् । (२) आलेख्यविलासम् । (३) प्राप्तानाम् । (४) पत्तनवासिनीनां स्त्रीणाम् । (५) विलसितैः । (६) प्रकटीबभूवे ॥१५७॥

हील० तद्वि० । तन्महालोकनरसेन निश्चलानां चित्रलिखितानामिव जातानां तन्नगरवास्तव्यवर्णिनीनां चेष्टितैर्विलासितैस्तस्मिन्समये आविर्भूतम् ॥१५८॥

हीसुं० काचिदी[1]क्षणरसेन बबन्धो[2]द्वेष्टितं न [3]निजकुन्तलहस्तम् ।
कौतुकादिव [4]कलापिकलापश्रीकलापम[5]नुमातुमनेन ॥१५८॥

(१) विलोकनरागेण । (२) छोटितम् । (३) स्वकेशपाशम् । (४) मयूरपिच्छशोभासमुदायम् । (५) अनुकर्त्तुम् ॥१५८॥

हील० काचिद्वधू वीक्षणरसेन छोटितं केशपाशं न बबन्ध । उत्प्रेक्ष्यते मयूरबर्हस्य शोभासमुदयं अनेन केशपाशेनानुमातुमिव ॥१५९॥

हीसुं० कापि [1]वीक्षणरसत्वरमाणा [2]स्रस्तमप्य[3]धृत [4]मूर्ध्नि न [5]माल्यम् ।
[6]यज्जितेन मदनेन [7]निजौकःस्थायिनो[8]ज्झितमिवास[9]मवेत्य ॥१५९॥

(१) आलोकनरागेण शीघ्रा । (२) पतितम् । (३) न धृतम् । (४) मस्तके । (५)

1. इति तत्समयानीतगजाश्वादिभारबाहुल्यम् हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुसुमवृन्दम् । (६) कुमारपराभूतेन (७) स्त्रीमन्दिरस्थितेन । (८) त्यक्तम् । (९) ज्ञात्वा ॥१५९॥

हील० कापि मस्तकात्पतितं पुष्पदाम मूर्ध्नि न धृतवती । उत्प्रेक्ष्यते । कुमारेण जितेन स्मरेण त्यक्तं शस्त्रमित्यवेत्य ॥१६०॥

हीसुं० [१]हंसपादभरितार्द्धम[२]हासीत्के[३]शवर्त्म [४]तमवे[५]क्षितुमन्या ।
[६]पूर्णरागिणमिह प्रविधातुं [७]श्यामलाशयम[८]लंभवतात्कः ॥१६०॥

(१) सिन्दुरपूरितार्धम् । (२) त्यजति स्म । (३) सीमन्तम् । (४) कुमारम् । (५) द्रष्टुम् । (६) अतिशायिरागयुक्तम् । (७) मलिनचित्तम् पिशुनम् । (८) समर्थीभवतु ॥१६०॥

हील० हंस०। तं द्रष्टुमुत्सुका काचित्सिन्दूरेणार्द्धपूरितं सीमन्तं तत्याज । युक्तोऽयमर्थः मलि[न]मनसं रागरङ्गयुक्तं कर्त्तुं कः क्षमः ॥१६१॥

हीसुं० भाति[१] मुक्त[२]मलिके [३]रभसेनाप्यान्य[४]यार्द्धकृतचन्दनचित्रम् ।
[५]स्पर्द्धिजित्वरकलां [६]शिशुसोमोऽ[७]ध्येतुमागत इवैष [८]मुखाब्जात् ॥१६१॥

(१) त्यक्तम् । (२) भाले । (३) औत्सुक्येन । (४) अर्द्धमेव निर्मितं चन्दनस्य तिलकम् । (५) स्वशोभाविद्वेषिजयनशीलचातुरीम् । (६) बालचन्द्रः । (७) पठितुम् । (८) कुमारमुखकमलात् ॥१६१॥

हील० भाति० । कयाचिन्मस्तके अर्धकृतं चन्दनतिलकं त्यक्तं भाति । उत्प्रेक्ष्यते । स्वविरोधिजैत्र चातुर्यमध्येतुमागतः ॥१६२॥

हीसुं० [१]पातुमप्रभु [२]कुमारविभूषां स्वं दृशोर्द्वय[३]मवेत्य कयाचित् ।
[४]लोचने इव धृते इतरे [५]स्वश्रोत्रयोः [६]स्मितवतंससरोजे ॥१६२॥

(१) सम्यक्निरीक्षितुमसमर्थम् । (२) हीरकुमारशरीरशोभाम् । (३) ज्ञात्वा । (४) अन्ये द्वे नयने धारिते । (५) स्वकर्णयोः । (६) विकचावतंसस्य सरोजे कमले ॥१६२॥

हील० पातु० । कयाचित्स्वकर्णविषये विकसितोत्तंसकमले धृते । उत्प्रेक्ष्यते । कुमारशोभां द्रष्टुमक्षमं स्वं दृग्द्वयं ज्ञात्वान्ये नेत्रे धृते ॥१६३॥

हीसुं० राजतः [१]श्रुतिपुटे [२]धृतमेकं कुण्डलं च मुखमुत्सुकितायाः ।
[३]भास्करामृतकराविव [४]पर्वाप्यन्तरेण मिलितौ स्फुटमेतौ ॥१६३॥

(१) कर्णे । (२) औत्सुक्यादेके(देकस्मिन्) कर्णे एकमेव स्वर्णकुण्डलं क्षिप्तम्, अपरं च मुखं द्वे भातेः । (३) सूर्याचन्द्रमसावेव । (४) अमावास्यां विनापि मिलितौ ॥१६३॥

हील० उत्सुकायाः कस्याश्चित् एकस्मिन्कर्णे धृतं कुण्डलमन्यन्मुखं एवं द्वे राजतः । उत्प्रेक्ष्यते । अमावास्यां विना मिलितौ एतौ रविचन्द्रौ ॥१६४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [1]तद्दिदृक्षुर्[2]पराञ्जनयष्ट्यानञ्ज [3]सव्यनयनं न [4]तदन्यत् ।
[5]वामतां भजति यः शि[6]तमैव स्यात्त[7]दानन[1] इतीव विचिन्त्य ॥१६४॥

(१) कुमारं द्रष्टुकामा । (२) कज्जलशि(श)लाकया । (३) वामं नेत्रम् । (४) न दक्षिणम् । औत्सुक्यात् । (५) प्रतिकूलतां सव्यतां च । (६) कृष्णता । (७) तस्य मुखे ॥१६४॥

हील० तद्दिदृ० । कुमारं द्रष्टुमिच्छुः काचिदञ्जनशलाकया वामं नयनमानञ्ज न दक्षिणम् । युक्तं यत्प्रतिकूलतां श्रयते तदास्ये श्यामतैव युक्ता ॥१६५॥

हीसुं० काचना[1]तिरभसान्मृ[2]गनाभीवारिणा [3]व्यलिखदेक[4]कपोलम् ।
मन्मुखं [5]जितशशी श्रयतेऽसौ [6]गण्डमूर्तिरिति कीव(?) [7]विवक्षुः ॥१६५॥

(१) अत्यौत्सुक्यात् । (२) कस्तूरीद्रवेण । (३) चित्रयति स्म । (४) एकमेव गण्डस्थलम् । (५) पराभूतचन्द्रमाः । (६) कपोलकायः । (७) वक्तुमिच्छुः । लोकानां पुरस्तादिति गम्यम् ॥१६५॥

हील० काचन कस्तूरिका[वा]रिणा कपोलं चित्रयति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । इति कारणादेव । इतीति किम ? अयं चन्द्रष्क(: क)पोलमूर्त्तिर्मन्मुखं सेवते इति वक्तुमिच्छुः ॥१६६॥

हीसुं० [1]तद्विभाव्यत(वन)रसव्यवसाया [2]नागवल्लिदलविभ्रमतोऽन्या ।
कापि [3]केलिकमलं [4]निजवक्त्रस्पर्द्धयेव [5]कवलीकुरुते स्म ॥१६६॥

(१) कुमारावलोकने राग एव व्यापारो यस्याः । (२) ताम्बूलवल्लीपत्रबुद्ध्या । (३) क्रीडापद्मम् । (४) वदनेन समं स्पर्धां करोतीति हेतुः । (५) खादति स्म ॥१६६॥

हील० तद्विलोकनव्यापारा या कापि बीटकभ्रान्तेः क्रीडाकजं खादति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । स्वमुखेन सहेर्ष्यया ॥१६७॥

हीसुं० काचन [1]व्यधित [2]काञ्चनकाञ्चीं [3]कण्ठपीठलुठितां [4]रभसेन ।
[5]इन्दुजां मिलितुम[6]ब्जपिशङ्गीं [7]यन्मुखाङ्गपितृसोममिवै[8]ताम् ॥१६७॥

(१) चकार । (२) स्वर्णमेखलाम् । (३) गलकन्दलस्थायिनीम् । (४) औत्सुक्येन । (५) रेवानाम्नीं नदीम् । (६) कमलपरागपीतीभूताम् । (७) कुमारमुखमेवकायो यस्य तादृशं पितरं चन्द्रम् । (८) आगताम् ॥१६७॥

हील० काचन सुवर्णमेखलां कण्ठे क्षिप्तां चकार । उत्प्रेक्ष्यते । यस्य मुखमेवाङ्गं यस्य तादृशं पितरं चन्द्रं मिलितुमागतां, अब्जैरर्थात्परागैः पीतां रेवामिव ॥१६८॥

हीसुं० कापि [1]मौक्तिकलतां [2]स्वकटीरे [3]विभ्रमादधृत [4]सारसनस्य ।
[5]वेश्मनीव [6]रचितां [7]रतिभर्त्तुः [8]कुन्दकुड्मलितवन्दनमालाम् ॥१६८॥

1. ०नमिती० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) मुक्ताहारम् । (२) कटीतटे । (३) बुद्ध्याः । (४) मेखलायाः । (५) गृहे । (६) अवलम्बिताम् । (७) कामस्य । (८) मुचुकन्दमुकुलकलितमङ्गलमालाम् ॥१६८॥

हील० कापि मणिमेखलाया भ्रमात् स्वश्रोणौ हारं धृतवती । इवोत्प्रेक्ष्यते । कामस्य गृहद्वारे मुचकुन्द-मुकुलकलितां वन्दनमालां रचिताम् ॥१६९॥

हीसुं० [१]हारचारिमकुचौ [२]परया [३]नो [४]वाससा[1] [५]सरभसं [६]पिदघाते ।
[७]माल्यशालिकलशद्वितयीव [८]श्रेयसे [९]पथि [१०]धृता [११]व्रजतोऽस्य ॥१६९॥

(१) मुक्तालतायाश्चारुत्वं ययोस्तादृशौ स्तनौ । (२) अन्यया स्त्रिया । (३) नो इति निषेधे । "अमानोना प्रतिषेध" इति वचनात् । (४) वस्त्रेण (५) सोत्सुकम् । (६) पिहितौ । (७) पुष्पमालाकलितकुम्भयुगली । (८) कल्याणाय । (९) मार्गे । (१०) धारिता । पुरस्कृतेव । (११) मार्गे गच्छतोऽस्य कुमारस्य ॥१६९॥

हील० हारेण चारुता ययोस्तादृशौ स्तनौ कयाचित् पिहितौ । उत्प्रेक्ष्यते । गच्छतोऽस्य श्रेयसे मार्गे कुम्भद्वयी धृता ॥१७०॥

हीसुं० [१]नूपुरं [२]निजभुजे [३]रभसेनाऽ[४]जीघट[५]त्कटकविभ्रमतोऽन्या ।
वैभवै[६]र्भुजभवै[७]रभिभूतं [८]शीलितुं किमु मृणालमुपेतम् ॥१७०॥

(१) मञ्जीरम् । (२) स्वबाहौ । (३) उत्सुकत्वेन । (४) क्षिपति स्म । (५) वलयबुद्ध्या । (६) बाहुसञ्जातशोभया । (७) जितम् । (८) कमलनालं सेवितुमागतमिव ॥१७०॥

हील० नूपु० । अन्या वलयभ्रमात् मञ्जीरं भुजे घटयामास । परिधृतवतीत्यर्थः । उत्प्रेक्ष्यते । भुजेन परिभूतं मृणालं सेवितुमागतम् ॥१७१॥

हीसुं० [१]तद्गवेषणरसोत्सुकचेताः काचना[२]ध्वनि धृत[३]श्लथबन्धम् ।
[४]अम्बरं [५]हरिणदृक्स्वकरेणा[६]लम्ब्य [७]संचरति [८]चन्द्रकलेव ॥१७१॥

(१) कुमारावलोकनरागेणोत्सुकीभूतचित्ताः । (२) मार्गे । (३) शिथिलीभूतबन्धनम् । (४) वस्त्रं गगनं च । (५) वनिताहस्तेन किरणेन वा । (६) आश्रित्य । (७) व्रजति । (८) शशिलेखेव ॥१७१॥

हील० तन्महेक्षणोत्सुकमनस्का काचिद्धृतं शिथिलं बन्धनं येन तादृशं परिधानं हस्तेनालम्ब्य सञ्चरति । चन्द्रलेखाम्बरं स्वकिरणेनालम्ब्य सञ्चरति ॥१७२॥

हीसुं० अन्यया[१]र्द्धरचितात्मकलापात्पातिमौक्तिकभरै [२]रभसेन ।
[३]सृज्यते स्म [४]विधये किमु [५]लाजोत्क्षेपणा वरयितु[६]र्व्रतलक्ष्म्याः ॥१७२॥

(१) अर्द्धप्रोतनिजमेखलायाः सकाशात्पतनशीलमुक्ताफलनिकरैः । (२) औत्सुक्येन । (३) क्रियते स्म (४) आचारार्थम् । (५) लाजानामक्षतानां वर्द्धापनम् । (६) चरणश्रीपरिणेतुः

1. ०सातिरभसात्पिद० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

॥१७२॥

हील० अन्यया अर्द्धप्रोतो यो निजकलापो मेखला, तस्मादासामस्त्येन पातुकानि मौक्तिकानि, तेषां व्रजैष्कृ-(: कृ)त्वा व्रतलक्ष्मीपरिणेतुः कुमारस्य आचारार्थं वर्द्धापनं क्रियते ॥१७३॥

हीसुं० **काचिद[1]र्भकमपा[2]स्य [3]धयन्तं [4]यान्त्य[5]वेक्षितुम[6]मुं [7]स्वगवाक्षम् ।**
[8]वेश्मनि [9]स्तननिपातिपयोभि[10]र्जाह्नवीं [11]जनयतीव [12]नवीनाम् ॥१७३॥

(१) बालकम् । (२) त्यक्त्वा । (३) स्तन्यं पिबन्तम् । (४) व्रजन्ती । (५) विलोकितुम् । (६) कुमारम् । (७) आत्मगृहसम्बन्धिगवाक्षम् । (८) मन्दिरे । (९) निजकुचकुम्भ-निष्पन्नदुग्धैः । (१०) गङ्गाम् । (११) उत्पादयतीव । (११) नव्याम् ॥१७३॥

हील० काचिन्नन्दनं धयन्तं त्यक्त्वा कुमारं द्रष्टुं स्वगवाक्षं यान्ती सती स्तनयोः पतद्भिर्दुग्धैर्गृहे नवीनां गङ्गां कृतवती ॥१७४॥

हीसुं० **[1]प्राप्तरूपविभवं [2]वहते यः स्या[3]त्किमत्र[4] स [5]जडै[6]रनुषङ्गी ।**
[7]अर्द्धधौतमितरा[8] स्वमि[9]तीवोत्क[10]ण्ठिता [11]तरलदृक्क्र[12]ममौ[13]ज्झत् ॥१७४॥

(१) अधिगतसम्यग्रूपत्वेन शोभां पण्डितत्वेन श्रियं वा । (२) धारयति । (३) कथम् (४) जगति । (५) डलयोरैक्यान्नीरैर्मूर्खैश्च सार्द्धम् । (६) सङ्गमवान् कृतसङ्गो भवति । अपि तु स्यादेव (७) अर्द्धप्रक्षालितम् । (८) अन्या युवती । (५) इति हेतोरिव । (१०) कुमारालोकनोत्सुकमना । (११) चपललोचना । (१२) चरणम् । (१३) त्यजति स्म ॥१७४॥

हील० प्राप्त० । यः क्रमः प्राप्तरूपस्य काञ्चनस्य कवेर्वा सम्पदं धत्ते, स जडैर्मुर्खैर्जलैर्वा सह कृतसङ्गष्क-(: क)थं स्यादितीवार्द्धधौतं क्रमं काचिज्जहाति स्म ॥१७५॥

हीसुं० **[1]स्फाटिकावनिषु [2]वेश्मनि [3]यान्त्या वीक्ष्य [4]यावकपदा[1]न्य[5]परस्याः ।**
[6]मुग्धभृङ्गविहगै[7]र्जलरोहद्रक्तपङ्कजधियेव [8]दधावे ॥१७५॥

(१) स्फटिकरत्नबद्धासु भूमीषु । (२) गृहे । (३) व्रजन्ती(न्त्याः) । (४) अलक्तक-रसार्द्रपदानि । (५) अन्यस्याः स्त्रियः । (६) मुग्धैर्भ्रमरपक्षिभिः । (७) नीरान्तरुद्गच्छत्को-कनदभ्रान्त्या । (८) तत्सन्मुखं धावितम् ॥१७५॥

हील० स्फटिकभुवि अलक्तकपदानि दृष्ट्वा कोकनदभ्रमेण भृङ्गा एव विहङ्गास्तैर्धावितम् ॥*१७६॥

हीसुं० **[2]काप्य[1]लक्तकधियो[2]त्सुकिताङ्गी [3]पादयोर[4]कृत [5]चन्दनचर्चाम् ।**
[6]चन्द्रिकां [7]शशभृता [8]सखितायै [9]रक्तपत्कमलयोः [10]प्रहितां किम् ॥१७६॥

(१) यावकरसभ्रान्त्या । (२) कुमारदर्शनरसैकतानमनाः । (३) चरणयोः । (४) कृतवती।

---

1. <u>नि परस्याः</u> हिमु० । 2. <u>काप्यलक्तधियोत्सुकिता पत्पद्मयोरकृत चन्दनचर्चाम् । रक्तयोर्न सविधे प्रहितां स्वां चन्द्रिकां शशभृता सखितायै</u> हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(५) चन्दनरसस्य विलेपनम् । (६) चन्द्रज्योत्स्नाम् । (७) चन्द्रेण । (८) मैत्र्यार्थम् । (९) अनुरक्तयोश्चरणपङ्कजयोर्विषये । (१०) प्रेषिताम् ॥१७६॥

हील० **काप्य०** । काचिदुत्सुकिता अलक्तधिया चन्दनमण्डनं अकरोत् । उत्प्रेक्ष्यते । स्वोपरि रागवशैः पत्कजयोः सख्याय प्रेषितां चन्द्रिकां न ? अपि तु ज्योत्स्नेव । नकारो मौलार्थमेव वक्ति ॥*१७७॥

हीसुं० **दर्शयन्त्य[१]परपद्ममुखी तं कापि [२]पाणिमकरोन्निजमुच्चैः ।**
[३]व्योमपल्वलमिव [४]स्मयमानोन्नालताम्रनलिनं [५]प्रणयन्ती ॥१७७॥

(१) अन्या स्त्रीः । (२) हस्तम् । (३) गगनतडागम् । (४) विकचानि अत्युच्चमृणानि रक्तानि कमलानि यत्र तादृशम् । (५) कुर्वन्तीव ॥१७७॥

हील० कापि कजमुखी स्वपाणिमूर्ध्वमकरोत् । उत्प्रेक्ष्यते । विकसितमुन्नालं रक्तकजं यस्मिन् तादृशं गगनतटाकं कुर्वन्ती(ती)व ॥१७८॥

हीसुं० **[१]सुभ्रुवा[२]मिह [३]महे [४]जगृहे किं [५]चक्षुषैव [६]नि[1]खिलेन्द्रियवृत्तिः ।**
[७]ज्योतिरर्चिरिव [८]च[2]ण्डरुचा [९]यत्क्वापि सा [१०]प्रभवति स्म न [११]किञ्चित् ॥१७८॥
[3]इति पौराङ्गनाचेष्टितानि ॥

(१) स्त्रीणाम् । (२) अस्मिन् । (३) दीक्षामहोत्सवे । (४) गृहीता । (५) नेत्रेणैव । (६) चतुर्णां श्रवण-नासिका-रसना-स्पर्शनानाम्नामिन्द्रियाणां व्यापारः । (७) ग्रह-नक्षत्र-तारककान्तिः । (८) सूर्येन(ण) । (९) कुत्रापि । (१०) समर्थो भवति । (११) किञ्चिदिति श्रोतुमाघ्रातुमास्वादयितुं स्पर्ष्टुमपीति ॥१७८॥

हील० स्त्रीनेत्रेऽखिला वृत्तिर्गता । यथा सूर्येण नक्षत्राणां वृत्तिर्गृहीता । यतश्चतुरिन्द्रियवृत्तिः श्रोतुमाघ्रातुं आस्वादयितुं स्पर्ष्टुं न क्षमी बभूव ॥१७९॥

हीसुं० **[१]रामणीयकतिरस्कृतकामं तं [२]निपीय नयनैष्य[३](: प)थि कामम् ।**
[४]वल्लकीकुलसखीमिव वाणीमि[५]त्यथो युवतिराजिरभाणीत् ॥१७९॥

(१) वपुःकमनीयत्वेन जितस्मरम् । (२) सादरमवलोक्य । (३) मार्गे । (४) अतिशयेन वीणाव्रजवयसीमिव । (५) अथ-कुमारस्य सम्यग्विलोकनानन्तरम् ॥१७९॥

हील० **राम०** । तं दृष्ट्वा वीणावंशसखीमिव वाचं युवतिश्रेणिर्बभाषे ॥१८०॥

हीसुं० **[१]साम्प्रतं तदिह [२]शैशवशेषः सा[३]म्प्रतं [४]व्रतजिघृक्षु[५]रयं यत् ।**
अन्यथा कथमसाव[६]नुकुर्यादात्म[७]ना जगति [८]जम्बुकुमारम् ॥१८०॥

(१) युक्तम । (२) किञ्चिद्विद्यमानबाल्यावस्था । "प्रणीतवान्[शैशव]शेषवानय"मिति

---

1. सकलेन्द्रिय० हीमु० । हीलप्रतौ 'सकलेन्द्रिय', इत्यस्य उपरि चतुरिन्द्रिय इति टि० । 2. भानुमता हीमु० ।
3. इति पौराङ्गनानां कुमारदर्शनौत्सुक्याद्विविधचेष्टितवर्णनम् हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नैषधे । (३) अधुना (४) दीक्षां ग्रहीतुकामः । (५) हीरकुमारः । (६) अनुकुर्यात् । सदृशीभवेत् । (७) स्वेन । (८) जम्बूस्वामिनम् ॥१८०॥

हील० साम्प्र०। इदानीं त्रयोदशवर्षीयोऽयमास्ते। अतो व्रतग्रहणं साम्प्रतं युक्तम्। कथमन्यथा जम्बूकुमारसदृशो भवेत् ॥१८१॥

हीसुं० [1]अङ्गजाभिलषनो(णो)द्भवकोपाचान्तचित्तचतुराननशापात् ।
[2]रुद्रनेत्रशिखिनीव [3]निपत्या[4]दत्त जन्म कमनष्य(: प)रमेतत् ॥१८१॥

(१) पुत्र्याः तिलोत्तमाया वाञ्छना कामक्रीडाभिलाषस्तस्मादुत्पन्नो यः क्रोधस्तेनाकुलं मनो यस्य तादृशस्य विधातुः शापात् । (२) शम्भुभाललोचनवह्नौ । (३) पतित्वा । प्रज्वल्य । (४) कामः अन्यं भवं गृहीतवान् ॥१८१॥

हील० अङ्ग० । तिलोत्तमाया अभिलषनो(णो)त्पन्नकोपेन वान्तं पूरितं चित्तं यस्य तादृशो ब्रह्मणः कोपात् वह्निमये हरनेत्रे झम्पां दत्वा मारः एतन्मिषात्किं द्वितीयं जन्म आदत्त ॥१८२॥

हीसुं० [1]अद्रिजार्द्धघटनाङ्कितमूर्त्या [2]व्रीडमाकलयता [3]गिरिशेन ।
[4]प्रेयरूपकवती [5]तनुरेतत्कैतवात्किमु[6]रीक्रियते स्म ॥१८२॥

(१) पार्वत्याः शरीरार्द्धेन योजनया कलितकायेन । (२) लज्जाम् । 'व्रीड'शब्दः अकारान्तोप्यस्ति । ''त्वयि स्मरव्रीडसमस्ययानये'' ति नैषधे । (३) शम्भुना । (४) प्रियरूपस्य भावः प्रैयरूपकम् । मनोज्ञादित्वाद्वुण् । प्रैयरूपकविशेषनिवेशै''रिति नैषधे । (५) कुमारकायमिषात् । (६) अङ्गीक्रियते स्म ॥१८२॥

हील० अ० । पार्वत्या सह अर्द्धाङ्गत्वेन लज्जता रुद्रेण । प्रियरूपस्य भावः प्रैयरूपकं, तद्वती, तनुः शरीरमेतन्मिषात्प्रकटीकृता ॥१८३॥

हीसुं० [1]त्यक्तपूर्ववपुषा [2]निजयोषाविप्रयोगजनितान्तरदुःखात् ।
[3]उर्व्वसीप्रियतमेन किमेतत्कैतवेन जगृहे तनुरन्या ॥१८३॥

(१) उज्झितं पूर्वं पुरूरवालक्षणं शरीरं येन । (२) स्वप्रिया उर्वसीनाम्नी तस्या विरहेणोत्पन्न-मनःखेदात् । (३) ये(ऐ)लेन ॥१८३॥

हील० त्यक्त० । स्वस्त्रीवियोगात्यक्तकायेन पुरूरवसा एतल्लक्षणः कायो गृहीतः ॥१८४॥

हीसुं० [1]दस्त्रयोष्कि(: कि)मयम[2]न्यतमोऽस्मिन्नागतस्त्रि[3]दिवतः क्षितिपीठे ।
[4]निष्कलङ्क इव [5]विष्णुपदस्योपास्तिभिष्कु[6](: कु)मुदिनीदयितो वा ॥१८४॥[1]

(१) अश्विनीपुत्रयोः । (२) द्वयोर्मध्ये कश्चन । (३) स्वर्गात् । (४) कलङ्करहितः । (५) नारायणपदसेवनाभिः । (६) चन्द्रः ॥१८४॥

1. इति हीरकुमाररूपदर्शनात्पत्तननगरनागरीणां मनसि विचारणा हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० दस्त्र० । अश्विनीजयोर्मध्ये अयं एकः कश्चिदागतः । अथवा निरङ्कुश्चन्द्रः ॥१८५॥

हीसुं० [1][१]माद्यसि स्मर [२]जगज्जयिनीभि[३]र्हेतिभिष्किं(: किं)मु [४]हताश ! [५]वशाभिः ।
संश्रिते हि चरितश्रियमस्मिंस्त्व[६]न्मदोऽयम[७]वकेशिवदासीत् ॥१८५॥

(१) मत्तो भवसि । (२) विश्वजयनशीलाभिः । (३) शस्त्रैः । (४) निर्दलिताभिलाष !। (५) स्त्रीभिः । (६) तवाभिमानः । (७) निष्फलद्रुम इव ॥१८५॥

हील० माद्य० । हे हताश ! जगज्जैत्रप्रहरणसदृशाभिर्वशाभिष्किं(: किं) माद्यासि । यतोऽस्मिन् चारित्रं श्रिते त्वन्मदो वन्ध्यतरुरिव जातः ॥१८६॥

हीसुं० [१]दैत्यमर्त्त्यमरुतां विजये त्वं [२]साहसिक्यमथ मोह ! [३]जहीहि ।
[४]भूधरं हरिरिवा[५]शनिनासौ [६]संयमेन निहनिष्यति यत्त्वाम् ॥१८६॥

(१) असुरनरसुराणाम् । (२) साहसकर्म्मसत्त्वं बलवत्तां वा । "अहो मदीयस्तव साहसिक्य"-मिति नैषधे । (३) त्यज । (४) शैलम् । (५) शक्रवज्रेण । (६) चारित्रेण ॥१८६॥

हील० दैत्य० । हे मोह ! सर्वप्राणिविजये सत्वं मुञ्च । यत् यस्मात्त्वां चारित्रेना(णा)यं हनिष्यति । यथाद्रिमिन्द्रो वज्रेण हन्ति ॥१८७॥

हीसुं० [१]संसृते ! [२]व्रतरमानिरतोऽसौ [३]दुःप्रवृत्तिमिव यत्त्यजति त्वाम् ।
[४]निष्फला तदबलेव [५]परस्यां [६]सक्तमानसपतेरपमानात् ॥१८७॥

(१) संसार !। (२) चारित्रश्रियामासक्तमनः । (३) दुष्टवार्ताम् । (४) वन्ध्या । (५) अन्यवनितायाम् । (६) आदृतचित्तकान्तस्य ॥१८७॥

हीसुं० हे संसार ! हीरकुमारः दुर्मार्गमिव त्वां त्यजति । तस्मात्त्वं निष्फलैव । यथान्यस्त्रियां आसक्तपतेरपमानात् स्वस्त्रीः सम्भोगानवाप्तेर्निरानन्दा स्यात् ॥१८८॥

हीसुं० राग ! सागर इवासि [१]निपीतो[२]ऽनेन पीततटिनी[2]दयितेन ।
[३]दर्प्प ! [४]खर्परकरीभव सर्प्पन्[५]ङ्कवद्युधि जितो [६]यदनेन ॥१८८॥

(१) चुलुकीकृतः । (२) अगस्तिना । (३) अभिमानः । (४) घटादिकपालम् । ठिक्करमित्यर्थः । पाणौ कुरु । (५) द्रमको भिक्षुरिव । (६) कुमारेण ॥१८८॥

हील० हे राग ! त्वमगस्तिसदृशेनानेन समुद्र इव पीतः । पुनरनेन जित हे दर्प ! त्वं खर्परं करे कृत्वा भिक्षां मार्गय ॥*१८९॥

हीसुं० मान[१]मान[न]सरोरुहनत्या [२]मानिनीजन ! जहीहि [३]जहीहि ।
[४]मोहनाह्वमणिनेव [५]मह्व(न)स्वी न [६]व्यमु(मो)ह्यत या(यतो) भवतायाम् ॥१८९॥

(१) लज्जया वदनपद्मनम्रीकरणेन । (२) स्त्रीलोकः । (३) त्यज त्यज । (४) मोहकृद्रत्नेन ।

---

1. अथ काममोहादीनामुपालम्भाः हील० । 2. पतिनेव हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(५) विशिष्टमनोवाच(न्), सुरादिभिरक्षोभ्यमनाः । (६) मोहितः ॥१८९॥

हील० **मान०** । हे मानिनीजन ! मुखं नीचैः कृत्वा मानं त्यज त्यज । यतः श्रीमता अयं न मोहितः । यथा मोहकृद्रत्नेन जनो मोह्यते ॥१९०॥

हीसुं० [१]स्वर्णजालकविमानगतानां [२]सुभ्रुवां भ्रुव इवाप्सरसां सः ।
[३]आननामृतरुचीभ्य [४]उदीतास्ताः सुधा इव कथाष्पि(: पि)बति स्म ॥१९०॥

[1]इति पुराङ्गनानां मिथो वार्ताः ।

(१) कनकघटितगवाक्षरूपविमानेषु प्राप्तानाम् । (२) स्त्रीणाम् । (३) मुखचन्द्रेभ्यः । (४) उद्गतां(ताः) ॥१९०॥

हील० **स्वर्ण०** । पृथिव्याः सुराङ्गनानामत एव स्वर्णगवाक्षविमानस्थितानां मुखचन्द्रेभ्यो निर्गताः सुधा इव कथाः स सादरं श्रृणोति स्म ॥१९१॥

हीसुं० [१]नीरदोऽ[२]वनिभृतामिव तापं वृष्टिभी [३]रजतहेममयीभिः ।
सोऽर्थिनां [४]प्रमथय[५]न्पथि [६]दौस्स्थ्यं संचचार [७]पुटभेदनमध्ये ॥१९१॥

(१) मेघः । (२) गिरीणाम् । (३) स्वर्णरुप्यप्रचुराभिः । (४) निवारयन् । (५) मार्गे । (६) दरिद्रताम् । (७) अणहिल्लपत्तनमध्ये ॥१९१॥

हील० **नीर०** । यथा मेघोऽद्रीणां तापं हन्ति तद्वद्याचकदारिद्र्यं दलयन् सन् स **पत्तन**विचाले सञ्चरति स्म ॥१९२॥

हीसुं० [१]तद्यशोधरणिभर्तुरि[२]तोऽन्य[३]द्द्वीपनिर्जयकृते [४]प्रयियासोः ।
[५]अध्वरोधिजलधिं[2] किमु [६]रोद्धुं [७]तत्क्षणे [3]भुवि [८]रजोभिरुदीये ॥१९२॥

(१) कुमारयशोराजस्य । (२) अस्माद्द्वीपात् । (३) अप[र]द्वीपसाधनार्थम् । (४) गन्तुमिच्छोः । (५) मार्गरोधकसमुद्रम् । (६) आवरीतुम् स्थलीकर्तुम् । (६) तस्मिन्प्रस्तावे । (८) धूलीभिः । (९) प्रसस्रे ॥१९२॥

हील० **तद्यशो०** । तत्समये पृथ्वी धूलीभिः प्रसृतम् । उत्प्रेक्ष्यते । इतो द्वीपादन्यद्वीपजयार्थं यातुमिच्छोष्कु(: कु)मारयशोराज्ञः मार्गं रुन्धन्ति । तादृशानर्णवान् रोद्धुं स्थलीकर्त्तुमिव रेणुभिः प्रसस्रे ॥१९३॥

हीसुं० [१]संयमाय [२]समियाय कुमारः [३]पत्तनोपविपि[4]नं [४]दितदोषः ।
[५]पूर्वपर्वतशिरःशिखराङ्कं[5] [६]पद्मिनीपतिरिवा[७]भ्युदयाय ॥१९३॥

(१) चारित्रग्रहणाय । (२) समागतः । (३) पत्तनोद्यानम् । (४) दिताश्छिन्ना दोषा

---

1. इति पत्तननगरनागरीणां हीरकुमारदर्शनोद्भूतमिथःकथाप्रथा हील० । 2. ०धीनिव हीमु० । 3. क्षितिर० हीमु० । 4. ०पिने हीमु० । 5. ०राङ्के हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपगुणा रात्रयो वा येन । (५) उदयाचलमस्तकशृङ्गोत्सङ्गम् । (६) सूर्यः । (७) उद्गमनाय ॥१९३॥

हील० संय०। चारित्रग्रहणार्थं स वने आजगाम । यथा रविरुद्गमनार्थं उदयाद्रावागच्छति । किंभूतः स रविश्च ?। दिताः खण्डिता दोषा अपगुणा रात्रयश्च येन सः ॥१९४॥

हीसुं० [१]कौतुकाद्भुवमुपेत्य [२]वसन्तीं [३]स्वष्पु(: पु)रीमिव पुरीम[४]वगत्य ।
आगतं किमनु [५]नन्दनमत्रोद्यानमेष निपपौ नयनाभ्याम् ॥१९४॥

(१) भूतलावलोकनार्थं कौतुहलेन भुवमागत्य । (२) तिष्ठन्तीम् । (३) अमरावतीम् । (४) ज्ञात्वा । (५) नन्दनवनमिव ॥१९४॥

हील० कौतु० । हीरकुमारः वनं पपौ । उत्प्रेक्ष्यते । कुतूहलात्पृथ्व्यामागताममरावतीं वीक्ष्य अनु-पश्चान्नन्दनवनं आगतम् ॥१९५॥

हीसुं० [१]शारिकाशुकशिखण्डिकपोतीपोतकेलीकलनाकमनीयम् ।
[२]मत्तवारणविचित्रितसालं प्राविशद्गृहमिवोपवनं सः ॥१९५॥

(१) शारिकाशुकमयूराः पारापतीशिशुक्रीडाकरणेन मनोज्ञम् । (२) "मत्तालम्बोपाश्रयः स्यादिति" हैम्याम् । विशिष्टानि चित्राणि संजातान्यस्यां तादृशी शाला यत्र । मदोद्धता गजास्तथा विशिष्टाश्चित्रा औष[ध]यस्तद्युताः, 'शसयोरेक्यात्' द्रुमा यत्र ॥१९५॥

हील० शारिका० । सद्मनि सारिकादीनां सद्भावात्तै रमणीयम् । पुनर्विशिष्टाश्चित्रा आखुपर्णी औषधयो वा । चित्रा उरगविशेषाः 'चित्रडि' इति प्रसिद्धास्तैर्युक्ता वृक्षा यत्र, तथा विविधचित्रसहिता शाला यत्र । श्लेषे शसयोरैक्यात् । तादृशं वनं स प्रविशति स्म ॥१९६॥

हीसुं० पुष्पपल्लवफलानि दधानाः शाखिनः [१]स्मितशिखाग्रशयेषु ।
[२]स्वागतं [३]द्विजरवैष्कि(: कि)[४]मुदीर्याऽस्या[५]तिथेयम[६]तिथेरिह चक्रुः ॥१९६॥

(१) विकचशाखाशिखरहस्तेषु । (२) सुखेनागतं कुशलप्रश्नादि वा । (३) पक्षिशब्दैः । (४) उक्त्वा । (५) अतिथिसत्क्रियाम् । (६) प्राघुणाय ॥१९६॥

हील० वृक्षाः शाखाकरेषु पुष्पादीन् धृत्वा, पुनः पक्षिरवैः कुशलं पृष्ट्वाऽस्य सत्क्रियां कुर्वन्ति स्म ॥१९७॥

हीसुं० तत्र [१]सस्यभरगौरवभाग्भिः [२]कोकिलाक्वणितसंस्तववाग्भिः ।
पादपैरयमनम्यत [३]वन्यै[४]र्भाविसूरिपुरहूतधियेव ॥१९७॥

(१) फलगणभारयुतैः । (२) पिककूजितस्तुतिवचनैः । (३) वनभवैः । (४) भविष्य-सूरीन्द्रधिया ॥१९७॥

हील० फलगौरवं कुर्वद्भिः पिकपञ्चमालापा एव संस्तववचनं येषां तादृशैर्वृक्षैर्नमस्कृतः ॥१९८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]कामनीयकमशेषम[२]मुष्याऽ[३]न्वेषयन्वटतरुं स[४] ददर्श ।
[५]श्रीतिरस्कृतसमग्रवनस्य च्छत्रमेतदिव मुर्ध्नि वनस्य ॥१९८॥

(१) मनोज्ञताम् । (२) का(क)मनीयस्य भावः कामनीयकम् 'मनोज्ञादित्वा'द्वुण् । (२) वनस्य । (३) पश्यन् । (४) <u>हीरकुमारः</u> । (५) शोभया जितसमस्तभुवनकाननस्य ॥१९८॥

हील० **काम०** । स वनस्य मनोज्ञतां पश्यन् वटं ददर्श । उत्प्रेक्ष्यते । धनाधिराजवनस्यालिके छत्रम् ॥१९९॥

हीसुं० [१]न्यक्षरुक्षनिकरेषु [२]गुरुत्वं यद्बिभर्ति मनुजेष्विव भूमान् ।
गौरवात्किमिति [३]लोलविहङ्गैर्वीज्यते स्म चमरैरिव पक्षैः ॥१९९॥

(१) सर्ववृक्षगणेषु । (२) महत्त्वम् । (३) लोलैरुड्डयनाच्चपलैष्प(:प)क्षिभिः ॥१९९॥

हील० **न्यक्ष०** । समग्रवृक्षेषु महत्त्वात्पक्षिभिः पक्षैर्वीज्यते स्म ॥२००॥

हीसुं० [१]रागिणः [२]प्रणयतोऽखिललोका[३]न्शैशवावधिजगज्जनगेयान् ।
[४]तद्गुणानिव [५]निशम्य [६]सरागः [७]पल्लवैरयम[८]सा(शा)लत [1]साल ॥२००॥

(१) सरागान् । (२) कुर्वतः । (३) बाल्यावस्थामारभ्य त्रिभुवनजनानां गातुं योग्यान् । (४) <u>हीरकुमारगुणान्</u> । (५) श्रुत्वा । (६) रागयुक्तः । (७) किसलयैः । (८) शुशुभे ॥२००॥

हील० **रागि०** । रागयुक्तान् कुर्वतस्तद्गुणान श्रुत्वा सालः सरागः सन् पल्लवैरशोभत ॥२०१॥

हीसुं० [१]वल्कलैष्क(:क)लयतात्मनि भूषां बिभ्रता [२]कपिशशालिजटालीम् ।
[३]काननस्थितिमता[४]जनि [५]तेना[६]तन्वता किमु [७]तपो [८]व्रतिनेव ॥२०१॥

(१) वृक्षत्वग्भिः । (२) पिङ्गलशोभमानजटासटा योगिकेशाश्च । (३) वने वसता । (४) जातम् । (५) वटेन । (६) सृजता । (७) अनाहारलक्षणम् । (८) तापसेनेव ॥२०१॥

हील० **वल्क०** । वल्कलैश्छल्लीभिः शोभितेन । पुनः पीतरक्तानां वृक्षमूलानां जटानां वा श्रेणीं दधता । पुनर्वने स्थितेन । पुनस्तपः कुर्वता वटेन यतिनेव जातम् ॥२०२॥

हीसुं० [१]निष्कुहान्तरितविष्करवारा(र)स्फारतारनिनदैर्वटशाखी ।
यो मरु[२]त्तरलपल्लवहस्तैरा[३]ह्वयन्निव निजान्तिक[2]मेतम् ॥२०२॥[3]

(१) कोटरसंस्थितपक्षिनिकराणां पटुरुच्चैः कूजितरवैः । (२) पवनचञ्चलकिसलयकरैः । (३) स्वसमीपे कुमारमाकारयतीव ॥२०२॥

हील० निष्कुहान्तरितानां स्वकोटरमध्यगतानां पक्षिणां रावैः । पुनर्वायुवेपितशाखाहस्तैर्यो वटः एतं हीरकुमारं स्वसमीपे आकारयन्निव ॥★२०३॥

---

1. <u>शालः</u> हीमु० । 2. ०<u>क एतम्</u> हीमु० । 3. <u>दीक्षादानोचितवटतरुवर्णनम्</u> हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० शिश्रिये विजयदान[1]मुनीन्द्रष्पू[१](: पू)र्वमेव [२]तदुपागमनाद्यः ।
[३]छायया॑[४]खिलजनं [५]सुखयन्तं कः श्रेयन्न [६]धनदाश्रयमत्र ॥२०३॥

(१) प्रथममेव । (२) कुमारागमनात् । (३) प्रतिच्छायिकया । (४) समस्तलोकम् । (५) सुखीकुर्वन्तम् । (६) कुबेरस्य दातॄणां वाश्रयम् ॥२०३॥

हील० शिश्रिये० । हीरकुमारस्यागमनात्पूर्वमेव सर्वसुखदायिनं यं वटं श्रीविजयदानसूरिः श्रितवान् । प्रागेव तत्रागत्य निषन्न(ण्ण) इत्यर्थः ॥२०४॥

हीसुं० [१]तीर्थनाथमिव चैत्यतरोस्त[२]त्पादपस्य [३]सविधे स्थितिमन्तम् ।
संमदेन स कुमारमहेन्द्र[४]स्त्रिः [५]प्रदक्षिणयति स्म मुनीन्द्रम् ॥२०४॥

(१) जिनेन्द्रम् । (२) तस्य व्यावर्णितस्वरूपस्य । (३) पार्श्वस्थितम् । (४) त्रिवारम् । (५) प्रदक्षिणावर्त्तं भ्रमति स्म ॥२०४॥

हील० तीर्थ० । कुमारो वटतले स्थितं विजयदानसूरिं वारत्रयं प्रदक्षिणयति स्म । यथाशोकद्रुमतले स्थितं जिनमिन्द्रस्त्रिः प्रदक्षिणयति ॥२०५॥

हीसुं० उत्ततार तुरगात्स कुमारो [१]बर्हिणादिव सुतः[२] सुरसिन्धोः ।
श्रीगुरुं प्रमुदितश्च [३]ललाटन्यस्तहस्तनलिनस्तम[४]नंसीत् ॥२०५॥

(१) मयूरात् । "आवासवृक्षोन्मुखबर्हिणानी"ति रघुवंशे । (२) स्वामिकार्त्तिकः । (३) भालस्थलयोजितकरकमलः । (४) नमस्करोति स्म ॥१०५॥

हील० उत्त० । स हयादुत्ततार । यथा षण्मुखो मयूरादुत्तरति । पुनः श्रीसूरिं प्रणमति स्म ॥२०६॥

हीसुं० [१]रामणीयकविधेरव[२]धेर्मे[३] [४]भूषया [५]वपुषि [६]कृत्रिमया [७]किम् ।
[८]तत्यजे [९]निजतनोरिति [१०]सर्वाङ्गीणभूषणभरष्कि(: कि)मनेन ॥२०६॥

(१) मनोज्ञताप्रकारस्य । रमणीयस्य भावो रामणीयकम् । योपधाद्वुञ् । (२) सीमायाः । (३) मम (४) आभरणैः । शोभया । (५) अङ्गे । (६) औपाधिक्या विरचितया । (७) किम्, भवतु न किमपीत्यर्थः । (८) त्यक्तः । (९) स्वशरीरात् । (१०) सर्वाण्यङ्गानि व्याप्नोतीति सर्वाङ्गीणः । "पथ्या(य)ङ्गकर्म्मपत्रपात्रं व्याप्नोती"ति सूत्रेण खः, ईनादेशश्च । आभरणसमुदायः सर्वशरीरालङ्करणानि ॥२०६॥

हील० राम० । स्वकायादाभरणभरं अनेन किमिति कारणात्यक्तः । इतीति किम् ?। रमणीयतायाः प्रकारयावधेः -सीमाया मे-मम शरीरे औपधिक्या शोभया किम् ॥२०७॥

हीसुं० [१]षट्‌द्ग्रहे९षु५शशि१सङ्ख्यमितेऽब्दे१५९६ [२]कात्तिकस्य च तिथौ[३] द्विक२सङ्ख्ये ।
[४]यन्निरस्तभवनिःस्व(श्व)सितार्चिर्धूमवर्तिभिरिवा[५]विशदास्ये ॥२०७॥

1. ०यती० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]संयमं [२]विजयदानमुनीन्दोराददे सह परैः स कुमारः ।
[३]पद्मिनीप्रियतमात्प्र[४]विकाशं [५]पुण्डरीकमिव [६]पङ्कजपुञ्जैः ॥२०८॥ युग्मम् ॥[1]

(१) षट्सङ्ख्या, ग्रहा नव, इषवो बाणाष्प(: प)ञ्च, शशी चन्द्र एक एव, एतत्सङ्ख्यया प्रमाणीकृते वर्षे । (२) कार्त्तिकमासस्य । (३) युग्मसङ्ख्ये तिथौ । तिति(थि)शब्दः पुंस्त्रीलिङ्गः । (४) हीरकुमारपराभूतसंसारनिःस्वा(श्वा)सानलधूमलेखाभिरिव । (५) श्यामलितमुखे । श्यामे इत्यर्थः । विक्रमार्कात्पञ्चदशशतेषु षण्णवत्यां वर्षेष्वतिक्रान्तेषु कार्त्तिकबहुलद्वितीयायां व्रतमादत्तेति तात्पर्यम् ॥२०७॥

(१) दीक्षाम् । (२) श्रीविजयदानसूरीन्द्रात्सकाशात् । (३) सूर्यात् । (४) विकचताम् । (५) सिताम्भोजम् । (६) कमलपटलैः । पुण्डरीकमिति प्राधान्यख्यापनाम्, ''पुरिसवर-पुंडरीयाण''मिति वचनात् ॥२०८॥

हील० येन कुमारेण ध्वस्तो यः संसारस्तस्य निस्व(निःश्व)सितान्येव अर्चीषि वह्नयस्तेषां धूमलेखाभिः कृष्णमुखे द्वितीयातिथौ । ''प्रश्निनस्तिथ्यशनीमणिसृणि''रिति पुंस्त्रियोर्लिङ्गानुशासने । शेषं सुगमम् ॥२०८॥ परैरमीपालकुमारप्रमुखैरित्यर्थः ॥२०९॥

हीसुं० **[१]संयमश्रियमवाप्य कुमारः सा[२]धिकं [३]शरदमिन्दुरिवाभात् ।**
[४]साऽप्यनेन[५] सुषमां श्रयते स्माऽर्थेन [६]वागिव पुरीव नृपेण ॥२०९॥

(१) चारित्रलक्ष्मीम् । (२) अतिशायितया । (३) मेघात्ययम् । (४) चरणश्रीरपि । (५) कुमारेण । (६) वाणी अर्थेनेव ॥२०९॥

हील० **सं०** । स कुमारः चारित्रं प्राप्याधिकं शुशुभे । यथा शरदृतुं चित्रानक्षत्रं वा प्राप्य चन्द्रः शोभते । सा चारित्रश्रीरपि अमुना शोभां प्राप्नोति स्म ॥२१०॥

हीसुं० **हीरहर्ष इति नाम [१]तदीयं [२]निर्ममे विजयदानयतीन्द्रः ।**
[३]स्पर्द्धयेव यशसाऽस्य जनानां [४]कर्णपूरपदवीं तदवापत् ॥२१०॥

(१) कुमारसम्बन्धिः । (२) कृतवान् । (३) असूयया । (४) कर्णाभरणता सकलजगज्जन-श्रूयमाणतापदम् ॥२१०॥

हील० **हीरहर्ष** इति नाम कृतं तन्नाम । अस्य **हीरहर्षमुने**र्यशसा सह स्पर्द्धया जनानां कुण्डलपदवीं प्राप ॥२११॥

हीसुं० **[१]नभोङ्गणान्नि[२]र्ज्जरहस्तमुक्ता [३]मरन्दलुभ्यन्मधुपानुषङ्गा[2] ।**
पपात तस्योपरि पुष्पवृष्टिष्क(: क)टाक्षलक्षा[४] इव मोक्षलक्ष्म्याः ॥२११॥

(१) आकाशात् । (२) सुरनिकरकरैः कृता । (३) मकरन्दलुब्धीभवतां भ्रमराणां सङ्गे

1. संवत १५९६........कुमारः संयमश्रियं परिणीतवानिति हील० । 2. ०षङ्गे इति हीमु० दृश्यते । स चाशुद्धो भाति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यस्याः । (४) लक्षाशब्दः स्त्रीक्लीबः । तथा -"माने लक्ष"मिति लिङ्गानुशासने ॥२११॥

हील० नभो० । भ्रमरवेष्टिता पुनर्गगनाद्देवेन मुक्ता पुष्पवृष्टिस्तदुपरि पपात । उत्प्रेक्ष्यते । मुक्तिश्रियः कट्यक्षशतसहस्राणि ॥२१२॥

हीसुं० [1]महाव्रती [2]कालमनोभवारिर्म[3]होक्षलीलागतिगौ[4]रकान्तिः ।
[5]शिवाश्रितः शं[6]भुरिव क्रमेणेशानीं दिशं पूर्व[1]मयं बभाज ॥२१२॥

(१) पञ्चमहाव्रतवान् । (२) कालः कलिस्तथा स्मरस्य शत्रुः । (३) वृषभगति, "मत्तोक्षगमनः पुमानि"ति काव्यकल्पलतायाम् । (४) स्वर्णरुचिः । गौरः पीतस्वे(श्वे)तयोः । (५) मङ्गलयुतः । (६) शंभुरपि "महाव्रती वह्निहिरण्यरेता" इति हैम्याम् । कालदैत्यस्यारिर्मृत्युञ्जयत्वात् स्मरारिः, वृषभवाहनः, श्वेतद्युतिः, पार्वत्याश्रितः, अर्द्धशंभुत्वात्, तद्वत् । ईशान्यां(नीं) दिशं प्राक् जगाम ॥२१२॥

हील० महा० । हीरहर्षमुनिः पूर्वमीशानीं दिशं श्रितवान् । यथेश ईशानीं दिशं गच्छति, तदधिपतित्वात् । किंभूतः स ईशश्च ? पञ्चमहाव्रतवान् । "महाव्रती वह्निहिरण्यरेताः" । कालदैत्यकामयोररिः । पुनर्वृषभेन(ण)वृषभवद्गमनं यस्य । शिवैर्मङ्गलैः शिवया वा युक्ताः ॥२१३॥

हीसुं० [1]कलभो [2]यूथनाथेन [3]यद्वद्दम्यः [4]ककुद्मता ।
हीरहर्षः समं सूरि-शक्रेण [5]विजहार सः ॥२१३॥

(१) कलभस्त्रिंशदब्दकः करी । (२) यूथाधिपेन सार्द्धम् । (३) "दम्यो वत्सतरः समा"-विति हैम्याम् । पुष्टवत्सन्धिवर्षीयः । (४) धुरिणेनेव । (५) विहारं कृतवान् । २१३॥

हील० यथा बालगजः षष्टिवर्षीयगजेन विहरति । यथा वृषेन(ण) वत्सतरः तद्वद्हीरहर्षः सूरिणा विजहार ॥२१४॥

हीसुं० प्रीति[1]र्जिनेषु [2]वृजिनेषु न तस्य जज्ञे, [3]योगं व्यगाहत मनो न कदापि [4]भोगम् ।
अङ्गीचकार [5]विरतिं न [6]रतिं कदाचि-न्नव्योऽप्यनव्य इव सोऽजनि साधुधुर्यः ॥२१४॥

(१) तीर्थकरेषु । (२) न पापेषु (३) प्रणिधानम् । (४) सुखादिकं सांसारिकम् । (५) सर्वसावद्यविरमणम् । (६) चित्तासक्तिं मैथुनादि वा । "वृद्धास्विव गतप्रायासु वर्षासु रतिमकुर्वाण" इति चम्पूसूत्रे । तट्टिपनके रतिं चित्तासक्तिमिति ॥२१४॥

हील० तस्य प्रेम जिनेषु जातं न पापेषु । शेषं सुगमम् ॥२१५॥

हीसुं० सूरीन्दोः सन्निधौ श्रीमान्कु[1]मारश्रमणोऽनिशम् ।
सन्तानस्य नवोन्निद्रत्पा[2]रिजात इवाबभौ ॥२१५॥

(१) हीरहर्षसाधुः । (२) कल्पद्रुः । "कल्पद्रुमाणामिव पारिजात" इति रघुवंशवचना-

1. ०मसौ हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्पारिजातस्य सर्वकल्पद्रुमेषु प्राधान्यख्यापना ॥२१५॥

हील० **सू०** । यथा सन्तानकल्पद्रुमपार्श्वे पारिजातनामा कल्पद्रुः शोभते । तद्वत्सूरिसमीपे **हीरहर्षबालः** शोभते स्म ॥२१६॥

हीसुं० **[1]श्रमणधरणीभर्त्तुष्या[2](: पा)दारविन्दनिषेवना-**
प्रमुदितमना नाथीदेवीतनूजयतीश्वरः ।
[3]अनुपमशमक्षीराम्भोधौ [4]विलासरसं सृज
[5]न्सितगरुदिवाम[6]न्दान्दं दिनानि निनाय सः ॥२१६॥

इति पण्डितदेवविमलगणिविरचिते हीरसौभाग्य(सुन्दर)नाम्नि महाकाव्ये हीरकुमारप्रतिबोधस्वजन-कृतमहोत्सवपुराङ्गनाचेष्टित-तत्सङ्कथा-दीक्षाग्रहणो नाम **पञ्चमसर्गः** ॥ ग्रं. ३०३॥

(१) श्रीविजयदानसूरीन्द्रस्य । (२) चरणकमलोपासनाहृष्टचित्तस्य(चित्तं यस्य) । (३) असाधारणोपशमरसदुग्धसमुद्रे । (४) विलासरसं - क्रीडास्वादम् । आस्वादोऽनुभवनम् । अथवा क्रीडायामनुरागं सृजन् । "रसः स्वादे जले वीर्ये शृङ्गारादौ विषे द्रवे । बोले रागे देहधातौ तिक्तादौ पारदेऽपि चे"त्यनेकार्थः । (५) राजहंस इव । (६) परमानन्दः ॥२१६॥

इति पञ्चमः सर्गः ॥ ग्रं० ३३६ ॥

हील० **श्रम०** । श्रीसूरीश्वरचरणसेवनायां हर्षवान् **नाथीसूतो** मुनीशः सितच्छदो हंसस्तद्वत्क्षीरसमुद्रे क्रीडाया रसं आस्वादं कुर्वन् दिवसानतिक्रामति स्म । "रसः स्वादे जले वीर्ये शृङ्गारादौ द्रवे विषे । बोले रागे देहधातौ तिक्तादौ पारदेऽपि च ॥" इत्यनेकार्थः । हंसानामपि क्षीरार्णवे सत्वाद्यथा "[1]हंसांसाहतपद्मरेणुक० इत्यादौ ॥२१७॥

हील→ **यं प्रासूत शिवाह्वसाधुमघवा सौभाग्यदेवी पुनः**
पुत्रं कोविदसिंहसी(सिं)हविमलान्तेवासिनामग्रिमम् ।
तद्ब्राह्मीक्रमसेविदेवविमलव्यावर्णिते हीरयुक्-
सौभाग्याभिधहीरसूरिचरिते सर्गोऽभवत्पञ्चमः ॥२१८॥←

इति पण्डितदेवविमलगणिविरचिते हीरसौभाग्यनाम्नि महाकाव्ये हीरकुमारस्य विजयदानसूरिवन्दन-देशनाश्रवण-वैराग्यभवन-सांसारिकवर्गादेशादान—भूषणा....तौर्यत्रिकादिमहोत्सवपुरः सरो विपिनागमन-वटद्रुमाधोदीक्षाग्रहणादिवन्दनो नाम **पञ्चमः सर्गः** ॥

1. हंसांसाहतपद्मरेणुकपिशक्षीरार्णवाम्भोभृतैः इति समग्रः पाठः ॥ →← एतदन्तर्गतः पाठो हीसुंप्रतौ नास्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐँ नमः ॥

अथ षष्ठः सर्गः ॥

हीसुं० [१]अथ [२]सूरिपुरन्दरान्तिके [३]निखिलं [४]वाङ्मयमा[५]मनन्[६]यम् ।
[७]गणधारिसुधर्म्मसन्निधाविव[८] जम्बूः [९]सुषमाम[१०]पूपुषत् ॥१॥

(१) अथ दीक्षाग्रहणानन्तरम् । (२) विजयदानसूरिसमीपे । (३) समस्तम् । (४) शास्त्रम् । (५) पठन् । "पठत्यमनती" त्यपीति क्रियाकलापे । (६) हीरहर्षः । (७) सुधर्म्मस्वामिपार्श्वे । (८) जम्बूरिव । (९) सातिशायिनी शोभाम् । (१०) पुष्णाति स्म ॥१॥

हील० **अथ०**। सूरिसमीप आगमं पठन् शोभां पुष्णाति स्म । यथा सुधर्मस्वामिसमीपे पठन् जम्बूस्वामी शोभां पुष्णाति ॥१॥

हीसुं० [१]श्रुतमत्र [२]गणे[1]न्दुनामुना [३]निहितं [४]स्फूर्त्ति[५]मनुत्तरां दधौ ।
इव [६]शुक्तिकसंपुटान्तरे सलिलं [७]स्वातिमिलत्पयोमुचाम् ॥२॥

(१) शास्त्रम् । (२) विजयदानसूरिणा । (३) स्थापितमध्यापितमित्यर्थः । (४) चमत्कारकारिताम् । (५) असाधारणाम् । (६) मुक्ताशुक्तिसंपुटमध्ये । (७) स्वातिनक्षत्रेण सङ्गच्छमानघनानां नीरम् ॥२॥

हील० श्रुतमेनं प्राप्य शोभते स्म । यथा शुक्तिकयोः सम्पुटमध्ये पतितं स्वातिपयो मुक्ताशोभां धत्ते ॥*२॥

हीसुं० [१]अधिगत्य ततः श्रुतं [२]व्रतक्षितिभर्त्तुर्दधिरेऽमुना श्रियः ।
सुरभेः स[३]मिरेण [४]सौरभं [५]मलयोर्व्वीरुहकाननादिव ॥३॥

(१) प्राप्य । "अधिगत्य जगत्यधीश्वरादथ मुक्तिं पुरुषोत्तमात्तत" इति नैषधे । (३) विजयदानसूरिन्द्रात् । (३) वसन्तमारुतेन । मलयानिलेनेत्यर्थः । (४) सगन्धित्वं परिमलमिति । (५) चन्दनतरुवनात् ॥३॥

हील० अधि० । सूरीश्वराच्छास्त्रं प्राप्यानेन शोभा धृताः । यथा वसन्तवायुना मलयाचलवनात्सुगन्धितां प्राप्य शोभा ध्रियन्ते ॥३॥

हीसुं० स्खलति स्म न कुत्रचिद्व[१]चोरचना[२]स्या[३]गमपारदृश्वनः ।
[४]ह्रदिनी हृदयेशितुश्च[५]लज्जलकल्लोलपरम्परा [2]इव ॥४॥

(१) वाग्विलासः । (२) हीरहर्षस्य । (३) शास्त्रपारगामिनः । (४) समुद्रस्य । (५) तरङ्गमाला इव ॥४॥

हील० **स्खल०** । अस्य वाक्चातुर्यं क्वापि शास्त्रे न स्खलति स्म । यथा नदीशस्य जलकल्लोला क्वापि [न] स्खलन्ति । अत्र किमु इवार्थे ॥*४॥

---

1. ०णीन्दु० हीमु० । हीलप्रतौ 'गणीन्दुना' इतः परं मितेऽब्दे १५९६ कार्तिकस्य....एवं दृश्यते । पश्चादवाच्यमस्ति ।
2. किमु हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]असमानमहा [२]दिनेशवन्म[३]तिमांश्चि[४]त्रशिखण्डिपुत्रवत् ।
[५]भटवच्चरणोल्लसन्मना [६]विनयी यो [७]रघुसूनुवद्व्यभात् ॥५॥

(१) परैरसह्यतापः । असाधारणतेजाश्च । (२) रविरिव । (३) कुशाग्रीयमतिः । बुद्धिमान् । (४) वाचस्पतिरिव । "विचित्रवाक्चित्रशिखण्डिनन्दन" इति नैषधे । (५) चारित्रे विकसच्चेताः । चः पुनरर्थे, 'सुभटस्तु सङ्ग्रामे प्रमाद्यन्मानसः विग्रहमिच्छन्ति 'भटा' इति वचनात् । (६) विनयकलितः । (७) लक्ष्मण इव । (८) "विनये लक्ष्मण" इति काव्यकल्पलतायाम् ॥५॥

हील० अस०। यः असह्यप्रतापः सूर्यवत्, बृहस्पतिवत् बुद्धिमान्, पुनर्यः भटवत् चारित्रे उल्लासवान् । यथा भटो रणोल्लसन्मनाः स्यात् । पुनर्यः विनये रामभ्रातृवत् । अथवा विशेषेण नयो न्यायो यस्मिन् तादृशः सन् राम इव व्यभात् ॥५॥

हीसुं० [१]गिरिराज इव [२]क्षमाधरो [३]बुधलक्ष्मीं दधद[४]भ्रमार्गवत् ।
[५]जलजासनावद्व[६]वान्तकृद्व्र[७]तधुर्यः स [८]महोक्षवद्बभौ ॥६[1]॥

(१) हिमाचल इव । (२) क्षमा-क्षान्तिर्भूमिश्च । (३) पाण्डित्यश्रियम् । सोमपुत्रस्य शोभाम् । (४) गगनमिव । (५) ब्रह्मा इव । (६) संसारच्छेदा(रोच्छेदकः) । (७) पञ्चमहाव्रतभारोद्धारे धुरीणः । (८) वृषभ इव ॥६॥

हील० गिरिरा०। यः क्षान्तिपाण्डित्ययुक्तः संसारोच्छेदकारी व्रतधुरंधरः शुशुभे ॥६॥

हीसुं० [१]तरुणी तपनात्मजन्मनो [२]हरिदास्ते भुवि नाम दक्षिणा ।
किमु कस्यचनापि [३]कोपिनो [४]व्रतिनः [५]स्वर्निप[६]पात शापतः ॥७॥

(१) यमपत्नी । (२) दिग् दक्षिणा । "निजमुखमितः स्मेरं धत्ते हरेर्महिषी हरित्" । तथा "वरुणगृहिणीमाशामासादयन्तममुं रुची" ति नैषधे । इदमपि तद्वत् । (३) रोषवतः । (४) तापसस्य (५) स्वर्गः । (६) उच्चैः स्थानात्त्रुटित्वा अधोभूमौ पतितः ॥७॥

हील० तरु०। सूर्यसुतो यमस्तस्य वधूर्दक्षिणा दिगस्ति । उत्प्रेक्ष्यते । अनुक्तनाम्नस्तापसस्य कोपाद्देवलोको भुवि आगतः ॥७॥

हीसुं० वसति स्म घटोद्भुवो[१] मुनिर्दिशि यस्यां चिरमु[२]ज्झितान्यदिग् ।
किमु [३]शम्बरवैरिविभ्रमै[४]र्युवतीभि[५]र्युववद्वि[६]मोहितः ॥८॥

(१) अगस्तितापसः । (२) त्यक्तापराशः । (३) स्मरविलासैः । (४) दक्षिणात्यतरुणीभिः । (५) तरुण इव । (६) मोहं प्रापितः ॥८॥

हील० यत्रागस्तिरस्ति । उत्प्रेक्ष्यते । दक्षिणात्यस्त्रीभिः कामविभ्रमैर्मोहितः ॥८॥

---

१. इति हीरगणेः पढनगुणवत्त्वम् हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]स्मरविष्टपजैत्रशस्त्रितस्त्रितरोदीर्णविनोद विभ्रमात् ।
व्रजतीव कुतु(तू)हली[२]क्षितुं किमु [३]मन्दीभवदंह्रिर[४]शुमान् ॥९॥

(१) कन्दर्पस्य त्रिभुवनजयनशीलायुधवदावरिताभिः प्रधानस्त्रीभिः । प्रकटीकृतक्रीडाविलासात् । "रहः सहचरीमेतां राजन्नपि स्त्रितरां क्षण" मिति नैषधे । (२) द्रष्टुम् । (३) गमने अत्वरितीभवन्तः तेजोभिः प्रतापै रहिता वा भव[न्तः] । [अंह्रय] श्चरणाः किरणा वा यस्य । "साहस्त्रैरपि पङ्गुरंह्रिभिरभिव्यक्तीभवन्भानुमा" निति अंह्रिशब्देन किरणा नैषधे । तथा दिशि मन्दायते तेज" इति रघुवंशे । (४) सूर्यः ॥९॥

हील० कुतूहलरसान्मन्दकरो रविर्याति । उत्प्रेक्ष्यते । स्मरस्य भूजैत्रायुधीभूताभिरामरामाभिः कृतविभ्रमान् द्रष्टुम् ॥५॥

हीसुं० शमनस्य मृगीदृशो [१]दिशो [२]मणिमुक्ताफलशालमानया ।
सरितां [३]दयितस्य वेलया विलसन्मे[४]खलयेव दिद्युते ॥१०॥

(१) दक्षिणस्याः (२) रत्नमौक्तिकयुक्तया । (३) समुद्रस्य । (४) काञ्च्येव ॥१०॥

हील० समुद्रवेलया रेजे । उत्प्रेक्ष्यते । दक्षिणस्य दिश(शो) मेखलया ॥१०॥

हीसुं० तिलकं [१]हरिताम[1]सौ हरिद्यदगस्तिमुनिरप्यमुं श्रितः ।
[२]किमपा[३]च्यपयोनिधिः [५]स्वनौरिदमा[४]वेदयते [५]तरङ्गजैः ॥११॥[2]

(१) समस्तदिशाम् । (२) चित्रम् । (३) दक्षिणा तत्र वासाद्दक्षिणसमुद्रः । (४) कथयति । (५) कल्लोलजातशब्दैः ॥११॥

हील० दक्षिणार्णवः किमिति वक्तीव । इतीति किम् ? । दक्षिणा दिग् दिशां तिलकं यस्मा<u>न्माणिक्यस्वामी</u> ऋषभदेव एनां श्रितः ॥★११॥

हीसुं० [3]मलयो [१]मलयद्रुमेदुरः शुशुभे यत्र [२]सुमेरुसोदरः ।
[३]शमनस्य [४]विलाससानुमानिव [५]रन्तुं [६]निजदिङ्मृगीदृशा ॥१२॥

(१) चन्दनतरुयुतः । (२) मेरुबन्धुरुच्चैस्तरत्वात् । (३) यमस्य । (४) क्रीडापर्वतः । (५) क्रीडितुम । (६) दक्षिणदिक्पत्न्या सार्द्धम् ॥१२॥

हील० मलयाचलः । उत्प्रेक्ष्यते दक्षिणदिशा सह क्रीडितुं यमस्य पर्वतः ॥१२॥

हीसुं० मलयो [१]बलिवेश्मवद्भुवौ कलयन्कु[२]ण्डलिमण्डलीरिह ।
[३]विशदामृतकुण्डमण्डितो [४]धृतपुन्नागबलाहकोत्सवः ॥१३॥

(१) नागलोक इव । (२) भुजङ्गममालाः । (३) निर्मलानां जलानां सुधानां च

1. <u>०मसावमुं जिनमाणिक्यविभुर्यतः श्रितः</u> हीमु० । 2. <u>इति केवलदक्षिणा दिग्</u> हील० । 3. <u>अथ कतिचित्पदार्थवर्णनावसरः</u> । हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुण्डैर्विभूषितः । (४) द्रुमविशेषाः । पुमान्नागो वासुकिश्च । तथा मेघो नागविशेषश्च । "धुर्जटिजटाजूट इव पुन्नागवेष्टितो वापीपरिसर" इति चम्पूकथायाम् । पुमान्नागो वासुकिरिति तट्टिपनके । "अथ कम्बलाश्वतरधृतराष्ट्रबलाहका" इत हैम्याम् ॥१३॥

हील० मल०। मलयो नागलोक इवाभाति । किंभूतः ? सर्पयुक्तः । पुनः किंभूत ? अमृतानां सुधानां जलानां वा कुण्डैर्मण्डितः, धृताः पुन्नागाः सुरपर्णिवृक्षाः । पुमान्नागो वासुकिर्येन । तथा मेघयुक्तो वा बकयुक्तः ॥१३॥

हीसुं० मलयो [१]मलयद्रुसौरभैः प्रतिदिक्षु प्रहितैर्नरैरिव ।
[२]रसिकायितदिग्वलासिनीर्निज[३]भूमौ [४]ह्वयतीव [५]खेलितुम् ॥१४॥

(१) चन्दनपरिमलैः । (२) रसयुक्तोभूतदिगङ्गनाः । (३) स्वस्थाने । (४) आकारयति । (५) क्रीडां कर्त्तुम् ॥१४॥

हील० मलयश्चन्दनसौरभैर्दिगङ्गना आकारयतीव ॥१४॥

हीसुं० [१]यदुदीतसमीर[1]णोऽन्वितः [२]प्रसरच्चन्दनसारसौरभैः ।
[३]कटकैर्विजयीव भूपति[४]र्निखिलाशा अपि [५]पर्यपूरयत् ॥१५॥[2]

(१) मलयाद्रेरुत्पन्नो वातः । (२) विस्तरच्चन्दनतरूणां प्रकृष्टपरिमलैः कलितः । (३) सैन्यैर्विजयी राजेव । (४) समस्तदिशः । (५) निर्भरति स्म ॥१५॥

हील० य० । मलयाचलवायुः सौरभैर्दिशः पूरितवान् ॥१५॥

हीसुं० इह[१]शंकरभूमिभृत्सुखंकरमाणिक्यविभुर्विभासते ।
[२]महिषाङ्कदिगङ्गना[3]नने किमु [३]माणिक्यमयो विशेषकः ॥१६॥

(१) शंकरनामनृपस्य रोगोपशमकरत्वात्सुखकरो माणिक्यस्वामी । (२) दक्षिणादि-गङ्गनामुखे । (३) रत्नघटिततिलकः ॥१६॥

हील० इह दक्षिणस्यां शंकरनाम्न(नो) राज्ञो रोगोपशामको माणिक्यस्वामी शोभते ॥*१६॥

हीसुं० [१]विविधाभरणप्रभाङ्कुरच्छुरिता या जिनमूर्त्तिराबभौ ।
किमशेषयशःप्रशस्तिका [३]प्रथमार्हत्तनुजन्मचक्रिणः ॥१७॥[4]

(१) अनेकभूषणकान्तिव्याप्ता । (२) "चन्दनच्छुरितं वपु" रिति पाण्डवचरित्रे । (३) समस्तयशसां लिखितवर्णमालिका । (३) ऋषभसुतस्य भरतस्य चक्रवर्त्तिनः ॥१७॥

हील० वि० । आभरणाभाव्याप्ता सा मूर्त्तिर्भाति । उत्प्रेक्ष्यते । भरतचक्रिणो यशोऽक्षराणि ॥१७॥

हीसुं० [१]अपि [२]पार्श्व[5]जिनान्तरिक्षकाभिध उच्चैः स्थितिकैतवादिह ।
किमु [३]लम्भयितुं [४]महोदयं [५]भ[6]विनां [६]भूवलयात्प्र[७]चेलिवान् ॥१८॥

---

1. ०रणः समं हीमु० । 2. इति मलयाचलः हील० । 3. ०नामुखे हीमु० । 4. इति माणिक्यस्वामी ऋषभदेवः हील० ।
5. ०जिनोऽन्त० हील० । 6. भविनो हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) अपि पुनरर्थे । (२) अन्तरिक्षपार्श्वनाथः । (३) प्रापयितुम् । (४) मोक्षनगरम् । (५) भव्यानाम् । (६) भूतलात् । (७) चलितः ॥१८॥

हील० अपि पुनरन्तरीकपार्श्वः सुखकृत् आस्ते । उत्प्रेक्ष्यते । गगने स्थितिदम्भात् प्राणिनो मोक्षं प्रापयितुम् ॥१८॥

हीसुं० १फणभृद्द्र२गवन्निभालनाद३नुभूताहिविभुत्ववैभवः ।
४स्पृहयन्भु५वनत्र1यीशतां फणदम्भाद्व्रजतीव यं पुनः ॥१९॥[2]

(१) नागेन्द्रः । (२) पार्श्वनाथदर्शनात् । (३) प्राप्तधरणेन्द्रश्रीकः । (४)काङ्क्षन् । (५) त्रैलोक्यैश्वर्यम् ॥१९॥

हील० फण०। श्रीपार्श्वनाथदर्शनात् प्राप्ताहीन्द्रत्वसम्पद् नागेन्द्रः स्वर्गमृत्युद्वयीशतां वाञ्छन् यं सेवते ॥[3]

हीसुं० [3]इह जीवत१ आदिमप्रभोरपि सोपारकनामपत्तने ।
प्रतिमा प्रतिभासते सतां २वृषकोशः प्रकटः किमा३र्षभेः ॥२०॥[4]

(१) जीवतस्वा(त्स्वा)मी ऋषभदेवः । (२) पुण्यभाण्डागारः । (३) भरतचक्रिणः ॥२०॥

हील० इह दक्षिणास्यां जीवत्स्वामिप्रतिमा भासते । उत्प्रेक्ष्यते आर्षभेर्भरतचक्रिणः । पुण्यभाण्डागार इव ॥२२॥

हीसुं० ३१क[5]रटाभिधपार्श्वनायको दिशि २यत्रास्ति पुनः ३प्रभाववान् ।
न ४जहाति कदापि ५यत्पदं किमु ६तस्यैव समीहया ७फणि ॥२१॥

(१) करहडानामपार्श्वनाथः । (२) करहडापुरे । (३) माहात्म्ययुक्तः । (४) त्यजति । (५) पार्श्वनाथचरणम् । (६) तीर्थकृत्पदकाङ्क्षया । (७) नागः ॥२१॥

हील० करहेटकपार्श्वनाथः समस्ति । फणी नागेन्द्रो यत्पदं न त्यजति । उत्प्रेक्ष्यते । तस्यैव पदं मोक्षः तीर्थकृत्पदवी वा तस्य वाञ्छया ॥*२०॥

हीसुं० ३१विभवैः सह २माधवादयः प्रति[6]वर्षं यमु३येत्व ४भेजिरे ।
किमिदं ५गदितुं ६तनुमतां ७मरुतामप्ययमेव ८देवता ॥२२॥[7]

(१) स्वसर्वपरिवारैः । (२) कृष्णप्रमुखा देवा । (३) करहडापार्श्वप्रभोः सन्निधौ समागत्य । (४) स्वसेवककृतगीतनाटकादिभक्तिभिः सेवन्ते स्म । (५) कथयितुम् । (६) जनानाम् । (७) देवानामपि । (८) देवः ॥२२॥

हील० विभ० । कृष्णादयो देवाः स्वस्वभक्तपुरषपात्रवाद्यादिभिः सार्द्धः समीपे उपेत्य यं पार्श्वनाथं भेजिरे ।

1. ०द्वयीश० हीमु० । 2. इत्यन्तरिक्षपार्श्वनाथः हील० । 3. हील०प्रतौ हीमु० चैतेषां त्रयाणां श्लोकानामेषोऽनुक्रमः २२-२०-२१ । 4. इति जीवत्स्वाम्यादिदेवः हील० । 5. करहेटकपार्श्व० हीमु० । 6. ०वर्षे य० हील० । 7. इतिश्रीकरहेटकपार्श्वनाथः हील० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्प्रेक्ष्यते । भूस्पृशां देवानामयमेव देवो, नान्य इति वक्तुम् ॥२१॥

हीसुं० दिशि [१]बिभ्रति यत्र [२]भूभृतः श्रियम[३]भ्रङ्कषशृङ्गसङ्गिनः ।
[1]किमगस्तिमुनिं [४]कुलाचला निज[५]विद्वेषिभयद्रुताः [६]श्रिताः ॥२३॥

(१) धारयन्ति । (२) शैलाः । (३) गगनालिङ्गिशिखरकलिताः । (४) मन्दरप्रमुखगिरयः । (५) स्वरिपुरिन्द्रस्तद्भयेन नष्टाः । (६) आश्रिताः ॥२३॥

हील० दिशि० यत्रोत्तुङ्गशृङ्ग गिरयः शोभन्ते । उत्प्रेक्ष्यते । इन्द्रभयादन्तरीक्षं श्रिताः ॥२३॥

हीसुं० [१]विपिनानि [२]पदे पदे मुदं ददते यत्र [३]विलासशालिनाम् ।
[४]स्फाटिकाचलमूर्द्धनीव [५]यद्विजितं चै[६]त्ररथं [७]ह्रिया ययौ ॥२४॥

(१) वनानि । (२) स्थाने स्थाने । (३) तरुणानाम् । (४) कैलासशिखरे । (५) यैर्वनैर्विजितम् । (६) धनदवनम् । (७) लज्जया ॥२४॥

हील० यत्र विलासिनां हर्षदानि वनानि सन्ति । येन जितं चैत्ररथं कैलाशशिखरे गतम् ॥२४॥

हीसुं० [१]सरितो दिशि यत्र निम्नगेत्य[२]पवादं [३]व्यपनेतुमात्मनः ।
[४]स्थितवन्त्य [५]उपेत्य सेवितुं किम[६]पाचीगृहनाभिसम्भवम् ॥२५॥

(१) नद्यः । (२) निन्दाम् । (३) अपहर्त्तुम् । (४) स्थिताः । (५) आगत्य । (६) दक्षिणदिस्थायुकमाणिक्यस्वामिनम् ॥२५॥

हील० सरि० । यत्र नद्यो नीचगामिनीत्यपवादं निराकर्त्तुं श्रीऋषभदेवं श्रिताः ॥२५॥

हीसुं०→ पिबतान्मुनिरेष नोऽपि मा पतिवत्पर्वजा भयादिति ।
दिशि यत्र समेत्य संश्रिता इव जीवद्वृषभाङ्कपारगम् ॥२५॥ ←

इति पाठान्तरम् । इति गिरिवननद्यः ॥

हील० पिब०। यथास्मत्पतिरर्णवः पीतः तद्वदेष मुनिरस्मान्मा पिब इति भयाद्गिरिजा नद्यः श्रीऋषभदेवं श्रिताः ॥२५॥

हीसुं० [१]मणिकाञ्चनकल्पनन्दनै[२]र्विबुधैः [३]श्रीहरिभिः स[४]जिष्णुभिः ।
इह [५]देवगिरेरिव श्रियं कलयन्दे[६]वगिरिर्विरोचते ॥२६॥

(१) रत्नैः, स्वर्णैः, आचारैः कल्पद्रुमैश्च, पुत्रैर्वनेन च । (२) पण्डितैर्देवैश्च । (३) शोभाकलिताश्वैर्लक्ष्मीयुक्तकृष्णैश्च । (४) जयनशीलभटैः, इन्द्रैश्च सहितैः । (५) मेरोः । (६) देवगिरिनाम नगरम् ॥

हील० मणि०। मेरुरिव देवगिरिर्भाति । कैः कृत्वा ?। नन्दनवनेन सुतैर्वा लक्ष्मीकृष्णैर्वा श्रीयुक्ततुरगैः जैत्रभटैर्वा इन्द्रेण वा ॥२६॥

---

1. किम् शक्रभयद्रुताः श्रिताः कुलशैला जिनमन्तरिक्षम् हीमु० । →← एतदन्तर्गतः पाठो हीसुंप्रतौ नास्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]क्व[चि]दिन्दुमणीमिथोमिलद्बहलोद्योतनिकेतकैतवात् ।
[२]ध्रुववासविधानकाङ्क्षिणी वसति स्वैरमिवा[३]त्र पूर्णिमा ॥२७॥

(१) चन्द्रकान्तमणीनां परस्परमेकीभवन्निबिडालोको येषां तादृशानां गृहाणां कपटात् । (२) शाश्वतस्थितिकरणाभिलाषुका । (३) अत्र देवगिरौ ॥२७॥

हील० क्वचिच्चन्द्रकान्तकृतगृहच्छलात् निश्चला पूर्णिमैव ॥२७॥

हीसुं०- [१]क्व[1] [२]चिदिन्द्रमणीनिकेतनच्छलभूच्छाय[३]मुदीत्वरैः [४]करैः ।
[५]द्विषतेव [६]विवस्वता पुरीं शरणीकृत्य [७]युयुत्सु [८]लक्ष्यते ॥२८॥[2]

(१) कुत्रापि । (२) नीलरत्नभवनकपटं तमः । (२) उच्चैर्निःसरद्भिः । (३) करैः किरणैर्हस्तैश्च । (५) वैरिणा । (६) रविणा । (७) योद्धुमिच्छुः । (८) दृश्यते ॥२८॥

हील० अपि नीलरत्नकृतगृहच्छलाद्ध्वान्तं उच्चैः किरणैः सूर्येण सह योद्धुमिच्छुर्दृश्यते ॥२८॥

हीसुं० नगरे [१]नगरन्ध्रकृद्द्युतो [२]नितरां [३]दिद्युतिरेऽत्र नागराः ।
[४]मरुतां [५]तनुगर्व्वखर्व[3]तामिव कर्तुं विधिना विनिर्मिताः ॥२९॥

(१) स्वामिकार्त्तिकसमानकान्तयः । "सनगरं नगरन्ध्रकरोजसः" इति रघौ । क्रौञ्चाचलस्तस्य छिद्रकर्त्ता गुहः बाणेन विद्ध इति तद्वृतिः । (२) अतिशयेन । (३) रेजुः । (४) देवानाम् । (५) शरीरसौन्दर्याभिमानाधरीकरणाय ॥२९॥

हील० नग०। क्रौञ्चाचलस्य छिद्रं करः स्वामिकार्तिकस्तद्वत्कान्तिमन्तः पौराः शुशुभिरे । उत्प्रेक्ष्यते । देवान् गर्वगिरेः पातयितुं धात्रा कृताः ॥*२९॥

हीसुं० [१]रतिकान्तकलावहेलियत्तरुणानां [२]तनुरामणीयकम् ।
स्पृहयन्त इवा[३]त्मजन्मनो [४]निकटेऽ[५]हर्निशमा[६]सते सुराः ॥३०॥[4]

(१) स्मररूपश्रीतिरस्कारिणां देवगिरेर्यूनाम् । (२) शरीरचारुताम् । (३) ब्रह्मणः । (४) समीपे । (५) नित्यम् । (६) तिष्ठन्ति ॥३०॥

हील० रति० । ब्रह्मणो निकटे सुरास्तिष्ठन्ति । उत्प्रेक्ष्यते । देवगिरेर्नागराणां स्मराधिककायसौन्दर्यं वाञ्छन्त इव ॥३०॥

हीसुं० [१]प्रतिपञ्चमुखं [२]द्विषं [३]व्ययीकृतसर्वास्त्रतया [४]निरायुधः ।
अकरोदि[५]दमङ्ग[5]नानिभादिव [६]हेतीः शतशः स्मरः पुनः ॥३१॥

(१) ईश्वरम् । (२) रिपुम् । (३) क्षिप्तसमस्तशस्त्रत्वेन । (४) निरस्त्रीभूतः । (५) देवगिरिरमणीकपटात् । (६) प्रहरणानि ॥३१॥

---

1. अपि नीलमणी० हीमु० । 2. इति देवगिरिगृहाः हील० । 3. ०ताकृतये विश्वकृता कृता इव हीमु० ।
4. इति देवगिरनगरनागराः हील० । 5. ०नामिषा० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० पञ्चमुखं ईश्वरं प्रति प्रहितानि आयुधानि । अतो निःशस्त्रः स्मरः दक्षिणस्त्रीदम्भाद्वेतीरायुधानि कृतवान् ॥*३१॥

हीसुं० [१]स्वपदाभिककुम्भसम्भवं [२]तपसः [३]पातयितुं [४]मरुद्वता ।
[५]इदमिन्दुमुखीमिषादिह प्रहिताः [६]स्वर्गिमृगीदृशः किमु ॥३२॥

(१) निजपदस्य इन्द्रत्वस्याभिलाषिणमगस्तिम् । इदं शैवशास्त्रानुयायिवचो न जैनं परं कविसमयानुगतत्वादुच्यते । (२) तपः करणात् । (३) भ्रंशयितुम् । (४) इन्द्रेण । (५) देवगिरिवनिताकपटात् । (६) अप्सरसः ॥३२॥

हील० अगस्तिं तपात्(तपसः) पातयितुं दक्षिणस्त्रीमिषाद्देवरमा मुक्ताः ॥३२॥

हीसुं० [१]जलकेलिगलद्विलेपनीकृतगोशीर्षविलोचनाञ्जनैः ।
पुरि पद्मदृशः प्रकुर्व्वते गृहवापीर्विधु[२]मण्डलीरिव ॥३३॥[1]

(१) सलिलक्रीडायां सलिलसङ्गान्निपतत्हृदयेऽङ्गरागात्तचन्दनैस्तथा नेत्रकज्जलैश्च । (२) चन्द्रबिम्बानीव । चन्दनद्रवेण जलस्यौज्ज्वल्यं लाञ्छनस्थाने कज्जलकालिमा । "शुद्धा सुधादीधितिमण्डलीयम्" इति नैषधे ॥३३॥

हील० स्त्रियश्चन्दनैरञ्जनैर्गृहवापीषु चन्द्रत्वं दद्युः ॥३३॥

हीसुं० पुरि तत्र [१]निजामसाहिनाजनि राज्ञा [२]रघुसूनुनीतिना ।
[३]तदुपात्तदिशा [४]महस्विना विदधे येन यमोऽपि [५]दण्डभृत् ॥३४॥

(१) निजामसाहबहिरी नामराजा । (२) रामतुल्यन्यायेन । (३) निजामसाहिना गृहीतहरीता । (४) प्रतापवता । (५) दण्डो राजदेयांशः यष्टिश्च ॥३४॥

हील० तत्र निजामसाहिः पतिर्जातः । गृहीताशेषप्रतापवता येन यमोऽपि दण्डदो दण्डधरो वा कृतः । ३४॥

हीसुं० [१]समरे [२]निहतारिनिष्पतद्रुधिराह्वासवपानकाङ्क्षया ।
[३]यदसिच्छलतः [४]स्फुटीकृता [५]रसनेवा[६]म्बुजबन्धुसूनुना ॥३५॥

(१) सङ्ग्रामे । (२) व्यापादितरिपुशरीरनिःसरल्लोहितमाध्वीकपानाभिलाषेण । (३) निजामसाहिखड्गलताच्छलात् । (४) प्रकटीकृता । (५) जिह्वा । (६) सूर्यपुत्रेण । यमेनेत्यर्थः ॥३५॥

हील० समः। यत्खड्गदम्भाद्यमेन रक्तपानार्थं जी(जि)ह्वा प्रकटीकृता ॥३५॥

हीसुं० [१]महसां [२]निवहे [३]महीशितु[४]र्विपिनेऽपि [५]स्फुरितेऽ[६]तिदुःसहे ।
[७]दवधीविधुरास्त[८]दाश्रयाः [९]प्रतिपक्षाः स[१०]रसीर्ज[११]गाहिरे ॥३६॥

(१) प्रतापानाम् । (२) समूहे । (३) निजामसाहेः । (४) वने । (५) प्रकटीभूते । (६)

1. इति देवगिरिनगराङ्गनाः हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतिशयेन सोढुमशक्ये । (७) दावानलभ्रमेण व्याकुलाः । (८) वनवासिनः । (९) शत्रवः । (१०) महातडागान् (११) अवगाहन्ते स्म ॥३६॥

हील० महo। यस्य राज्ञः प्रतापानां व्यूहे वनेऽपि प्रकटीभूते सति दवबुद्ध्या व्याकुलीभवन्तो वनस्थायिनो वैरिणः सरस्सु प्रविष्टाः ॥३६॥

हीसुं० [१]अहिता [२]अमुना पराहता [३]वनवासाः [४]शबरा इवाभवन् ।
[५]अबला इव [६]वातवेपितादपि [७]पत्राद्विपिनेऽपि [८]बिभ्यिरे ॥३७॥[1]

(१) वैरिणः । (२) निजामसाहिना । (३) अरण्यचारिणः । (४) भिल्ला इव । (५) स्त्रिय इव । (६) पवनकम्पितान् । (७) तरुपर्णात् । (८) भयमापुः ॥३७॥

हील० अहि० । अमुना शत्रवो परिभूताः सन्तो भिल्ला इव जाताः । वायुकम्पितात्पत्रादपि अबला निःसत्वा इव स्त्रिय इव वनेऽपि पलायन्ते स्म ॥३७॥

हीसुं० अथ [१]तत्पुरि [२]देवसीत्यभूदभिधानेन वणिक्पुरन्दरः ।
[३]विधिना[४]स्य यशःप्रशस्तयोऽ[५]म्बरपट्टे लिखिता [६]इवोडवः ॥३८॥

(१) तत्र देवगिरौ । (२) देवसीनामा वणिक्श्रेष्ठः । (३) विधात्रा । (४) देवसीव्यवहारिणः । (५) आकाशपट्टके । (६) तारका एव वर्णाः ॥३८॥

हील० तत्पुरि देवसीवणिगास्ते । धात्रा तारामिषात्कीर्त्तिवर्णा लिखिताः ॥३८॥

हीसुं० [१]सुरयौवतजैत्रकान्तियद्युवतीसङ्गमरङ्गिमानसः ।
[२]वपुरस्य [३]दधत्सु[४]धाशनः किमु कोऽप्यत्र पुरेऽवतीर्णवान् ॥३९॥

(१) सुराङ्गनागणजयनशीला शोभा यासां तादृशीनां देवगिरिसुन्दरीणां सङ्गमे सरागमानसः । (२) देवसीशरीरम् । (३) दधानः । (४) देवः ॥३९॥

हील० सुर०। सुरीसमूहजैत्राणां देवगिरिस्त्रीणां सङ्गमे लग्नचितः । एतद्वपुर्द्धारी कोऽपि देवोऽवतारं गृहीतवान् ॥३९॥

हीसुं० [१]कमनः [२]कमनात्प्र[३]सेदुषः सह [४]सारङ्गदृशोप[५]शीलितात् ।
भव [६]साङ्ग इतीव [७]तन्निभाद्व[८]रमाप्याजनि [९]मूर्त्तिमानिह ॥४०॥[2]

(१) स्मरः । (२) वेधसः । (३) प्रसभीभूतात् । (४) रत्या समम् । (५) सेवितात् । (६) शरीरयुक्तः । (७) देवसीकपटेन । (८) विधातुर्वरं प्राप्य । (९) शरीरवान् ॥४०॥

हील० स्मरो रत्या समं सेवितादतः प्रसन्नात्कमनाद्विधातुः सकाशात्साङ्गो भवे'ति वरं प्राप्येभ्यनिभाच्छरीरी जातः ॥४०॥

---

1. इति देवगिरिस्वामिनिजामसाहिः हील० । 2. इति देवसीव्यवहारी हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]अदसीयविलासवत्यभूज्ज[२]समादेव्यभिधानधारिणी ।
विधिना [३]प्रहितेव वर्णिका [४]त्रिदिवस्त्रैणदिदृक्षुभूस्पृशाम् ॥४१॥

(१) देवसीपत्नी । (२) जसमादेवीनाम्नी । (३) भूमौ प्रेषिता । (४) स्वर्गाङ्गा(ङ्गना)नां गणं द्रष्टुमिच्छूनां नराणाम ॥४१॥

हील० अस्य जसमादेवी स्त्रीरभूत । उत्प्रेक्ष्यते । स्वर्गिवध्वालोकनरतानां जनानां धात्रा कनी प्रेषिता ॥४१॥

हीसुं० [१]कमलान्म[२]धुपानुषङ्गिनः सितकान्ते[३]रुदयास्तदूषितात् ।
[४]कमला[५]ब्धिशयालुकेशवादति[६]खिन्नेव तमेत्य [७]भेजुषी ॥४२॥

(१) पद्मात् । (२) मद्यपैर्भृङ्गैश्च सङ्गवतः । (३) उद्गमनास्ताभ्यां सदोषाच्चन्द्रात् । (४) लक्ष्मीः (५) समुद्रे शयनशीलात्कृष्णात् । (६) उद्विग्ना । (७) श्रिताः ॥४२॥

हील० मद्यपैरुद्धात्कजात् पुनरुदयास्तदूषिताच्चन्द्रात् पुनः समुद्रे सुप्तात्कृष्णदुद्विग्ना श्रीस्तं भेजे ॥४२॥

हीसुं० [१]वृषभध्वजगोधिलोचनानलकीलाशलभं स्ववल्लभम् ।
[२]अवगत्य रतिष्प(: प)रं[३]जनुर्निभतोऽस्याः [४]प्रतिपेदुषी किमु ॥४३॥

(२) ईश्वरललाटनयनवह्निज्वालायां पतङ्गम् । भस्मीभूतमित्यर्थः । (२) ज्ञात्वा । (३) अन्यजन्म । (४) प्रपन्ना ॥४३॥

हील० वृष०। शंभोर्ललाटनेत्राग्निज्वालायां पतङ्गं कामं ज्ञात्वा रतिरस्या मिषान्नवं जन्माददे ॥४३॥

हीसुं० [१]अनया [२]निजरूपसम्पदाऽभिभवं [३]लम्भितया श्रिया किमु ।
[४]जलधौ [५]विमनायमानया [६]दयितोपास्तिनिभाद[७]गम्यतः ॥४४॥[1]

(१) जसमादेव्या । (२) स्वरूपश्रिया । (३) प्रापितया । (४) समुद्रे । (५) विरुद्धमनस्कीभवन्त्या । "चिरायतस्थे विमनायमानया" इति नैषधे । (६) भर्त्तुः समुद्रशायिनः कृष्णस्य सेवाकपटात् (७) गता ब्रूडिता ॥४४॥

हील० अनया रूपेन(ण) जितया श्रिया उन्मनस्त्वेन कृष्णसेवानिभादगम्यत-गता । ब्रूडितेत्यर्थः ॥४४॥

हीसुं० [१]युवसंमदकन्दलीघनैः [२]कमलानन्दनकेलिशीलनैः ।
[३]त्रिदशाविव [४]दम्पती सुखं वसतस्तौ [५]त्रिदिवोपमे [६]पुरे ॥४५॥

(१) तरुणानामानन्दकन्देषु मेघसदृशैः । (२) स्मरक्रीडासेवाभिः । (३) देवदेवाविव । 'पुमान्स्त्रिया' स्त्रीया सहोक्तौ पुमान्शिष्यते, न स्त्री । उदाहरणम् -ब्राह्मणी च ब्राह्मणश्च-ब्राह्मणौ इति प्रक्रियाकौमुद्याम् । तथाऽत्रापि त्रिदशी च त्रिदशश्च-त्रिदशौ । (४) जसमादेवी-देवसीनामानौ । (५) स्वर्गतुल्ये । (६) नगरे ॥४५॥

1. इति जसमादेवी हील ० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० यूनामानन्दा एव कन्दल्यः कन्दास्तेषु मेघसदृशैः कामक्रीडाकरणैः । देवी च देवश्च देवौ । 'स्त्रिया सहोक्तौ पुमान् शिष्यते न स्त्री' । ताविव दम्पती सुखं वसतः ॥४५॥

हीसुं० [१]परशासनशास्त्रमालिकाम[२]यम[३]ध्येतुमथो [४]गुरोर्गिरा ।
व्रजति स्म कदापि दक्षिणां [५]हरितं [६]हीरमुनि[७]र्दिनेशव[त्] ॥४६॥

(१) शैवशासनस्यागमश्रेणीम् । (२) हीरहर्षः । (३) पठितुम् । (४) विजयदानसूरिवचनेन । (५) दिशम् । (६) हीरकुमारनामा मुनिः । (७) रविरिव ॥४६॥

हील० अयं सूर्यवत् कदापि दक्षिणां दिशं व्रजति स्म ॥४६॥

हीसुं० अथ देवगिरावगम्यता[१]खिलतर्काधिजिगांसयामुना ।
पटलेन[२] पयोमुचां यथा [३]सलिलादानसमीहयाम्बुधौ ॥४७॥

(१) समस्तप्रमाणशास्त्रपिपठिषया । इङ्श्च । 'इङ् अध्ययने' इत्यस्य गम स्यात् । सनि परे अधिजिगांसते, इति प्रक्रियायाम् । (२) मेघवृन्देन । (३) जलग्रहणकाङ्क्षया ॥४७॥

हील० अथ० । अमुना हीरहर्षगणिना देवगिरौ पढितुं गतम् । यथा जलग्रहार्थं अब्धौ अब्दौघेन गम्यते ॥४७॥

हीसुं० पढता सह धर्म्मसागरव्रतिना देवगिरौ गुरुर्व्यभात् ।
[१]सहकार इव प्रफुल्लता[२] नवराजादनशाखिना वने ॥४८॥

(१) आम्र इव । (२) विकसितनवप्रियालतरुणा ॥४८॥

हील० धर्मसागरयतिना सह गुरुर्भाति स्म । यथा विकसत्प्रियालद्रुमेण सह वने सहकारो भाति ॥४८॥

हीसुं० पुरसङ्घजनैः [१]प्रणोदितैर[२]मुना[३]धीतिकृते कृतीन्दुना ।
प्रतिबिम्बमिव [४]द्युसद्गुरोर्द्विज [५]आनायि ततः कुतश्चन ॥४९॥

(१) प्रेरितैः । (२) हीरहर्षमुनिना । (३) अध्ययनाय । (४) बृहस्पतेः । (५) आहूतः ॥४९॥

हील० हीरहर्षमुनिना प्रेरितैः सङ्घैरध्ययनार्थं बृहस्पतितुल्यः आकारितः ॥४९॥

हीसुं० [१]तदुपान्तभुवं व्यभूषयत्स ततो [२]गौरगरुद्गतिर्द्विजः ।
अवतीर्ण इवा[३]रविन्दभूः स्वयं(?)[४]स्वकसर्गस्य [५]दिदृक्षया क्षितौ ॥५०॥

(१) हीरहर्षसमीपभूमीम् । (२) हंसगमनः । (३) ब्रह्मा । (४) स्वकृतभूलोकस्य । (५) दृष्टिमिच्छया ॥

हील० स हंसगतिर्द्विजस्तत्समीपे स्थितः । उत्प्रेक्ष्यते । स्वसृष्टिं द्रष्टुं ब्रह्मा भुव्यागतः ॥५०॥

हीसुं० [२]मृडमू[1]र्ध्नि नि[२]वास सौहृदान्मिलितुं [३]जह्नुसुतामिवागताम् ।
[४]अलिकादूर्ध्वविधुं [५]ललाटिकां [६]वहमानो [७]हरचन्दनोद्भवाम् ॥५१॥

1. मूर्धनिवा०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) ईश्वरमस्तके । (२) एकत्रस्थितिमैत्र्यात् । (३) गङ्गामिव । (४) भालरूपार्द्धचन्द्रम् । (५) ललाटमण्डनम् । तिलकमित्यर्थः (६) दधानः । (७) चन्दनरचिताम् ॥५१॥

हील० किंभूतो द्विजः ? । चन्दनतिलकं वहन् । उत्प्रेक्ष्यते । शंभुमस्तके सदा स्थितिमैत्र्याद् भालार्द्धचन्द्रं मिलितुं गङ्गां आगतां वहन् ॥५१॥

हीसुं० [१]उपवीतमुरःस्थलान्तरे कलयंश्च[२]न्दनचन्द्रचर्चितः ।
दमनो[३] मदनस्य [४]भूतिमानिव [५]वैकक्षितकुण्डलीश्वरः ॥५२॥

(१) यज्ञसूत्रम् । (२) कर्पूरमिश्रचन्दनकृताङ्गरागः । (३) ईश्वरः । (४) भस्मयुक्तः । (५) उत्तरासङ्गीकृतशेषनागः ॥५२॥

हील० चन्दनकर्पूराभ्यां चर्चितः । उत्प्रेक्ष्यते । भस्मवान्, पुनः प्रावारीकृतशेषनागः, स्मरशत्रुः ॥५२॥

हीसुं० [१]शिववाङ्मयवार्द्धिपारगोऽनिशषट्कर्म्मरतो [२]व्रतान्वितः ।
वपुर[३]भ्युपगत्य [४]वर्णिनामिव धर्म्मः प्रकटीभवन्निव॥५३॥
[1]चतुर्भिः कलापकम् ॥

(१) नैया[यि]कशास्त्रसमुद्रपारगामी । (२) नियमयुतः । (३) अङ्गीकृत्य । (४) ब्राह्मणधर्मः ॥५३॥

हील० पुनः किंभूतः ?। शैवशास्त्रे निपुणः स्वमार्गनिष्ठः । उत्प्रेक्ष्यते । कायवान् । ब्राह्मणानामयं धर्मः ॥५३॥

हीसुं० [2]पठति [१]सधर्म्मसागरः सविधे [२]तस्य स [३]तस्य [४]वाङ्मयम् ।
[५]समयं [६]सुगतस्य [७]सौगतादिव [८]हंसष्य(: प)रमादिहंसयुक् ॥५४॥

(१) धर्म्मसागरगणिसहितः । (२) तस्य ब्राह्मणस्य । (३) तस्य नैयायिकस्य । (४) शास्त्रम् । (५) शास्त्रम् । (६) बौद्धस्य । (७) बौद्धाचार्यात् । (८) परमहंससहितो हंसः। हरिभद्रसूरिभागिनेयो हंसपरमहंसौ ॥ ५४॥

हील० धर्मसागरसहितः स पठति स्म । यथा हंसः परमहंससंयुक्तो बौद्धाचार्याद्बौद्धस्य सिद्धान्तं पठति स्म ॥५४॥

हीसुं० कलयन्प्र[१]तिभाम[२]नुत्तरामतितीक्ष्णां स [३]कुशः [४]शिखामिव ।
[५]प्रथमं [६]प्रविधाय [७]तर्क्कयुक्परिभाषामुखशास्त्रसङ्ग्रहम् ॥५५॥
[१]द्रविणार्प्पणहृष्टमानसादथ[२] चिन्तामणिमग्रहीद्द्विजात् ।
[३]परिशीलनकर्म्मतोषितादिव[४] चिन्तामणि[५]मादितेयतः ॥५६॥ युग्मम् ॥

---

1. इत्यादि चतुःकलापकेन पण्डितद्विजवर्णनम् हील०। 2. स पपाठ सधर्मसागरोऽखिलनैयायिकवाङ्मयं ततः । हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) बुद्धिम् । (२) असाधारणाम् । (३) दर्भः । (४) अग्रमिव । (५) पूर्वम् । (६) पठनं कृत्वा । (७) तर्कपरिभाषाप्रमुखाणां शास्त्राणाम् ॥ ५५॥

(१) यथेप्सितद्रव्यप्रदानेन सन्तुष्टहृदयात् । (२) चिन्तामणिनाम शैवं शास्त्रम् । (३) सेवाप्रसन्नीकृतात् । (४) चन्तामणिरत्नमिव । (५) देवात् ॥ ५६ ॥ युग्मम् ॥

हील० यथा दर्भस्तीक्ष्णां शिखां धत्ते तद्वत्तीक्ष्णां मतिं दधन् सन् पूर्वं तर्कभाषादिकमधीत्य द्रव्यदान-तुष्टाद्द्विजाच्चिन्तामणिं अग्रहीत् । यथा सेवातुष्टाद्देवात् कश्चिच्चिन्तारत्नं गृह्णाति ॥५५-५६॥

हीसुं० [1]प्रतिभाविभवैः पठन्क्रमा[2]त्समयस्यास्य स पारमाप्तवान् ।
प्रचरन्प[3]वमानवर्त्मनोऽ[4]ध्वरथै[5]र्भानुमतामिव व्र[6]जः ॥५७॥

(१) बुद्धिगुणैः । (२) तर्कशास्त्रस्य । (३) आकाशस्य । (४) पारियानिकैः । (५) सूर्याणाम् । (६) गणः । द्वादशत्वाद्भानूनां समूहपदोपादानम् ॥ ५७॥

हील० प्रति०। स शास्त्रपारं प्राप्तवान् । यथा पारियानिकैः कृत्वा सूर्यव्रजो नभसः पारं प्राप्नोति ॥५७॥

हीसुं० [1]अमुना[2]ध्ययने स[3]मापिते [4]द्विजराजद्रविणार्प्पणाविधौ ।
[5]सुमनोलतिकेव केवलं [6]जसमादेव्यजनिष्ट सा तदा ॥५८॥

(१) हीरहर्षगणिना । (२) पठने । (३) पूर्णीकृते सति । (४) पाठकब्राह्मणधनप्रदानप्रकारे । (५) कल्पवल्लीव । (६) पूर्ववर्णिता देवसीपत्नी जसमादेवी ॥५८॥

हील० अध्ययने जाते सति **जसमादेवी** तस्मिन्कल्पवल्लीव जाता ॥५८॥

हीसुं० शिरसीव[1] शिवस्य जा[2]ह्नवी शरदचन्द्रमसीव चन्द्रिका ।
अलिनीव [4]मृणालिनीवने हृदि रेमेऽस्य [1]मुनेः [5]कलन्दिका ॥५९॥

(१) ईश्वरस्य मस्तके । (२) गङ्गा । (३) चन्द्रे । (४) कमलिनीकानने । (५) सर्वविद्या ॥५९॥

हील० यथा शिवमस्तके गङ्गा रमते, शरच्चन्द्रे ज्योत्स्ना रमते, कमलवने भ्रमरी रमते, तथाऽस्य चित्ते सर्वविद्या रेमे ॥*५९॥

हीसुं० विधिना [1]वचसामधीश्वरी किमुताकारि बृहस्पतिः [2]क्षितेः ।
[3]निखलागमपारगाहिनं तमुदीक्ष्येदमतर्कि [4]तार्किकैः ॥ ६०॥[2]

(१) सरस्वती । (२) स्वर्गे तु द्वावपि वर्त्तेते । अयं तु भूमेः । (३) समस्तानां जैनशैवशास्त्राणां पारगामिनम् । (४) विचारचतुरैः ॥६०॥

हील० तं दृष्ट्वा तार्किकैरिदं विचारितम् । यदसौ धात्रा सरस्वती कृता वा पृथिव्याः बृहस्पतिष्कृ-(तिः कृ)तः ॥६०॥

---

1. गणे० हीमु० । 2. इति हीरहर्षगणेः पण्डितद्विजसमीपपठनवर्णनम् हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० भवति स्म [१]विचक्षणः क्षणादथ सामुद्रिकवत्स [२]लक्षणे ।
अपि [३]काव्यविशेषवित्तया विजितः [४]काव्य [1]इवाभजन्नभः ॥६१॥
(१) चतुरः । (२) व्याकरणशास्त्रे करचरणाद्याकारविशेषे च । (३) काव्यानां रघु-नैषधादीनां रहस्यज्ञातृत्वेन । (४) शुक्रः ॥६१॥

हील० यथा सामुद्रिको लक्षणे निपुणस्तद्वल्लक्षणात्मकशास्त्रे विचक्षणः सोऽभवत् । पुनष्प(: प)-ञ्चकाव्यज्ञानाज्जितः काव्यः - शुक्रो नभसि गतः ॥६१॥

हीसुं० पदमस्य हृदि व्यतन्तनीदनिशं [१]ज्योतिरिवाभ्रवर्त्मनि ।
नरिनृत्यति नर्त्तकीव [२]धीरपि [३]तर्कागमरङ्गवेश्मनि ॥६२॥
(१) ज्योतिःशास्त्रम् । तारकादिव (२) बुद्धिः । (३) तर्क्कशास्त्ररूपनर्त्तनगृहे ॥६२॥

हील० अस्य चित्ते ज्योतिःशास्त्रं रेमे । यथाकाशे ज्योतिर्नक्षत्रं रमते । पुनरस्य मतिस्तर्कशास्त्रे अतिशयेन नृत्यं कुरुते, यथा नर्त्तकी रङ्गगृहे नृत्यं करोति ॥६२॥

हीसुं० गणितं ह्य[१]नुरागिरागवन्न विसस्मार [२]मानसान्निजात् ।
प्रसृतास्य मति[३]र्जिनागमेऽ[४]म्बुधिकाञ्च्यामिव [५]चक्रिणश्चमूः ॥ ६३॥
(१) स्वस्मिन्ननुरक्तजनस्नेह इव । (२) चित्तात् । (३) जैनशास्त्रम् । (४) भूमौ । (५) चक्रवर्तिसेना ॥६३॥

हील० यथा स्नेहिस्नेहो न विस्मरति तथा गणितं शास्त्रं न विस्मरति स्म । यथा चक्रिसेना क्षोणीमण्डले आसमुद्रान्तं प्रसरति, तद्वदस्य मतिः प्रवचने प्रसृता ॥६३॥

हीसुं० [१]बहुना किमु तन्म[२]नस्विनोऽ[३]खिलषड्दर्शनशास्त्रस[2]न्ततिः ।
[४]गलकन्दलमालिलिङ्ग य[५]युु[६](द्यु)ववत्ख[७]ञ्जनमञ्जुलेक्षणा ॥६४॥[3]
(१) किं बहूक्तेन । (२) प्रकृष्टमनसः । (३) जैन १ बोद्ध २ नैयायिक ३ साङ्ख्य ४ वैशेषिक ५ नास्तिक ६ इत्याख्यानि षड्दर्शनानि, तेषामागममालिका । (४) कण्ठपीठम् । (५) यद्-यस्मात्कारणात् । (६) तरुणस्येव । (७) कण्ठकामिनी ॥६४॥

हील० बहूक्तेन किम् ?। षड्दर्शनशास्त्रश्रेणीर्गले स्थिता । यथा प्रौढा युवानमालिङ्गति ॥*६४॥

हीसुं० [१]सविधे [२]स्वगुरोः[३] सगौर[४]वं गमना[५]योत्सु[६]कमाशयं ततः ।
अयम[७]र्ज्जितशास्त्रवैभवोऽधित[८] सार्थेश इव व्रतीशीता ॥६५॥
(१) पार्श्वे । (२) विजयदानसूरेः । (३) सबहुमानम् । (४) गन्तुम् । (५) उत्कण्ठितम् । (६) चित्तम् । (७) उपार्ज्जितशैवशास्त्रसम्पत्तिः । (८) सार्थनाथ इव ॥६५॥

---

1. इवाभवन्नराभः इति हीमु० दृश्यते । स चाशुद्धः । 2. मालिका० हीमु० । 3. इति हीरहर्षगणेः स्वसमयपरसमयशास्त्राणां परिज्ञानम् हील० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० अयं स्वगुरुसमीपे गमनमकरोत् । यथा सार्थपतिः पितुः समीपे गच्छति ॥६५॥

हीसुं० **अथ [१]दक्षिणदेशतो म[२]हाव्रतभृन्मूर्च्छितमच्छन्न(त्स्य)लाञ्छनः ।**
मलयानिलवत्स[1] चेलिवान्यशसा [३]सौरभयन्भुवस्तलम् ॥६६॥

(१) दक्षिणदेशात् । (२) मूर्च्छां निधनावस्थ्यं प्रापितः वार्द्धितोत्साहश्च स्मरो येन । महाव्रतधारी, ईश्वरश्च । सोऽपि हतस्मरः (३) वासयन् ॥६६॥

हील० **अथ०** । मूर्च्छां नीतो मकरध्वजो येन, तादृशः स प्रचलति स्म । यथा मलयवायुः प्रचलति ॥६६॥

हीसुं० **मरुतामिव[१] पद्धतीः पुरीर्वृष[२]कन्यामिथुनाजराजिनीः ।**
म[३]करान्वितमीनशालिनीः सरितः सा[४]ब्जबलाहकाः पुनः ॥६७॥
वसतीरिव वल्गु[१]विष्टराः सकुरङ्गाः शशिमण्डलीरिव ।
[२]स्फुरदप्सरसो यथा दिवष्य[३](: प)दवीर्लङ्घितवान्मुनीश्वरः ॥६८॥ युग्मम् ॥[2]

(१) आकाशमार्गाः । (२) वृषभाः कुमारिकाः तरुणीतरुणयुगलानि मेषास्तैः राजन्ते इत्येवंशीलाः गगने तु मेषवृषमिथुनकन्याराशयः । (३) जलयादांसि मत्स्यास्तैः शोभमानाः । पक्षे-मकरमीनौ राशी । (४) कमलानि बकास्तैर्युक्ता नद्यः । गगनं चन्द्रमेघैः सहितम् ॥६७॥

(१) आसनं वृक्षश्च । (२) अप्रधानानि सरांसि यत्र । (३) इतस्ततो भ्रमन्त्य उर्वशीमुखाप्सरसो यत्र (३) मार्गान् ॥६८॥

हील० **मरु०**। स मुनिः पुरीरुल्लङ्घितवान् । उत्प्रेक्ष्यते । देववीथीः । कैः ?। वृषभैः कन्याभिः स्त्रीपुंयुगलैरजैश्छागैः शालिनीः । पक्षे-चतुर्भिः राशिभिर्युक्ताः । पुनर्देववीथीरीव नदीरुल्लङ्घितवान् । किंभूताः ? मकरैर्युक्तमत्स्ययुक्ताः । पुनः किंभूताः ?। कमलैर्बकैर्युक्ताः । पक्षे राशिद्वयकलिताः । अब्जेव चन्द्रेण मेघैर्वा सहिताः ॥६७॥

यथा गृहं मनोज्ञासनं भवति तद्वन्मनोज्ञवृक्षाः पुनश्चन्द्र इव मृगयुक्ताः । पुनः स्फुरन्ति अप्रधानानि सरांसि यासु तादृशाः पदवीर्मार्गानुल्लङ्घयति स्म । यथाप्सरोयुक्ता दिवः ॥६८॥

हीसुं० **मरुदेशमभूषयत्क्रमादथ कु[१]राङ्गजसाधुसिन्धुरः ।**
[२]अतुलैरिव धन्व[३][3]जन्मनां सुकृतैः [४]स्वःशिखरी समीयिवान् ॥६९॥

(१) हीरहर्षगणिः । (२) असाधारणैः । (३) मरुनराणाम् । (४) कल्पद्रुः मेरुर्वा कल्पद्रुयुक्तः ॥६९॥

हील० धन्वजन्मनां मरुसम्बन्धिनाम् ॥६९॥

हीसुं० **[१]कविना च [२]बुधेन [३]सन्निधिस्थितिभाजा[४] क्षितिज[4]न्मनान्वितः ।**
सविधे स गु[५]रोरुपेयिवान्वि[६]धुवद्वागमृतं ततः किरन् ॥७०॥

---

1. ०वत्प्रचे० हीमु० । 2. इति मार्गवर्णनम् हील० । 3. ०जन्मि० हीमु० । 4. ०ना पुनः । हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) काव्यकर्त्रा शुक्रेण च । (२) पण्डितेन सोमपुत्रेण च । (३) समीपस्थितेन । (४) भूमौ जन्म यस्य तथा मङ्गलेन च युक्तः । गगने सर्वेषां स्थितत्वात् । (५) विजयदानसूरेर्बृहस्पतेश्च । (६) चन्द्र इव ॥७०॥

हील० यथा चन्द्रो बृहस्पतिगृहे समायाति तथा गुरुसमीपमागतः । शुक्रेण, बुधेन, मङ्गलेन ॥७०॥

हीसुं० स चुचुम्ब पदाम्बुजं गुरो[१]रमिनोनूय नवैः स्तवैस्ततः ।
म[२]तिदर्प्पणिकानुबिम्बितश्रुतिभावस्स[३](: श)क[1]डालसूनुवत् ॥७१॥

(१) स्तुत्वा । (२) प्रज्ञादर्शिकायां प्रतिबिंबिताः शास्त्राणां भावा रहस्यानि यस्य । "मन्मतौ विमलदर्प्पणिकाया"मिति नैषधे । (३) स्थूलभद्र इव ॥७१॥

हील० [2]अग्रे वृत्तं सुगमम ॥७१-७८॥

हीसु० अथ नारदनाम्नि[१] पत्तने[२] तुरग७व्योम०रसे६न्दु१वत्सरे १६०७ ।
[३]वृषभाङ्कजिनालये[४] गिरेरिव शंभोर्विभवैः सहोदरे ॥७२॥
पदमा[१]प्यत [२]पण्डिताह्वयं गणिना तेन यति क्षितीशितुः ।
[३]अभिभूय [४]बुधं [५]बुधश्रिया पद[६]मस्यैव कि[७]मात्तमात्मना ॥७३॥ युग्मम् ॥

(१) पत्तनशब्दः सामान्येन नगरवाची न मुख्यवृत्त्या पत्तनस्य । नड्डुलाई नगरे । (२) विक्रमार्कात्सप्ताधिकषोडशशतवर्षे १६०७ । (३) ऋषभदेवप्रासादे । (४) कैलाशस्य ॥७२॥

(१) प्राप्तम् । (२) प्रज्ञांशाभिधानम् । (३) जित्वा (४) सोमसुतम् । (५) पाण्डित्यलक्ष्म्या । (६) रोहिणीसुतस्येव । (७) गृहीतम् ॥७३॥

हीसुं० [4] [४]तपसः [५]सितपञ्चमीदिने [६]कुलशैला८भ्र०रसा६त्म१वत्सरे१६०८ ।
अपि नारदपुर्य[१]नुत्तरैरिव [३]सख्यां विभवैर्हरेः [२]पुरः ॥७४॥
[१]सुहृदेव समेत्य शोभिते [२]वरका[4]णाख्यजिनावनीन्दुना ।
[३]जलजध्वजसार्वमन्दिरे पदमस्याजनि [४]वाचकाह्वयम ॥ ७५॥ युग्मम् ॥

(१) असाधारणसम्पत्त्या । (२) अमरावत्या । (३) वयस्यामिव । (४) माघमासस्य । (५) शुक्लपञ्चम्या । (६) विक्रमनृपादष्टाधिकषोडशशतवर्षे १६०८॥७४॥

(१) मित्रेण । (२) वरकाणकनामपार्श्वनाथेन । (३) नेमिनाथप्रासादे । (४) उपाध्यायपदम् ॥७५॥

हीसुं० [१]विबुधावथ रा[२]जपूर्वको विमलो धर्मयुतश्च सागरः ।
[३]सचिवाविव वाचकेश्वरौ कृतवान्सूरिमहीपुरन्दरः ॥७६॥

---

1. ०कटाल० हीमु० । 2. 'अग्रे' इति ७१तमश्लोकादारभ्य ७८तमश्लोकपर्यन्तं ज्ञेयम् । 3. हीलप्रतौ हीमु० चैषा द्वितीया पङ्क्तिः । 4. ०णाख्यफणीन्दुकेतुना हीमु० हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) पण्डितौ । (२) राजविमल-धर्मसागरनामानौ । (३) प्रधानाविव । (४) विजयदानसूरिः ॥७६॥

हीसुं० श्रियमाश्रयते स्म वाचकत्रितयी सा [1]श्रमणावनीशितुः ।
[3]प्रतिबोधयितुं [2]जगत्त्रयीमिव [4]मूर्तित्रितयी [5]समुद्यता ॥७७॥

(१) विजयदानसूरेः । (२) त्रैलोक्यम् । (३) प्रतिबोधयितुम् । (४) मूर्तित्रयीव । (५) प्रकटीभूता ॥७७॥

हीसुं० विहरन्सह [1]वाचकेन्दुना [2]शिवपूर्यां [3]समवासरद्गुरुः ।
[4]वसुभूतिसुतेन सङ्गतौ [5]भगवान्राजगृहे यथान्तिमः ॥७८॥

(१) हीरहर्षउ(र्षो)पाध्यायेन सह । (२) श्रीरोहीनगर्याम् । (३) समवसृतः । (४) गौतमेन । (५) महावीरः ॥

हीसुं० [1]त्रिदिवोज्जयिनीं पूरीं तदाजनि दूदाह्वनृपो विभूषयन् ।
[2]सुखयन्ज[3]नतां व[4]दान्यतां कलयन्विक्रमभानुमानिव ॥७९॥

(१) स्वर्गं उत्प्राबल्येन जयतीत्येवंशीलाम् । पक्षे त्रिदिवतुल्या अवन्तीनगरीम् । (२) सुखीकुर्वन् । (३) जनसमूहम् । (४) दानशीलताम् ॥७९॥

हील० त्रिदि०। स्वर्गजयन्तीं सीरोहीनगरीं विभूषयन् दूदाराजाऽभूत । यथा स्वर्गतुल्यामुज्जयिनीं विभूषयन् सुखदः दानी विक्रमो जातः ॥७९॥

हीसुं० [1]सचिवः पुनरस्य[2] भूभुजोऽ[3]जनि चा[4]ङ्गाभिधसङ्घनायकः ।
जिनधर्मरतो निधि[5]र्धियाम[6]भयः श्रेणिकभूपतेरिव ॥८०॥

(१) प्रधानः । (२) दूदानृपस्य । (३) जातः । (४) 'चाङ्गो संघवी" इति नामा श्राद्धः । (५) बुद्धीनां निधानम् । (६) अभयकुमारः ॥८०॥

हील० अस्य चाङ्गाह्वोऽमात्योऽजनि ॥८०॥

हीसुं० [1]निरमापयदस्य पूर्वजो ध[2]रणो रा[3]णपुरे चतुर्मुखम् ।
[4]वृषभध्वजतीर्थकृद्गृहं न[5]लिनीगुल्ममि[6]वागतं क्षितौ ॥८१॥

(१) कारितवान् । (२) धरणाख्यः । (३) राणपुरनाम्नि स्ववासनगरे । (४) चतुर्मुखं ऋषभदेवप्रासादम् । (५) नलिनीगुल्मनाम विमानम् । (६) स्वर्गाद् भूमावागतमिव ॥८१॥

हील० निर० । चाङ्गाह्वस्य पूर्वजो धरणो नलिनीगुल्मसदृशं ऋषभचैत्यं अकारयत् ॥८१॥

हीसुं० [1]गणपुङ्गवमन्त्रम[2]न्वहं विधिना[3]राद्धुमना मुनीश्वरः ।
अथ [4]सुस्थितसूरिशक्रवत्प्र[5]णिधानं विदधे स त[6]त्पुरे ॥८२॥

(१) सूरिमन्त्रम् । (२) निरन्तरम् । (३) साधयितुम् । (४) सुस्थितनामाचार्य इव । (५) ध्यानम् । (६) शिवपुर्याम् ॥८२॥

हील० ग० । सूरिमन्त्राराधनार्थं स ध्यानं विदधे ॥८२॥

हीसुं० विषयेऽ[१]प्यखिले तदा [२]पुरीपतिना [३]मारिवारि जन्मिनाम् ।
[४]परमार्हतभूमिभास्करं किमु [५]संस्मारयितुं स्वयं नृणाम् ॥८३॥

(१) समस्ते देशे । (२) दुदानृपेण । (३) अमारिः प्रवर्तिता । (४) कुमारपालराज-(जम्) । (५) स्मृतिविषयं कारयितुम् ॥८३॥

हील० समस्तेदेशेऽमारिः प्रवर्त्तिता । उत्प्रेक्ष्यते । कुमारपालराजानं नृणां स्मृतिगोचरीकर्त्तुम् ॥८३॥

हीसुं० [१]अनिशं व[२]रिवस्यितस्य तत्तपसः सिद्धिरिवा[३]ङ्गसङ्गिनी ।
[४]स्वककान्ततयातिहार्दतो [५]व्रतलक्ष्मीरिव वा [६]वपुष्मती ॥८४॥

[१]व्र[1]तिशीतरुचः कदाचन [२]प्रणिधानाम्बुधिमध्यगाहिनः ।
[३]जिनशास[2]न[३]निर्ज्जरप्रिया प्र[४]कटीभावमबीभजत्पुरः ॥८५॥ युग्मम् ॥[3]

(१) निरन्तरम् । (२) सेवितस्य । (३) मूर्तिमती । (४) निजस्वामित्वेनातिस्नेहात् । (५) चारित्रश्रीरिव । (६) शरीरिणी ॥८४॥

(१) विजयदानसूरेः । (२) ध्यानसमुद्रमवगाहमानस्य । (३) शासनदेवता । (४) प्रकटीभूता ॥८५॥

हील० अनि० । सुर० । यथेन्द्रगजः समुद्रमध्यं गाहते तद्वद्ध्यानाब्धिमध्यावगाहिनः सूरेः पुरो जिनशासनदेवता प्रकटत्वमाप्ता । प्रादुर्भूतेत्यर्थः । उत्प्रेक्ष्यते । निरन्तरं क्रियमाणस्य तपसः मूर्त्तिमती सिद्धिः वाथवा स्वभर्तृत्वेनातिस्नेहात्कायमङ्गीकृत्यागता चारित्रलक्ष्मीः ॥८४-८५॥

हीसुं० [१]सफलीकुरु [२]किङ्करीमिव [३]क्वचिदा[५]दिश्य [४]विधौ व्रतीन्द्र ! माम् ।
प्रणिपत्य पदाम्बुजं प्रभोरिति सा शासननिर्जरी जगौ ॥८६॥

(१) कृतार्थय । (२) सेविकामिव । (३) कस्मिन्नपि । (४) कार्ये । (५) नियोज्य । (६) बभाषे ॥८६॥

हील० सफली० । सा शासनाधिष्ठायिका इति वदति स्म । इतीति किम् ? । यथा किङ्करी आदेशेन सफलीक्रियते तद्वत् हे यतीन्द्र ! त्वं क्वचिदादेशनिष्पादने मां सफली कुरु । चरणं नमस्कृत्येति वदति स्म ॥८६॥

हीसुं० निजगाद गुरुर्ग[१]भीरिमाधरितद्वीपवतीपतीस्ततः ।
[३]भविताभ्युदयष्प(: प)दस्य [२]मे वद कस्मात्शरदो [४]मुनेरिव ॥८७॥

---

1. सुरिसिन्धुरवत्कदा० हीमु० । 2. ०नदेवता प्रभोः । हीमु० । 3. इति विजयदानसूरे[ध्यानम्] हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) गाम्भीर्यनिर्जितसमुद्रः । (२) मम । (३) पदस्योदयो भावी । (४) अगस्तेरिव । "मुनिद्रुमः कोरकितः शितिद्युति"रिति नैषधे । "मुनिद्रुमोऽगस्तितरु"रिति तद्वृत्तौ ॥८७॥

हील० निज० । समुद्रगम्भीरगुरुर्वदति स्म । यथा शरत्कालान्मुनेरगस्तेरुदयो भवति, तद्वत्कस्मादुदयो भावी ॥८७॥

हीसुं० अवधे[१]रनुभावतो गुणै[२]रसमानं [३]जिनमेदिनीन्द्रवत् ।
अतिथिं [५]प्रविधाय भृङ्गवत्[४]दयाम्भोरुहि [६]हीरवाचकम् ॥८८॥
[१]अनयेत्थमभण्यत प्रभुर्भगवन्न[२]भ्रमणेर्दिनादिव ।
भविता भवतः [३]पदोदयो भुवि [४]नाथीसुतसाधुसिन्धुरात् ॥८९॥ युग्मम् ॥

(१) अवधिज्ञानप्रभावात् । (२) असाधारणगुणम् । (३) जिनेन्द्र इव । (४) हृदयकमलगोचरम् । (५) कृत्वा । (६) हीरहर्षोपाध्यायम् ॥८८॥

(१) शासनदेवतया । (२) सूर्यस्य । (३) पट्टस्योदयः । (४) हीरकुमारात् ॥८९॥

हील० तीर्थकृद्वद्गुणाढ्यं हीरोपाध्यायं अवधिज्ञानप्रभावतो हृदयकमले धृत्वानयेदमुक्तम् — यथा दिनात्सूर्योदयः स्यात्तथा हीरहर्षोपाध्यायात्त्वत्पदोदयो भावी ॥८८-८९॥

हीसुं० [१]पदपद्मविलासलालसभ्रमरीभूतवसुन्धराधवः ।
भगवन्स [२]युगप्रधानव[३]न्महिमश्रीभवनं भविष्यति ॥९०॥

(१) चरणकमले क्रीडारसिकभृङ्गभूतभूपः । (२) पूर्वाचार्यवत् । (३) माहात्म्यलक्ष्मीगृहम् ॥९०॥

हील० हे भगवन् ! अयं वज्रस्वाम्यादिवद्राजमान्यो भविष्यति ॥९०॥

हीसुं० [१]अयमेव हि हीरवाचकोऽस्त्यु[३]चितः- [२]सूरिपदस्य नापरः ।
[४]धरणीधर[१]सूनुरेव [५]यद्वसुधाधीशपदस्य [६]नेतरः ॥९१॥

(१) हीरहर्षोपाध्यायः । (२) आचार्यपदस्य । (३) योग्यः । (४) राजपुत्रः । (५) राज(ज्य)स्य । (६) न हीनकुलः ॥९१॥

हील० अयमेव सूरिपदयोग्यो, नान्यः । यथा राज्ञः सुतो राज्ययोग्यो, नान्यः ॥९१॥

हीसुं० [१]प्रणिगद्य पुरो [२]गुरोरिदं प्रमदेनापि [४]विनम्य [३]तत्पदम् ।
[५]त्रिदशी क्षणत[६]स्तिरोदधे [७]स्तनयित्वा [८]स्तनयित्नुपङ्क्तिवत् ॥९२॥[2]

(१) उक्त्वा । (२) विजयदानसूरेरग्रे । (३) तच्चरणम् । (४) प्रणम्य । (५) शासनदेवता । (६) अदृशीभूता । (७) गर्जित्वा । (८) मेघमालेव ॥९२॥

१. ०धव० हीमु० । 2. इति सूरिपुरो ध्यानप्रत्यक्षीभूतशासनदेवीप्रोक्ताचार्यपदोचितहीरवाचककथनम् हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० **प्रणि०** । गुरोः पुर इत्युक्त्वा पुनष्प(: प)दं प्रणम्य शासनाधिष्ठात्री अदृश्यीभूता । यथा मेघमाला गर्जित्वा विनम्योन्नतीभूयार्थाद्वर्षित्वा तिरोधत्ते, अदृश्या स्यात् ॥९२॥

हीसुं० स [1] तदीयगिरं निपीय [2] तां [3] शितिवल्लीमिव [4] हेमकन्दलः ।
[5] मुदम [6] न्तरनु [7] त्तरां दधद्ग [8] मयामास दिनानि कानिचित् ॥९३॥

(१) शासनदेवतासम्बन्धिनीं वाणीम् । (२) पूर्वोक्ताम् । (३) कृष्णवल्लीम् । (४) विद्रुमः । (५) हर्षम् । (६) चित्ते । (७) असाधारणाम् । (८) अतिक्रामति स्म ॥९३॥

हील० **स त०** । स सूरिर्देवीवचनं श्रुत्वा, यथा प्रवालः कृष्णलतां 'कालिवेलि'नाम्नीं धत्ते तद्वदसाधारणां मुदं दधन् कियन्ति दिनानि कियत्प्रमाणान्वासरान्गमयामासातिक्रामति स्म । पीत्वेत्यत्यादरेण निशम्येत्यर्थः ॥९३॥

हीसुं० अथ [1] साधुसुधाशनाधिपः [2] प्रणिधानं [3] परिपूर्य [4] सूर्यरुक् ।
[5] शशभृत्श [6] रदभ्रकादिव [7] प्रणिधानास्पदतो [8] विनिर्ययौ ॥९४॥

(१) विजयदानसूरिः । (२) ध्यानम् । (३) समाप्य । (४) रविरिव कान्तिर्यस्य । (५) चन्द्रः । (६) शरत्कालोत्पन्नजलरिक्तघनाभ्रकादिव । (७) ध्यानगृहात् । (८) निर्गतः ॥९४॥

हील० **अथ०** । सूर्यवत्कान्तिर्यस्य तादृशः सूरीन्द्रः ध्यानगृहान्निर्गतः । यथा शरदोऽभ्राच्चन्द्रो निर्गच्छति ॥९४॥

हीसुं० स [2] बभाज [1] समाजमात्मना श्रमणानां [3] श्रमणाव [1] नीमणिः ।
[4] क्षितिमानिव [5] बाहुजन्मनां [6] विलसन्मङ्गलतूर्यनिस्वनैः ॥९५॥

(१) मुनिसभ(भाम्) । (२) शिश्राय । (३) विजयदानसूरिः । (४) राजेव । (५) सुभटानाम् । (६) वाद्यमानमङ्गलवाद्यैः ॥९५॥

हील० **स ब०** । मङ्गलध्वनिभिः स सूरिः साधुनां पर्षदं बभाज । यथा राजा राजन्यानां पर्षदं भजते ॥९५॥

हीसुं० [1] जहिरे [2] मिहिरौजसा [3] महीपतिना [4] चारचरा नरास्तदा ।
[2] [5] अरुणाभ्युदयेन [6] षट्पदा इव [7] पङ्केरुहकोशवासिनः ॥९६॥[3]

(१) त्यक्ताः । (२) सूर्यतुल्यप्रतापेन । (३) दुद्दानृपेण । (४) कारागारस्थायिनो जनाः । (५) अरुणोदयेन । (६) भ्रमराः । (७) कमलमुकुलस्थायिनः ॥९६॥

हील० पतङ्गप्रतापेन नृपेन(ण) बन्दीजना मुमुचिरे । यथा विकसितकमलौघेन प्रातर्मुकुलसुप्ता अलिनो मुच्यन्ते ॥९६॥

---

1. वनीशिता हील० । 2. भ्रमरा इव कोशशायिनो दिववक्त्रे स्मितपद्मराशिना । हीमु० । 3. इति सूरेर्ध्यानविधानानन्तरं ततो बहिरागमनम् हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]व्रतिनामिव [२]तथ्यभाषिणां [३]जनिभाजां [४]विपिनाभ्रचारिणाम् ।
[५]श्रमणेन्दुरवेक्षयत्पुनः स [६]निमित्तानि [७]निमित्तवेदिभिः ॥ ९७ ॥

(१) साधूनामिव । (२) सत्यभाषणशीलानाम् । (३) प्राणिनाम् । (४) वनचारिणां गगनचारिणां च । (५) विजयदानसूरिः । (६) शकुनानि । (७) शकुनज्ञैः ॥९७॥

हील० यतिनामिव सत्यवादिनां मृगशृगालादयो वनचारिणः, चाष-खञ्जन-शिखि-तित्तिर-देवी-भारद्वाजादयो गगनचरास्तेषां प्राणिनां शकुनानि स सूरिर्विलोकयति स्म ॥९७॥

हीसुं० [१]न्यगद[२]न्निति [३]ते पुरो गुरोः [४]सितपक्षादिव [५]शीतदीधितेः ।
उदयो भविता पदस्य ते भुवि [६]कुराङ्गज[1]साधुपुङ्गवात् ॥ ९८ ॥[2]

(१) कथयन्ति स्म । (२) इत्यमुना प्रकारेण । (३) निमित्तवेदिनः । (४) शुक्लपक्षादिव । (५) चन्द्रः । (६) हीरहर्षोपाध्यायात् ॥ ९८ ॥

हील० शकुनज्ञा निगदन्ति स्म । यथोज्ज्वलपक्षाच्चन्द्रोदयस्तद्वद्धीरहर्षवाचकत उदयो भावी ॥*९८॥

हीसुं० [१]विधुवद्ग[२]णपुङ्गवं नवोदयमालोकयितुं हृदी[३]च्छता ।
अथ [४]सूरिपदार्प्पणाविधौ [५]प्रभुरागृह्यत [६]धीसखेन सः ॥ ९९ ॥

(१) चन्द्रमिव । (२) सूरीन्द्रम् । (३) वाञ्छता । (४) आचार्यपदप्रदानप्रकारे । ''सेवाचणदर्पणार्प्पणा''मिति नैषधे । (५) सूरिः । (६) चाङ्गाख्यसङ्घनायकेन ॥९९॥

हील० 'धीसखेनेति अर्थात् शिवपुरी[सङ्घपुरः]सरीकृतं चाङ्गमन्त्रिणाचार्यपदार्थमाग्रहः कृतः ॥९९॥

हीसुं० [१]अवधार्य [२]तदाग्रहं [३]हितामिव वाणीं [४]भणितां [५]हितैषिणा ।
तत [६]ओमिति [७]वक्त्रवारिजं वचसा योजितवान्स [८]तत्पुरः ॥ १०० ॥

(१) हृदये निधाय । (२) चाङ्गाख्यस्याग्रहम् । (३) पथ्यामिव । (४) कथिताम् । (५) सुखकाङ्क्षिणा । (६) ओमिति स्वीकारे वचनम् । (७) वदनकमलम् । (८) सङ्घपतिपुरः ॥१००॥

हील० यथायतौ हितां वाणीं मित्रेणोक्तां कश्चिद्हृद्यवधारयति तद्वत्तदाग्रहं ज्ञात्वा ओमितिस्वीकारवाक्यं वदति स्म ॥१००॥

हीसुं० [१]निरधारि मुहूर्त्तमात्मना [२]गणकैः [३]श्रीश्रमणावनीन्दुना ।
[४]महनीयमहो [५]विवाहवत्पुनरा[६]रभ्यत मन्त्रिणा [७]पुरे ॥१०१॥

(१) निश्चयीकृतम् (२) ज्योतिषिकैः । (३) सूरिणा । (४) प्रशस्योत्सवः । (५) पाणिग्रहणे इव । (६) प्रारब्धः । (७) शिवपुर्याम् ॥१०१॥

---

1. ०वाचकेन्द्रतः हीमु० । 2. इति शकुनावलोकनम् हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० निर० । श्रीसुरिणा मुहूर्त्तं गृहीतम् । पुनश्चाङ्गामन्त्रिणा श्लोघ्योत्सवः आरब्धः ॥१०१॥

हीसुं० **अथ [१]शिल्पिचणैर[२]चीकरन्न[३]नुवादैरिव [४]विश्वकर्म्मणः ।**
मणिमण्डपमं[५]शुडम्बराधरितादित्यममात्यमानवाः ॥१०२॥

(१) शिल्पिचणैः-प्रकृष्टविज्ञानिभिः । (२) कारयन्ति स्म । (३) प्रतिरूपैः । (४) त्वष्टुः । (५) किरणाडम्बरेण तिरस्कृतमार्त्तण्डम् ॥१०२॥

हील० देवसूत्रधारसदृशैः शिल्पिषु चतुरैर्मन्त्रिमर्त्त्या रत्नमण्डपं कारयन्ति स्म ॥१०२ ॥

हीसुं० **[१]मणिकल्पितशिल्पकौतुकप्रकरालोकनलालसाशयाः ।**
त्रिदशास्त्रि[२]दशीसखादिवः किमिहा[३]लेख्यमिषादुपागमन् ॥१०३॥

(१) रत्नै रचितविज्ञानीकुतूहलनिकरनिरीक्षणे लम्पटचित्ताः । (२) देवीयुताः । (३) चित्रकपटात् ॥१०३॥

हील० उत्प्रेक्ष्यते । चित्रदम्भाद्देवीयुक्ता देवा आगताः ॥१०३॥

हीसुं० **[१]स [२]मुहूर्त्तदिने गुरुः [३]समं मुनिभि[४]र्मण्डपमध्यमीयिवान् ।**
सदसः सदनं [५]द्युसद्मभिः प्रतिपन्थी[६] पृथिवीभृतामिव ॥१०४॥

(१) सूरिः । (२) निश्चितवासरे । (३) समेतः । (४) सभागृहम् । ''नृपस्य नातिप्रमनाः सदोगृह''मिति रघुवंशे । (५) देवैः । (६) शक्रः ॥ १०४ ॥

हील० **स मु०** । स सूरिः साधुसहितो मण्डपमागतः । यथा गिरिवैरीन्द्रो देवैः सह सभागृहमागच्छति ॥१०४॥

हीसुं० **[१]इदमीयमहामहेक्षणोपनतैः पौरनरैः [२]परःशतैः ।**
[३]निभृतं भ्रियते स्म न मण्डपो [४]नवकासार इवा[५]म्बुदाम्बुभिः ॥१०५॥

(१) सूरिपदसम्बन्धिमहोत्सवविलोकनार्थमागतैः । (२) सहस्त्रसङ्ख्यैः । (३) निर्भरम् । (४) नवीनसर इव । (५) मेघनीरैः ॥१०५॥

हील० **इदमी०** । अस्य पदोत्सवालोकनार्थमागतैर्लक्षबद्धनरैर्मण्डपोऽत्यर्थं भ्रियते स्म । यथा नवीनतडाकः मेघजलैर्निर्भरं पूर्यते ॥ १०५ ॥

हीसुं० **[१]त्रिशलातनुजन्मशासनाभ्युदयं [२]मूर्त्तमिव [३]व्रतीश्वरम् ।**
[४]यतिभिस्तम[५]जूहवद्गुरुस्त्रि[६]दशीशंसितभाग्यवैभवम् ॥ १०६ ॥

(१) महावीरशासनस्योदयम् । (२) मूर्त्त(र्त्ति)मन्तमिव । (३) हीरहर्षोपाध्यायम् । (४) साधून्प्रेषित्वा । (५) आकारयति स्म । (६) शासनदेवीकथितपुण्यसम्पदम् ॥१०६॥

हील० **त्रिश०** । श्रीसूरिः व्रतिभिस्तं **हीरहर्षोपाध्यायं** आकारयामास । उत्प्रेक्ष्यते । श्रीवर्द्धमानस्वामिनः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शासनस्य मूर्तिमन्तमभ्युदयमाह्वयतीव ॥१०६॥

हीसुं० [१]गगनात्मरसेन्दुहायने विशदे [२]पोषजपञ्चमीदिने ।
[३]धृतशीतरुचीरुचिच्छलोज्ज्वलवस्त्रे किमु [४]तत्पदोत्सवे ॥ १०७ ॥
[१]व्रतिवारिधिनेमि[1]नायकः[२]स्वपदे [३]स्थापितवान्स वाचकम् ।
इव [४]पञ्चमकं [५]गणाधिपं [६]त्रिश्शलायास्तनुजो जिनेश्वरः ॥१०८॥ युग्मम् ॥[3]

(१) विक्रमार्काद्दशाधिकषोडशशतवर्षातिक्रमे । (२) पोषशुक्लपञ्चमीवासरे । (३) परिधृत-चन्द्रचन्द्रिकाज्व(कोज्ज्वल)वसने । (४) हीरहर्षोपाध्यायस्याचार्यपददानमहोत्सवे ॥१०७॥

(१) विजयदानसूरिः । (२) निजपदे । (३) स्थापयति स्म । (४) सुधर्म्मस्वामिनम् । (५) गणधरम् । (६) महावीरजिनः ॥ १०८ ॥

हील० उज्ज्वले पोषमासस्य पञ्चमीदिने । उत्प्रेक्ष्यते । तस्य पदोत्सवे धृतं परिहितं, शीतरुचीरुचिश्चन्द्रचन्द्रिका तस्याश्छलेनोज्ज्ववलं वस्त्रं येन एवंविधे एव वासरे ॥१०७-*१०८॥

हीसुं० [१]हृदि [२]हीर इवैष [३]विष्टपे विजयोऽस्यैव पुनर्भविष्यति ।
[४]अत एव कृतास्य[६] [५]सूरिणा विजयाह्वा किमु [७]हीरपूर्विका ॥१०९॥

(१) हृदि अर्थाज्जगतां हृदये । (२) हीर इव वज्रमणिरिव । जनभाषया "हीरो" । रहस्यं च तद्भविष्यति । (३) भुवनेऽस्यैव विजयो भावी । ना परस्येति । (४) अतः कारणात् । (५) विजयदानसूरिणा । (६) हीरहर्षस्य । (७) हीरविजयसूरिरिति नाम निर्ममे ॥१०९॥

हील० हृदि । एतदीयाभिधा हीरविजयसूरिरिति चक्रे ॥१०९॥

हीसुं० [१]इदमेव दिनं जगत्पतेरभिषेकार्हमितीव सम्मदात् ।
[५]उदयादिमसिंहभूमिमानभिषिक्तोऽत्र[२] [३]तदैव [४]बाहुजैः ॥११०॥

(१) अयमेव दिवसः चक्रवर्त्यादीनामभिषेक्तुं योग्यः । (२) अत्र शिवपुर्याम् । (३) तस्मिन्नेव दिने । (४) राजन्यैः । (५) उदयसिंहो नृपो राज्येऽभिषिक्तः ॥११०॥

हील० चक्रवर्त्यादेरभिषेकयोग्यं इदमेव दिनम् । अत एव श्रीरोहिणीमण्डलराज्ये राजन्यैरुदयसिंह भूपः स्थापितः ॥११०॥

हीसुं० [१]भुवि [२]मङ्गलतूर्यनिस्वनो [३]दिवि [४]दिव्योऽजनि [५]दुन्दुभिध्वनिः ।
इति [६]तौ किमु [७]शंसतो [८]गुरुर्न ऋतेऽस्मादपरोऽस्ति रोदसोः ॥१११॥

(१) भूमौ । (२) श्रेयःसूचकवाद्यनिनादः । (३) आकाशे । (४) देवसम्बन्धी । (५) भेरीशब्दः । (६) द्वावपि शब्दौ । (७) कथयत इव । (८) द्यावापृथिव्योर्हीविजयसूरिभ्यः

1. वासव० । हीमु० । 2. मृगराजध्वजतीर्थनायकः । हीमु० । 3. संवत् १६१० पोषशुक्लपञ्चमीदिने हीरहर्षवाचकस्य सूरिपदस्थापना । इति हीरविजयसूरेराचार्यपदम् । हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोऽपि असाधारणगुणो गुरुर्नास्ति ॥१११॥

हील० तौ द्वौ निनादौ इति कथयतः । इतीति किम् ? द्यावापृथिव्योर्विषये एतस्मादपरो गुरुर्नास्ति ॥१११॥

हीसुं० [1]पिकपञ्चमकूजितक्वणास्तम[2]गायन्द्व्य[3]णुकोदरीगणाः ।
[4]अदसीययशोजिगासयो[5]पगताः [6]किंपुरुषाङ्गना इव ॥११२॥[1]

(१) कोकिलानां पञ्चमालापतुल्यध्वनयः । (२) गायन्ति स्म । (३) स्त्रियः 'शृङ्गारसर्ग-द्व्यणुकोदरीय''मिति नैषधे । (४) हीरविजयसूरेर्यशसां गातुमिच्छया । (५) गताः । (६) किन्नर्य इव ॥११२॥

हील० पिकपञ्चमारववत् नादो यासां तादृशा वध्वस्तं गायन्ति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । एतद्यशो गातुमागताष्किं-(: किं)नर्यः ॥११२॥

हीसुं० [1]त्रिजगन्नयनामृताञ्जनं शुशुभाते [2]यतिपुङ्गवावुभौ ।
[3]सुरभीकृतभूतलौ [4]यशः सुमनोभिर्म[5]धुमाधवाविव ॥११३॥

(१) त्रिभुवनजनलोचनेषु सुधाञ्जनतुल्यौ । (२) विजयदान-हीरविजयसूरीश्वरौ । (३) वासितमहीमण्डलौ । (४) कीर्त्तिपुष्पैः । (५) चैत्र-वैशाखमासाविव ॥११३॥

हील० **त्रिज०** । यथा चैत्र-वैशाखमासौ पुष्पैर्दिशः सुरभयतस्तद्वद्यशोभिः सुरभीकृतभूतलौ सूरीन्द्रौ शुशुभाते ॥११३॥

हीसुं० द्युसदामिव [1]मेदि[नी]रुहौ [2]जगतीजङ्गमतानुषङ्गिनौ ।
स्म विभूषयतः क्रमेण तौ [3]विहरन्ता[4]वणाहिल्लपत्तनम् ॥११४॥

(१) कल्पवृक्षाविव । (२) पृथिव्याम् । (३) सञ्चरन्तौ । (४) अणहिल्लनामपत्तनम् ॥११४॥

हील० **द्युस०** । जङ्गमामरलतासदृशौ विचरन्तौ ता**वणहिल्लपत्तनं** आगतौ ॥११४॥

हीसुं० [1]श्रमणद्युमणी [2]मणीव तौ [3]मुनिमुक्तावलिमध्यशालिनौ ।
पुरि तत्र [4]तमोनिशुम्भनौ [5]गणलक्ष्मीः [6]मदयांबभूवतुः ॥११५॥[2]

(१) सूरीश्वरौ । (२) नायकरत्ने इव । (३) साधुरूपहारयष्टिमध्यस्थौ । (४) अज्ञानान्धकारद्वेषिणौ । (५) तपगच्छलक्ष्मीम् । (६) शृङ्गारकलितां चक्रतुः ॥११५॥

हील० मुनिमार्तण्डौ मुनिपङ्क्तिमुक्ताहारे मध्यमणीसदृशौ ध्वान्तरिपू तौ तपागच्छलक्ष्मीं मदयांबभूवतुः । शृङ्गारकलितां कुर्वाते स्मेत्यर्थः । मणीवादिवर्जमिति द्विवचनेऽपि सन्धिः स्यात् ॥११५॥

हीसुं० अथ [1]तत्र [2]समर्थनामभृद्ध्रण[3]साली भवति स्म भूतिमान् ।
सचिवो यवनस्य भूभुजो मतिवार्द्धिश्र[3]णकाङ्गजन्मवत् ॥११६॥

---

1. इत्याचार्यपदमहोत्सवः हील० । 2. इति द्वयोः सूरीन्द्रयोः पत्तने पादावधारणम् हील० । 3. ०शाली हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) तत्र-पत्तने । (२) समरथभणसाली नाम म्लेच्छभूपस्य सचिवो जज्ञे । भणसालीति व्यापारकारिणां कश्चित्संज्ञाविशेषः । (३) चाणक्य इव बुद्धिनिधानम् ॥११६॥

हील० अथ त० । तत्र समर्थनामा भणसाली सेरखानपठाणस्य प्रधान आसीत् । चाणक्यवन्निपुणः ॥११६॥

हीसुं० उपचक्रमिरे [४]महामहा अमु[२]नाचार्यपदस्य [३]नन्दये ।
[५]शिवशैवलिनीवरोद्वहोपयमार्थं प्रथमोत्सवा इव ॥११७॥

(१) प्रारब्धाः । (२) सूरिपदस्य । (३) नन्द्यर्थम् । (४) महोत्सवाः । (५) मुक्तिरूपा या शैवलिनी तद्वरः समुद्रस्तस्योद्वहा पुत्री लक्ष्मीस्तस्या विवाहस्याद्या उत्सवा इव ॥११७॥

हील० तेन सूरिपदोत्सवा आरब्धाः । उत्प्रेक्ष्यते । मुक्तिलक्ष्मीकरपीडनार्थमुत्सवाः ॥११७॥

हीसुं० [१]पुरि [२]जानपदीयमानवव्रंज आकार्यत [३]तेन [४]सेवकैः ।
[५]पिकभृङ्गभरः [६]स्वसौरभैरिव [७]कुञ्जे [८]स्मितचूतशाखिना ॥११८॥

(१) पत्तने । (२) देशसम्बन्धिजनव्रजः । (३) समरथभणसालिना । (४) स्वसेवकैः । (५) कोकिलमधुकरनिकरः । (६) निजपरिमलैः । (७) वने । (८) विकचमाकन्दद्रुमेण ॥११८॥

हील० पुरि० । तेन समग्रा जना आकारिताः यथा प्रफुल्लाम्रेण स्वसौरभैः कुञ्जे कोकिलभ्रमरौघ आकार्यते ॥११८॥

हीसुं० [१]सुकृतं [२]प्रविधाय [३]सत्क्रियाममुना सङ्घजनस्य [४]संमदात् ।
[५]समचीयत [८]शम्बलं [६]महोदयपूर्यां [७]प्रयियासुना किमु ॥११९॥

(१) पुण्यम् । (२) कृत्वा (३) सत्कारम् -भोजनवस्त्रादिदानैः । (४) हर्षात् । (५) पुष्टं कृतम् । (६) मुक्तिनगरे । (७) गन्तुमिच्छुना (८) पाथेयम् ॥ ११९ ॥

हील० अमुना सङ्घभक्तितः सुकृतं सञ्चितम् । उत्प्रेक्ष्यते । मोक्षे यियासया शम्बलम् ॥११९॥

हीसुं० गुरुनन्दिमहेऽङ्ग[१]नासखैर्व[२]सतिः[1] काममभूषि [३]मानुषैः ।
[४]जिनजन्ममहे [५]मरुद्गिरेरिव [६]गीर्व्वाणगणै[७]रधित्यका ॥ १२० ॥

(१) स्वस्त्रीयुतैः । (२) उपाश्रयः । (३) जनैः । (४) तीर्थकरजन्ममहोत्सवे । (६) सुमेरोः । (७) देवव्रजैः । (७) चूलिका ॥१२०॥

हील० गुरु० । स्त्रीयुक्तैर्नरैर्गृहमध्यं भूषितम् । यथा जिनजन्मोत्सवे मेरोरूर्ध्वभूर्देवैर्भूषिता ॥*१२०॥

हीसुं० गणिनन्दिमहेऽ[१]प्सरोगणैरिव मुक्ताभिरु[२]पेत्य [३]यौवतैः ।
[४]करपीडनमण्डपो यथा[५]क्षतपुञ्जैः [६]समवर्द्ध्यता[७]लयः ॥१२१॥

---

1. ०तेर्मध्यमभू० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) देवीव्रजैः । (२) आगत्य । (३) स्त्रीसमूहैः । (४) पाणिग्रहणस्य मण्डपः । (५) लाजव्रजैः । (६) वर्धाप्यते [स्म] । (७) उपाश्रयः ॥१२१॥

हील० गणिनन्दिमहे युवतीव्यूहैर्विवाहमण्डपवदालयो वर्द्धापितः ॥१२१॥

हीसुं० [1]जिनवद्गणधारिणः पदं [2]समनुज्ञाप्य स [3]सूरिचक्रिणः ।
[4]गुरुरस्य [5]सहस्रदीधितिप्रमितावर्त्तनवन्दनान्य[6]दात् ॥१२२॥

(१) तीर्थंकर इव । (२) सम्यक् अनुज्ञाप्य । (३) हीरविजयसूरेः । (४) विजयदानसूरिः । (५) द्वादशावर्त्तवन्दनकानि । (६) ददौ ॥१२२॥

हील० यथा जिनः सुधर्मस्वामिनो गणधारिणः समनुज्ञापयति, तद्वद्दत्वा सूरीन्द्रो द्वादशावर्त्तवन्दानानि ददाति स्म ॥१२२॥

हीसं० [1]वशिनोऽस्य ततो [2]वशंवदां [3]गणभृद्भूमिमणिर्गणश्रियम् ।
स्वसुतस्य[4] पितेव [5]सम्पदं [6]प्रणयेन [7]प्रणिनाय नीतिमान् ॥१२३॥[1]

(१) जितेन्द्रियस्य (२) आयत्ताम् । (३) विजयदानसूरीन्द्रः । (४) पिता निजपुत्रस्य । (५) गृहसम्पत्तिम् । (६) स्नेहेन । (७) चकार ॥१२३॥

हील० **वशिनो०** । श्री सूरीशस्तपागच्छलक्ष्मीं अस्यायत्तां प्रणिनाय-चकार । यथा गुरुः पिता च स्वसुतस्य सम्पदं ददाति, तद्वत् ॥१२३॥

हीसुं० [1]मुदमा[2]दधिरे [3]मुमुक्षवस्त[4]म[5]वाप्याभिनवोदयं प्रभुम् ।
[6]ननृते [7]नरकद्विषं पुनर्गणलक्ष्म्या [8]पुरुषोत्तमं पतिम् ॥१२४॥

(१) हर्षम् । (२) प्रापुः । (३) तपगच्छसाधवः । (४) हीरविजयसूरिम् । (५) प्राप्य । (६) नर्तितम् । (७) नरकस्य कुगतेर्दैत्यस्य द्वेषिणम् । (८) पुरुषेषु श्रेष्ठं नारायणं च ॥१२४॥

हील० **मुद०** । तं प्राप्य यतयो मुदं प्राप्ताः । पुनस्तपागच्छलक्ष्म्या नरकस्य दैत्यस्य दुर्गतेश्च शत्रुं कृष्णं उत्तमं वा प्रभुं प्राप्य नर्त्तितम् ॥१२४॥

हीसुं० [1]गणपूर्वगिरौ [2]महोद[2]यिश्रमणव्योमम[3]णीनिरीक्षणात् ।
[3]कुनयैरिह [4]कौशिकायितं [5]भविकैः [6]पङ्कजकाननायितम् ॥१२५॥

(१) गच्छरूपोदयाचले । (२) हीरविजयसूरिसूर्यालोकनात् । (३) परपाक्षिकैः । (४) मूकवदाचरितम् । (५) पुनर्भव्यैः । (६) कमलवनवदाचरितम् । विकसितमित्यर्थः ॥१२५॥

हील० गच्छोदयाद्रौ श्रीसूरावुदीते कुमतिभिः घूकवत्प्रणष्टम् । भव्यैः कमलवनवद्विकसितम् ॥*१२५॥

---

1. इति समरथभणसालीकृतमहोत्सवपूर्वकं हीरविजयसूरेः सूरिपदनन्दिवन्दनकप्रदानवर्णनम् हील० । 2. **दयश्रमण०** हीमु०।
3. **मणीसमीक्षणात्** हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]स्वयमे[२]ष [३]शिवं [४]गमी [५]परानपि [६]सम्प्रापयितुं [७]प्रभुः [८]प्रभुः ।
इति वक्तुमिवेश्वरा[९]न्दिशां यशसा [१०]व्यानशिरेऽखिला दिशः ॥१२६॥

(१) आत्मना । (२) सूरिः । (३) मोक्षम् । (४) गमिष्यति । (५) भवान्तरितः तथा परानपि। (६) मोक्षं प्रापयितुम । (७) समर्थोऽस्ति । (८) अयम् । (९) दिक्पालान् । (१०) दशापि दिशो व्याप्ता ॥१२६॥

हील० स्वयं मोक्षगामी परं परानपि प्रापयितुं क्षमः । इति दिक्पालान्वक्तुं कीर्त्या दिशो व्याप्ताः ॥१२६॥

हीसुं० [१]कजपाणितमोद्विषज्जगन्नयनस्यास्य [२]महोभरैर्भरात् ।
किमु [३]चण्डरुचेर[४]सूयया [५]भ्रियते [६]भूमिनभस्तलद्वयी ॥१२७॥

(१) कमलतुल्यः पाणिर्यस्य । पक्षे-पद्मं पाणौ यस्य । अज्ञानस्यान्धकारस्य च वैरी । विश्वस्य धर्म्ममार्गदर्शकत्वाच्चक्षुरिव । पक्षे जगच्चक्षुरितिनामा सूरिः सूर्यश्चः । (२) प्रतापप्रकरैः । (३) सूर्यस्य प्रतापैः सार्द्धम् । (४) स्पर्द्धया । (५) भृता । (६) पृथिवीगगनयोर्यामली ॥१२७॥

हील० कजवद्रक्तकरस्य कमलाङ्कितकरस्याज्ञानद्विषतो धर्मोपदेशकस्य । रविपक्षे-कजे करा यस्य पुनरन्धकारवैरी च । पुनर्जगच्चक्षुस्तादृशस्य रवेरीर्ष्ययास्य प्रतापैर्द्यावाभूम्योर्व्याप्तम् ॥१२७॥

हीसुं० स [१]पतिव्रतयेव [२]वल्लभो गणलक्ष्म्या समुपास्यत प्रभुः ।
[३]अमुना[४]गमि सा पुन[६]र्मुदं नगरी [७]नीतिमतेव [८]भूभृता ॥ १२८ ॥[1]

(१) सत्येव । (२) भर्त्ता । (३) हीरविजयसूरिणा । (४) गणश्रीः । (५) प्रापिता । (६) हर्षम् । (७) न्यायवता । (८) नृपेण ॥१२८॥

हील० सूरिणा गणलक्ष्मीर्मुदं नीता ॥१२८॥

हीसुं० अभजन्त [१]यतिव्रजा विभुं [२]विहगाः [३]स्मेरमिवावनीरुहम् ।
[४]पृणाति स्म स [५]तान्पुनर्म[६]होदयसस्यं [७]प्रदिशंस्ता[८]निव ॥१२९॥[2]

(१) साधवः । (२) पक्षिणः । (३) स्मिततरुम् । (४) प्रीणयति स्म । (५) साधून् । (६) मोक्षफलम् । (७) दत्त्वा । (८) तरुः पक्षिणां फलानि दत्त्वा प्रीणाति ॥१२९॥

हील० यतयस्तं अभजन्त । स यतीन्प्रीणाति स्म । यथा स तरुः फलं विश्राणयन्विहगान् तान् प्रीणाति ॥१२९॥

हीसुं० [१]कुनयान्नयता विनम्रतां [२]जयिनेव [३]प्रतिगर्ज्जतोऽमुना ।
दधताधरितः [४]क्षमां ह्रिया किमु [५]पातालमहीश्वरोऽविशत् ॥१३०॥

1. पाठान्तरे -तरुणीवत्तरुणेन सूरिणा हील० । 2. इति सूरेस्तपागच्छसाम्राज्यम् हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) कुपाक्षिकान् । (२) जयं कुर्वता नृपतिनेव । (३) प्रतिगर्जतः-स्पर्द्धां कुर्वतः । "सुहृदयो हृदयः प्रतिगर्जता"मिति रघुवंशे । (४) क्षमां-क्षान्तिं धरणीं च । (५) शेषनागः ॥१३०॥

हील० यथा जयिना राज्ञा प्रतिस्पर्द्धिनो नम्रतां नीयन्ते तद्वच्छाक्यादीन्नम्रतां नयता क्षमाधारित्वेन हीनीकृतो नागाधिपः पातालं विशति स्म ॥१३०॥

हीसुं० [१]परिशीलितशीललीलया तुलयन्श्री[२]स(श)कडालनन्दनम् ।
स [३]गभीरतयेव सागरं [४]गुणमाणिक्यनिधिः [५]पराभवन् ॥ १३१ ॥

(१) चिरपालितब्रह्मचर्यविलासेन । (२) स्थूलभद्रम् । (३) गाम्भीर्येन(ण) । (४) गुणमणिस्थानम् । (५) [1]पराजयति स्म ॥१३१॥

हील० स्थूलभद्रानुकारी स समुद्रं [1]पराजैषीदिव ॥१३१॥

हीसु० [१]निजधैर्यवदान्यताश्रिया विजिता येन [२]सुराचलद्रुमाः ।
किमु [३]तद्विजयाय [४]मन्त्रणं [५]सहवासच्छलतो [६]वितन्वते ॥१३२॥[2]

(१) स्वस्य धीरिम्ना दानशौण्डत्वेन च । (२) मेरुकल्पद्रुमाः । (३) सूरेर्विजयं कर्त्तुम् । (४) आलोचम् । (५) एकत्र निवसनकपटात् । (६) कुर्वन्ति ॥१३२॥

हील० निज० । धैर्येण दानेन सुराणां पर्वता द्रुमाः । पञ्चमेरवः कल्पवृक्षाश्च जिताः सन्तो मिलित्वा मन्त्रणं कुर्वते ॥१३२॥

हीसुं० [१]अधिपौ [२]निखिलक्षमाभृतां [३]सुरसेव्यौ [४]कलधौतदीधिती ।
[५]हिमहेमगिरी [६]नु [७]जङ्गमौ मुनिचन्द्रौ भुवि तौ [८]विजहृतुः ॥१३३॥

(१) स्वामिनौ । (२) साधूनां पर्वतानां च । (३) देवैरुपासनीयौ । (४) कलधौतं-स्वर्णं तद्वत्कायकान्ती ययोः । पक्षे हेमरजतयोः कान्ती ययोस्तौ । (५) हिमाचलसुमेरू इव । (६) नु इति उत्प्रेक्षे । (७) विचरन्तौ (८) विहारं चक्रतुः ॥

हील० द्वौ सूरी विजहृतुः । क्षमावतां गिरीणां वा मुख्यौ । पुनः "कलधौतं स्वर्णरूप्ययो"रित्यनेकार्थः । तद्वत्तेन वा कान्तियुक्तौ जङ्गमौ हिमगिरि-हेमगिरी किम ? ॥१३३॥

हीसुं० अथ [१]भावडसूनुसूरिराड् मुदि[२]रैर्मेदुरिते नभस्तले ।
इव [३]मानस [४]इष्टमानसः कृतवान्[५]सुरतिबन्दिरे [६] स्थितिम् ॥१३४॥

(१) श्रीविजयदानसूरिः । (२) मेघैर्व्याप्तैर्गगनमण्डले । वर्षाकाले इत्यर्थः । (३) मानसनाम्नि सरसि । (४) हंसः । "नृपमानसमिष्टमानस"इति नैषधे । (५) सुरतिनामपुरे । (६) चातुर्मासं चक्रे ॥१३४॥

---

1. परावेर्जेः ३-३-२८ इति सिद्धहेमसूत्रानुसारेण पराजयते पराजेष्ट च रूपद्वयं योग्यम् । 2. इति हीरविजयसूरिगुणाः हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० भावडेभ्यपुत्रः श्रीविजयदानसूरिर्मेघपृष्ठे गगने प्रावृषि सूरतिबन्दिरे स्थितवान् । यथा हंसो मानससरसि तिष्ठति ॥१३४॥

हीसुं० [1]विलसत्य[१]थ मेद[२]पाटकाभिधदेशो [३]वसुधाविशेषकः ।
[४]निखिलेष्वपि मण्डलेषु यः [५]प्रमुखोऽङ्गा[६]वयवेषु [७]वक्त्रवत् ॥१३५॥

(१) अथेति एकस्मिन्समये । (२) मेदपाटनामा देशः । (३) पृथिव्यास्तिलक इव । (४) समस्तदेशेषु । (५) मुख्यः । (६) शरीरावयवेषु । (७) मुखमिव ॥१३५॥

हील० न्यक्षदेशमुख्यो मेदपाटकदेशोऽस्ति ॥१३५॥

हीसुं० [१]सुरमन्दिरजित्वरश्रिया गमितं येन [२]विमाननीयताम् ।
[३]फणभृद्भुवनं [४]भुवस्तलं भजति [५]व्रीडभरोदयादिव ॥१३६॥

(१) स्वर्गलोकजयनशीललक्ष्म्या । (२) अवगणनाम् । (३) नागलोकः । (४) रसातलम् । (५) लज्जातिशयोदयादिव ॥१३६॥

हील० येन हीनीकृतो नागलोकः पातालं गतः ॥१३६॥

हीसुं० [१]अलकायितपूःपरम्पराः [२]परमं बि[३]भ्रति यत्र विभ्रमम् ।
[४]नभसोऽ[५]नवलम्बनच्युतेः [६]शतशोंऽशा इव [७]भूतले [८]दिवः ॥१३७॥

(१) धनदनगरीवदाचरिता पुरीणां श्रेणयो यत्र । (२) उत्कृष्टशोभाम् । (३) धारयन्ति । (४) आकाशात् । (५) आधाररहितत्वेन पतनात् । (६) शतसङ्ख्याः विभागाः । (७) भूमण्डलोपरि । (८) स्वर्गस्य ॥१३७॥

हील० यत्रालकासदृशाः पुर्यः शोभन्ते । उत्प्रेक्ष्यते । आकाशान्निराधारत्वेन च्युतिर्यस्यास्तादृश्या दिवः स्वर्गस्य शतमंशाः ॥१३७॥

हीसुं० [१]त्रिजगद्विजयोद्यतस्य [२]यद्वनराज्यो [३]रतिजानिधन्विनः ।
[४]सुमसङ्गतषट्पदा [५]धनुर्विशिखोल्लासि खलूरिका इव ॥१३८॥

(१) त्रैलोक्यं जेतुं कृतोद्यमस्य । (२) नारदपुरीवनश्रेणयः । (३) कामधनुर्धरस्य । (४) पुष्पेषु मकरन्दपानार्थं लीनभृङ्गा यासु । (५) कोदण्ड बाणयुक्ताः शस्त्राभ्यासभुव इव ॥

हील० अलिकलितपुष्पयुक्ता वनश्रेण्यः शोभन्ते । उत्प्रेक्ष्यते । कामस्य धनुर्भिर्बाणैः शोभिन्यः खलूरिका धनुर्विद्याभ्यसनभूमयः ॥१३८॥

हीसुं० [१]श्रितनागसगन्धसा[र]भूरुहमाला व्यलसन्निहाचलाः ।
मलयस्य [२]विलासमूर्त्तयः [३]शमनाशाङ्कम[४]पास्य हृष्यतः ॥१३९॥[2]

1. अथ विजयसेनसूरिदीक्षावसरः हील० । 2. इति मेदपाटमण्डलः हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) आश्रिता गजा याभिस्तथा सह गन्धैष्प(: प)रिमलैस्तथा सारैर्मज्जि(ज्जा)भिर्वर्त्तन्ते ये तादृशास्तरुश्रेणयः । मलयाचलपक्षे-आश्रिता भुजङ्गा याभिस्तादृशाश्चन्दनतरुपङ्क्तयः । (२) क्रीडाकायाः । (३) यमवाञ्छाक्रोडं तत्त्वतस्तु दक्षिणदिश उत्सङ्गम् । (४) त्यक्त्वा ॥१३९॥

हील० श्रिता नागाः -सर्पा हस्तिनो वा तथा सह गन्धैः सारैर्मज्जिभिश्च वर्त्तन्ते, तादृशा वृक्षा येषु । तत्त्वतश्चन्दन वृक्षयुक्ताः पर्वताः शोभन्ते । उत्प्रेक्ष्यते । यमस्य वाञ्छाया अङ्कमुत्सङ्गम् । तत्त्वतः दक्षिणदिक्क्रोडम् । त्यक्त्वा मुदितस्य मलयगिरेः क्रीडार्थं कायाः ॥१३९॥

हीसुं० इह [१]नीवृति नारदाभिधा नगरी नागपुरीव राजते ।
[२]बलिराजविराजितान्तरा [३]रममाणानणुभोगिभाजिनी ॥१४०॥

(१) मेदपाटे । (२) बलवत्ता राज्ञा शोभिता । पक्षे- बलिनाम्ना राज्ञा शोभिता । (३) स्वैरं क्रीडन्तोऽनणवो महान्तो भोगभाजो राज्यादिसातयुताः पुरुषास्तान्भजन्ते इत्येवंशीला । पक्षे- खेलत्प्रलम्बभुजगयुक्ता ॥१४०॥

हील० इह नी० । मेदपाटे नड्डुलाई बलिष्ठराज्ञा युक्ता । पुनर्बहुधनाढ्यैरहिभिर्वा युक्ता शोभते । उत्प्रेक्ष्यते । भोगा(ग)वती ॥१४०॥

हीसुं० [१]उपमातुमिवामरावतीं भुवनं [२]तन्निभभावदुर्विधे ।
कृतवानर[३]विन्दनन्दनः पुरमेतां [४]विबुधै[५]रुपासिताम् ॥१४१॥

(१) उपमायुक्तां कर्त्तुम् । (२) तत्तुल्यापरनगरदरिद्रे । (३) ब्रह्मा । "पद्मनन्दनसूतारिरंसुना" इति नैषधे । तद्वदरविन्दनन्दनः । (४) पण्डितैर्देवैश्च । (५) सेविताम् ॥१४१॥

हील० अमरावतीतुल्यार्थैर्दरिद्रे जगति तत्सदृशामेनां विधिरकरोत् ॥१४१॥

हीसुं० [१]युवती युवराजिराजिते नगरे [२]सालनिभान्म[३]नोभवः ।
स्थितवान्नव[४]सूरिसाध्वसादिव दुर्ग्गं प्रविधाय [५]सानुगः ॥१४२॥

(१) तरुणी तरुणश्रेणीभूषिते । (२) प्राकारकपटात् । (३) स्मरः । (४) नवीनः सूरिः श्रीहीरविजयसूरिस्तस्य भयात् । (५) ससेवकः ॥१४२॥

हील० पुरदुर्गदम्भात्कोट्टं कृत्वा । उत्प्रेक्ष्यते । स्वसेवकयुक्तः कामः स्थितः ॥१४२॥

हीसुं० [१]यदनन्यहिरण्यशीतरुग्मणिक्लृप्तालयलक्ष्मिकाङ्क्षया ।
चरणं [२]मुरवैरिणोऽनिशं [३]शुचिचन्द्रावु[४]पचेरतुः किमु ॥१४३॥

(१) यस्याः पुर्या असाधारणानां स्वर्णैश्चन्द्रोपलैः कल्पितानां गृहाणां शोभां प्राप्तुं वाञ्छन्तौ । (२) विष्णुपदम् । (३) सूर्याचन्द्रमसौ । "हरिः शुचीनौ गगनाध्वजाध्वगा" विति हैम्याम् ॥ (४) भजेते स्म ॥१४३॥

हील० यस्य पुरस्य साधारणस्वर्णैश्चन्द्रकान्तमणिभिः कृतगृहशोभेच्छया सूर्यचन्द्रौ विष्णुपदं सेवेते स्म ॥१४३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिसुं० [१]प्रविभाव्य [२]भवेन [३]भस्मितं स्मरमे[४]तन्निखिलानुजीविनः ।
किमु यत्र समेत्य चक्रिरे वसतिं [५]पौरपरम्परोपधेः ॥१४४॥

(१) दृष्ट्वा । (२) शंभुना । (३) भस्मीकृतम् । (४) स्मरस्य समस्ताः सेवकाः । (५) नागराणां कपटात् ॥१४४॥

हील० स्मरं दग्धं दृष्ट्वा तत्सेवकाः । उत्प्रेक्ष्यते । नागरजनदम्भात्तत्पुरे वासं कृतवन्तः ॥१४४॥

हीसुं० कुतुका[१]द्बहुरूपिणं स्मरं हृदि [२]निश्चित्य रतिर्युव[३]भ्रमात् ।
स्वयमप्यकरोदि[४]दंमिता निजमू[1]र्त्तीः किमु [५]यद्वधूपधेः ॥१४५॥[2]

(१) अनेकाणि(नि) रूपाणि सन्त्यस्येति । (२) ज्ञात्वा । (३) पुरीजनोपधेः । (४) स्मरशरीरसङ्ख्याः । (५) नगरीनागरीकपटात् ॥१४५॥

हील० कुतु० । बहुरूपधारिणं स्मरं दृष्ट्वा रतिर्यद्वधूदम्भात्तावन्ति रूपाणि कृतवतीव ॥१४५॥

हीसुं० [१]मुरवैरिपुरीव [२]माधवोऽजनि तत्रोदयसिं[ह]भूधनः ।
धरणीरमणं [३]प्रणीय यं शुशुभे श्व[४](सू)रमिवा[५]रविन्दिनी ॥१४६॥

(१) द्वारिकायामिव । (२) कृष्णः । (३) पृथ्वी यं पतिं प्रविधाय । (४) सूर्यम् । (५) पद्मिनीव ॥१४६॥

हील० यथा द्वारिकायां कृष्णः तद्वन्नारदपुर्यां **उदयसिंहराजा** जातः । यं भर्तारं कृत्वा भूरेजे । यथा रविमाप्य कमलिनी राजते ॥१४६॥

हीसुं० [१]युवतीव [२]युवानमङ्ग[३]जान्क[४]लधौतप्रमुखान्खनी[५]व्रजान् ।
पृथिवी [६]पृथिवीपुरन्दरं यमवाप्य [७]प्रमदादजीजनत् ॥१४७॥

(१) स्त्री । (२) पुरुषं प्राप्य । (३) पुत्राञ्जनयति । (४) स्वर्णरूप्यादीन् । (५) खानिनिकारान् । (६) उदयसिंहनृपम् । (७) हर्षात् ॥१४७॥

हील० यथा युवानं प्राप्य युवती सुताञ्जनयति तद्वत् यं पतिमाप्य स्वर्णरूप्याकरान्प्रकटीकृतवती ॥१४७॥

हीसुं० [१]विपुलां [२]विपुलाहवाहताहितशूरस्त्रवदस्त्रराशिना ।
[३]हृदयेशव[४]दूर्णुणा(ना)व यो [५]नवकौसुम्भिकवास[सा] वशाम् ॥१४८॥

(१) पृथ्वीम् । (२) महासङ्ग्रामे हतानां रिपूणां सुभटानां शरीरनिः सरद्रुधिरव्रजेन । (३) भर्त्तेव । (४) आच्छादयामास । (५) कुसुम्भेन रक्तं वस्त्रं कौसुम्भिकम् ॥१४८॥

हील० यो राजा महासङ्ग्रामेषु हतशत्रुभ्यो निःसरद्रक्तौघेन पृथ्वीमूर्णुनावाच्छादयामास । यथा भर्त्ता नवेन कुसुम्भरक्तवसनेन वशामूर्णोनोति । ह्लादिको धातुः ॥१४८॥

---

1. ०र्त्तीरिव हीमु० । 2. इति नारदपुरी हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० बहुना महिमाभिनन्द्यते [1]किमु यस्योदयसिंहभूभुजः ।
न [१]चिराद[२]जरामरीभवे[३]द्युधि[2]यो[४]ऽमुष्य[५] हि [६]सम्मुखीभवेत् ॥१४९॥[3]

(१) शीघ्रम् (२) देवभावं भजेत् । (३) सङ्ग्रामे । (४) यः सुभटः । (५) अस्य । (६) सङ्ग्रामाय सम्मुखीभवेत्सङ्ग्रामं कुर्यादनेनेत्यर्थः ॥१४९॥

हील० **बहुना०** । **उदयसिंह**राज्ञो महिमा किं वर्ण्यते ?। योऽनेन सह सङ्ग्रामं कुर्यात् स शीघ्रं देवभूयं भजेत् ॥*१४९॥

हीसुं० अपि [१]तत्र कमाख्य[२]नैगमोऽजनि तद्भू[३]पुरुहूतसम्मतः ।
व्यवहारिषु यः [४]पुरो[4]गतामिव [५]वर्गेषु दधार [६]धर्म्मवत् ॥१५०॥

(१) नारदपुर्याम् । (२) वणिक् । (३) राज्ञो मान्यः । (४) प्रकृष्टताम् । (५) अर्थकामेषु । (६) धर्मः । प्रधानस्तयोस्तदधीनत्वात् ॥१५०॥

हील० तत्र **कमोसाधू** राजमान्योऽभवत् । यथा चतुर्वर्गेषु धर्मः श्रेष्ठः ॥★१५०॥

हीसुं० किमपा[१]स्य [२]जिनांह्रिसेवया शशिना[5] [४]येन [३]कलङ्ककश्मलम् ।
स्थितमेत्य [५]दिवः [६]क्षितौ [७]पुनर्न[८]भसो [९]नीलिमसङ्गशङ्कया ॥१५१॥

(१) त्यक्त्वा । (२) जिनो-वीतरागः कृष्णश्च तस्यांह्रिः-पदस्य सेवया । विष्णुपदसेवया । (३) कलङ्कमलम् । (४) येन यद्व्यवहारिरूपेण । (५) आकाशादागत्य । (६) भूमौ स्थितम् । (७) व्याघुट्य । (८) आकाशस्य । (९) श्यामत्वस्य सङ्गस्याशङ्कया ॥१५१॥

हील० स्वविमानस्थप्रतिमां गगनं वा तत्सेवया कलङ्करहितश्चन्द्र आकाशकालिमस्पर्शभयाद् भुव्यागतः ॥१५१॥

हीसुं० [१]करवीरगृहत्व[२]मुग्रतां प्रविहाया[३]त्मविरूपनेत्रताम् ।
[४]पुरि [५]यन्निभतोऽवतीर्ण्णवानिव [६]पीयूषमयूखशेखरः ॥१५२॥[6]

(१) श्मशानवेश्मताम् । (२) चण्डत्वम् । (३) स्वस्य विरुद्धं विकृताकारं वह्निमयत्वान्नेत्रं तत, ताम् । "अहिर्बुध्नो विरूपाक्षविषान्तकौ" इति हैम्याम् । (४) नारदपुर्याम् । (५) कमाकपटात् । (६) चन्द्रशेखरः । शंभुः ॥१५२॥

हील० श्मशानगृहत्वं चण्डतां विरूपतां त्यक्त्वा शंभुरुत्तरितः ॥१५२॥

हीसुं० कोडाईत्यस्य कान्ता[7]भूज्जग[१]तीयुवतीमणिः ।
[४]यथा सुमनसां [२] सार्वभौमस्य [३]जयवाहिनी ॥१५३॥

(१) त्रिभुवनवनिताचूडामणिः । (२) इन्द्रस्य । (३) शची । (४) यथा इवार्थे ॥१५३॥

---

1. **किममुष्योदय०** हीमु । 2. **योऽभ्येत्य** हीमु० । 3. इत्युदयसिंहराणकः हील० । 4. **०गतां समवर्गे०** हीमु० । 5. **०नापास्य कल०** हील० । 6. इति कमोसाहः हील० । 7. **०न्तासीज्ज०** हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० तस्य कोडां नाम्नीस्त्रीरत्नं जातम् । यथेन्द्रस्य पौलोमी स्यात् ॥१५३॥

हीसुं० रम्भा दम्भादिवा[1]मुष्या[2]स्त्रिदशी [3]त्रिदशौकसः ।
[4]विमोहिता कमारूपं [5]निरूप्य[1] क्ष्मामुपागता ॥१५४॥

(१) कोडिमादेव्याः । (२) देवी । (३) देवलोकात् । (४) अनुरक्ता जाता । (५) दृष्ट्वा । (६) पृथ्वीम् । (७) समेता ॥१५४॥

हील० रम्भा०। अस्या दम्भाद्रम्भा नाम्नी देवी कमारूपं दृष्ट्वा मोहिता । स्वर्गृहात्पुर्यामागता ॥१५४॥

हीसुं० दृष्ट्वा [1]पतिं [2]रतं [3]रत्यां [4]प्रीत्येव [5]त्यक्तकायया ।
दुःखात्स[6]पत्न्यास्त[7]त्पत्न्या व्याजाज्जन्माददेऽपरम्[8] ॥१५५॥

(१) स्मरम् । (२) अत्यासक्तम् । (३) रतिविषये । (४) अपरपत्न्या प्रीतिनाम्न्या । (५) दुःखादुज्झितशरीरया । (६) समानः पतिर्यस्याः सा सपत्नी । "सपत्न्यादिषु नित्यं नुक् वाच्यः" इति सपत्नी । (७) कमाकान्तायाः । (८) अन्यमवतारम् ॥१५५॥

हील० रतिसक्तं स्मरं दृष्ट्वा प्रीत्या सपत्नीदुःखादन्यज्जन्म गृहीतम् ॥१५५॥

हीसुं० त्यक्त्वा[4]वतीर्णां पुरुषं [1]पुराणं [2]स्वमिमां [3]रमाम् ।
विलक्ष्यः [5]प्रेक्ष्य तद्दुःखान्म[6]मज्जेवार्णवे जले ॥१५६॥

(१) वृद्धपुरुषत्वान्निजमपास्य । (२) कोडिमदेवीरूपाम् । (३) लक्ष्मीम् । (४) वतीर्णाम् । (५) ज्ञात्वा । (६) कृष्णः समुद्रे बुब्रूडः ॥१५६॥

हील० स्वं पतिं त्यक्त्वा मृत्वा कोडारूपेणात्तावतारं दृष्ट्वा श्रीपतिरर्णवजले मग्नवान् ॥१५६॥

हीसुं० स्पर्द्धयेव [1]दिवा दम्भादस्याः [2]स्त्रैणशिरोमणेः ।
[4]धृतेतरा[3] पुरा[5] रम्भा [6]चित्तभूभूमिभृत्सभा ॥१५७॥[2]

(१) स्वर्गेण । (२) त्रिभुवनस्त्रीगणचुडामणिरूपायाः । (३) अपरा रम्भा । (४) धारिता । (५) नारदुपुर्या (६) स्मरराजस्थानसभा ॥१५७॥

हील० दिवा सह स्पर्द्धया नारदपुरा अस्या मिषादितरा रम्भा धृता । किंभूता रम्भा ?। चित्तभूः कामराजा तस्यास्थानसभा ॥१५७॥

हीसुं० [1]अमन्दानन्दसन्दोहमेदुरौ [2]तौ वधूवरौ ।
गमयांचक्रतुः कालं [3] केलतीश्रीसुताविव ॥१५८॥

(१) वर्द्धमानप्रमोदसमुदयपुष्टौ । (२) तौ कोडिमदेवी-कमाव्यवहारिणौ । (३) रतिरतीशाविव । "केलतीमदनयोरुपश्रये" इति नैषधे ॥१५८॥

हील० रतिस्मराविव तौ कालमतिचक्रमतुः ॥१५८॥

---

1. ०यास्याम्० हीमु० । 2. इति कोडिमदेवी हील०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]कदाप्यदर्शि [२]तत्पत्न्या स्वप्ने [३]सुखशयानया ।
उत्सङ्गसङ्गतः सिंहः [४]श्रेयोराशिरिवा[५]ङ्गवान् ॥१५९॥

(१) कस्मिन्नप्यवसरे । (२) कमाकान्तया — कोडिमदेव्या । (३) सुखेन सुप्तया । (४) पुण्यसमूह इव । (५) मूर्त्तिमान् ॥१५९॥

हील० कदा० । तत्पत्नया स्वप्ने सिंहो दृष्टः ॥ १५९ ॥

हीसुं० मृणालधवलान्स्कन्धे बिभ्रद्बन्धुरकेसरान् ।
शिखरे शिखरी शंभोः शारदीनानिवाम्बुदान् ॥१६०॥[1]

हील० यथा कैलाशः शरन्मेघान् धत्ते, तद्वदुज्ज्वलकेसरान् दधन् ॥१६०॥

हीसुं० किम[१]भ्यर्थयमानानामुच्छेत्तुं [२]दौस्थ्यमर्थि[३]नाम् ।
[४]कुम्भिकुम्भभिदालग्ना मुक्ता बिभ्रन्न[६]खान्तरे ॥१६१॥

(१) याचमानानाम् । (२) निवारयितुम् । (३) दरिद्रताम् । (४) याचकानाम् । (५) करिशिरोविदारणावसरे लग्ना । (६) नखानां रन्ध्रेष्वन्तराले ॥१६१॥

हील० भद्रहस्तिवधाल्लग्नानि मुक्ताफलानि नखान्तर्बिभ्रन् । उत्प्रेक्ष्यते । याचकान् धनाढ्यीकर्त्तुम् ॥१६१॥

हीसुं० [१]जृम्भणादाननं [२]काशप्रतीकाशो विकाशयन् ।
[३]मत्तस्तम्बेरमीकान्तकवलीकृतये किमु ॥ १६२ ॥ आदिश्चतुर्भिः कुलकम् ।[2]

(१) जृम्भीकरणावसरे । (२) काशाः प्रसिद्धास्तेषां प्रतीकाशस्तुल्यशुभ्रत्वात् । "विलसत्काश-चामर" इति रघुवंशे । (३) मत्तेभकवलीकरणाय ॥१६२॥

हील० जृम्भीकरणान्मुखं विकाशयन् । उत्प्रेक्ष्यते । मत्तेभभक्षणाय ॥१६२॥

हीसुं० [१]जहे [२]महेलया निद्रा [३]विनिद्रन्नेत्रपत्रया ।
सङ्गतिर्दौ[४]र्ज्जनीयेव सज्जनानां [५]समज्यया ॥१६३॥

(१) त्यक्ता । (२) कोडिमदेव्या । (३) विकसितनयनकमलपत्रया । (४) दुर्जनसम्बन्धिनी । (५) सभया ॥१६३॥

हील० जहे० । विकसन्नेत्रया तया निद्रा जहे- त्यक्ता । यथा सज्जनानां साधूनां पर्षदा, दुर्जनानामियं दौर्जनीया सङ्गतिः, सा हीयते ॥१६३॥

हीसुं० [१]कंसारेरिव रुक्मिण्या स [२]स्वप्नः [३]स्वपतेः पुरः ।
[४]तया मुदितयाभाषि [५]भाषितेशोपमेयया: ॥१६४॥

(१) कृष्णस्य । (२) सिंहस्वप्नः । (३) कमाख्यस्याग्रे । (४) कोडिमदेव्या । (५)

1. हीसुंप्रतौ अस्य श्लोकस्य टीका नास्ति । 2. इति कोडिमदेवी हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाक्चातुर्यात्सरस्वत्या सार्द्धमुपमीयते ॥१६४॥

हील० **कंसारे०** । भाषितेशया सरस्वत्योपमीयते । तादृश्या तया स स्वप्नः स्वभर्तुः पुरो भाषितः । यथा रुक्मिण्या श्रीपतेः पुरो नक्तदृष्टः स्वप्न उक्तः ॥१६४॥

हीसुं० **स [1]विचार्य [2]विचारज्ञोऽ[3]ङ्गना[4]मिदमजीगदत् ।**
सूनुः सिंह इवा[6]धृष्यो भविता तव भामिनि ! ॥१६५॥

(१) विमृश्य । (२) विचारचतुरः । (३) स्वपत्नीम् । (४) इदं वक्ष्यमाणम् । (५) कथयति स्म । (६) अनाकलनीयः ॥१६५॥

हील० स **कमा**नामव्यवहारी प्रियामिति कथयति स्म । हे वर्णिनि ! तव सिंहतुल्यः पुत्रो भविता ॥१६५॥

हीसुं० **[1]गन्धसिन्धुरराजस्य [2]वशेवालसगामिनी ।**
[3]अन्तर्वत्नी ततः पत्नी [4]महेभ्यस्य [5]बभूवुषी ॥१६६॥

(१) मदमत्तगजेन्द्रस्य । (२) वशा स्त्री । एतावता हस्तिनी । यद्यपि वशाशब्दो हस्तिन्यां प्रवर्त्तते तथापि बाहुल्यान्नार्यामेव प्रयुज्यमानत्वाद्गन्धसिन्धुरराजस्य वशा हस्तिनी । वशा स्त्री-गजयोषितो "इत्यनेकार्थः । (३) गुर्विणी । (४) महेभ्यपत्नी कोडिमदेवी । (५) भूता ॥१६६॥

हील० ततो हस्तिनीव मन्थरगामिनी इभ्यस्त्री गर्भवती सञ्जायते स्म । "वशा नार्यां वन्ध्यगव्यां हस्तिन्यां दुहितर्यपि । वेश्यायां०" इत्यनेकार्थः । वशाशब्दो नार्यां बाहुल्यात्समग्रपदोपादनं न केवलम् ॥१६६॥

हीसुं० **समयेऽथ [1]तया [3]रत्या [4]ब्रह्मसूरिव [2]नन्दनः ।**
सुषुवे [5]सुषमास्तोमः [6]प्रोद्भवन्मूर्त्तिमानिव ॥१६७॥

(१) कोडिमदेव्या । (२) सुतः । (३) कन्दर्पपत्न्या । (४) अनिरुद्ध इव । (५) सातिशायिशोभासमूह इव । (६) प्रकटीभवन् ॥१६७॥

हील० **सम०** । यथा स्मरपत्न्या अनिरुद्धनामा नन्दनः प्रसूतः तथा तया सुतः प्रसूत । उत्प्रेक्ष्यते । मूर्तः शोभातिशयः ॥१६७॥

हीसुं० **[1]तनूजन्माननज्योत्स्नानाथे [2]लवणिमामृतम् ।**
चकोरेणेव [3]पिबता ननृते [4]पितृचक्षुषा ॥१६८॥

(१) पुत्रमुखचन्द्रे । (२) लावण्यसुधाम् । (३) सादरं विलोकयता । (४) कमानयनेन ॥१६८ ॥

हील० सुतवदनचन्द्रे लावण्यसुधां पिबता सादरं विलोकयता पितृनेत्रेण निर्त्तितम् । यथा चकोरेण नृत्यते ॥१६८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० क्षीरकण्ठः [१]कृतोत्कण्ठः सञ्जाते [२]जातकर्म्मणि ।
[३]उत्तेजित [४]इवादर्शः शिश्रिये परमां श्रियम् ॥१६९॥

(१) कृता स्वजनानामौत्सुक्यं येन । (२) अशुचिकर्म्मनिवर्तनादिकम् । (३) शाणोल्लिखितः । (४) दर्प्पणः ॥१६९॥

हील० सौन्दर्यादिभिः कृता उत्कण्ठा येन, तादृशः शिशुर्दर्पण इव शुशुभे ॥१६९॥

हीसुं० [१]अयं [२]जयं यतः [३]कर्ताः सिंहवद्द्वेषि[४]दन्तिनाम् ।
जयसिंह इतीवास्य [५]बीजी [६]नाम [७]विनिर्ममे ॥१७०॥

(१) कुमारः । (२) पराभवम् । (३) करिष्यति । (४) वैरिगजानाम् । (५) बीजी तत्पिता कमाख्यः । (६) जयसिंह इति नाम । (७) चक्रे ॥१७०॥

हील० कुनयगजानां जयकृद्भावीति पिता जयसिंहनामाकरोत् ॥१७०॥

हीसुं० [१]धात्रीभिः [२]प्रेमपात्रीभिः पाल्यमानः स [३]बाल्यतः ।
[४]रामो [५]यादवरामाभिरि[१]वा[६]वर्द्धि दिने दिने ॥१७१॥

(१) उपमातृभिः । (२) स्नेहभाजनैः । (३) जन्मदिनमारभ्य । (४) बलभद्रः । (५) यादवाङ्गनाभिः । (६) वर्द्धितः ॥ १७१ ॥

हील० यथा बलभद्रो यदुवंशोत्पन्नवनितापाल्यमानो वर्द्धते । तथा स वर्द्धते स्म ॥१७१॥

हीसुं० पुपोषा[१]वयवैर्वृद्धिं स[२] क्रमेण [३]स्तनंधयः ।
[४]आलवालाम्बुपायीव शि(शा)खाभि[५]श्चन्दनाङ्कुरः ॥१७२॥

(१) शरीराङ्गोपाङ्गैः । (२) जयसिंहकुमारः । (३) स्तन्यपायी । (४) स्थानकजलपानशीलः । (५) शाखाभिः श्रीखण्डप्ररोहः ॥१७२॥

हील० स पयोधरपयः पायी बालोऽङ्गोपाङ्गानि पुष्णाति स्म । यथा स्थानकाम्बुना श्रीखण्डवृक्ष उपचयं लभते ॥१७२॥

हीसुं० स [१]प्राक्च[२]ङ्क्रमणैः पित्रोरारोप्य [३]प्रीतिवल्लरीम्[२] ।
[४]आलपन्सफ[५]लीचक्रे वर्षन्निव [६]घनाघनः ॥१७३॥

(१) प्रथमम् । (२) हिण्डनैः । (३) स्नेहवल्लीम् । (४) ब्रुवन् । (५) फलयुक्ताम् । (६) मेघः ॥१७३॥

हील० स बालः पूर्वं हिण्डनैः स्नेहलतां स्थानके रोपयित्वा पश्चात् ब्रुवन्सन् सफलां चक्रे । यथा मेघो वर्षन् प्राक् वल्लीं वृक्षादिष्वारोप्य सफलीकुरुते ॥*१७३॥

---

1. ०वासौ ववृधे क्रमात् हीमु० । 2. ०वीरुधम् । हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]वर्द्धमान: क्रमे[1]णाथ सोऽजनिष्टा[२]ष्टहायन: ।
[३]प्रत्यहं [४]प्रणय[५]न्केली: [६]सिन्धुराधिपपोतवत् ॥१७४॥

(१) वृद्धिं प्राप्नुवन् । (२) अष्टवर्ष: । (३) नित्यम् । (४) कुर्वन् । (५) क्रीडा: (६) गजेन्द्रबाल: । "स्यात्पोतो दशवार्षिक:" इति हैम्याम् ॥१७४॥

हील० यथा गजपोतो । दशवर्षीयगज: केलिं कुरुते तद्वत्क्रीडां कुर्वन्सोऽष्टवार्षिक: सञ्जातवान् ॥१७४॥

हीसुं० [१]सोऽ[२]नवद्यास्ततो विद्या: [३]स्माधीते [४]गुरुसन्निधौ ।
[५]हार्दं [६]तासां [२]स जग्राहाऽ[७]भिज्ञव[८]न्मुग्धचेतसाम् ॥१७५॥

(१) जयसिंहकुमार: । (२) प्रशस्या: । (३) पठति स्म । (४) कलाचार्यपार्श्वे । (५) रहस्यविशेषादि । (६) विद्यानाम् । (७) विदग्ध: । (८) निर्बुद्धीनाम् ॥१७५॥

हील० स विद्या: पठति स्म । च पुनस्तासां विद्यानां रहस्यं जगृहे । यथा विद्वान् मुर्खपुंसा रहस्यं गृह्णाति ॥★१७५॥

हीसूं० [१]सिद्ध्यध्वानं [२]प्रतिष्ठासुर्वि[३]धित्सुर्धर्म्म[४]मार्हतम् ।
[५]सखायमिव [६]तद्वप्ता [७]संयमं [८]समुपाददे ॥१७६॥

(१) मुक्तिनगरीमार्गम् । (२) प्रतिस्थातुकाम: । (३) कर्त्तुमिच्छु: । (४) तीर्थकरप्रणीतं धर्मम् । (५) मित्रमिव । (६) जयसिंहपिता कमाख्य: । (७) चारित्रम् । (८) जग्राह ॥१७६॥

हील० सिद्ध्य० । सिद्धिमार्गं प्रस्थातुमिच्छुष्पि(: पि)ता सखायं संयमं गृह्णाति स्म ॥१७६॥

हीसुं० [१]ततो [३]नमसितुं[3] [४]सूरिं [५]कुमार: स [२]कदाचन ।
[६]प्रतिष्ठते स्म [७]सानन्दं [८]वृषभाङ्कमिवार्षभि: ॥१७७॥

(१) पितृदीक्षानन्तरम् । (२) कियति काले । (३) वन्दितुम् । (४) विजयदानसूरिम् । (५) जयसिंह: । (६) चलति स्म । (७) सहर्षम् । (८) ऋषभदेवम् । (९) भरत: ॥१७७॥

हील० तत: कुमार: सूरिं नन्तुं प्रचलति स्म । यथा भरतचक्री स्वतातं ऋषभदेवं प्रणेतुं प्रचलति स्म ॥★१७७॥

हीसुं० [१]प्रीतिवापीपय:पूराप्लवनै: [२]पुलकाङ्किता ।
[३]प्रसूस्तमनु[४]याति स्म [५] गौरिवाङ्गजमात्मन: ॥१७८॥

(१) स्नेहरूपदीर्घिकाजलप्लवे स्नानकरणैर्मज्जनै: । (२) रोमाञ्चिता । (३) माता कोडिमदेवी ।

1. ०णासावजनि० हीमु० । 2. च । हीमु० । 3. ०तुं तातं० । हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४) अनुगच्छति स्म । (५) धेनुर्निजवत्सम् ॥१७८॥

हील० प्रसूः कोडाई तमनुयाति स्म । यथा गौर्वत्समनुगच्छति ॥१७८॥

हीसुं० [1]श्रीमन्मुनिनिशारत्नं जयसिंहकुमारराट् ।
प्रणते[2]र्गोचरीचक्रे [3]श्रीवीरमति[4]मुक्तवत् ॥१७९॥

(१) विजयदानसूरिम् । (२) नमस्करोति स्म । (३) महावीरम् । (४) अतिमुक्तकनामा कुमारः ॥१७९॥

हील० कुमारेण श्रीविजयदानसूरिर्नम्यते स्म । यथातिमुक्तकः श्रीवीरं प्रणतवान् ॥१६९॥

हीसुं० अथ [1]पृथुकपुरोगस्सं[2]मदेन [3]व्रतीन्दोरिव [4]गजसुकुमालः स्वामिनो[5]ऽरिष्टनेमेः ।
अधिकम[6]धरयन्तीं [7]साधिमानं [8]सुधानां श्रवणविषयभावं देशना[9]मानिनाय ॥१८०॥

(१) कुमारराजः । (२) प्रीत्या । (३) विजयदानसूरेः । (४) कृष्णलघुभ्राता । (५) नेमिनाथस्य । (६) तिरस्कुर्वतीम् । (७) चारुताम् । (८) अमृतानाम् । (९) देशनां श्रृणोति स्म ॥१८०॥

हील० अथ पृ० । शिशुमुख्यः सुधाचारुतां धिक्कुर्वती सूरिदेशनां श्रुतवान् । यथा कृष्णलघुभ्राता देवक्या अष्टमपुत्रो गजसुकुमालः श्रीनेमिनाथस्य देशनां शुश्राव ॥१८०॥

हील०→ असाराद्देहिनां देहात्सारोऽर्हद्धर्म एव हि ।
उद्धार्योऽनर्थकार्यर्थाद्दानशौण्डेन दानवत् ॥१८१॥←

असा० प्राणिभूघनाद्धर्म एवोद्धरितव्यः । यथानर्थकारिणोऽर्थाद्वदान्येन दानमुद्ध्रियते ॥१८१॥

हीसुं० [1]प्रबुबुधे [2]प्रभुदेश[1]नया तया [3]शिशुसहस्त्रदृशा सममम्बया ।
[4]विशदचन्द्रिकयेव[5] कुमुद्व[6]तीलतिकया [7]कुमुदेन [8]तमीमणेः ॥१८१॥

(१) प्रतिबुध्यते स्म । (२) विजदानसूरिगिरा । (३) कुमारेण । (४) कोडिमदेव्या सार्द्धम् । (५) निर्मलचन्द्रज्योत्स्नया । (६) कुमुदिनीवल्ल्या सह । (७) कैरवेण । (८) चन्द्रस्य ॥

हील० जनन्या समं कुमारेन्द्रेण प्रबोधः प्राप्यते । यथा चन्द्रज्योत्स्नया कैरविण्या सह कैरवेण प्रबुद्ध्यते ॥१८२॥

हीसु० [1]प्रभोरुपान्ते सम[2]मम्ब्या महामहैर्म[3]हेभ्यीभवदर्थिमण्ड[2]ले ।
[4]सुनन्दया सी(सिं)हगिरिः स वज्रस्वामीव जग्राह [5]शिशुस्तपस्याम् ॥१८२॥

(१) सूरिसमीपे । (२) जनन्या समम् । (३) धनाढ्या जायमाना याचकव्रजा येषु । (४) वज्रस्वामिनो जननी सुनन्दानाम्नी । (५) जयसिंहकुमारः । (६) दीक्षाम् ॥१८२॥

हील० प्रभो० । धनाढ्यीकृतयाचकजनैरुत्सवैरम्बया समं शिशुर्दीक्षां जग्राह । यथा सुनन्दया मात्रा सह

→← एतदन्तर्गतः पाठो हीसुंप्रतौ नास्ति । 1. ०यानया० हीमु० । 2. ०डलैः । हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वज्रस्वामी दीक्षां जग्राह ॥*१८३॥

हीसुं० **जयविमल इदं [१]तन्नामधेयं विधिज्ञो [२]व्यधित विजयदानः [३]सूरिसारङ्गराजः ।
पुनर[४]भिनवसूरेस्तं[५] प्रदत्ते स्म सूनो[६]-[७]विनयिन इव वप्ता [८]स्वं क्रमा[1]दागतं[१०] स्वम् ॥१८३[2]॥**

(१) कुमारमुनेरभिधानम् । (२) चकार । (३) सूरिसिंह : । (४) नवीनाचार्यस्य हीरविजयसूरेः । (५) जयविमलमुनिम् । (६) पुत्रस्य (७) विनयवतः । (८) आत्मीयम् । (९) पितृपरिपाट्या समागतम् । (१) द्रव्यम् ॥१८३॥

हील० श्री सूरिर्**जयविमल** इति नाम दत्त्वा तं नवीनसूरेः प्रत्तवान । यथा पिता विनयवतः सुतस्य स्वकीयं स्वं द्रव्यं प्रदत्ते ॥*१८४॥

हीसुं० **विजयदानविभुर्वट[१]पल्लिकाभिधपुरेऽथ विभूषितवा[२]न्दिवम् ।
[३]भुवि [४]भरेण [५]विसार्य पुनर्दिवि [६]प्रथयितुं [७]महिमानमि[८]वात्मनः ॥१८४॥**

(१) वडलीनामनगरे । (२) स्वर्लोकमलङ्करोति स्म । (३) पृथिव्याम् । (४) अतिशयेन । (५) विस्तारयित्वा । (६) विस्तारयितुम् । (७) माहात्म्यम् । (८) स्वस्य ॥१८४॥

हील० **वडलीग्रामे विजयदानसूरिः** स्वर्गतः । उत्प्रेक्ष्यते । भुवि शोभां विस्तार्य स्वर्गे विस्तारयितुं गतः ॥१८५॥

हीसुं० **[१]सूरीन्द्रहीरविजयः [४]प्रतिपद्य [३]पट्टलक्ष्मीं [२]गुरोरनु [५]विशिष्य [७]पुपोष [६]भूषाम् ।
[८]वप्तुर्निजस्य युवराज इवा[९]धिपत्यं [१०]क्रान्तारिचक्रम[११]खिलाम्बुधिमेखलायाः॥१८५॥**

(१) श्री हीरविजयसूरीन्द्रः । (२) विजयदानसूरेः पश्चात् । (३) पट्टश्रियम् (४) प्राप्य । (५) विशेषप्रकारेण । (६) शोभाम् । (७) पुष्णाति स्म । (८) तातस्य (९) प्रभुताम् । (१०) वशीकृतशत्रुवृन्दम् । (११) भूमेः ॥१८५॥

हील० अनु-पश्चात्सूरीन्द्रो विशेषात् शुशुभे । यथा पितुः साम्राज्यं प्राप्य युवराजोऽधिकं दीप्यते ॥१८६॥

हीसुं० **[१]मण्डयत्य[२]मरमन्दिरं [३]गुरौ [४]दीप्यते स्म [५]मुनिवासवोऽ[६]धिकम् ।
[७]पद्मिनीप्रियतमेऽ[८]पराम्बुधेर्मध्यभागमिव [3]श[९]र्वरीवरः ॥१८६॥**

(१) अलङ्कुर्वति (२) स्वर्गलोकम् । (३) विजयदानसूरीन्द्रे । (४) स्फूर्तिं धत्ते स्म । (५) हीरविजयसूरिः । (६) अतिशयेन । (७) सूर्ये । (८) पश्चिमसमुद्रमध्यप्रदेशम् । (९) चन्द्रः ॥१८६॥

हील० गुरौ स्वर्गे गते श्रीसूरिरधिकं दीप्यते स्म । यथा पश्चिमसमुद्रस्य मध्यमभागं गते चन्द्रे सूर्योऽधिकं दीप्यते ॥१८७॥

---

1. ०मेणागत० । हीमु० । 2. इति विजयसेनसूरिदीक्षा-जन्मवर्णनम् हील० । 3. पद्मिनीपतिः हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]यद्गेहशृङ्गाङ्गणनद्धमारुतप्रेङ्खत्पताकापटपल्लवच्छलात् ।
[२]गोष्ठीमनु[३]ष्ठातुमिवा[४]मरावतीं [1]प्रियां [५]सखीमाह्वयतीव पाणिना ॥१८७[2]॥

(१) डीसानगरगृहशिखरप्राङ्गणबद्धवातान्दोलितध्वजपटकपटात् । (२) रहस्यवार्त्ताम् । (३) कर्त्तुम् । (४) इन्द्रपुरीम् । (५) इष्टवयसीम् । (६) आकारयति ॥१८७॥

हील० यत्पुरं डीसानगरं गृहाणां शृङ्गाङ्गणबद्धः पुनर्वायुना कम्पितो यो ध्वजपल्लवः । 'जातावेकवचनम्' । तस्य दम्भात् स्वसखीमिन्द्रपुरीं गोष्ठीकर्त्तुं पाणिनाह्वयतीवाकारयतीव । 'ध्वजवाचके एकत्कम्' ॥१८८॥

हीसुं० [१]यदीयराजद्विभवाभिभूतया [२]पौलस्त्यपूर्या किमभाजि[३] लज्जया ।
[४]यदुज्झ्यतेऽद्यापि [५]तया न [६]भङ्गाभिज्ञानमी[७]शानशिलोच्चयाश्रयः ॥१८८॥

(१) डीसानगरस्य विलसल्लक्ष्म्या जितया । (२) अलकानगर्या । (३) प्रणष्टम् । (४) यस्मात्कारणात्त्यज्यते । (५) धनदपुर्या । (६) पलायनचिह्नम् । (७) कैलासनिवासलक्षणम् ॥१८८॥

हील० यदी० । यस्याधिकशोभया जितया लज्जया धनदपुर्या नष्टं यदद्यापि भङ्गलक्षणं कैलाशशिखरावस्थितिर्न त्यज्यते ॥१८९॥

हीसुं० [१]यदीयलक्ष्म्या विजितेव [२]लङ्का प्रणश्य मध्येऽ[३]म्बुनिधेर्वि[४]वेश ।
कदाचन [५]प्रावृषि [६]सूरिराजो [७]डीसाह्वयं [८]तत्पुरमा[९]ससाद ॥१८९॥

[3]त्रिभिर्विशेषकम् ।

(१) डीसानगरस्य श्रिया । (२) रावणपुरी । (३) समुद्रमध्ये । (४) प्रविष्टा । (५) वर्षाकाले । (६) हीरविजयसूरिः । (७) डीसानाम । (८) पूर्ववर्णितम् । (९) आश्रयति स्म ॥१८९॥

हील० येन जिता लङ्काऽब्धौ पतिता । तद्डीसानगरं भजति स्म ॥ १९०

हीसुं० [१]कुलाद्रिवार्द्धिप्रतिनादमेदुरीभविष्णुनिःस्वानिततूर्यनिःस्वनम् ।
[२] जिनेश्वरस्येव जना [३]वितेनिरे [४]पु[4]रे प्रवेशस्य[५] महं [६]मुनीशितुः ॥१९०॥

(१) मन्दरप्रमुखकुलशैलकन्दरेषु तथा समुद्रमध्ये प्रतिशब्दैः पुष्ट(ष्टी)भवनशीला वादिता राजवाद्यानां नीसाणेत्यभिधानां तूर्याणां वादित्राणां शब्दा यत्र । (२) तीर्थकरस्य । (३) चक्रुः । (४) डीसानगरे । (५) प्रवि(वे)शनोत्सवम् । (६) हीरविजयसूरेः ॥१९०॥

हील० कुलाचलेषु समुद्रे यः प्रतिशब्दस्तेन पुष्टा वादितवादित्रा रावा यत्र, तादृशमुत्सवं प्रवेशे चक्रुः ॥१९१॥

---

1. श्रिया हीमु० । 2. इति विजयदानगुरौ स्वर्गते हीरविजयसूरेः पट्टधरत्वम् हील० । 3. इत्यन्ते (?) त्रिभिर्विशेषकम् हील० ।
4. पुरप्रवेशेऽतिमहं मुनी० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [1]सूरिवासवसमागमस्फुरत्प्रीतिपल्लवितचित्तवृत्तिभिः ।
[2]नागरै[3]रमितपृत्क(रिक्थ)वर्षिभिः [4]स्पर्द्धयेव [5]धनदो निधीश्वरः ॥१९१॥

(१) श्रीहीरविजयसूरीन्द्रागमनेन प्रकटीभूतप्रमोदेनानुरक्तीभूतमनोव्यापारैः । (२) नगरनैः । (३) मानातीतद्रविणदायिभिः । (४) ईर्ष्ययेव । (५) संह(घ)र्षेण । (५) कुबेरोऽपि द्रव्यप्रदो बभूव ॥१९१॥

हील० सूरिसमागमने बहुद्रव्यवर्षिभिः पौरैः सह स्पर्द्धया निधीश्वरो-वैश्रवणो धनं ददति । इति धनदो बभूव ॥१९२॥

हीसुं० [1]नृत्यच्चन्द्रकिचक्रमु[2]न्मदनदद्बप्पीहबालाकुलं
[3]श्रीसूनोरिव यौवराज्यसमयं [4]व्यालोक्य [5]वर्षागमम् ।
[6]क्रीड[6]न्शान्तरसाह्वमानससरोजन्माकरे[7] हसंव-
त्श्रीसूरीश्वरहीरहीरविजयस्तस्मिन्सुखं [10]तस्थिवान् ॥१९२॥

इति पण्डितदेवविमलगणिविरचिते हीरसौभाग्य(सुन्दर)नाम्नि महाकाव्ये दक्षिणदिग्गमन-द्विजसमीपपठन-गुरुसमीपागमन-पण्डितवाचकाचार्यपदप्रदान-नन्दिभवन-श्रीविजयसेनसूरि-जन्मदीक्षादिवर्णनो नाम षष्ठः सर्गः । ग्रंथाग्रम् ॥२५४॥

(१) नृत्यन्मयूरनिकरम् । (२) मदोद्धताः शब्दायमानाश्चकोरा यत्र । (३) कन्दर्पस्य । (४) दृष्ट्वा । (५) वर्षाकालागमनम् । (६) शान्तरसनाम्नि मानसरसि । (७) मराल इव । (८) खेलन् (९) डीसानगरे । (१०) स्थितः । चातुर्मासीं प्रतिक्रान्तवान् ॥ १९२ ॥

इति षष्ठः सर्गः ॥ ग्रंथाग्रम् ॥ २७५ ॥

हील० **नृत्य०** । नृत्यन्ति चन्द्रकिणां मयूराणां चक्राणि यत्र तम् । चन्द्रकं-पिच्छं विद्यते येषां ते । इति उन्मदा ये नदन्तो बप्पीहानां बालाः शिशवः स्त्रियो वा । प्रायो विपदि स्त्रीणां शिशूनां कातर्याद्बाल-पदप्रयोगः, तैर्व्याप्तम् । कामस्य युवराजपदाभिषेकप्रस्तावसदृशं वर्षासमयं दृष्ट्वा शमरसनाम्नि मानसे तटाके हंसवत्क्रीडां कुर्वन् **श्रीहीरविजयसूरिर्डीसापुरे** चातुर्मासीमासीददति स्म ॥१९३॥

हील०→ यं प्रासूत शिवाह्वसाधुमघवा सौभाग्यदेवी पुनः ।
पुत्रं कोविदसिंहसी(सिं)हविमलान्तेवासिनामग्रिमम् ।
तद्ब्राह्मीक्रमसेविदेवविमलव्यावर्णिते हीरयुक्-
सौभाग्याभिधहीरसूरिचरिते षष्ठोऽत्र सर्गोऽभवत् ॥१९४॥

इति पं. सी(सिं)हविमलगणिशिष्यपण्डितदेवविमलगणिविरचिते हीरसौभाग्यनाम्नि महाकाव्ये षष्ठः सर्गः ॥६॥

→✕ — एतदन्तर्गतः पाठो हीसुंप्रतौ नास्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐँ नमः ॥

अथ सप्तमः सर्गः ॥

हीसुं० [१]सूरीन्दुर[२]नन्दयति स्म [३]तस्मिन्पुरे समग्रानपि [४]नागरान्सः ।
[५]पचेलिमप्राक्तनपुण्यपुञ्जः [६]प्रादुर्भवन्मुर्त्त इवैष तेषाम् ॥१॥

(१) श्रीहीरविजयसूरिः । (२) हर्षमुत्पादयति स्म । (३) डीसानगरे । (४) नगरलोकान् । (५) परिपाकं प्राप्तः पुर्वजन्मोपार्जितसुकृतराशिः । (६) प्रकटीभवन् । (७) शरीरवानिव । (८) डीसापुरलोकानाम् ॥१॥

हील० सूरीन्द्रः पौरानानन्दयति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । पौराणां परिपाकं प्राप्तः पुण्यप्रादुर्भावः ॥१॥

हीसुं० [१]मिलद्बलाकाम्बरमुद्वहन्ती [२]लीलागतोद्वेजितराजहंसा ।
[३]श्यामा[1]लसज्जातिपयोधरोद्यद्धाराभिरामा [४]पिहिताननेन्दुः ॥२॥
[१]सुरायुधभ्रुलतिका[२]त्मयोनिमुज्जीवयन्तीव [३]तडिद्विलासा ।
मुदे [४]तदानीमजनिष्ट [५]यूनां [2]वर्षा[६]नवोढा [७]वरवर्णिनीव ॥ ३ ॥ [3]युग्मम् ॥

(१) आश्लिषन्त्यः पत्या सह सङ्गं कुर्वत्यो वा बकप्रिया यत्र तादृगाकाशम । "सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः" तथा- "गर्भाधान क्षणपरिचयात्" इति मेघदूते । पक्षे-बकवदुज्ज्वलं वस्त्रं धारयन्ती । (२) वर्षादिविलासेनागमनेनोद्वेगं प्रापिता विजयकरणेविघ्निता विजयिनृपश्रेष्ठा यया । "विश्रान्तजिष्णुक्ष्मापालयुधि" इति चम्पूकथायाम् । तथा जम्बालाविलजलावलोकनेनोद्वेगं नीता मानसं प्रति प्रस्थातुमुत्सुकीकृता राजहंसा यया । पक्षे विलासगत्या विजितमराला । (३) कृष्णच्छविः षोडशवार्षिकी च । स्मेरन्ती मालतीलता यत्र तथा मेघेभ्यः प्रकटीभवन्तीभिर्जलवृष्टिभिर्मनोज्ञा पक्षे दीप्यमानवंशी तथा स्तनयोर्दीप्यमान-हारहारिणी । (४) घनैर्वसनैर्वा आच्छादितः मुखतुल्यो मुखमेव वा चन्द्रो यया ।

(१) नव्यत्वे सलज्जत्वात् इन्द्रधनुरेव तद्वद्वाभ्रूवल्ली यस्याः । (२) स्मरं प्रकटीकुर्वन्ती । (३) विद्युतस्तद्वद्वा विचेष्टितं यस्याः । (३) प्रातः । (४) तरुणानाम् । (५) नवप्रणीता । (६) प्रधानस्त्री ॥३॥

हील० यथा नवोढा स्त्री यूनां हर्षाय स्यात्, तद्वत्प्रावृट् यूनां मुदे जाता । वृद्धानां तु शीतवातकर्दमादिना दुःखदायिन्यत एव यूनामिति पदम् । किंलक्षणा प्रावृट् वरवर्णिनी च ? । मिलद्बकाङ्गना यत्र तद्वद्वा श्वेतं गगनं वस्त्रं वा दधती । पुनर्वर्षितुमागमेन गत्या वा आतुरीकृता विजयिराजानो हंसा वा यया सा । पुनः कृष्णा षोडशवार्षिकी वा गिर्यादिषु गुर्वादिषु वा नम्रा । पुनः पयोधरेभ्यः पयोधरयोर्वा उद्यद्धराभिर्वा उद्यता हारेण रम्या, आच्छादितो वदनतुल्यस्तदेव वा चन्द्रो यया । पुनरिन्द्रधनुरेव तत्तुल्या वा भ्रूलता यस्याः । पुनर्मृतं कामं जीवन्तं कुर्वन्ती(ती) । पुनर्विद्युतां तद्वद्वा विलासा यस्याम् ॥२★-३॥

---

1. मातिनम्रा च पयो० हीमु० । 2. प्रावृण्न । हीमु० । 3. युगलम् । इति वर्षा समयः हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० अथ[1]व्यधत्त [2]प्रणिधानमिच्छन्क[3]श्चित्स संस्थापयितुं स्वपट्टे ।
[4]पुरेऽपि [5]जीवातुरिवा[6]खि[1]लेऽत्र प्रावर्त्तत [7]प्राणभृता[8]ममारिः ॥४॥

(१) चकार । (२) ध्यानम् । (३) कमपि शिष्यम् । (४) डीसानगरे । (५) जीवनौषधम् । (६) समस्ते । (७) जीवानाम् । (८) मारणनिषेधः ॥४॥

हील० कञ्चित्स्थापयितुमिच्छन् सूरिर्ध्यानं चक्रे । जीवनौषधमिवामारिः प्रावर्त्तत ॥★४॥

हीसुं० द्वारं [1]स्वसिद्धेरिव सूरिराजो ध्यानं दधानो [2]वसुभूतिसूनोः ।
[3]अहान्य[4]हर्बान्धवबन्धुरौजास्त[5]न्निष्ठयेवाग[6]मयद्बहूनि ॥५॥[2]

(१) आत्मनः देवतागमनलक्षणफलनिष्पत्तेः । (२) गौतमस्य । (३) दिनानि । (४) सूर्यप्रकृष्टप्रतापः । (५) ध्यानविधिना । (६) नयते स्म ॥५॥

हील० स्वकार्यसिद्ध्यै हेतुर्गौतमध्यानं कृत्वा सूर्यतेजाः स दिनानि गमयामास ॥५॥

हीसूं० [1]सम्पिप्रती [2]कामितमु[3]त्सुकानां [4]दिग्जैत्रयात्रासु [5]धराधवानाम् ।
[6]अथो[7]पतस्थे शरदस्य सूरे[8]र्विधित्सयेव प्रणिधानसिद्धेः ॥६॥

(१) सम्पूरयन्ती । (२) वाञ्छितम् । (३) समुत्कण्ठितानाम् । (४) दिशां जयनशीलप्रस्थानेषु । (५) नृपाणाम् । (६) अथ ध्यानकरणावसरे । (७) आगता । (८) कर्त्तुमिच्छया ॥६॥

हील० सम्पि० । दिग्विजयोद्यतानां राज्ञां वाञ्छां पूरयन्ती शरत्सूरीष्टसिद्ध्यै आगता ॥६॥

हीसुं० [1]मलीमसीभूतम[2]शेषम[3]भ्रमातङ्गसङ्गेन पदं [4] मुरारेः ।
[5]द्विजाधिपः क्षालयतीव यस्यां [6]निस्तन्द्रचन्द्रातपनीरपूरैः ॥७॥

(१) मलिनीभूतम् । (२) समस्तम् । (३) ऐरावणो गगनश्चाण्डालश्च । (४) आकाशम् । (५) चन्द्रो ब्राह्मणश्च । (६) विकचच्चन्द्रिकापयःपूरैः ॥७॥

हील० यथा ब्राह्मणश्रेष्ठश्चाण्डालस्पृष्टं क्षालयति, तद्वच्चन्द्रोऽभ्रस्य गगनस्य चाण्डालो मेघो वा तत्सङ्गेन मलिनीभूतगगनं मेघाभ्रहिमधूम(मै)रामुक्तो यश्चन्द्रातपश्चन्द्रिका तत्तुल्यैस्तैरेव जलपूरैः क्षालयति ॥७॥

हीसूं० [1]गाधा व्याधा[2]द्या[3]म्बरचुम्बिरङ्गत्तरङ्गपूरानपि [4]वा[3]र्द्धिदारान् ।
[5]जगत्प्रसारोत्सुकयद्यशःक्ष्माधरस्य किं [6]सुप्रतराः[7]प्रणेतुम् ॥८॥

(१) पादोत्तरणयोग्याः । (२) या शरत् । (३) गगनस्पर्शकचलत्कल्लोलमालान् । (४) नदीः । (५) त्रिभुवने प्रसरणोत्कण्ठितसूरियशोनृपस्य । (६) सुखेन तरीतुं शक्याः । (७) कर्त्तुम ॥८॥

हील० शरन्नदीर्गाधाश्चकार । उत्प्रेक्ष्यते । यद्यशसः सुखोत्तरणाय ॥★८॥

---

1. ०लेऽपि हीमु० । 2. इति हीरविजयसूरेः सूरिमन्त्राराधनध्यानविधानारम्भः हील० । 3. सिन्धु० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]आस्वादितस्वादुमृणालकाण्डाः [२]कूजन्ति [३]लीलालसराजहंसाः ।
[४]आगन्तुकार्हन्मतदेवतायाः [५]स्मरध्वजाः [६]पूर्वमिव [७]ध्वनन्तः ॥९॥

(१) जग्धाः स्वादनीयकमलनालपटलाः । (२) शब्दायन्ते । (३) क्रीडया मन्थरा राजहंसाः । (४) आगमनशीलशासनदेवतायाः । (५) वाद्यानि । (६) प्रथममेव । (७) शब्दायमानाः ॥९॥

हील० काण्डाः स्तम्बाः राजहंसाः शब्दायन्ते । उत्प्रेक्ष्यते । सुरैः पुर आगन्तुकायाः शासनदेव्या वाद्यानि ॥९॥

हीसुं० [१]निर्मि(मृ)ष्टनिः शेषनिषद्वरायाः कि वर्ण्यतेऽस्याः [२]शरदिन्दिरायाः ।
[३]जडाशयानप्यसृजत्प्र[४]सन्नाशयान्क[५]विश्रीकलितांश्च [1]यत्सा ॥१०॥

(१) अपहृतसमस्तकर्दमायाः । (२) शरल्लक्ष्म्याः । (३) मूर्खान्सरांसि च । (४) स्वच्छमध्यान् प्रसादयुक्तचित्तान् । "दयासमुद्रे स तदाशयेऽतिथी-चकार कारुण्य[र]सापगागिर" इति नैषधे । (५) पानीयपक्षिशोभायुतान् काव्यकर्तृलक्ष्मीसहितांश्च ॥१०॥

हील० शुष्कपङ्कयाः शरच्छोभायाः किं वर्ण्यते । डलयोरैक्याज्जडचित्तान्कवीन् च पुनः काव्यकर्तृनकरात् । तत्त्वतो निर्मलजलमध्यान् । पुनः कस्य जलस्य वयसः पक्षिणो हंसादयस्तैर्युक्तांश्चक्रे ॥१०॥

हीसुं० [१]स्मितेषु [२]पद्मेषु मुखेष्विवास्या [३]रङ्गत्सु नेत्रेष्विव खञ्जनेषु ।
[४]बन्दिष्विव [५]स्मेरसरोजपौष्पनिष्पातिगुञ्जन्म[2]धुपव्रजेषु ॥११॥
[१]पटीश्विवो[२]द्दामकलामकौघावदातकेदारवसुन्धरासु ।
[३]भूषास्विवास्या विविधासु [४]लीनशिलीमुखस्मेरसुमावलीषु ॥१२॥
[१]गणाधिराजे [२]प्रणिधानदुग्धपाथोनिधौ [३]मीन इवातिलीने ।
[४]तदा कदाचिद्ग[५]गनाध्वनीनोऽ[६]पराचलाभ्यर्णभुवं बभाज ॥१३॥
त्रिभिर्विशेषकम् ॥[3]इति शरत् ॥

(१) विकचेषु । (२) कमलेषु । (३) चलत्सु । (४) मङ्गलपाठकेषु । (५) विकचकमलपरागेषु निष्पतनशीलशब्दायमानभ्रमरनिकरेषु ॥११॥

(१) वस्त्रेषु । (२) उल्लसत्कलमशालिश्रेणिशुभ्रकेदारभूमीषु । (३) आभरणेसु । (४) मकरन्दपानागतनिलयमानभ्रमरविकचत्कुसुमपङ्क्तिषु ॥१२॥

(१) हीरविजयसूरीन्द्रे । (२) ध्यानक्षीरसमुद्रे । (३) मच्छ्य(त्स्य) इव । (४) शरदि । (५) सूर्यः । (६) अस्ताचलसमीपस्थानम् ॥१३॥

हील० गगनपान्थः सूर्योऽस्ताद्रिभुवं भजति स्म । केषु सत्सु ?। अस्याः शरदो विकसितकमलेषु मुखेषु सत्सु । पुनः खञ्जनेषु चलन्नेत्रेषु सत्सु । पुनर्विकसत्कमलामरन्दे लोलुपमधुपेषु बन्दिषु मङ्गलपाठकेषु सत्सु । उच्चशालिसमूहेनोज्ज्वलकेदारभूमिषु अस्याः शरदः परिधानवस्त्रेषु सत्सु । पुनर्नानाविधासु

1. यत्सा(द्या) हीमु० । 2. मधुकृद्व्र० हीमु० । 3. इति शरत्समयः हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भ्रमरयुक्तासु कुसुमावलीषु अस्या भूषासु सतीषु । पुनः सूरौ ध्यानक्षीराब्धौ मीनवल्लीने सति ॥११★१२-१३॥

हीसुं० विधे[१]र्नियोगेन [२]निजास्तपश्यान्पुत्रानिवो[३]त्सङ्गजुषः [४]स्वरश्मीन् ।
दृष्ट्वा [५]यियासूंस्त[६]दुदीतकोपादिवा[७]रुणीभूतमथारुणेन ॥१४॥

(१) दैववशेन । (२) निजस्य सूर्यात्मनः अस्तं पश्यन्तीति । (३) उत्सङ्गसङ्गिनः । (४) निजकिरणान् । (५) गन्तुमिच्छून् । (६) तेषु किरणेषु प्रकटीभूतक्रोधात् । (७) रक्तीभूतम् । (८) भानुना ॥१४॥

हील० **विधे०** । निजस्य सूर्यात्मनः अस्तं क्षयं पश्यन्ति, तादृशान्स्वकिरणान् यातुमिच्छून् दृष्ट्वा तेषूदीतकोपात्सूर्येण रक्तीभुतम् ॥१४॥

हीसुं० [१]जहेऽ[२]म्बरं [३]सायम[४]शीतभासा नीत्वा[५]स्तधात्रीधरगह्वरान्तः ।
प्रदोषनाम्ना [६]परिमोषिणेवा[७]सहायिभावेन बलाद्गृहीतम् ॥१५॥

(१) त्यक्तम् । (२) वस्त्रमाकाशं च । (३) सन्ध्यायाम् । (४) भानुना । (५) अस्ताचलगहनमध्ये । (६) रजनीमुखनामतस्करेण । (७) एकत्वेन सहायराहित्येन ॥१५॥

हील० **जहे०** । सूर्येणाम्बरं-गगनं वसनं वा त्यक्तम् । उत्प्रेक्ष्यते । अस्ताद्रेर्गुहान्तर्नीत्वा प्रदोषतस्करेण एकाकित्वेन गृहीतम् ॥१५॥

हीसुं० [१]कलङ्कवानि[२]न्दुरथा[३]भ्युदेता[४]ऽकलङ्किनो [५]विश्वविबोधिनो मे ।
न [६]साम्प्रतं साम्प्रतमत्र वस्तुमितीव याति क्वचिदंशुमाली ॥१६॥

(१) दोषाभ्युदितापवादवान्सलक्ष्मा च । (२) चन्द्रः । (३) उदयिष्यति । (४) निष्कलङ्कस्य । (५) जगत्प्रतिबोधविधातुः । (६) युक्तम् ।

हील० कलङ्कवांश्चन्द्रोऽधुनोदेष्यति । अकलङ्कवतो मे वस्तुमिदानीं नोचितमितीव रविः क्वचिद्याति ॥१६॥

हीसुं० स्वरागिणीमञ्जनकुम्भिकुम्भ[१]प्रगल्भपीनस्तनदिग्मृगाक्षीम् ।
[२]निर्वर्ण्य [३]रागीव [४]दिनावसाने किं [५]पद्मिनीप्राणपतिः प्रयाति ॥१७॥

(१) [अत्र किञ्चित्त्रूटितमिव प्रतिभाति ।] तावेव प्रोद्दामौ पुष्टौ स्तनौ यस्यास्तादृशी दिग्पश्चिमा सैव तरुणी ताम् । (२) दृष्ट्वा । (३) रागवान् । (४) सायम् । (५) सूर्यः ॥१७॥

हील० स्वस्मिन् स्नेहलां अञ्जनः पश्चमदिग्गजस्य कुम्भावेव पीनौ स्तनौ यस्यास्तादृशी पश्चिमदिग् मृगनेत्रां वा दृष्ट्वा सूर्यो रागी सन् सायं तत्सन्निधौ याति ॥१७॥

हीसुं० [१]उत्तुङ्गतारङ्गशिखावलम्बि [२]किञ्जल्कलीलायितरश्मिराशि ।
[३]पयोधिपूरेऽ[४]म्बुजबन्धुबिम्बं [५]स्मेरारुणाम्भोरुहवद्विभाति ॥१८॥

(१) उच्चैस्तरतरङ्गगणाग्रमाश्रयन् । (२) केसरलीलायमानकिरणनिकरः । (३) समुद्रजले ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४) रविमण्डलम् । (५) विकचकोकनदमिव ॥१८॥

हील० रविबिम्बं अब्धिपूरे कोकनदवद्विभाति । किंभूतः ?। उत्तुङ्गो गगनचुम्बी यस्तरङ्गाणां समूहस्तारङ्गस्तस्य शिखामवलम्बते, तादृशम् । पुनः किंभूतः ?। कमलकेसरवदाचरितः करनिकरो यस्य, तादृशम् ॥१८॥

हीसुं० पूरे समुद्रस्य [1]बभस्ति बिम्बं [2]राजीविनीजीवितनायकस्य ।
[3]पयोधिपल्यङ्कतले शयालो[4]रुल्लसि चक्रं किमु [5]चक्रपाणेः ॥१९॥

(१) भाति । (२) सूर्यस्य मण्डलम् । (३) समुद्रशय्यामध्यशयनशीलस्य । (४) स्फुरच्चक्रम् । (५) कृष्णस्य ॥१९॥

हील० पूरे० । समुद्रस्य पूरे सूर्यबिम्बं भाति । उत्प्रेक्ष्यते । समुद्रशायिकृष्णस्य चक्रम् ॥१९॥

हीसुं० [1]खण्डेन [2]चण्डद्युतिमण्डलेन [3]न्यमज्जि पूरे [4]मकराकरस्य ।
[5]सूरेर्महःसाम्यकृतेऽ[6]ब्धिझ[6]म्पासृजा शनैर्निष्पततेव [7]भीतिः ॥२०॥

(१) किंचिन्न्यूनेन । (२) मार्त्तण्डबिम्बेन । (३) ब्रूडितम् । (४) समुद्रजलप्लवे । (५) हीरविजयसूरिप्रतापसाम्यार्थः । (६) समुद्रपतनकृता । (७) भयात् ॥२०॥

हील० सूर्यस्य बिम्बस्यार्द्धखण्डोऽर्णवे मग्नः, अर्द्धः स्थितः । उत्प्रेक्ष्यते । सूरिप्रतापं प्राप्तुं झम्पां कुर्वता शनैर्भयात्पतता ॥२०॥

हीसुं० [1]अम्भोधिमध्येऽ[2]र्धितबिम्ब[3]मम्भोजिनीवरस्य स्फुरति स्म [4]सायम् ।
[5]अतादृशीं प्रेक्ष्य [6]दशां [7]प्रियस्य किम[8]ब्धिमज्जद्दिनलक्ष्मिभालम् ॥२१॥

(१) समुद्रमध्ये । (२) अर्द्धीभूतमण्डलम् । अर्द्धं समुद्रे मग्नमर्द्धं च बहिर्दृश्यमानम् । (३) सूर्यस्य । (४) सन्ध्यायाम् । (५) शोच्याम् । (६) अवस्थाम् । (७) रवेः (८) दुःखात्समुद्रे ब्रूडद्दिवसकमलाललाटमिव ॥२१॥

हील० समुद्रमध्ये रवेरर्द्धबिम्बं भाति । उत्प्रेक्ष्यते । स्वस्वामिनो विश्वशोच्यां दशां वीक्ष्य ब्रूडद्दिवसलक्ष्म्याः ललाटम् ॥२१॥

हीसुं० भानोर्बभौ [1]मण्डलखण्डमब्धौ [2]गन्तुः [3]पुरारेर्मिलितुं [4]मुरारिम् ।
[5]मृगाङ्कलेखेव [6]सरोषचण्डीसालक्तपादाहतशोणितश्रीः ॥२२॥

(१) बिम्बस्यांशमात्रम् । चतुर्थांश इत्यर्थः । (२) गच्छतीति गन्ता तस्य । (३) शंभोः । (४) कृष्णम् । (५) चन्द्रकलेव । (६) कुपितपार्वत्या अलक्तयुक्तचरणप्रहारेण रक्तीभूतशोभः । कुपितां गिरिजामनुनेतुं पदपतित ईश्वरस्य शिरसि प्रहारः प्रदत्तस्तदवसरे चरणालक्तरसेन लग्नेन रक्तेवेत्यर्थः ॥२२॥

हील० भानोर्बिम्बखण्डं भाति । उत्प्रेक्ष्यते । कृष्णं मिलितुं यातुकस्येशस्य चरणे पतितस्य क्रुद्धपार्वत्या यावकाक्तचरणहननरक्ता चन्द्रलेखा ॥२२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० द्वीपे [१]परस्मिन्नि[२]तरोऽस्ति [३]कश्चिदस्य [४]व्रतीन्द्रस्य वशी सदृक्षः ।
[५]दिदृक्षयान्तः कुतुकादितीव [६]पतिस्त्विषां याति [७]परत्र खण्डे ॥२३॥

(१) अन्यस्मिन्द्वीपे । (२) अन्यः । (३) कोऽपि जितेन्द्रियः । (४) हीरविजयसूरेस्तुल्यः । (५) द्रष्टुमिच्छया । (६) भानुः । (७) अन्यस्थाने ॥२३॥

हील० द्वीपे० । सूर्यः अन्यस्मिन् द्वीपे याति । उत्प्रेक्ष्यते । अन्यस्मिन्द्वीपे श्रीसूरिसदृशो मुनीशोऽस्ति नवेति द्रष्टुम् ॥२३॥

हीसुं० [१]अनक्षिलक्ष्यीभवति स्म [२]भास्वान्निजा[३]ङ्गनायाम[४]नुरागिभावात् ।
[५]क्वचिन्निगूढं वरुणेन रोषादिवैष पाशेन [६]नियन्त्र्य [७]मुक्तः ॥२४॥

इति सूर्यास्तः ।

(१) अदृश्यीभवति स्म । (२) सूर्यः । (३) स्वपत्न्याम् - पश्चिमदिशि । (४) अनुरक्तत्वेन । (५) कुत्रापि । (६) बद्ध्वा । (७) रक्षितः ॥२४॥

हील० अन० । सूर्योऽदृग्गोचरोऽदृश्यो जातः । उत्प्रेक्ष्यते । पश्चिमदिग्मृगलोचनायां रक्तत्वेनाद्भूताकोपात्प्रतीचीपतिना क्वचित्कुत्रापि प्रदेशे पाशेन नियम्य बद्ध्वा गुप्तस्थाने मुक्तः स्थापितो रक्षित इव ॥२४॥

हीसुं० [१]आवासविस्मेरमहीरुहाणां सायं [२]शिखाः [४]शिश्रियिरे [३]शकुन्ताः ।
[५]विश्वोपकर्त्ता क्व गतः स[६]गोत्रः [७]खगस्त[८]दीक्षार्थमिवा[९]स्थुरु[१०]च्चैः ॥२५॥

(१) आवासार्थं विकसिततरूणाम् । (२) शाखाः । (३) पक्षिणः । (४) श्रिताः । (५) विश्वयोर्भून[भ]सोरालोकनकारकत्वेनोपकर्ता । (६) स्वजनः । (७) खगत्वेन । (८) तस्य खगस्य भानोर्वीक्षणार्थम् । (९) स्थिताः । (१०) उच्चैस्तरुशिखरेषु ॥२५॥

हील० आवा० । वयसः स्वनीडवद्वृक्षशिखिराणि भजन्ते स्म । विश्वोपकारी खगः पक्षी सूर्यो वा क्व गत इति विलोकनार्थं उच्चैरास्थुः ॥२५॥

हीसुं० [१]मरन्दनिस्पन्दितमालतालीः सायं स्म शीलन्ति [२]कलापिमालाः ।
[३]प्रावृट्पयोदस्य धियेव मैत्र्या[४]दुपेयुषः[1] [५]स्वं मिलितुं [६]नभस्तः ॥२६॥

(१) मकरन्दरसकलिततापिच्छराजतालीः । (२) मयूरगणाः । (३) वार्षिकमेघबुद्ध्या । (४) प्राप्तवतः । (५) स्वं मेघम् (६) आकाशात् ॥२६॥

हील० तमालास्तालास्तान् मन्दारमालाः श्रयन्ति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । गगनात्क्ष्मायां मिलितुमागतस्य मेघस्य बुद्ध्या ॥★२६॥

हीसुं० [१]विकालवेलामनु [२]सूत्रकण्ठा [३]अनीनदन्नी[४]डसनीडभाजः ।
दृष्ट्वा [५]जगच्चक्षुरनिष्टमेते [६]पठन्ति किं शान्तिकमन्त्रपाठान् ॥२७॥

1. ०षोऽभ्रान्मिलितुं क्षमायाम् । हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) सन्ध्यामनुलक्ष्यीकृत्य । (२) शुकाः । (३) शब्दायन्ते स्म । (४) कुलाय समीपस्थाः । (५) जगतश्चक्षुरिव । दर्शकत्वात्सर्वमार्गाणां चक्षुः सूर्यस्तस्यास्तलक्षणामापदं दृष्ट्वा शान्तिकमन्त्रपाठान् । (६) उच्चरन्ति ॥२७॥

हील० सन्ध्यासमयं अनुदृष्ट्वा सूत्रकण्ठा-द्विजाः शुकाश्च सूर्यस्यापदं वारणार्थं शान्तिकमन्त्रान् पठन्ति ॥२७॥

हीसुं० [१]वियन्मणीवल्लभविप्रयुक्तां पाथोजिनीं [२]मुद्रितवक्त्रकोशाम् ।
[1]पौ[३]ष्पार्पणप्रीतहृदस्त[४]दानीमालापयन्तीव [५]रवै[६]र्द्विरेफाः ॥२८॥

(१) रविणेव कान्तेन वियोगिनीम् । (२) पिहितवदनमुकुलाम् । (३) मकरन्ददानेन हृष्टमनसः । (४) सन्ध्यायाम् । (५) शब्दैः । (६) भ्रमराः ॥

हील० सूर्याद्वियुक्तां दुःखार्त्तां कमलिनीं भ्रमरा आरवैराश्वासयन्तीव ॥*२८॥

हीसुं० [१]सरोजिनी [२]कोशकुचौ [३]निपीड्या[४]धरच्छदे [५]पीतरसैः [६]स्ववातात् ।
[७]मीलन्मुखी [८]कम्पमिषान्निषेद्ध्री [९]जहे [१०]महेलेव [११]युवद्विरेफैः ॥२९॥

(१) कमलिनी । (२) मुकुलावेव स्तनौ । (३) पीडयित्वा । (४) अधस्तनपत्रे ओष्ठे च । "स्वमाह सन्ध्यामधरोष्ठलेखा "इति नैषधे । अधस्तनोष्ठ इति तद्वृत्तिः । (५) आस्वादितमकरन्दैः । (६) निजपक्षपवनात् । (७) सङ्कुचन्मुखकमला । (८) पुनः कम्पकपटान्निवारयन्ती । (९) त्यक्ता । (१०) स्त्रीव । (११) तरुणभृङ्गैः ॥२९॥

हील० सरो० । कमलिन्याः कुचसदृशौ कोशौ निपीड्याधःपत्रे ओष्ठदले वा पीतरसै मूर्धद्विरेफैर्निजपक्षपवनाद्यः कम्पस्तद्दम्भान्निषेधनशीला कमलिनी त्यक्ता । यथा युवती निखिलं कृत्वा त्यज्यते ॥२९॥

हीसुं० 2[१]मृगीदृशाम[२]ञ्जनमञ्जुलाभि[३]र्विलोचनश्रीभिरिवाभिभूता ।
[४]व्रीडेन [५]नीडद्रुमकोटरान्तः प्रयान्ति [६]सन्ध्यामनु खञ्जरीटाः ॥३०॥

(१) स्त्रीणाम् । (२) कज्जलकान्ताभिः । (३) नेत्रलक्ष्मीभिः । (४) लज्जया । (५) कुलायद्रुमनिष्कुहमध्ये । (६) दिवसावसानमनुलक्ष्यीकृत्य ॥३०॥

हील० खञ्जरीटाः सन्ध्यां दृष्ट्वा वृक्षकोटरे प्रविष्टाः । उत्प्रेक्ष्यते । मृगीदृशां नेत्रैर्भग्ना ३० ॥३१॥

हीसुं० 2[१]विश्वं [२]विशन्तीं [३]द्विषती[४]मुषां स्वा[५]मन्विष्य तस्याः[६] किममङ्गलाय ।
[७]रथाङ्गनाम्नां निवहै[८]र्वियुक्तै[९]र्विमुक्तकण्ठं रुरुदे [१०]दिनान्ते ॥३१॥

(१) लोकम् । (२) मध्ये समायान्तीम् । (३) वैरिणीम् । (४) निशाम् । (५) दृष्ट्वा । (६) रात्रेरशकुनाय । (७) चक्रवाकनिकरेण । (८) विरहिभिः । (९) गाढस्वरेण । (१०) सन्ध्यायाम् ॥३१॥

---

१. रसार्प० हीमु० । २. हीलप्रतौ हीमु० चानयोर्द्वयोः श्लोकयोरेषोऽनुक्रमः ३१ ३० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० चक्रवाकै रुदनं कृतम् । उत्प्रेक्ष्यते । जगति आगच्छन्तीं रात्रिं दृष्ट्वा तस्याः किममङ्गलाशंम् ॥३०॥

हीसुं० [१]दोषामुखेन [२]द्विषतेव वार्द्धौ क्षिप्तं [३]समीक्ष्य [४]स्वविपक्षम[५]र्कम् ।
शत्रो[६]रगोत्रीभवनादि[७]वाभ्रभुवोर्मुदाभ्राम्यत [८]घूकलोकैः ॥३३॥

(१) सन्ध्यया । (२) वैरिणा । (३) दृष्ट्वा । (४) निजरिपुम् । (५) सूर्यम । (६) नामाभावभवनात् । शत्रोर्नाम्नोऽप्यभावो जातः सूर्यागमनतः । (७) गगनभूमितलायाः । (८) उलूकनिकरैः । "आलोकतालोकमुलूकलोक" इति नैषधे । तथा "आकाशे सावकाशे तमसि सममिते कोकलोके सशोके" इति नाटकशास्त्रेऽपि पक्षिशब्दानां पुरः समूहवाची लोकशब्दो दृश्यते ॥३२॥

हील० दोषामु० । सन्ध्यासमयवैरिणा सूर्यं जले क्षिप्तं दृष्ट्वा शत्रुनिर्मूलनाशादुलूकैर्भ्रान्ताम् ॥३२॥

हीसुं० [१]कपोतपालीतटसन्निविष्टा [२]हुंकुर्वते क्वापि [३]कपोतपोताः।
[४]शोच्यां [५]दशां प्राप्तमु[६]दीक्ष्य [७]मित्रमु[८]दीयमानान्म[९]नसीव दुःखात् ॥३३॥

(१) विटङ्कप्रदेशस्थिताः । "कपोतपाली विटङ्क" इति हैम्याम् । (२) हुंकारं कुर्वन्ति क्रां कुर्वन्ति । "सदा निनादपटले ते पिष्पलेर" इति सुभाषिते । (३) पारापतबालाः । (४) शोचनार्हाम् । (५) अवस्थाम् । (६) दृष्ट्वा । (७) सूर्यं सुहृदं च । (८) प्रकटीभवतः । (९) हृदये ॥३॥

हील० विटङ्कप्रान्तदेशस्थाः पारापता हुङ्कारं कुर्वते । उत्प्रेक्ष्यते । मित्रं रविं सुहृदं वा विपदि पतितं दृष्ट्वा दुःखात् ॥३३॥

हीसुं० पिकाश्च[१]कूजुः [२]सहकारकुञ्जे [३]रत्या [४]रतश्रान्ततया [५]शयालोः ।
[६]जगज्जयस्या[७]वसरं [८]जिगीषोः संसूचयन्तीव [९]रतीशभर्तुः ॥३४॥[1]इति सन्ध्या ।

(१) कूजन्ति स्म । शब्दायन्ते स्म । (२) माकन्दकानने । (३) स्मरपत्न्या । (४) सुरतेनोद्भूतश्रमत्वेन । (५) शयनशीलस्य । (६) विश्वविजयस्य । (७) प्रस्तावम् । (८) जगतां जयं कर्तुमिच्छोः । (९) स्मरस्य प्रभोः ॥३४॥

हील० पिकाः शब्दायन्ते स्म । रत्या सह रतकरणेन श्रमात्सुप्तस्य स्मरस्य जयसमयं कथयन्तीव ॥३४॥

हीसुं० [१]समुल्लासा[२]भ्रपथे[३]ऽथ [४]सन्ध्यारागो [५]विरागीकृतचक्रचक्रः ।
[६]पञ्चेषुणा [७]विश्वजिगीषुणेयं [८]प्रादायि [९]शोणीव [१०]नवोपकार्या ॥३५॥

(१) प्रकटीबभूव । (२) व्योमाङ्गणे । (३) सन्ध्याभवनानन्तरम् । (४) सन्ध्यायां रक्तिमा । (५) दुःखीकृतचक्रवाकप्रकरः । (६) स्मरेण । (७) जगज्जेतुमिच्छुना । (८) प्रदत्ता । (९) रक्ता । "रचयति रुचिः शोणीमेतां कुमारितरारवै"रिति नैषधे । (१०) नवीनपटकुटी ॥३५॥

1. इति सन्ध्यासमयवर्णनाधिकारे सर्वविहगविरुतादिवर्णनम् हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० विरहव्याकुलीकृतचक्रौघः सन्ध्यारागो जातः । उत्प्रेक्ष्यते । स्मरेण रक्ता नवपटकुटी दत्ता ॥३५॥

हीसुं० [१]नभोङ्गणे [२]सान्द्रितसान्ध्यरागैर्बभे[४]ऽम्बुधिं [५]शीलति [३]हेलिबिम्बे ।
[६]भर्तुर्वि[७]धोरागमने [८]प्रणीतै रात्रिस्त्रिया कुङ्कुमहस्तकैः किम् ॥३६॥

(१) गगनमण्डले । (२) निबिडीभूतसन्ध्यासम्बन्धिरागै रक्तिमभिः । (३) सूर्यमण्डले । (४) समुद्रम् । (५) श्रयति । (६) कान्तस्य । (७) चन्द्रस्य । (८) कृतैः (९) घुसृत इव हस्तबिम्बैः ॥३६॥

हील० रविमण्डलेऽर्णवं गते सायंतनरागैः शोभितम् । उत्प्रेक्ष्यते । स्वस्वामिन आगमे रात्र्या कुङ्कुमहस्तबिम्बैः ॥३६॥

हीसुं० [१]मज्जत्ककुप्कुञ्जरबिन्दुवृन्दारुणीभवद्व्योमसरित्तरङ्गैः ।
[२]अभ्रेऽ[३]रुणाम्भोजरजोविमिश्रैरदभ्रसन्ध्याभ्रनिभात्प्र[४]सस्रे ॥३७॥

(१) जलक्रीडां कुर्वतां दिग्गजानां बिन्दुवृन्दैर्मदकणनिकरैः । पञ्चम्यां हि दशायां करीन्द्राणां कपोलेषु रक्ता बिन्दवो निर्गच्छन्तीति शास्त्रोक्तेस्तथा- "भूर्जत्वचः कुञ्जरबिन्दुशोणा" इति कुमारसम्भवे । तै रक्तीभवद्गगनगङ्गातरङ्गैः । (२) व्योम्नि । (३) कोकनदपरागैः करम्बितैः । (४) प्रसृतम् ॥३७॥

हील० मग्नदिग्गजमदै रक्तैः स्वर्गनदीतरङ्गैः सन्ध्यारागमिषाद्गगने प्रसृतम् ॥३७॥

हीसुं० [१]आगामुकं [२]कामुकम[३]क्षिलक्ष्यं [४]प्रणीय [५]राजानम[६]नन्तलक्ष्म्या ।
[७]अङ्गे[८]ऽङ्गरागो घुसृणैः [९]प्रणीतः [१०]सान्ध्योल्लसल्लोहिता(तिमा)किमेषः ॥३८॥

(१) आगमनशीलम् । (२) कामयितारमभिलाषिणम् । (३) दृग्गोचरम् । (४) कृत्वा । (५) चन्द्रम् नृपं च । (६) गगनश्रिया । (७) वपुषि । (८) विलेपनम् । (९) कृतः । (१०) सन्ध्याभवस्फुरद्रक्तिमा ।

हील० आगा०। गगनलक्ष्म्या आगन्तुकं पतिं चन्द्रं दृष्ट्वा सन्ध्यारागमिषादङ्गे रक्तचन्द्रनैर्विलेपनं कृतमिव ॥३८॥

हीसुं० [१]निशानने [२]श्रीसुतकान्तमत्तैर[३]त्युत्सवायोत्सुकभावभाग्भिः ।
[४]दिग्वारसारङ्गविलोचनाभिः सन्ध्यारुणश्री[५]रुदगारि रागः ॥३९॥

(१) सायम् । (२) स्मरमदोद्धतैः । (३) सुरतक्रीडोत्सुकाशयैः । (४) दिगङ्गनाभिः । (५) उद्गीर्णः ॥३९॥

हील० सन्ध्यासमये कामेन मत्तैर्दिग्नायकैः सार्थं रतेः सुखस्योत्सवायोत्सुकाभिर्दिगङ्गनाभिः सन्ध्यारुणत्वमेव राग उद्गीर्णः ॥३९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]स्वर्यौवतांह्रिप्रतिकर्म्मसज्जप्रसाधिका [२]पाणिपयोरुहेभ्यः ।
[३]निपातुकालक्तकपङ्क्पङ्क्तिः [४]सन्ध्याभ्र(भ्रि)का व्योम्नि [५]बभूवुषीव ॥४०॥

(१) स्वर्गयुवतीगणस्य मण्डनकरणप्रवणमण्डनकारिका । (२) करकमलेभ्यः । (३) पतनशीलयावकज्जलमालाभिः । (४) सान्ध्यरागपटली । (५) जाता ॥४०॥

हील० स्वर्गाङ्गनाप्रतिकर्मकारिकाहस्तेभ्यः पतिता लक्तकश्रेणी ॥४०॥

हीसुं० [१]अनीदृशीं [२]व्योममणे[३]र्दिनश्रीचूडामणेः प्रेक्ष्य दशां [४]स्वभर्त्तुः ।
दुःखेन ताम्बूलम[५]हायि वक्त्रात्सन्धाभ्रदम्भादिव [६]दिग्वधूभिः ॥४१॥

(१) निकृष्टामस्तलक्षणाम् । (२) सूर्यस्य । (३) दिवसलक्ष्म्याः शिखामणिसदृशस्य । (४) निजनाथस्य । "दिशो हरिद्भिर्हरितामिवेश्वर" इति रघुवंशे । (५) त्यक्तम् । (६) दिगङ्गनाभिः ॥४१॥

हील० स्वभर्त्तुः सूर्यस्यासम्यगवस्थां दृष्ट्वा दिगङ्गनाभिस्ताम्बूलं त्यक्तम् ॥४१॥

हीसुं० पत्यौ[१]गवां क्वापि गतेऽ[२]स्य बन्धून्पद्मान[३]थाङ्गा[४]न्रिपुवत्प्र[५]दोषः ।
[६]क्लिश्नाति [९]कोपात्किमतो [७]दिगीशैः सन्ध्याभ्रदम्भाद[८]रुणीबभूवे ॥४२॥

इति सन्ध्यारागः ॥

(१) सूर्ये भूपे च । (२) अस्य-गोपतेः । (३) चक्रवाकान् । (४) शत्रुरिव । (५) यामिनीमुखम् । (६) पीडयन्ति । (७) दिक्पतिभिः । (८) रक्तीभूतम् । (९) क्रोधात् ॥४२॥

हील० भूस्वामिनि किरणस्वामिनि वा गते तरणिभ्रातृन् कमलान् चक्रवाकान् सन्ध्या सुखरहितान् करोति । अतो दिग्नायकैः कोपाद्रक्तीभूतम् ॥४२॥

हीसुं० [१]अभ्रे [२]मनाक्स[३]न्तमसैः प्रदोषः [४]रागान्तरेऽथ प्रकटीबभूवे ।
[५]प्रवालपुञ्जे [६]स्मयमानकृष्णवल्लीप्ररोहैरिव वार्द्धिमध्ये ॥४३॥

(१) आकाशे । (२) किमपि । (३) अन्धकारैः । (४) सन्ध्यारागमध्ये । (५) विद्रुमवृन्दे । (६) विकसत्कृष्णलताङ्कुरैः ॥४३॥

हील० सन्ध्यारागमध्येऽन्धकारैः प्रकटीभूतम् । यथा समुद्रमध्ये प्रवालपुञ्जे कृष्णवल्लीप्ररोहैरङ्कुरैः प्रकटीभूयते ॥४३॥

हीसुं० [१]विभ्राजिसन्ध्याभ्रपरम्पराभि[२]रलम्भि [३]भूच्छायभरै[४]र्विभूतिः ।
[५]स्मेरारुणाम्भोरुहमण्डलीभिर्भृङ्गैरिवा[६]न्तर्मधुपानलीनैः ॥४४॥

(१) शोभनशीलसान्ध्यरागाभ्रिकाश्रेणीभिः । (२) प्राप्ता । (३) अन्धकारनिकरैः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४) शोभा । (५) विकचकोकनदमालाभि: । (६) कोशमध्ये मकरन्दपानार्थं निश्चलीभूतैः ॥४४॥

हील० शोभनशीलाभिरभ्रश्रेणिभिरन्धकारैः कृत्वा शोभा प्राप्ता । यथा रक्ताम्भोजपङ्क्तिभिर्भृङ्गैः शोभाप्स्यते ॥४४॥

हीसुं० [१]तमोगणालिङ्गिनभोङ्गणश्रीः [२]सन्ध्याभ्ररागच्छुरिता [३]चकासे ।
[४]वृन्दारकैः [५]कुङ्कुमगन्धधूलीद्रवैरिवा[६]सिच्यत [७]शक्रमार्गः ॥४५॥

(१) तमोनिवहाश्लिष्टगगनलक्ष्मीः । (२) सन्ध्याघनरक्तिम्ना व्याप्ता । "चन्दनच्छुरितं वपु"-रिति पाण्डवचरित्रे । (३) शुशुभे । (४) देवैः । (५) घुसृणमृगनाभिपङ्कैः । (६) सिक्तः । (७) आकाशम् । "येनामुना बहुविगाढसुरेश्वराध्व" इति नैषधे ॥४५॥

हील० अन्धकारयुक्तं यत्सन्ध्यारागयुक्तं गगनं भाति । देवैः । उत्प्रेक्ष्यते । कुङ्कुमकस्तूरिकाभिर्गगनं सिच्यते ॥४५॥

हीसुं० [१]सुधान्धसामध्वनि [२]सान्ध्यरागोल्लासं [३]विलुप्य प्रसृतं [४]तमोभिः ।
[५]मलीमसाः [६]स्वावसरं [७]प्रपद्य [८]परोदयं हन्त कुतः सहन्ते ॥४६॥

[1]इति सन्ध्यारागः ॥

(१) देवानां मार्गे । नभसीत्यर्थः । (२) सन्ध्यारक्तिमानम् । (३) अपाकृत्य । (४) अन्धकारैः । (५) मलीनाः (६) स्वसमयम् । (७) प्राप्य । (८) परेषामुन्नतिम् ॥४६॥

हील० गगने सन्ध्यारागमतिक्रम्य ध्वान्तैः प्रसृतम् । नीचाः पापाः प्रस्तावं प्राप्यान्येषामुदयं न सहन्ते ॥४६॥

हीसुं० [१]पुरारिकंसारिपदप्रसत्ते[२]रजय्यवीर्यं शशिनं [३]निशम्य ।
ध्वान्तोपधेस्त[४]न्निजिघृक्षयेव [५]तमोभिर[६]भ्रे [७]बहुली[2]बभूवे ॥४७॥

(१) ईश्वरस्य विष्णुपदस्य च प्रसादात् । (२) जेतुमशक्यपराक्रमम् । (३) श्रुत्वा । (४) तस्य शशिनः निग्रहं कर्तुमिच्छया । (५) अजय्यवीर्यत्वाद्रूपबाहुल्यं राहुभिः । (६) गगने । (७) बहुभिर्जातम् ॥४७॥

हील० ईशकृष्णयोः पदमनन्तं तत्सेवया बलवन्तं चन्द्रं श्रुत्वा ध्वान्तमिषान्निग्रहकर्त्तुं ध्वान्तैर्बहुलं जातम् ॥*४७॥

हीसुं० [१]क्वचिज्ज[२]गत्साक्षिणमे[३]क्ष्य यातं [४]जगज्जगज्जीवपिबो [५]जिघत्सुः ।
स्वीयं [७]विभाव्यावसरं [८]स्मरारिर्भूच्छायकायां सृजतीव मायाम् ॥४८॥

(१) कुत्रापि । (२) जगतः साक्षिभूतम् । सर्वकर्म्मणामित्यर्थः । (३) दृष्ट्वा । (४) विश्वम् । (५) विश्वप्राणहरः । "जीवेऽत्सु(सु)जीवितप्राणा" इति हैम्याम् । "क्षये जगज्जीवपिबं

1. इति सन्ध्यारागमध्यगततमिस्रावर्णनम् 'हील० । 2. ०भिर्बभू० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शिवं वद''न्निति नैषधे । (६) खादितुमिच्छुः । (७) दृष्ट्वा । (८) शंभुः (९) तमोमयाम् ॥४८॥

हील० सूर्यं क्वचिद्गतं दृष्ट्वावसरं प्राप्य प्राणहर ईशो जगत्खादितुमिच्छुर्ध्वान्तरूपां मायां करोति ॥४८॥

हीसुं० [1]पशोरिवो[2]र्व्वीदिवगोचरस्य ध्वान्तस्य भोः पश्यति(त) [3]मन्दिमानम् ।
निहन्यमानोऽपि मुहुः [4]करेण [5]चंडद्युता धावति [6]रोदसोर्यत् ॥४९॥

(१) तिरश्च इव । (२) भूमिनभसीविषयश्चरणस्थानं यस्य । (३) मन्दिमानं मूढताम् । ''मन्दिमानमगमच्छनैः शनै''-रिति वस्तुपालकीर्त्तिकौमुद्याम् । (४) किरणेन हस्तेन च । (५) सूर्येण । (६) द्यावापृथिव्योः ॥४९॥

हील० उच्चनीचस्थाने चरणशीलस्य पशोरिव ध्वान्तस्य मूढतां भोः भूस्पृशः पश्यत । यत्सूर्येण हस्तेन रुचा वा हन्यमानोऽपि दिवस्पृथिव्योर्धावति आयाति ॥४९॥

हीसुं० [1]अङ्का[2]च्च्युताया रभसेन बाल्या[4]ल्लीलां [5]सृजन्त्याः [6]स्वपितुर्ग[7]भस्तेः ।
जामे[8]र्यमस्येव पयःप्रवाहैर्भृते [9]नभोभूमितले [10]तमोभिः ॥५०॥

(१) उत्सङ्गात् । (२) पतितायाः । (३) औत्सुक्येन । (४) क्रीडाम् । (५) कुर्वत्याः । (६) निजतातस्य । (७) रवेः । (८) यमुनायाः । (९) गगनभूमी । (१०) अन्धकारैः ॥५०॥

हील० तमोभिर्गगनभूतले व्याप्ते । उत्प्रेक्ष्यते । स्वपितुस्तरणेष्क्रो(ः क्रो)डात्पतिताया यमुनायाः प्रवाहैर्व्याप्ते ॥५०॥

हीसुं० [1]रथाङ्गनाम्नां [2]दिवसावसाने [3]वियोगभाजां सममङ्गनाभिः ।
[4]स्फुरद्विषादानलधूमलेखा मन्ये [5]तमिस्रा [6]बहुलीबभूवुः ॥५१॥

(१) चक्रवाकानाम् । (२) सन्ध्यायाम् । (३) विरहिणाम् । (४) प्रकटीभवत्खेदरूपदुःखानलधूमावलीव । (५) अन्धकाराणि । तमिस्रशब्दः स्त्रीक्लीबलिङ्गे । (६) प्रचुरा जाता ॥५१॥

हील० अन्धकारा बहुला जाताः । तत्रैवमहं मन्ये-वियुक्तानां चक्रवाकानां दुःखाग्नेर्धूमरेखा ॥५१॥

हीसुं० गते गवां [1]स्वामिनि [2]नाभ्युदीते [3]राजन्यथाराजकवद्विभाव्य ।
[6]स्वैरप्रचारेण जगत्समग्रमु[7]पाद्रवद्द[8]स्युरिवान्धकारः ॥५२॥

(१) सूर्य नृपे च । (२) उद्गते न । (३) चन्द्रे भूपे च । (३) अथ पुनरर्थे । (५) निःस्वामिकवत् । ''हाहा महाकष्टमराजक जग''दिति धनपालोक्तिः । (६) स्वेच्छया संचरणेन । (७) उपद्रवति स्म । (८) वैरीव ॥५२॥

हील० भूस्वामिनि रवौ वा गते सति पुनर्नवीनपट्टधरे चन्द्रेवानुदिते सत्यराजकं दृष्ट्वा ध्वान्तारातिर्जगदुपद्रवति स्म ॥५२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० कियद्विहाय: कियती क्षितिर्वा प्रमातुकामस्तमसां समूहः ।
कुतूहलाक्रान्तमना इतीव द्यावापृथिव्योः प्रसरीसरीति ॥५३॥

(१) किं प्रमाणमस्येति । (२) गगनम् । (३) प्रमाणीकर्त्तुमनाः । (४) कौतुकव्याप्तचेताः । (५) नभोभूम्योः । (६) अतिशयेन प्रसरति स्म ॥५३॥

हील० तमः प्रसरति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । कुतूहलेन द्यावापृथिव्यौ प्रमाणीकर्त्तुम् ॥५३॥

हीसुं० तेपे तपो [१]भूधरगह्वरान्तस्त्य[२]क्ताशनाम्भः [३]प्रतिवासरं यत् ।
[४]व्योमावनी व्यापकसिद्धिरस्माद[५]लम्भि भूच्छायभरैरिवै[६]षा ॥५४॥[1]

(१) तदां(?) गिरिगुहासु । (२) मुक्तान्नपानम् । (३) नित्यम् (४) द्यावाभूमी-व्यापनरूपफलनिष्पत्तिः । (५) लब्धा (६) प्रत्यक्षा ॥५४॥

हील० गिरिगुहान्तर्यत्तपस्तप्तं तस्मात्तपसः फलं भूनभसोर्व्यापकसिद्धिराप्ता ॥५४॥

हीसुं० [१]अथो[२]ददीप्यन्त नभःपदव्यां [३]झगज्झगित्युस्रविमिश्रतारा: ।
[४]स्वकान्तमायान्तम[५]वेत्य रात्र्या [६]पुष्पोपचारो [७]व्यरचीव मार्गे ॥५५॥

(१) तमःप्रसारानन्तरम् । (२) उद्दीपिताः । (३) झगज्झगिति कृद्भिः किरणैः करम्बिताः । "झगज्झगितिकान्तय" इति पाण्डवचरित्रे । (४) निजपतिम् । (५) ज्ञात्वा । (६) कुसुमप्रकरः । (७) रचितः ॥५५॥

हील० दीप्यमानकिरणकरम्बितास्ताराः स्फुरन्ति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । स्वपतिं चन्द्रमागच्छन्तं ज्ञात्वा निशा कुसुमप्रकारो व्यरचि कृतः ॥५५॥

हीसुं० [१]कुक्षिंभरि [२]क्षोणि[2]नभःपदव्योर्दृ[३]प्ताहितं सन्तमसं [४]जिघांसोः ।
ताराः स्वयं राज्ञ[५] [६]इहा[७]यियासोः [८]पताकिनीव प्रसृता [९]पुरस्तात् ॥५६॥

(१) भृतमध्यम् (२) भूगगनमार्गयोः । (३) मत्तरिपुम् । (४) हन्तुमिच्छोः । (५) चन्द्रस्य नृपस्य च । (६) इह गगनमण्डले । (७) आगन्तुमिच्छोः । (८) सेना । (९) अग्रे ॥५६॥

हील० ध्वान्तं हन्तुं स्वयमागन्तुकस्य चन्द्रस्य पुरस्तात्ताररूपा वाहिनी प्रसरति स्म । यत्र राज्ञोऽभिषेणनाभि-लाषस्तत्र पुरस्त्वरितमनीकं प्रसरतीति रीतिः । किंभूतं ध्वान्तम् ?। भूगगनयोर्भृतमध्यं, पुनर्जगदाक्रमकारकं शत्रुरूपम् ॥५६॥

हीसुं० चिरं [१]विनोदै[२]र्दिननायकेना[३]भिकेन साकं [४]सुरवर्त्मलक्ष्म्या ।
[५]नक्षत्रलक्षात्किमशेषवक्षः [६]श्रमाम्बुभिर्बिन्दुकितं बभूव ॥५७॥

(१) विलासैः । (२) रविणा । (३) स्वाभिलाषुकेन(ण) । पतिनीव (?) (४) गगनश्रिया । (५) उडुकपटात् । (६) जलकणकलितं जातम् । "स्वेदबिन्दुकितनासिकाशिखं" इति

1. इत्यन्धकारः । हील० । 2. ०मरुत्प० हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नैषधे ॥५७॥

हील० **चिर०** रविणा सार्द्धं विनोदैर्गगनश्रियास्तारामिषाद्वक्षः श्रमाम्बुभिर्बिन्दुकलितं जातम् ॥५७॥

हीसुं० **[1]आगन्तुकस्यो[2]दयशृङ्गिशृङ्गस्थानीं [3]तमोद्विड्दमनस्य [4]राज्ञः ।**
[5]नभोवितानं किमकारि तारामुक्ताङ्कितं [6]सृष्टिकृतो[7]परिष्टात् ॥५८॥

(१) आगन्तुमिच्छतः । (२) उदयाचलशिखरसभाम् । (३) अन्धकाररिपुहन्तुः । (४) चन्द्रस्य । (५) गगनचन्द्रोदयः । (६) ब्रह्मणा । (७) चन्द्रोपरि ॥५८॥

हील० उदयाद्रिरूपां सभामागन्तुकामस्य तमःसंहारकृतश्चन्द्रस्योपरि धात्रा मुक्ताङ्कितश्चन्द्रोदयो धृतः ॥५८॥

हीसुं० **[1]नभोगसारङ्गदृशां [2]रतीशराभस्यवश्यप्रियखेलिनीनाम् ।**
[3]वक्षःस्थहारश्रु(च्यु)तमुक्तिकाभिर्नभःस्थली [4]तारकिता किमासीत् ॥५९॥

(१) देववधूनाम् । (२) कामौत्सुक्येन स्वायत्तैः कान्तैः सह क्रीडनशीलानाम् । (३) हृदयस्थलस्थायुकमुक्तिकहारत्रुटितमुक्ताफलैः । (४) तारायुक्ता ॥५९॥

हील० स्मरोत्कर्षेण वशीभूतैः प्रियैः सह रममाणानां देवाङ्गनानां हृदयात् त्रुटित्वा पतितैर्मुक्ताफलैर्नभस्ताराङ्कितं जातमिव ॥५९॥

हीसुं० **[1]स्वर्दण्डदण्डं दधता [2]तमिस्रवासो [3]वसानेन [4]सितेतरश्रि ।**
[5]कपालमालेव धृता [6]विहायःकपालिना वक्षसि तारताराः ॥६०॥

(१) स्वर्गदण्डः । लोके 'पितृपथ' इति प्रसिद्धः । गगनान्तरामार्ग इव दृश्यमानः स एव यष्टिः । (२) अन्धकाररूपं वस्त्रम् । (३) परिधानेन । (४) श्यामम् । (५) नरमस्तकखर्परपङ्क्तिः । (६) आकाशकपालिकेन ॥६०॥

हील० स्वर्गदण्डं दधता पुनः कृष्णं ध्वान्तवसनं दधानेनानन्तरुद्रेण तारामिषात्कपालश्रेणिर्भृता ॥६०॥

हीसुं० **[1]तथा तवाप्य[2]स्तु यथा [3]त्रियामे ! [4]निष्कास्यतेऽहं गलहस्तयित्वा ।**
[5]शपन्नितीवा[6]क्षिपद[7]क्षलक्षाक्षतान[8]ह्र्योग्य[9]भिमन्त्र्य गच्छन् ॥६१॥

(१) तेनैव प्रकारेण-गलहस्तदानादिना । (२) निष्कासनं भवतु । (३) सम्बोधने रात्रे !। (४) लोकमध्यात् । कथम् ? ते गलहस्तं दत्वा । (५) शापं ददानः । (६) क्षिपति स्म । (७) नक्षत्रनिभात् । लाजानक्षत्रतण्डुलान् वा । (८) दिवसयोगी । (९) मन्त्रयित्वा ॥६१॥

हील० **तथा०** । चतुर्यामाया अपि त्रियामे इति सम्बोधनं क्षयकृत्सूचकम् । यथाहं दिवसस्त्वया निष्कास्ये तथा तवाप्यस्तु इति वासरयोगी तारादम्भादक्षतानक्षिपत् ॥६१॥

हीसुं० **[1]प्रस्थातुकामेन [2]तमो [3]जिघांसोर्जयाय [4]पूर्वावनिभृद्गतेन ।**
[5]अक्षेपि राज्ञा दशदिक्षु मन्ये [6]शान्त्यै बलिस्ता[7]रकतन्दुलाली ॥६२॥

(१) चलितुमनसा । (२) अन्धकारम् । (३) हन्तुमिच्छोः । (४) उदयाचलस्थितेन । (५) क्षिप्तः । (६) निर्विघ्नकृते । (७) तारा एव तन्दुलमाला ॥६२॥

हील० ध्वान्तरूपराहोर्हन्तुमुदयाद्रावागतेन चन्द्रेण तारकरूपो बलिः कृतः ॥६२॥

हीसुं० [१]कान्ते निमग्नेऽम्बुनिधौ [४]प्रणश्य [२]दिनश्रियोऽ[३]त्राणतया [५]प्रयान्त्याः ।
[६]आच्छिद्य [७]मुक्ताभरणानि [८]तारा [९]द्विषत्तये[१०]वाददिरे रजन्या ॥६३॥

(१) सूर्ये । (२) दिवसलक्ष्म्याः । (३) अरक्षकत्वेन । (४) नष्ट्वा । (५) गच्छन्त्याः । (६) हठात् गृहीत्वा । (७) मौक्तिकभूषणानि । (८) ताशरूपाणि । (९) शत्रुतया । (१०) गृहीतानि ॥६३॥

हील० श्रीसूर्ये समुद्रे ब्रूडिते सति रात्र्या दिनश्रिया मुक्ताभरणानि गृहीतानि ॥६३॥

हीसुं० [१]स्वःकूलि[नी]कूलविलासिनीनां [२]प्रदोषविश्लेषिविहंगमीनाम् ।
[३]विलोचनोद्भूतपयःपृषद्भिः [४]किमम्बरं [५]तारकितं पतद्भिः ॥६४॥

(१) गगनसरित्तटे क्रीडाशीलानाम् । (२) रात्रिमुखे वियोगो विद्यते यासां तादृशीनां पक्षिणीनाम् । चक्रवाकीनामित्यर्थः । ''निजपरिदृढं गाढप्रेमा रथाङ्गविहङ्गमी''ति नैषधे ॥ (३) नयननिः सरद्बाष्पकणैः । (४) आकाशम् । (५) ताराकलितम् ॥६४॥

हील० स्वर्गङ्गास्थानां सन्ध्यया वियुक्तरथाङ्गीनां नेत्रेभ्यः पतद्भिः पयोबिन्दुभिर्नभस्ताराङ्कितम् ॥६४॥

हीसुं० स्वां [१]निष्ठितां प्रेक्ष्य सुधां [२]सुधाशैः पुनः [३]कृतेऽस्या इव [४]मथ्यमानात् ।
[५]सुधाम्बुधेर्व्योम्नि [६]समुच्छलद्भिरम्भःकणैस्तारभरैः र्बभूवे ॥६५॥[1]इति ताराः ॥

(१) व्ययिताम् । (२) देवैः । (३) सुधाया अर्थम् । (४) विलोड्यमानात् । (५) क्षीरसमुद्रात् । ''सुधाम्भोनिधिडिण्डीरपिण्डपाण्डुयशःकुशेशयखण्डमण्डितसकलसंसारसरा'' इति चम्पूकथायाम् । (६) उच्चैरुत्पतद्भिः ॥६५॥

हील० स्वसुधाक्षयं दृष्ट्वा पुनः सुधार्थं मथ्यमानादर्णवात् उद्धूतैरम्भःकणैस्तारौघैर्जातम् ॥६५॥

हीसुं० [१]अथोदधे [२]चण्डकरे प्रयाते प्राच्या मुखे किञ्चन [३]पाण्डिमश्रीः ।
[४]स्मितं [५]प्रमोदादिव [६]सौम्यराजोदयं [७]प्रकृत्ये[व] [८]दिशां समीक्ष्य ॥६६॥

(१) तारकप्रकटनानन्तरम् । (२) प्रचण्डदण्डे - नृपे भानौ च । (३) विशदिमशोभा । (४) हसितम् । (५) हर्षप्रादुर्भावात् । (६) सोमतायुक्तस्य राज्ञश्चन्द्रस्य नृपस्य च उदयम् । (६) प्रजया नगरलोकेन । (८) पूर्वदिशाम् ॥६६॥

हील० **अथो०** । रवौ याते प्राच्या मुखे पाण्डुता धृता । उत्प्रेक्ष्यते । चन्द्रं दृष्ट्वा स्मितं कृतम् । यथा प्रजा सौम्यपतिं दृष्ट्वा मोदते ॥६६॥

---

1. इति तारकोदयः हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]संसृज्य [२]रज्यद्दयितेन पत्नी[३] हरेर्हरि[४]रित्ता[५]रविभूषणश्रीः ।
गर्भं वहन्ती [६]मिहिकामयूखं मुखेपुषत्पा[७]ण्डुरिमाणमूहे ॥६७॥

(१) सङ्गं कृत्वा । "निर्वापयिष्यन्निव संसिसृक्षो"रिति नैषधे । सङ्गं कर्त्तुमिच्छोरिति तद्वृत्तिः । (२) अनुरक्तीभवत्कान्तेन । "रज्यन्नखस्याङ्गुलिपञ्चकस्ये" ति नैषधे (३) शक्रपत्नी । (४) दिग् पूर्वा । "निजमुखमितः स्मेरं धत्ते हरेर्महिषी हरित्" इति नैषधे । (५) तारा उज्ज्वला मनोज्ञास्ताररूपा वा आभरणानां श्रीर्यस्याः । "प्रथममुपहृत्यार्थं तारैरखण्डिततन्दुलै" रिति नैषधे । (६) चन्द्रम् । (७) श्वेतताम् ॥६७॥

हीलः० रागिपतिना –इन्द्रेण पतिना वा सह सङ्गं कृत्वा चन्द्रगर्भं वहन्ती गुर्वीणी जाता ॥६७॥

हीसुं० [१]आकण्ठमम्भस्सु निमज्य [२]काममन्त्रोऽ[३]लिशब्दैः [५]कुमुदैर्[४]साधि ।
विकाशलक्ष्मीं ददती किमेषा [६]तत्सिद्धिरिन्दुद्युतिराविरासीत् ॥६८॥

(१) कण्ठमर्यादीकृत्य । (२) अभिलाषदायिमन्त्रः । (३) भ्रमरगुञ्जारवैः । (४) साधितः । (५) कैरवैः । (६) चन्द्रचन्द्रिकारूपा तस्य मन्त्रस्य फलनिष्पत्तिर्जाता ॥६८॥

हीलः० कुमुदैर्मन्त्रः साधितः । उत्प्रेक्ष्यते । कुमुदानां विकाशं ददती तत्सिद्धिश्चन्द्रिका उद्भूता ॥६८॥

हीसुं० [१]सान्द्रद्रुमोल्लासिनि पूर्वशैलशृङ्गाङ्गणे [२]चञ्चति चन्द्रलेखा ।
[३]किञ्चि[४]न्निरीक्ष्या [५]हरिदिग्मृगाक्ष्याश्चूडामणिः किं [६]चिकुरान्तरस्था ॥६९॥

(१) सच्छायतरुशालिनि । (२) शोभते । "चकास्ति चञ्चति लसत्यपि शोभते" इति क्रियाकलापे । (३) स्वल्पम् । (४) दृश्या । (५) पूर्वाकान्तायाः । (६) केशपाशमध्यस्थास्नुः ॥६९॥

हीलः० उदयाद्रिद्रुमान्तश्चन्द्रलेखा संशोभते । उत्प्रेक्ष्यते । पूर्वस्याश्चिकुरान्तर्वर्त्तिनी चूडामणिः । 'मणिशब्दः पुंस्त्रियोः' ॥६९॥

हीसुं० दत्वा[१]धिपत्यं [२]निखिलाचलानां [३]स्वदिग्गिरेः [४]स्वर्गिरिचक्रिणेव ।
[५]मौलिस्थले राजतपट्टबन्धो विनिर्मितः [६]स्फूर्जति [७]सामिसोमः ॥७०॥

(१) राज्यम् । (२) सर्वगिरीणाम् । (३) पूर्वाद्रेः (४) इन्द्रेण । "जाम्बूनदोर्व्वीधरसार्वभौम' इति नैषधे । (५) शिरसि । (६) दीप्यते । (७) अर्द्धचन्द्रः । "पूर्वं गाधिसुतेन सामिघटिता मुक्ता नु मन्दाकिनी"ति नैषधे । अर्द्धनिर्मितेति तद्वृत्तिः ॥७०॥

हीलः० दत्वा०। अर्द्धश्चन्द्रः शोभते । उत्प्रेक्ष्यते । उदयाद्रेः पर्वताधिपत्यं दत्वेन्द्रेण मौलौ रूप्यपट्टबन्धो निर्मितः ॥७०॥

हीसुं० [१]सुरेन्द्रदिग्भूधरमूर्ध्नि बिम्बम[२]पूर्णमाभासत [३]शीतभासः ।
खण्डं शिखायामिव [४]सैंहिकेयदंष्ट्रान्तरायन्त्रणतोऽजनिष्ट ॥७१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) उदयाचलशिखरे । (२) किञ्चिन्न्यूनम् । (३) चन्द्रस्य । (४) राहुदंष्ट्रामध्यनिर्गमनतः ॥७१॥

हील० असम्पूर्णश्चन्द्रः शुशुभे । उत्प्रेक्ष्यते । राहुणार्द्धकृतः ॥७१॥

हीसुं० [१]सम्पूर्णपीयूषमयूखबिम्बं बभौ ततः [२]स्वीयदिगङ्गनायै ।
[३]मरन्दलीनालिपुरन्दरेण [1]किम[४]र्प्यते स्म स्मितपुण्डरीकम् ॥७२॥

(१) अखण्डचन्द्रमण्डलम् । (२) निजदिग्मृगाक्ष्यै । पूर्वायै । (३) मकरन्दपानार्थमन्तर्निश्चलीभूता भृङ्गा यत्र । (४) अर्पितम् ॥७२॥

हील० अथ सम्पूर्णः शुशुभे । उत्प्रेक्ष्यते । इन्द्रेणालिकलितं पुण्डरीकं पूर्वस्याः प्रत्तम् ॥*७२॥

हीसुं० [३]पितामहस्य [१]व्रतिराट्चरित्रैश्चि[२]त्रीयमाणस्य [४]विधूतमौलेः ।
कमण्डलुश्चा[५]न्द्र इवो[६]त्पलाङ्कः [७]स्त्रस्तः [८]शयादु[१०]ल्लसति स्म [९]सोमः ॥७३॥

(१) कवेरपरवर्णनरभस्येन मा ग्रन्थनायको विस्मृतो भूदिति तमेव स्मारयति । हीरविजयसूरिचरितैः (२) विस्मयं दधानस्य । (३) विधेः । (४) कम्पितशिरसः । (५) चन्द्रकान्तमणिमयः कमण्डलुः । (६) कुवलयकलितः । (७) पतितः । (८) हस्तात् । (९) स एव चन्द्रः । (१०) स्फुरति ॥७३॥

हील० चन्द्रो भाति । उत्प्रेक्ष्यते । श्रीहीरविजयसूरिचरित्रैः कम्पितशिरसो ब्रह्मणः करात्पतितः कमलसहितः चन्द्रकान्तरत्नघटितः कमण्डलुरिव ॥७३॥

हीसुं० [१]पीयूषपूर्णः [२]कलधौतक्लृप्तो[३]ऽभिषेककुम्भः किमु [४]शीत[2]कान्तिः ।
[५]शृङ्गारयोनिं [६]जगदाधिपत्ये[७]ऽभिषिञ्चता विश्वकृता [८]व्यधायि ॥७४॥

(१) अमृतभृतः । (२) रूप्यनिर्मितः । (३) अभिषेककरणाय कलशः । (४) चन्द्रः । (५) स्मरम् । (६) भुवनानां राज्ये । (७) विधिना । (८) कृतः ॥७४॥

हील० पीयू०। सङ्कल्पयोनिमाधिपत्ये न्यस्यता विधिना विधुः कुम्भः कृतः ॥*७४॥

हीसुं० [१]क्षयात्सुधायाश्चिरकालपानात्तां[२] याचमाना[३]ननुगृह्य देवान् ।
[४]सुधारुचिर्वि[५]श्वसृजा सुधाया [६]अक्षीणकुम्भः किमु [७]कल्प्यते स्म ॥७५॥

(१) नाशात् । (२) सुधाम् (३) अनुग्रहं कृत्वा । (४) चन्द्रः । (५) धात्रा । (६) अक्षयकलशः । (७) कृतः ॥७५॥

हील० सुधाक्षयात्पुनः सुधां याचमानान्देवाननुग्रहं कृत्वा ध्रुवेण चन्द्रोऽमृत कुम्भः कृतः ॥७५॥

हीसुं० [१]प्राग्दिग्मृगाक्ष्या [२]प्रणयेन पत्यौ [४]समीयुषि [५]स्वावसथं [३]सुरेन्द्रे ।
[६]उद्बोधितो [७]भेत्तुमिवान्धकारं [८]निशीथिनीनायकदीपप्रदीपः ॥७६॥ [3]इति चन्द्रः॥

1. सम० हीमु० । 2. कौमुदीशः हीमु० । 3. इति चन्द्रोदयः हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) पूर्वदिक्कान्तया । (२) स्नेहेन । (३) शक्रे । (४) समागते । (५) निजगृहम् । (६) प्रकटीकृतः । (६) रात्रित्वात्तमो निराकर्त्तुम् । (८) चन्द्र एव दीपनशीलदीपः ॥७६॥

हील० स्वगृहमागच्छति वज्रिणि प्राचीवध्वा ध्वान्तं निराकर्त्तुं त्रियामेशरूपो दीप्तो दीप्रो विहितः ॥७६॥

हीसुं० [१]पूर्वाद्रिमौलेरथ [२]मन्दमन्दं [३]प्रचक्रमे गन्तुम[४]चण्डरोचिः ।
[५]निजोदयश्रीनवनृत्तसूत्रधारापराद्रिं मिलितुं [६]किमुत्कः ॥७७॥

(१) उदयाचल शिखरात् । (२) शनैः शनैः । "गगनमवजगाहे मन्दमन्दं मृगाङ्क" इति चम्पूकथायाम् । (३) प्रारब्ध[वान्] । "प्रचक्रमे वक्तुमनुक्रमज्ञा" इति रघुवंशे । (४) चन्द्रः । (५) निजस्यात्मनः अभ्युदयलक्ष्म्या नवीनताण्डवस्य कलाचार्यः । यथा प्रातर्वर्णने- "उदयगिरि-कुरङ्गीशृङ्गकण्डूयनेन स्वपिति सुखमिदानीमन्तरेन्दोः कुरङ्गः ॥" "परिणतरवि-गर्भव्याकुला पौरहूती, दिगपि घनकपोती हुंकृतैः क्रन्थतीव ॥" इत्युदयनाचार्यकालिदासयोः पदद्वयं पृथक् पृथक् । पश्चिमदिग्गिरिम् । (६) सोत्कण्ठः । चन्द्रस्य तु प्रतिपद्द्वितीयायाः पश्चिमायामेवोदयस्तस्मा-दस्ताचलश्चन्द्रस्योदयाद्रिः ॥७७॥

हील० पूर्वा०। चन्द्रश्चलति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । उदयलक्ष्म्यारब्धनाट्यसूचकास्ताचलं मिलितुम् ॥७७॥

हीसुं० [१]स्वर्भाणुभीतेः [२]शरणीकृतेन [३]प्राचीधवेनाय[४]मुपेक्षितः सन् ।
[५]त्रस्यञ्शशाङ्कः किमु [६]पश्चिमाशापतेः [७]शरण्यस्य समेत्यु[८]पान्तम्[1] ॥७८॥

(१) राहुभयात् । (२) आश्रितेन । (३) शक्रेण । (४) अकृतममत्वः सन् । (५) रिपोस्त्रासं प्राप्नुवन् । (६) वरुणस्य । (७) शरणागतवत्सलस्य । (८) पार्श्वम् ॥७८॥

हील० पूर्वशरणं मुक्त्वा पश्चिमापतिं शरणं याति ॥७८॥

हीसुं० [१]प्राचीपयोराशिपयःप्लवान्तर्विलासमाधाय मरालबालः ।
क्रीडां [२]चिकीर्षुः किमु [३]पश्चिमाब्धौ [४]नभोध्वनासौ प्रचचाल चन्द्रः ॥७९॥

(१) पूर्वसमुद्रपयःपूरमध्ये क्रीडां कृत्वा । (२) कर्त्तुमिच्छुः। (३) पश्चिम समुद्रे । (४) गगनमार्गेण ॥७९॥

हील० चन्द्रः प्रचचाल । उत्प्रेक्ष्यते । हंसबालः ॥७९॥

हीसुं० [१]सञ्चारि [२]निर्दण्डमिवातपत्रं [३]विहस्तको वा [४]चलदात्मदर्शः ।
क्रीडातडागः किमु [५]जङ्गमो वा स्मरावनीन्दोः [६]शशभृद्बभासे ॥८०॥ [2]इति सञ्चारः॥

(१) सञ्चरणशीलम् । (२) दण्डरहितम् । (३) हस्तकेन रहितम् । (४) प्रचलन्दर्पणाः । (५) सञ्चलन् । (६) चन्द्रः ॥८०॥

हील० चन्द्रो भाति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । स्मरस्य छत्रं वा दर्पणं वा कासारो वेति कविविमर्शः ॥८०॥

1. ०ते । हीमु० । 2. इति नभसि चन्द्रबिम्बसञ्चारः हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [1]भीतेः [2]स्विकाया दिवसस्य लक्ष्मीं [3]विज्ञाय [4]नष्टामिह [5]जीवनाशम् ।
विद्मो [6]वसत्या [7]हसितं [8]हसन्त्या [9]ज्योत्स्ना [10]जजृम्भे गगने सुधांशोः ॥८१॥

(१) भयात् । (२) स्वस्य । "मुनेर्मनोवृत्तिरिव स्विकाया" मिति नैषधे । (३) ज्ञात्वा । (४) पलायिताम् । (५) जीवं गृहीत्वा । (६) निशायाः । (७) स्मितम् । (८) हासं कुर्वत्याः । (९) चन्द्रिका । (१०) प्रकटिता ॥८१॥

हील० चन्द्रिका समुल्लसति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । रात्रिभीतेर्नष्टां दिनलक्ष्मीं ज्ञात्वा हसन्त्या रात्र्या हसितमिति वयं विद्मः ॥८१॥

हीसुं० अम्बरे [1]विरुरुचे सुधारुचेश्च[2]न्द्रचञ्चुरमरीचिसञ्चयः ।
[3]दुग्धवारिनिधिरा[4]त्मजं विधुं किं [5]चिराय मिलितुं [6]समीयिवान् ॥८२॥

(१) भाति स्म । (२) कर्पूरशुभ्रकिरणनिकरः । (३) क्षीरसमुद्रः । (४) पुत्रम् । (५) सागरोत्पन्नत्वात् चिरकालेन मिलितुम् । (६) समागतः ॥८२॥

हील० कर्पूरवत्कान्तिप्रकरः शुशुभे । उत्प्रेक्ष्यते । क्षीरसमुद्रः स्वपुत्रं चन्द्रं मिलितुं समागतः ॥८२॥

हीसुं० [1]स्वर्गं गता [2]ऋतुभुजां [3]प्रभवामि तृप्त्यै [4]तद्वन्नृ[7]णामपि [5]धराम[6]धिगत्य नित्यम् ।
पीयूषसन्ततिरितीव विचिन्तयन्ती [8]ज्योत्स्नातनूरवततार [9]तलेऽचलायाः ॥८३॥

(१) देवलोकं गता सती । (२) देवानाम् । (३) तृप्त्यै समर्थीभवामि । (४) तेनैव प्रकारेण । (५) पृथिवीम् । (६) प्राप्य । (७) नराणामपि तृप्त्यै प्रभवामि । (८) चन्द्रिकाकायः । (९) भूमण्डले ॥८३॥

हील० अहं सुधा स्वर्गं गता सती ऋतुभुजां देवानां तृप्त्यै जाता, पुनः पृथिवीं प्राप्य नराणां तृप्तिकारिणी स्यामिति चिन्तयन्ती अमृतश्रेणिर्ज्योत्स्नामिषाद्धरातले उत्तरति स्म ॥८३॥

हीसुं० प्रससार [1]महीविहायसो[2]र्मिहिकादीधिति दीधितिव्रजः ।
युवतेरिव[3] शीतदीधितेरु[4]पसंव्यानम[5]मेचकद्युति ॥८४॥

(१) द्यावापृथिव्योः । (२) चन्द्रचन्द्रिकानिचयः । (३) चन्द्रपत्न्या निशायाः । (४) परिधानवस्त्रम् । (५) श्यामम् ॥८४॥

हील० प्रससा०। द्यावापृथिव्योश्चन्द्रिका प्रसरति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । चन्द्रपत्न्या रात्र्याः श्रेष्ठं परिधानवस्त्रम् ॥८४॥

हीसुं० वारिराशिरशनाविहायसोः कौमुदीभिरुदरं स्म पूर्यते ।
अन्धकाररिपुनिर्जयोद्भवत्कीर्त्तिभिः किमु कुमुद्वतीपतेः ॥८५॥

(१) भूमीनभसोः । (२) मध्यम् । (३) पूर्णीकृतम् । (४) अन्धकार एव शत्रुस्तस्य पराभवनात् अथवा सूर्यस्याभिभवाच्चन्द्रोदये हि भानुरस्तं यातीति प्रकटीभवन्तीभिः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कीर्तिभिः । (५) चन्द्रस्य ॥८५॥

हील० द्यावापृथिव्योर्मध्यं पूर्यते स्म । उत्प्रेक्ष्यते । चन्द्रकीर्तिभिः ॥८५॥

हीसुं० [१]भूमीनभोमण्डलमेदुरश्री[२]ज्योत्स्नावपुर्विष्णु[३]पदीप्रवाहैः ।
[४]नक्तंदिनं [५]जह्नुपदप्रसत्तेः [६]प्राकाम्यरूपा [७]किमवापि [८]सिद्धिः ॥८३॥

(१) पृथ्वीगगनयोरुपचितशोभा । (२) चन्द्रिकाकाया । (३) गङ्गाजलैः । (४) नित्यम् । (५) विष्णुपदस्य सेवनात् । (६) रोदःकन्दरविस्तरणशीला । बहुरूपा । (७) प्राप्ता । (८) फलनिष्पत्तिः ॥८६॥

हील० भूमीनभसोर्मण्डले मेदुरा शोभा यस्यास्तादृशी ज्योत्स्ना सैव वपुर्यस्यास्तादृशी या गङ्गा तस्याः प्रवाहैराकाशसेवातः किं बहुरूपकारिणी सिद्धिराप्ता ॥८६॥

हीसुं० [१]चूर्णैः [२]प्रपूर्णा किमु मौक्तिकानां [३]पीयूषपङ्कैः किमु वा विलिप्ता ।
[४]श्रीखण्डनीरैः किमुताभिषिक्ता [५]ज्योत्स्नाभिरु[६]र्व्वीधवलीकृताभात्[७] ॥८७॥

(१) क्षोदैः । (२) पूरिता । (३) अमृतद्रवैः । (४) चन्दनवारिभिः । (५) चन्द्रचन्द्रिकाभिः । (६) भूमी । (७) बभौ ॥८७॥

हील० चूर्णैः प्र०। एतस्मिन्काव्ये कवेर्वितर्कत्वात्सुगमम् ॥८७॥

हीसुं० [१]आप्लाविते किं [२]सुरसिन्धुसुभ्रुवः [३]स्त्रोतःसहस्त्रैः परितः [४]प्रसृत्वरैः ।
[५]कर्पूरपारीविलसद्यशोभरैः सूरीशितुर्वा [६]विशदीकृते इव ॥८८॥
[१]विलीयमानैस्तु[२]हिनावनीभृन्नीहारचारैर्निभृतं भृते वा ।
प्रपूरिते [३]सान्द्रितचन्द्रचन्द्रातपैर्विभातः स्म [४]दिवस्पृथिव्यौ ॥८९॥ युग्मम् ॥[1]

(१) निर्भरं भृते । (२) देवनद्याः । सिन्धोः समुद्रस्य पत्न्य गङ्गाया इत्यर्थः । (३) प्रवाहसहस्त्रैः । (४) प्रसृमरणशीलैः । (५) पार्यः । "फडसि" इति प्रसिद्धाः । कर्पूरश्रेण्येव तद्वद्भासमानकीर्त्तिभिः । (६) धवलीकृते इव ॥८८॥

(१) गलद्भिः । (२) हिमाचलहिमनिवहैः । (३) निबिडीभूतशशिचन्द्रिकाभिः । (४) नभोभूमी ॥८९॥

हील० आप्ला०। भूमीपृथिव्यौ भातः स्म । उत्प्रेक्ष्यते । गाङ्गौघैर्व्याप्ते । पुनः सूरीन्द्रयशोभिर्विमलीकृते । पुनर्हिमाद्रितुषारैर्भृते इव चन्द्रचन्द्रिकाभिर्व्याप्तयोर्भूमी(र्नभः)पृथिव्योरित्येवं विद्वज्जनानां मतिविकल्पादुपमाप्रादुर्भावः सम्भवः ॥८८-८९॥

हीसुं० गङ्गावज्जल[१]जन्मबन्धुतनया [२]स्वःकुम्भिवत्कुञ्जरो
नीरं क्षीरवदु[३]त्पलं [४]कुमुदवत्का[५]दंबवद्वा[६]यसः ।

1. इति चन्द्रचन्द्रिकाप्रचारः हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वल्ली [8]मौक्तिकहारवन्म[9]रकतश्रेणीशशाङ्काश्मव -
[9]ल्लक्ष्मीं काञ्चिदमी[10] दधुः [11]सितरुचौ चन्द्रातपं [12]चिन्वति ॥९०॥

(१) पद्मबन्धुः सूर्यस्तस्य पुत्री यमुना । (२) ऐरावणः । (३) नीलकमलम् । (४) श्वेतकमलवत् । (५) हंस इव । (६) काकः । (७) नीलरत्नमाला । (८) चन्द्रकान्त इव । (९) शोभाम् । (१०) पूर्वोक्ता गङ्गाप्रभृतयष्प(: प)दार्थाः । (११) चन्द्रे । (१२) विस्तारयति सति ॥९०॥

हील० गङ्गाव०। चन्द्रिकायां सत्याममी पदार्थाः पूर्णां शोभां दधुः । यतो यमी गङ्गा जाता ऐरावणवत् दुग्धवत् नीलोत्पलम् । शेषं सुबोधम् ॥९०॥

हीसुं० [1]स्मेरत्कैरवशङ्कया [2]कुवलयान्यु[3]त्तंसयत्यङ्गना
भृङ्गन्मालिकबालिकाः [4]सुमधिया गृह्णन्ति केलीवने ।
[5]मुक्ताभ्रान्तिभृतः [6]किरातवनिताश्चिन्वन्ति गुञ्जाव्रजां -
[7]श्चञ्चच्चन्द्रमसो भ्रमं [8]वितनुते नो कस्य चन्द्रातपः ॥९१॥

(१) विहसत् । "स्मेरदम्भोरुहारामपवमानमिवानिल" इति पाण्डवचरित्रे स्मेरदिति विकासनार्थे दृश्यते । (२) नीलकमलानि । (३) अवतंसानि कुर्वन्ति । अवतंसकरणं शिरसि श्रवसि च शास्त्रे दृश्यते । " आपीडशेखरोत्तंसावतंसाः शिरसः स्रजि" इति हैम्याम् । तथा - "विदर्भसुभ्रूश्रवणावतंसिके"ति नैषधे । (४) पुष्पभ्रान्त्या । (५) मौक्तिकभ्रमधारिण्यः । (६) भिल्लाङ्गनाः । (७) दीप्यमानचन्द्रस्य । (८) करोति ॥९१॥

हील० चन्द्रचन्द्रिका कस्य भ्रमं नो कुरुते ?। श्वेतकजधिया नीलोत्पलानि अवतंसयन्ति । सुमधिया पुष्पबुद्ध्या ॥९१॥

हीसुं० ज्ञायन्ते [1]वसुधासुधाकरगृहा गर्ज्जारवैः [2]कुम्भिनां
दुग्धाब्धिः [4]प्रतिनादमेदुरमिलत्कल्लोलकोलाहलैः ।
[5]शैलाः [6]कन्दरमन्दिराङ्कविलुठत्कण्ठीरवक्ष्वेडितै -
र्जाते श्वेतकरोदये[1] [8]सुरसरिड्डिण्डीरपिण्डोपमे ॥९२॥

(१) वसुधा पृथ्वी तस्याः सुधाकराश्चन्द्रा नृपा इत्यर्थं तेषां सौधाः । "इदं तमुर्व्वीतलशीतलद्युति" मिति नैषधे । (२) हस्तिनाम् । (३) क्षीरसमुद्रः । (४) प्रतिशब्देन पुष्टास्तथा सन्निहितीभवन्तः तरङ्गध्वनयस्तैः । (५) पर्वताः । (६) गुहा गृहास्तेषामुत्सङ्गे विलुठतां पार्श्वे परिवर्त्तनां कुर्वतां सिंहानां नादैः । (७) चन्द्रोदये । (८) गङ्गाफेनपटलधवलैः ॥९२॥

हील० ज्ञाय० । गगनगङ्गाफेनसदृशे चन्द्रोदये जाते सति राजगृहा हस्तिगर्जितैर्ज्ञायन्ते, क्षीरार्णवाः कल्लोलशब्दै-

1. ०दयेऽम्बरसरि० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

र्ज्ञायन्ते, गुहान्तर्वर्त्तिसिंहसिंहनादैः शैला ज्ञायन्ते ॥*९२॥

हीसुं० [१]दुग्धाम्भोनिधिनिर्ज्जरा इव नराः सर्वेऽपि संजज्ञिरे
[२]स्वःसिन्धोरधिदेवता इव बभुस्त्रस्यत्कु[३]रङ्गीदृशः ।
[४]स्फारस्फाटिक[1]कोटिनिर्मिततलेवासीत्पुनर्मेदिनी
[५]क्षुभ्यत्क्षीरसमुद्रसान्द्रविभवे जाते शशाङ्कोदये ॥९३॥

(१) क्षीरसमुद्राधिष्ठायका इव । (२) गङ्गादेव्या इव । (३) स्त्रियः । (४) प्रकृष्टस्फटिकरत्ननिकरघटितेव । (५) क्षोभं प्राप्नुवतः क्षीरसमुद्रस्येव निबिडा शोभा यस्य ॥९३॥

हील० क्षीरार्णवसदृशे चन्द्रोदये जाते सति पञ्चजनाः स्वस्तिकदेवा इव शुभ्रा जाताः । पुनः स्त्रियो गङ्गादेव्य इव शुभ्रा जाताः । पुनरुत्प्रेक्ष्यते । दीप्यमानैः स्फटिकरत्नैर्घटिता रचिता इव मेदिनी वसुन्धरा जाता ॥९३॥

हीसुं० [१]विजयिन इव [२]राज्ञः [३]श्वेतभासो [४]विभाव्या-
भ्युदयम[५]खिलकाष्ठामध्यराजत्करस्य ।
[६]विहितसकलसन्ध्यावश्यको [७]ध्यानलीला-
कमलकलमरालः स स्म [८]भूत्सूरिराजः ॥९४॥

इति पण्डितदेवविमलविरचिते हीरसौभाग्यनाम्नि महाकाव्ये वर्षा-शरत्-सूर्यास्त-सन्ध्याराग-तिमिर-तारक-चन्द्र-चन्द्रिकादिवर्णनो नाम सप्तमः सर्गः ॥ ग्रंथाग्र १३७ अक्षर १८॥

(१) सर्वत्र विजयवतः । (२) नृपस्य । (३) चन्द्रस्य । (४) दृष्ट्वा । (५) समग्रदिशो मध्ये दीप्यमाना राजादेयांशाः किरणाश्च यस्य । (६) निर्मितसमस्तप्रतिक्रमणादिविधिः । (७) प्रणिधानरूपक्रीडापद्मे राजहंस इव । (८) जज्ञे ॥९४॥

इति सप्तमः सर्गः ॥७॥ ग्रंथाग्रं १७५॥

हील० विजयि०। चन्द्रोदयं दृष्ट्वावश्यकं कृत्वा ध्याने स्तिमितीबभूव ॥९४॥

हील०→ यं प्रासूत शिवाह्वसाधुमघवा सौभाग्यदेवी पुनः
पुत्रं कोविदसिंहसी(सिं)हविमलान्तेवासिनामग्रिमम् ।
तद्ब्राह्मीक्रमसेविदेवविमलव्यावर्णिते हीरयुक्-
सौभाग्याभिधहीरसूरिचरिते सर्गोऽभवत्सप्तमः ॥९५॥←

इति पं. सीहविमलगणिशिष्यपण्डितदेवविमलगणिविरचिते हीरसौभाग्यनाम्नि महाकाव्ये वर्षा-शरत्-सूर्यास्त-सन्ध्याराग-तिमिर-तारक-चन्द्र-चन्द्रिकादिवर्णनो नाम **सप्तमः सर्गः** ॥९५॥

---

1. ०टिकरत्नकोटिघटितेवा० हीमु० । →← एतदन्तर्गतः पाठो हीसुंप्रतो नास्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐँ नमः ॥

अथ अष्टमः सर्गः ॥

हीसुं० [१]अथो [२]निशीथे [३]द्विजराजराजज्ज्योतिःप्रथाभिर्मथितान्धकारे ।
[४]निवातनालीक इव [५]व्रतीन्दुर्ध्यानं दधानः [६]स्तिमितीबभूव ॥१॥

(१) अथो ध्याने मनसो निश्चलीकरणानन्तरम् । (२) मध्यरात्रे । (३) चन्द्र स्फुरत्किरणविस्तारैर्दलितध्वान्ते । (४) निर्वातपद्म इव । (५) सूरिचन्द्रः । (६) निश्चलो जातः ॥१॥

हील० चन्द्रद्युता दीप्यमानेऽथ निशीथे त्वर्धरात्रौ निष्कम्प[प]द्मवद्ध्याननिश्चलो बभूव ॥१॥

हीसुं० [१]पर्यङ्कबन्धः स विभोर्व्र[२]तश्रीविलासपर्यङ्क इवाबभासे ।
[३]कथं [४]भरोऽ[५]मुष्य मया [६]विषह्यो [७]हृदेति यस्मिन्सम[८]शेत शेषः ॥२॥

(१) पद्मासनरचना । (२) संयमलक्ष्मीक्रीडापल्यङ्क इव । (३) केन प्रकारेण । (४) भारः । (५) सूरीन्द्रपर्यङ्कबन्धस्य । (६) सोढुं शक्यः । (७) मनसा । (८) संशयं कृतवान् । "ध्यानभाजां योगीन्द्राणां ध्यानसमये पर्यङ्कबन्धस्यातिशायी भारो भवती" ति कविसमयः । तथा- "ततो भुजङ्गाधिपतेः फणाग्रैरधः कथञ्चिद्धृतभूमिभागः । शनैः कृतप्राणविमुक्तिरीशः पर्यङ्कबन्धं निबिडं बिभेद" । इति कुमारसम्भवे ॥२॥

हील० पर्यङ्क० । महाव्रतलक्ष्मीक्रीडापल्यङ्क इव सूरीन्द्रस्य स पर्यङ्कबन्धः शुशुभे । स कः ?। मया भारः कथं सह्येति शेषनागो यं दृष्ट्वा संशयं कृतवान् ॥२॥

हीसुं० [१]भुजान्तरासन्नशयारविन्दे विभोश्चकासे [२]विशदाक्षमाला ।
[३]हृद्ध्यानदुग्धाम्बुनिधिप्रतीरं [४]प्रपेदुषी किं कलहंस[1]माला ॥३॥

(१) वक्षसः समीपस्थायिनि करकमले । (२) धवलजपमाला । (३) मनसि यो ध्यानरूपः क्षीरसमुद्रस्तस्य तटम् । (४) प्राप्तवती ॥३॥

हील० भुजा० । दक्षिणकरे नवकरवाली शुशुभे । शेषं सुगमम् ॥★३॥

हीसुं० श्रीसूरिमन्त्रं [१]विजने व्रतीन्द्रो [२]जपन्स [३]गोत्रत्रिदशीमिव स्वाम् ।
[४]दध्यौ [५]हृदा [७]श्रीजिनशासनस्याधिष्ठायिकां [६]निर्ज्जरनीरजाक्षीम् ॥४॥[2]

(१) एकान्ते । (२) ध्यायन् । (३)कुलदेवतामिव । (४) ध्यायति स्म । (५) मनसा । (६) देवीम् । (७) जिनशासनाधिष्ठात्रीम् ॥४॥

हील० स्वकुलदेवतामिव शासनदेवतां दध्यौ ॥४॥

हीसुं० [१]ध्यानानुभावेन ततो [२]निशीथे सूरीशितुः शासनदेवतायाः ।
[३]केतु[४]र्निकेतस्य [५]रयेन(ण)[६]वायोरिव क्षणादासनमा[७]चकम्पे ॥५॥

---

1. सपङ्क्तिः हीमु० । 2. इति सूरेर्ध्यानविधानम् हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) प्रणिधानप्रभावेन । (२) मध्यरात्रे । (३) ध्वजः । (४) गृहस्य । (५) वेगेन । (६) वातस्य । (७) कम्पते स्म ॥५॥

हील० ध्यानानुभावाद्ध्वजवच्छासनदेव्या आसनं कम्पितम् ॥५॥

हीसुं० [१]स्वविष्टरं [२]कम्प्रम[३]वेक्ष्य [४]बिम्बमिवो[५]त्तरङ्गाम्बुधिबिम्बितेन्दोः ।
[६]शोणारविन्दायितमी[७]क्षणेन [८]रोषारुणेन [९]त्रिदशाङ्गनायाः ॥६॥

(१) निजासनम् । (२) कम्पनशीलम् । (३) दृष्ट्वा । (४) मण्डलम् । (५) प्रबलकल्लोलकलितसमुद्रजले प्रतिबिम्बितचन्द्रस्य । (६) कोकनदमिवाचरितम् । (७) नेत्रेण । (८) कोपरक्तेन । (९) जिनशासनाधिष्ठायिकायाः ॥६॥

हील० मकराकरकल्लोलबिम्बितेन्दुबिम्बवत्कम्प्रं स्वपीठं समीक्ष्य तस्याम्बकाभ्यामरुणीभूतम् ॥६॥

हीसुं० [१]ध्यानस्थितं [२]शासन[1]निर्ज्जरी सा [३]निपीय तं [४]ज्ञानदृशा [५]वशीन्द्रम् ।
मुदं दधारा[६]मृतकुण्डमध्यप्रणीतलीलाप्लवनेव [७]चित्ते ॥७॥

(१) प्रणिधानोपविष्टम् । (२) शासनदेवता । (३) सादरमवलोक्य । (४) अवधिज्ञानरू- नयनेन । (५) सूरीन्द्रम् । (६) सुधाकुण्डस्य मध्ये कृतं क्रीडया स्नानं यया । (७) मनसि ॥७॥

हील० अवधिना तं सूरीन्द्रं दृष्ट्वामृतस्नातेव सा मुमुदे ॥★७॥

हीसुं० [१]अथाविरासीद्व[२]शिशीतकान्तेः पुरः [३]स्फुरज्जैनमताधिदेवी ।
[2][४]प्रसादनाभिर्द्यु[५]निशं [६]शमश्रीरिवेयम[७]ङ्गीकृतकाययष्टिः ॥८॥

(१) ध्यानस्थितसूरीन्द्रदर्शनानन्तरम् । (२) सूरीन्द्रस्य । (३) जिनशासनाधिष्ठायिका । (४) आराधनाभिः । "प्रसादनां दानशात्रवाणा" मिति नैषधे । (५) निरन्तरम् । (६) उपशमलक्ष्मीः । (७) मूर्त्तिमती ॥८॥

हील० अथेत्यनन्तरं सूरेः पुरः शासनदेवी आगता । उत्प्रेक्ष्यते । सेवातः प्रसन्नीकृता । अतो मूर्त्तिमती उपशमलक्ष्मीः ॥*८॥

हीसुं० [3][१]चान्द्रीं द्वितीयेव [२]कलां जनायां [३]प्राप्तां [४]सुरीं दर्शयितुं [५]स्वमस्मै[६] ।
निद्रां दृशा किञ्चन [७]चुम्बतापि [८]प्रेक्ष्या[९]मुना[१०]जायत [११]जाग्रतेव ॥९॥

(१) चन्द्रसम्बन्धिनीम् । (२) लेखाम् । (३) आगताम् । (४) शासनदेवीम् । (५) आत्मानम् । (६) सूरीन्द्राय । (७) धारयतापि । (८) दृष्ट्वा (९) सूरीन्द्रेण । (१०) जातम् । (११) जाग्रदवस्थेनेव ॥९॥

---

1. ०देवता । हीमु० । 2. प्रसादितोपासनया हीमु० । 3. कलामिवेन्दोर्जगते द्वितीयां हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० यथा समग्रलोकाय स्वरूपदर्शनायेन्दोर्मण्डलमायाति तद्वत्स्वस्मै दर्शयितुमागतां तां दृष्ट्वा निद्रायित-नेत्रेणाप्यमुना जाग्रतेव जातम् ॥९॥

हीसुं० प्रवाललक्ष्मीरिव कामितद्रोस्तद्ध्यान सिद्धेः किमुताग्रदूती ।
प्रत्यक्षवत्प्रादुरभूत्पुरोऽस्य स्वप्नेऽपि सा सार्वमताधिदेवी ॥१०॥[1]

(१) प्रवालशोभा । (२) वाञ्छितवृक्षस्य । (३) प्रथमशासनहारिकेव । (४) जाग्रदवस्थायां प्रकटेव । (५) प्रकटीभूता । (६) निद्रायाम् । (७) जिनशासनदेवता ॥१०॥

हील० वाञ्छावृक्षस्य पुष्पमिव जिनमतदेवता स्वप्ने आगता ॥१०॥

हीसुं० सृष्टिं [१]सिसृक्षोः [२]सुदृशां [2]बभूव [३]स्वयम्भुवः [४]शिल्पगुरुः [३५]पुरा यः ।
[६]विधाय तां [७]बिम्बमिवादसीय[८]शिक्षाकृते सोऽर्प्पयति स्म [९]तस्मै ॥११॥

(१) कर्त्तुमिच्छोः । (२) स्त्रीणाम् । (३) विधातुः । (४) विज्ञानाचार्यः । (५) पूर्वम् । (६) कृत्वा । (७) शासनदेवताया मूर्त्तिम् । (८) शिक्षणाय । (९) धात्रे ॥११॥

हील० धातुगुरुर्मूलरूपं तां कृत्वा तस्मै धात्रे शिक्षाकृतेऽर्प्पयति स्मेत्युत्प्रेक्षा ॥११॥

हीसुं० [१]महीवियद्वीक्षणकेलिलोलीभवन्मनाः [२]स्वैरविहारिणीयम् ।
[३]जम्बू[4]नदिन्या [४]अधिदेवतेव [५]समीयुषी काञ्चनचारिमश्रीः ॥१२॥

(१) भूमिनभोविलोकनक्रीडया चपलीभवच्चित्ता । (२) स्वेच्छया चारिणी । (३) जम्बूनद्या । (४) अधिष्ठायिका । (५) समेता । (६) स्वर्णवन्मनोज्ञा शोभा यस्याः ॥१२॥

हील० मही० । यस्या मृज्जाम्बून[द]दम्भात्तस्या जम्बूनद्या अधिष्ठात्री समेतेव ॥*१२॥

हीसुं० [१]निर्यत्सुरास्त्राशनिभूषणानि विरेजुरङ्गानि [२]सुराङ्गनायाः ।
[३]स्वस्पर्द्धिनः श्रीभिरिवे[४]न्द्रचापवज्राण्यमीभिर्विधृतानि जेतुम् ॥१३॥

(१) निर्गच्छन्ति शक्रधनुंषि येभ्यस्तादृशानि वज्ररत्नाभरणानि येषु । (२) शासन देवतायाः । (३) निजशत्रून् । (४) इन्द्रधनुर्वज्राणीव ॥१३॥

हील० निः सरन्तीन्द्रधनुं(नूं)षि येभ्यस्तादृशानि वज्ररत्नानां भूषणानि येषु तादृशान्यङ्गानि रेजुः । उत्प्रेक्ष्यते । अङ्गैर्वज्राणि धृतानि ॥१३॥

हीसुं० [१]राजीवराजी विजिता यदङ्गै[२]र्मृदुश्रिया [३]रङ्गदनङ्गरङ्गैः ।
[४]तत्तुल्यभावाय तपः सृजन्ती [५]वने वसन्तीव [६]कुशेशया[७]सीत् ॥१४॥

(१) कमलमाला । (२) सुकुमाललक्ष्म्या । (३) नृत्यं कुर्वतः स्मरस्य नर्त्तनस्थानैः । (४) तस्या अङ्गानां सदृशतायै । (५) "वनं कानननीरयो" रित्यनेकार्थः । (६) दर्भशायिनी ।

---

1. इति सूरिपूः शासनदेवतावर्णनारम्भः हील० । 2. पुरा यः हीमु० । 3. ०र्बभूव हीमु० । 4. हृदिन्या हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(७) जज्ञे ॥१४॥

हील० अनङ्गास्थानभूतैर्यदङ्गैर्जिता राजीविनी तपस्विनीव वने-वने जले वा वसन्ती सती दर्भे शयालुर्जाता ॥१४॥

हीसुं० [1]अगण्यनैपुण्यमुखान्नि[2]यन्त्र्य संरक्षितान्प्रेक्ष्य गुणांस्त्रि[3]दृश्या ।
[4]स्वयन्त्रणोद्भूतभयातिरेकात्तस्याः [5]प्रणेशे किम[6]शेषदोषैः ॥१५॥[1]

(१) अतिशायि गणयितुमशक्यं वा दाक्षिण्यं तदेवादौ येषाम् । (२) बद्ध्वा । (३) शासनदेवतया । (४) निजबन्धनजातभयातिशयात् । (५) प्रणष्टम् । (६) समस्तापगुणैः ॥१५॥

हील० गुणान् बद्ध्वा रक्षितान् दृष्ट्वा स्वबन्धभयाद्देव्याः सकाशात् दोषैष्कि(: कि)मितीव प्रणष्टम् ॥१५॥

हीसुं० [2][1]जिनेशितुः शासनदेवतायाः [2]पादारविन्देऽ[3]रुणिमा दिदीपे ।
[4]प्रणेमुषीनां(णां)[5]दिविषद्वधूनां [6]सीमन्तसिन्दूरमिवात्र[7] लग्नम् ॥१६॥

(१) महावीरशासनदेव्याः । (२) चरणकमले । (३) रागः । (४) प्रणमनशीलानाम् । (५) देवीनाम् । (६) केशवर्त्मनः शृङ्गारभूषणाम् । (७) चरणे ॥१६॥

हील० जिनशासनदेव्याश्चरणकजे पाटलिमा भाति । उत्प्रेक्ष्यते । प्रणतसुरीणां सीमन्तसिन्दूरं लग्नम् ॥१६ ॥

हीसुं० [1]यत्पादपद्मेन पराजितेन [2]विजृम्भमाणारुणवारिजेन ।
[3]शुश्रूषणाया[4]रुणिमा [5]तदङ्के [6]शङ्के डुढौकेऽ[7]रुणलक्ष्मिलक्षात् ॥१७॥[3]

(१) शासनदेवताचरणकमलेन । (२) स्मेरत्ताम्रकमलेन । (३) आराधनाय । सेवनाय । (४) स्वरक्तत्वम् । (५) चरणोत्सङ्गे । (६) अहमेवं मन्ये । (७) रक्तकान्तिकपटात् ॥१७ ॥

हील० यत्पाद०। अहमेवं मन्ये यद्यच्चरणजितकजेन सेवायै रक्तता मुक्ता ॥१७॥

हीसुं० यस्याः [1]स्फुरत्कान्तिविकाशिताशाः [2]कामाङ्कुशा [3]दिद्युतिरे पदाब्जे ।
[4]इदंमुखाम्भोजविनिर्जितेन [5]राज्ञेव [6]रत्नान्युपदीकृतानि ॥१८॥

(१) दीप्यमानदीप्तिद्योतितदिशः । (२) नखाः । (३) बभुः । (४) शासनदेवीवदन-पद्माभिभूतेन । (५) चन्द्रेण नृपेण च । (६) तस्य मणीनां सद्भावात् ढौकनं ढौकितानि ॥ १८॥

हील० तस्या नखा अभुः । उत्प्रेक्ष्यते । पराजितेन चन्द्रेण रत्नानि ढौकितानि ॥१८॥

हीसुं० [1]यदाश्रयीभूय [2]किमभ्रसूराः राहुं निहन्तुं [3]नखराङ्गभाजः ।
[4]प्रणम्रगीर्वाणवधूप्रवेणीच्छायाच्छलाङ्गीकृतचन्द्रहासाः ॥१९॥

1. इति शासनदेवतासाधारणसवाङ्गवर्णनम् हील० । 2. अथ पृथगङ्गवर्णनारम्भः हील० । 3. इति पादतलपाटलिमा हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) या देव्येवाश्रयो येषां ते यदाश्रयाः । न यदाश्रया यदाश्रया भूत्वेति । (२) उद्यद्भानवः । (३) नखा एव काया, तान् भजन्तीति । (४) प्रणमनशीलसुराङ्गनावेणीप्रतिबिम्बकपटेनाश्रितखड्गाः सन्ति ॥१९॥

हील० यदा० । नतसुरीवेणि(णी)दम्भात्स्वीकृतखड्गा राहुं हन्तुमुद्यता नखरूपाष्कि(: किं) बालसूर्याः ॥१९॥

हीसुं० [१]इदंपदीभूय [२]भवान्तरेऽपि [३]लौहित्यलक्षात्क[४]लितानुरागाम् ।
पद्मद्वयीं प्रेक्ष्य [५]नखाङ्गबालारुणा इवैत[६]न्मिलनार्थमी[७]युः ॥२०॥

(१) अस्याः पदौ भूत्वा । (२) अपरस्मिन्जन्मन्यपि । (३) लौहित्यच्छलात् । (४) धृतरागाम् । (५) नखरूपशरीरा उद्यद्भास्कराः । (६) एतस्याः पद्मद्वय्याः अर्थाद्बन्धुत्वेन मिलनार्थम् । (७) आगताः ॥२०॥

हील० भवान्तरेऽप्येतस्याश्चरणीभूत्वाऽपि स्नेहाकुलां कजद्वयीं दृष्ट्वा बालारुणा मिलितुमेताष्कि(: कि)मु ॥२०॥

हीसुं० [१]प्रपेदुषीं [२]यत्पदतां पयोजद्वयीं विभाव्या[३]र्भकशीतभासः ।
[४]निजानुरज्यन्मनसं [५]प्रणेतुं नखीबभूवुः किमु[६]तत्रिदश्याः ॥२१॥

(१) प्राप्ताम् । (२) शासनदेवीचरणत्वम् । (३) बालमृगाङ्काः । "राकामृगाङ्काः सम्भूय विभान्ति शरणागता" इति पाण्डवचरित्रे । इति कविसमये चन्द्रबाहुल्यम् । (४) स्वेषु अनुरक्तीभवच्चित्ताम् । "चकास्ति रज्यच्छविरुज्झितान" इति नैषधे । (५) कर्त्तुम । (६) तस्या देव्याः ॥२१॥

हील० यच्चरणरूपां कजद्वयीं प्रेक्ष्य चन्द्राः स्वस्मिन्रागकलितां तां कर्त्तुम् । उत्प्रेक्ष्यते । नखभूयं गताः ॥२१॥

हीसुं० [१]सौन्दर्यपाथःप्लवपादपद्माकरेऽ[२]ङ्गुलीनालजुषोऽ[३]निमिष्याः ।
[४]कामाङ्कुशाः [५]शोणसरोजराज्यो [६]ज्योतिः[1]परागोपचिता [2]इवाभुः[७]॥२२॥[3]

(१) सुन्दरतैव पयःपूरो यत्र तादृशे चरणरूपे सरसि । पदे आकृतिकमलानां सद्भावात्कमलाकरत्वम् । (२) अङ्गुल्यः पदशाखा एव मृणालानि भजन्ते । (३) देव्याः । (४) नखाः । (५) कोकनदपङ्क्तयः । (६) कान्तिरूपपौष्यव्याप्ताः । (७) शुशुभिरे ॥२२॥

हील० देव्याः सौन्दर्यमेव पयःपूरो यत्र, तादृशे चरणसरसि अङ्गुलीनालवन्त्यो नखरूपाः कोकनदपङ्क्तयः ॥२२॥

---

1. ०तिर्मरन्दोप० हीमु० । 2. इवाबभुः हीमु० दृश्यते । तच्च छन्दोभङ्गकारित्वादयोग्यमाभाति । 3. इति पदनखाः हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [1]नखोल्लसत्पल्लवशालमानैर्न[2]म्रामरीनेत्रमिलद्विरेफैः ।
[3]शाखाविशेषैः [4]पदशाखिनः किं [5]तदङ्गुलीभि[6]र्ध्रियते स्म शोभा ॥२३॥

(१) नखा एव विकसन्तः प्रवालास्तैः शोभमानैः । (२) नमनशीलदेवीनेत्रप्रतिबिम्बान्येव समागच्छन्मधुकरैः । (३) विशिष्टशाखाभिः । (४) पादद्रुमस्य । (५) देव्या अङ्गुलीभिः । (६) ध्रियते स्म । "डुभृञ् धारणपोषणयो"रित्यस्य रूपम् ॥२३॥

हील० नखो० । तस्या अङ्गुलीभिः शोभा धृता । उत्प्रेक्ष्यते । नखपल्लवकलितैर्नतसुरीनेत्रालियुक्तैश्चरणवृक्षस्य शाखाविशेषैः ॥२३॥

हीसुं० [1]पदं मयेदं [2]प्रददे शिरस्सु [3]दिशां दशानामपि [4]सुन्दरीणाम् ।
इतीव [6]रेखाः [1]पदयो[5]रमर्त्त्याङ्गुलीमिषात्तत्प्रमिता बिभर्ति ॥२४॥[2]

(१) अयं चरणः । पदशब्दः पुंक्लीबे । यथा नैषधे- "पदं किमस्याङ्कितमूर्ध्वरेखया" । (२) दत्तम् । (३) दशदिग्वर्त्तिनीनाम् । (४) स्त्रीणाम् । (५) देवी । "अलम्भि मर्त्त्याभिरमुष्य दर्शने" इति नैषधे । यथा मर्त्त्या तथा अमर्त्त्यापि । (६) अङ्गुलीरूपा रेखा । (७) दशदिक्प्रमाणाः । (८) धत्ते ॥२४॥

हील० मया दिक्सुन्दरीणां शिरसि पदं दत्तम् । इतीव कारणादङ्गुलीदम्भाद्दशरेखा सा धत्ते ॥★२४॥

हीसुं० [1]विलासिबालव्यजना [3]धृतातपत्रा [2]स्फुरद्वारिजराजमाना ।
[3]अधीश्वरीवाखिलवारिजानां [5]यदीयपादद्वितयी दिदीपे ॥२५॥

(१) आकृतिस्फुरच्चामरा । पुनराकृत्यैव कलितछत्रा । (२) प्रकटीभवद्भिः कमलैराकृतिधारिभिस्तैः शोभमाना । (३) स्वामिनीव । (४) समस्तकमलानाम् । (५) देवीचरणयुगली ॥ २५॥

हील० तत्त्वतो लाञ्छनतश्चामरछत्रकजकलिता ॥★२५॥

हीसुं० [1]कथञ्चना[2]भ्यर्थनया [3]मृदुत्वं [4]रागश्रियं चाप्य पदारविन्दात् ।
[6]प्रवालमाला [5]धरणीरुहाणामि[7]वाधमर्णीभवति स्म [8]तस्याः ॥२६॥

(१) केनापि प्रकारेण । (२) याचनया । (३) सौकुमार्यम् । (४) लौहित्यं च । (५) तरूणाम् । (६) पल्लवपङ्क्तिः । तरुप्रवालकथनेन विद्रुमाणां निरासः । (७) ग्राहका जाताः । (८) देव्याः ॥ २६ ॥

हील० पदारविन्दात् मृदुतां रक्ततां प्राप्य वृक्षप्रवालश्रेणिस्तस्या ग्राहका जाता ॥२६॥

हीसुं० [1]यत्पादराजौ [2]परिशुद्धपार्ष्णी [3]निर्जित्य [4]गत्या[5]खिलराजहंसान् ।
[6]उच्चै [7]रु[4]चीस्फूर्तिमिषा[8]ज्जिगीषू [9]प्रस्थातुकामाविव [10]नाकिनागम् [5]॥२७॥[6]

1. क्रमयो० हीमु० । 2. इति देवीपादाङ्गुल्यः हील० । 3. धृतोद्यच्छत्रा० हीमु० । 4. रुचिस्फु० हीमु० । 5. हीमु० २७-२८ तमश्लोकयोरेषोऽनुक्रमः २८-२७. । 6. इति पार्ष्णिः हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) देव्याः पादावेव भूपौ । (२) परि समन्तान्निर्मलः घुटयोरधः प्रदेशो ययोः । राजा तु निर्दोषपाश्चात्यराजः । "शुद्धपार्ष्णिरयान्वित" इति रघुवंशे । (३) जित्वा । (४) गमनेन प्रयाणेन च । (५) समस्तमरालान् प्रकृष्टनृपांश्च । (६) ऊर्ध्वं अर्थात्स्वर्गे उच्चैः। (७) रुचीनां कान्तीनां स्फुरणकपटेन । (८) जेतुमिच्छू । (९) प्रस्थानं कर्त्तुमनसाविव । (१०) ऐरावणं देवप्रधानं शक्रमित्यर्थः । "स्युरुत्तरपदे व्याघ्रपुङ्गवर्षभकुञ्जराः सिंहशार्दूलनागाद्या" इति हैम्याम् । तथा-"कारागृहे निर्जितवासवेने" ति रघुवंशे इति ॥२७॥

हील० यत्पा० । शुद्धो लाञ्छनरहितः पार्ष्णिर्घुटयोरधःप्रदेशो ययौः । तथा शुद्धो विरोधादिरहितः पार्ष्णिः-पाश्चात्यः नागं ऐरावणम् ॥*२८॥

हीसुं० [१]प्रसादकान्ती दधती [२]सुवर्णालङ्कारिणी [३]रम्यतमक्रमा च ।
[४]संश्लेषदक्षाऽ[५]प्रतिमोपमानश्रीः [६]श्लोकमालेव सुरी चकासे॥२८॥[1]

(१) प्रसन्नतां शोभां च । झगित्यवबोधगोचरत्वं प्रसादगुणः । दीप्तरसत्वं च कान्तिः । (२) हेमभूषणवती । शोभनाक्षरैरूपोपमोत्प्रेक्षाद्यैरलङ्कारैश्च युक्ताः । (३) मनोज्ञचरणा अनुक्रमा वा । (४) आलिङ्गनचतुरा तथा शब्दगुणार्थगुणशब्दालङ्कारार्थलङ्काररूपः समीचीनः श्लेषस्तत्र पट्वी । (५) न विद्यते प्रतिमा सादृश्यं यस्याः । " न तन्मुखस्य प्रतिमा चराचरे" इति नैषधे । तादृशी उपमा तस्य श्रीर्यस्यास्तथा असाधारणा उपमानैः कृत्वा शोभा यत्र । (६) अनुष्टुप्पङ्क्तिरिव ॥२८ ॥

हील० प्रसा० । अनुष्टुभां पङ्क्तिरिव शासनाधिष्ठात्री शुशुभे । किंभूता ?। प्रसन्नभावं कान्ति वपुर्दीप्तिं तथा झगित्यर्थावबोधगोचरत्वं प्रसादगुणस्तथा दीप्तरसत्वं कान्तिस्ते दधाना । पुनः किंभूता ?। कनकभूषणाञ्चिता वा शोभनाक्षरा । पुनरलङ्कारवती । पुनः शस्तानुक्रमा ।पुनरालिङ्गने वा सम्यक्श्लेषस्तत्र पट्वी । पुनरसाधारणा। पुनरुपमानैरुपलक्षणादुत्प्रेक्षाद्यैः श्रीर्लक्ष्मी शोभा यस्यां ना ॥२७॥

हीसुं० [१]जम्भद्विषत्कुम्भिपराभविन्या यया[२]भिभूतिं [३]गमितः [४]स्वगत्या ।
किं [५]हंसकस्तां च[६]रणारविन्दे [७]तस्थौ [८]प्रसत्तेर्विषयीचिकीर्षुः ॥२९॥

(१) ऐरावणविजयिन्या । (२) पराभवम् । (३) प्रापितः । (४) निजयानेन । (५) हंस एव हंसकः । स्वार्थे कः । नूपुरं च । (६) स्थितः । (७) पदकमले । (८) प्रा(प्र)सादगोचरतां नेतुमिच्छुः ॥ २९ ॥

हील० ययाभिभूतो हंस एव हंसको नूपुरः सेवायै स्थितः ॥२९॥

हीसुं० [१]स्वजिह्मयानेन [२]विगानितः सन्ना[३]खण्डलः कुण्डलिनामिवै[४]ताम् ।
[५]सिञ्जानमञ्जीरविनिर्मिताङ्गः [६]प्रसादय[७]त्यंह्रिपयोजलग्नः ॥३०॥[2]

1. इति देवीचरणाः हील० । 2. इति देवीचरणनूपुरम् । हील०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) निजवक्रगत्या । (२) अवगणितः । (३) शेषनागः । (४) देवीम् । (५) शब्दायमान-नूपुरमेव कृतं शरीरं येन । (६) प्रसन्नीकरोति । (७) पदपद्मे विलग्नः ॥३०॥

हील० स्वकुटिलगतेनाभिभूतः शेषनागो रणज्झणितिरवकृन्नूपुरशरीरेणाश्रित्य प्रसन्नीकरोति ॥३०॥

हीसुं० यया [१]जग[1]ज्जित्वरया श्रियां[२]ह्रिगुल्फः परां [३]कोटिमवापितः सन् ।
[४]पराक्षिलक्ष्यत्वमयांबभूव न चक्रवर्ती [2]च [५]कदाचनापि ॥३१॥

(१) भुवनजयनशीलया । (२) चरणग्रन्थिः-घुंटकः । (३) उत्कृष्टकाष्ठाम् । (४) अन्येषां नयनयोर्दृश्यत्वं गोचरत्वमिति । वैरिणां दृग्गोचरतां जगाम । "अय गता"वित्यस्यापि रूपत्रयं यथा- अयांचक्रे अयामासायांबभूव । (५) कस्मिन्नपि प्रस्तावे ॥३१॥

हील० यया स्वशोभयोत्कर्षतां प्रापिते घुंटकः परचक्षुर्गोचरतां न गच्छति स्म । यथा चक्रवर्त्ती जैत्रश्रियोत्कृष्टः सन्परेषां शत्रूणां नेत्रगोचरत्वं नायते ॥*३१॥

हीसुं० यज्जङ्घ[१]याधःकरणादु[२]दीतव्रीडातिरेका[३]दिदमीयगुल्फः ।
मन्ये [४]न्यमज्ज[५]न्नवनिर्यदर्चिरर्णःप्रपूर्णीभवदंह्रिशोणे ॥३२॥[3]

(१) नीचैर्विधानात्तिरस्करणाद्वा । (२) उत्पन्नलज्जातिशयात् । (३) देवीघुंटकः । (४) बुब्रूडः । (५) अभिनवनिःसरज्जयोतिर्जलप्रपूर्णपदह्रदे ॥३२॥

हील० जङ्घातोऽधस्तात्स्थितत्वाल्लज्जया गुल्फः नवीनानि निर्यन्ति अर्च्चींषि एवार्णांसि जलानि तैः पूर्णे चरणह्रदे ब्रूडति स्म ॥३२॥

हीसुं० [१]श्रीमज्जिनाधीशमताधिदेव्या जङ्घे विभूषा[२]मनघे दधाते ।
किमु [३]प्रगल्भक्रमनामधेयवृन्दारकोर्व्वीरुहयोः [४]प्रकाण्डे ॥३३॥

(१) शासनदेव्याः । (२) निष्पापे प्रशस्ये । (३) प्रकृष्टयोश्चरणावेवाभिधानं ययोस्तादृशयोः कल्पसालयोः । (४) वृक्षस्कन्धौ । प्रकाण्डः पुंक्लीबयोः ॥३३॥

हील० श्रीमच्छासनाधिष्ठात्र्या जङ्घे भातः । उत्प्रेक्ष्यते । प्रकृष्टौ क्रमौ तावेव नामधेयं ययोस्तादृशयोः कल्पवृक्षयोः प्रकाण्डे मूलाच्छाखावधिप्रदेशौ इव ॥३३॥

हीसुं० यस्याः [१]प्रकाण्डस्फुरदग्रजङ्घासदृक्षलक्ष्मीस्पृहयालवः किम् ।
विषह्य भारं [२]भवनव्रजानां स्तम्भा मनुष्या[३]नुपकुर्वते स्म ॥३४॥

(१) वृक्षस्कन्धाविव शोभमानयोर्जङ्घयोस्तुल्यशोभाकाङ्क्षाः । (२) गृहगणानाम् । (३) उपकारं कुर्वन्ति ॥३४॥

हील० **यस्याः प्र०।** स्थम्भा गृहवीवधं सहित्वोपकारं कुर्वन्ति स्म । उत्प्रेक्ष्यते । गण्डिसदृशजङ्घाश्रीशोभार्थिनः ॥३४॥

---

1. ०गज्जैत्रतमश्रि० हीमु० । 2. तु० हीमु० । 3. इति गुल्फः हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]सारङ्गनाभीसुरभे[२]रमुष्या [३]जङ्घाविभूषाभि[४]रधःकृताभिः
[५]मृगङ्गनाभि[६]र्गिरिगह्वरोर्व्वी [७]मन्दाक्षलक्ष्याभिरिव [८]प्रपेदे ॥३५॥

(१) कस्तूरिकासदृशपरिमलायाः । (२) शासनदेव्याः । (३) जङ्घाशोभाभिः । (४) तिरस्कृताभिः । (५) मृगीभिः । (६) शैलगुहाभूमी । (७) लज्जाकलिताभिः । (८) प्रपन्ना ॥३५॥

हील० कस्तूरिकावत्सुगन्धाया अस्या जङ्घाभूषाभिर्जिताभिर्मृगीभिर्लज्जया वनमाश्रितम् ॥३५॥

हीसुं० जङ्घे [१]यदीये [२]प्रणयन्प्र[३]यत्नात्प्र[४]काण्डसारं [५]पृथिवीरुहाणाम् ।
जग्राह धाता किमभावि तेषु [६]ततः [७]स्फुरत्कोटरकूटरन्ध्रैः ॥३६॥[1]

(१) देवीसम्बन्धिन्यौ । (२) कुर्वन् । (३) आदरात् । (४) वृक्षाणाम् । (५) स्कन्धानां सारं वस्तुजातम् । (६) स्कन्धेषु सारग्रहणानन्तरम् । (७) प्रकटीभवन्तो ये निष्कुहाः । "पोलाडि" इति प्रसिद्धाः । त एव कपटं येषां तादृशैश्छिद्रैः ॥३६॥

हील० यस्या जङ्घे कुर्वन् धाता वृक्षस्कन्धसारं जग्राह । नो चेत् कोटरमिषाद्रन्ध्राणि कथं जातानि ॥३६॥

हीसुं० [१]कपोलयुग्मेन [२]मरुद्युवत्या [३]तिरस्कृते [४]दर्पणिके [५]विभूत्या ।
[६]गुप्तं स्थिते जानुनिभा[७]दुपेत्य जेतुं [८]द्विषं [९]छिद्रदिदृक्षयेव ॥३७॥

(१) गण्डद्वन्द्वेन । (२) शासनदेवतायाः । (३) जिते । (४) आदर्शिके । "यन्मतो विमलदर्प्पणिकाया"मिति नैषधे । (५) श्रिया । (६) छन्नम् । (७) आगत्य । (८) वैरिणम् । (९) अपगुणानां द्रष्टुमिच्छया ॥३७॥

हील० यत्कपोलपराभूते दर्पणिके जानुदम्भाद्दोषेक्षणार्थं किं गुप्तं स्थिते ॥३७॥

हीसुं० [१]आदर्शिका[२]घानि मिथो[३] मृधेषु यज्जानुना स्पर्द्धितया [४]स्वकान्त्या ।
ततः किमु प्रापद[५]तुच्छमूर्च्छां न चेद[६]चैतन्यवती [७]किमेषा ॥३८॥

(१) आदर्शिका मुकुरिका । लोके "आरसी"ति प्रसिद्धा । (२) हता । (३) परस्पर युद्धेषु । (४) निजशोभया । (५) बहुमोहम् । (६) चेतनारहिता । (७) केन प्रकारेण ॥३८॥

हील० आद० । यज्जानुना दर्पणिका हता । तस्मादेव मूर्च्छां प्रापत् ॥३८॥

हीसु० [१]रम्भास्फुरद्वैभवयत्सुपर्व्वसारङ्गदृक्केलिनिकेतनस्य ।
[२]अन्तर्वसत्सालसदृक्स्मरस्य स्तम्भौ [३]प्रगल्भौ स्फुरतः किमूरू ॥३९॥

(१) रम्भानामप्सरसस्तद्वत्प्रकटीभवन्विलासो यस्यास्तदृशी या चासौ सुराङ्गना सैव केलये क्रीडार्थं गृहं तस्य । अन्यदपि क्रीडार्थं केलीगृहं 'कदलीहर' मिति प्रसिद्धम् । (२) मध्ये क्रीडागृहान्तराले निवासं कुर्वतः रतियुक्तस्य कामस्य । (३) प्रकृष्टौ ॥३९॥

1. इति जङ्घा हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० रम्भा०। अन्तर्वसन् अलसेक्षणया रत्या सह स्मरो यत्र तादृशस्य रम्भाप्सरोवद्वैभवो यस्यास्तादृश्याः शासनदेव्याः क्रीडागृहस्य स्थम्भसदृशौ सक्थ्यौ स्फुरतः ॥३९॥

हीसुं० [१]यदूरुसृष्ट्यै [२]करिणां [३]करेभ्यो मन्ये [४]मृदुत्वं [५]गृहयांबभूव ।
स्वयं स्वयम्भूरिति तेषु नो चेदे[७]कान्तकार्कश्यमिदं [८]कुतस्त्यम् ॥४०॥

(१) शासनदेव्या उर्व्योर्निर्माणाय । (२) हस्तिनाम् । (३) शुण्डाभ्यः । (४) सौकुमार्यम् । (५) गृहीतवान् । (६) विधाता । (७) सर्वथा प्रत्यक्षलक्ष्यं काठिन्यम् । (८) कुतो भवम् ॥४०॥

हील० ब्रह्मा गजानां शुण्डादण्डेभ्यो मृदुतां गृहीतवान् । इति नो चेत् करिकरेषु कार्कश्यं कुतो भवम् । ततो ज्ञायते सौकुमार्ये गृहीते कर्कशतैव स्थिता ॥४०॥

हीसुं० [१]दृप्तां यदूरुद्वितयीं [२]प्रतीपा[३]मन्विष्य [४]संहर्षकरीं [५]करेण ।
प्रणश्य भीत्या[६]भ्र[1]मुवल्लभः किं [७]दम्भोलिपाणिं [८]शरणीचकार ॥४१॥

(१) बलिष्ठाम् । (२) वैरिणीम् । (३) दृष्ट्वा । (४) स्पर्द्धाकारकाम् । (५) हस्तेन । शुण्डया । (६) ऐरावणः । (७) शक्रम् । वज्रहस्तत्वादजेयम् । (८) आश्रितवान् ॥४१॥

हील० दृप्तां०। यस्या ऊरुद्वयीं स्पर्द्धाकरीं दृष्ट्वा ऐरावणो वज्रिणं शरणं कृतवान् ॥*४१॥

हीसुं० [१]तत्क्रेव वार्त्ता मम [२]राजहंसा[३]न्सर्वानसौ यज्जयति [४]स्वगत्या ।
[५]इत्यू[६]रुकायं किमु [७]ताव[८]द[२]स्यै [९]करं करीन्द्रो [१०]व्यतरत्त्रि[३]दश्यै ॥४२॥

(१) तर्हि कथैव का ? न काचिदपि वार्त्ता । (२) मरालान् प्रकृष्टभूपालान् । (३) समस्तानपि । (४) निजविलासगमनेन । प्रयाणेन । (५) हेतोः । (६) उरू एव वपुर्यस्य । (७) प्रथमम् । (८) शासनदेवतायै । (९) दण्डं हस्तं च । (१०) ददौ ॥४२॥

हील० असौ देवी हंसान् जयति । तन्मे का कथा इति कारणादेवोरुमिषात्करं ददाति स्म ॥*४२॥

हीसुं० [4][१]यस्या बभासे [२]जघनेन [३]रत्या [४]रिरंसया [५]स्वीयविलासवत्या ।
[६]विनोदजाम्बूनदमन्दिरेण कृतेन मन्ये [७]सुमनःशरेण ॥४३॥

(१) देव्याः । (२) स्त्रीकट्या अग्रप्रदेशेन । (३) स्मरपत्न्या । (४) क्रीडितुकामेन । (५) निजजायया । (६) क्रीडार्थं स्वर्णगृहेण । (७) स्मरेण ॥४३॥

हील० यस्याः कट्या अग्रभागेन शोभितम् । उत्प्रेक्ष्यते । रत्या सह रन्तुं मदनेन कनक मन्दिरेण कृतेन ॥४३॥

हीसुं० [१]भस्मीकृतं [२]धूर्जटिना[३]क्षिलक्ष्यीकृत्य [४]प्रसूनध्वजजीवितेशम् ।
मा हन्तु मामे[६]ष इतीव रत्या गुप्तं गृहं [७]यज्जघनं [८]व्यधायि ॥४४॥

---

1. ०मुकामुकः हीमु०। 2. स्याः हीमु०। 3. दृश्याः हीमु०। 4. अयं श्लोकः हीमु० नास्ति। टीका तु द्वाचत्वारिंशत्तमश्लोक-टीकायामन्तर्गता मुद्रिता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) ज्वालितम् । (२) ईश्वरेण । (३) नयनयोर्गोचरं कृत्वा । (४) कामम् । (५) स्वकान्तम् । (६) शम्भुः। (७) शासनदेव्या कटेरग्रभागः । (८) कृतम् ॥४४॥

हील० ईश्वरेण स्मरं भस्मीकृतं दृष्ट्वा एष मां मा हन्तादितीव र्हतोर्गुप्तगृहं जघनं कामपत्न्या कृतम् ॥४४॥

हीसुं० [१]तीर्थाधिभर्त्तुर्म[२]तदेवतायाश्चकास्ति [३]लक्ष्म्या[४]प्रतिमो [५]नितम्बः ।
[६]मोघीकृते[1]षुं [७]मखजिद्विषन्तं जेतुं धृतं [८]चक्रमिव स्मरेण ॥४५॥

(१) जिनस्य । (२) शासनदेव्याः । (३) शोभया । (४) असाधारणः । (५) कटीपृष्ठप्रदेशः। (६) निष्फलीकृतबाणम् । (७) ईश्वरम् । (८) आयुधविशेषः ॥४५॥

हील० तीर्था० । शासनदेव्याः शोभया असाधारणो नितम्बः शोभते । उत्प्रेक्ष्यते । मोघीकृता बाणा येन तादृशमीशं जेतुं धृतं चक्रम् ॥४५॥

हीसुं० [१]यदङ्गरङ्गन्नवराजधानीनिवासिनः [२]श्रीसुतभूविवोढुः ।
[३]स्फुटीभवत्पु[४]ष्परथस्य शङ्के [५]रथाङ्गमेत[६]त्त्रिदशीनितम्बः ॥४६॥[2]

(१) शासनदेवीशरीरमेव जङ्गमः स्कन्धावारस्तत्र वसनशीलस्य । (२) स्मरराजस्य । (३) प्रकटं जायमानम् । (४) क्रीडार्थरथस्य । (५) चक्रम् । (६) इदंदेव्याः कट्याः पश्चात्तनप्रदेशः ॥४६ ॥

हील० त्रिदशीनितम्बः शोभते । उत्प्रेक्ष्यते । यदङ्गराजधानीवसितस्य मदनस्य शताङ्गस्यैतच्चक्रम् ॥४६॥

हीसुं० [१]एतत्कलत्रस्य हरेः[२] कलत्रजैत्रस्य [३]सौभाग्य[५]मुदीर्यते [४]किम् ।
[६]गाङ्गे[७]यमप्या[८]तनुते स्म [९]काञ्चीनिभान्नि[१०]जालिङ्गनलालसं [११]यत् ॥४७॥

(१) देव्याः कट्याः । जायाया इत्यप्यर्थध्वनिः । (२) केसरिकटीजयनशीलस्य । कृष्णपत्न्या लक्ष्म्या जघ(य)नशीलस्येत्यप्यर्थध्वनिः । (३) सुभगतां सौन्दर्यम् । (४) किमित्यनिर्वचनीय-माहात्म्यम् । (५) कथ्यते । (६) सुवर्ण-गङ्गातनयं भीष्मं च । (७) अपि शब्देन ब्रह्मचारित्वेन स्त्रीविषयविमुखोऽपीति लक्ष्यते । (८) चकार । (९) मेखलाकपटात् । (१०) स्वकीयस्यालिङ्गने जातदोहदं लोलुपं वा । अमरस्तु- "इच्छातिरेकस्तु लालसा" । (११) यस्मात्कारणात् ॥४७॥

हील० विष्णोः सिंहस्य वा कटीजैत्रस्यैतस्याः कट्याश्चातुर्यं किं कथ्यते, यत् रसनादम्भाद्भीष्ममपि काञ्चनमपि वा स्वस्यालिङ्गने लोलं कुरुते स्म ॥४७॥

हीसुं० अस्याः [१]कलत्रं [२]हरिजित्वरं यन्मा मां [३]हरिं तज्जयता[४]द्भियेति ।
अढौकि [६]काञ्ची कनकस्य तेन [७]शय्याब्धिमुक्तामणिमण्डितेव ॥४८॥[3]

(१) कटिः । (२) पञ्चाननजयनशीलम् । (३) हरिरिति एकाभिधानेन कृष्णं नाम्ना । (४)

1. ०तेषुम० हीमु० । 2. इति नितम्बः हील० । 3. इति कटिः हील०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भीत्या । (५) ढौकिता । (६) मेखला । (७) स्वस्य पल्यङ्कभूतस्य समुद्रस्य मौक्तिकरत्नैर्भूषिता ॥४८॥

हील० अस्या० । अस्याः कटिर्हरिजैत्रा, अतो मां हरिं-सिंहं विष्णुं वा मा जयं कुरुतात् इति भयाद्विष्णुना शय्यारूपसमुद्रस्य मुक्ताद्यङ्किता काञ्ची ढौकिता ॥४८॥

हीसुं० [१]उमोपयामे [२]पुनराप्तजन्म शिशुस्मरस्ये[३]न्द्रगुरो[४]रुपान्ते ।
अध्येतुकामस्य [५]कलास्त्रि[६]दश्याः [७]पृष्ठस्थली [८]हाटकपट्टिकेव ॥४९॥

(१) पार्वतीपाणिग्रहणसमये । (२) द्वितीयवारं प्राप्तोत्पत्तेः लब्धजन्मनः । अत एव बालकस्य कामस्य । (३) बृहस्पतेः । "ईदृशीं गिरमुदीर्य बिडौजा जोषमास न विशिष्य बभाषे । नात्र चित्रमभिधाकुशलत्वे शैशवावधिगुरुर्गुरुरस्ये" ति नैषधे । इन्द्रगुरुर्वाचस्पतिः । (४) पार्श्वे । (५) लिखितगणितप्रमुखाः शकुनरुतान्ता द्वासप्ततिः । (६) देव्याः । (७) तनोश्चरमप्रदेशः । (८) स्वर्णपट्टिका ॥४९॥

हील० पृष्ठं भाति । उत्प्रेक्ष्यते । उमोद्वाहे प्राप्तावतारस्य अतो बालस्य स्मरस्य पुरोऽध्येतुकामस्य सुवर्णपट्टिका ॥४९॥

हीसुं० [१]सङ्क्रान्तवेणीग्रथितप्रसूनपङ्क्तिर्बभौ पृष्ठतटे तदीये ।
[२]संवेशनश्रान्तशयालुकामकृतेऽ[३]र्कतूली किमु [४]निम्नमध्या ॥५०॥[1]

(१) प्रतिबिम्बिता केशपाशे सन्दृब्धकुसुममाला । (२) सम्भोगेन श्रमं प्राप्तस्यात एव शयनशीलस्य कामस्यार्थे । (३) शय्याविशेषः । (४) गम्भीरमध्या ॥५०॥

हील० पृष्ठे सङ्क्रान्ता पुष्पपङ्क्तिर्भाति । उत्प्रेक्ष्यते । रतश्रमात्सुप्तस्य स्मरस्यार्थं शय्या ॥५०॥

हीसुं० [१]आवर्तविभ्राजितरङ्गितान्तर्ज्योतिःपयःपूरितनाभिरस्याः ।
समं [२]वशाभ्यां [३]स्मरसिन्धुरस्य [४]स्वैरं [५]रिरंसोः स्फुरतीव [६]शोणः ॥५१॥

(१) भ्रमरकाकृतिविशेषः । पयसां भ्रमश्चावर्त्तेन शोभनशीलैः कल्लोलाकारीभूतैः कान्तिरूपजलैः भृता नाभिः । (२) रतिप्रीतिकान्ताभ्यां हस्तिनीभ्यां च । "वशा कान्ताकरिण्योः । (३) कामगजस्य । (४) स्वेच्छया । (५) रन्तुमिच्छोः । (६) हृदः ॥५१॥

हील० आवर्त्तेण(न)भ्रमरकेण पयः सम्भ्रमेण वा शोभितं तरङ्गितं चान्तर्मध्यं येषां तादृशानि ज्योतींषि कान्तयस्तान्येव जलानि तैः पूरिता नाभिर्भाति । उत्प्रेक्ष्यते । रतिप्रीतिभ्यां युक्तस्य स्मरगजस्य हृदः ॥५१॥

हीसुं० प्रसारिशोचिर्मकरन्दसान्द्रा परिस्फुरत्कामुकदृग्द्विरेफा ।
अनन्यलावण्यजले यदीयनाभिर्बभौ जृम्भितपद्मिनीव ॥५२॥

---

1. इति पृष्ठप्रदेशः हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) प्रसरणशीलकान्तिरूपमकरन्दैः स्निग्धा । (२) परितो निपतन्तः तदभिलाषुकानां(णां) नेत्राण्येव भ्रमरा यस्याम् । (३) असाधारणलवणिमपयसि । (४) विकचऽकमलम् । ''पद्मिनी योषिदन्तरे । अब्जेऽब्जिन्यां सरस्यां चे''त्यनेकार्थः ॥५२॥

हील० कान्तिमकरन्द युक्ता पुनर्भ्रमत्कामिनेत्रभ्रमरा, अतो विकसितकमलिनीव नाभी रेजे ॥५२॥

हीसुं० १यदङ्गगेहे २निवसन्प्र३सूनायुधः ४सुधाभुक्स्पृहयन्स्व५वल्भाम् ।
६अचीकरत्कूपमिवामृतस्य विरञ्चिना पूर्त्तकृतेव नाभिम् ॥५३॥[1]

(१) देवीशरीररूपभवने । (२) तिष्ठन् । (३) स्मरः । (४) सुरः । (५) स्वाहारं सुधाम् । (६) कारयति स्म ॥५३॥

हील० कामदेवः स्वाहारं वाञ्छन् धात्रा खनकेन नाभीरूपाममृतकूपिकां कारयति स्म ॥५३॥

हीसुं० यस्या१वलग्नेन २विगानितेन ३पञ्चाननेना४नुचिकीर्षयास्य ।
वैमुख्यभाजा ६विषयाद्विशेषात्किं ७तप्यते ८भूधरगह्वरान्तः ॥५४॥

(१) मध्यप्रदेशेन । (२) जितेन । (३) सिंहेन । (४) अनुकर्त्तुमिच्छया । (५) पराङ्मुखेन । (६) शब्दादिकाद् गोचराद्देशाच्च । (७) तपः क्रियते । (८) गिरिगुहामध्ये ॥५४॥

हील० यन्मध्यजितः सिंहस्तत्सदृशीभवितुं विषयविरक्तः तपष्कु(ः कु)रुते ॥५४॥

हीसुं० [2]१पराबुभूषो२गिरिशं स्मरस्य तपस्यतः शासनदेवतायाः ।
मध्यं ३पुरो[3] ४निर्मितनाभिहोमकुण्डा [4]५तपः साधनवेदिकेव ॥५५॥

(१) पराभवितुमिच्छोः । (२) ईश्वरम् । (३) अग्रे । (४) कृतं नाभिरेव होमार्थं कुण्डं यस्याः । (५) तपसः साधनार्थं वेदिका ॥५५॥

हील० तप० । मध्यं भातीति सम्बन्धः । उत्प्रेक्ष्यते । शम्भुं दग्धुमिच्छया तपः कुर्वतः कामस्य निर्मितं नाभिरूपं होमकुण्डं यस्यां तादृशी तपोवेदिः ॥*५५॥

हीसुं० १सर्वाङ्गसृष्टिं सृजतस्तदीयां धातुर्विलग्नस्य २विधानकाले ।
प्राप्तः क्षयं ३सारदलस्य ४कोशोऽ५ल्पीयस्ततोऽभूदिव मध्यमस्याः ॥५६॥[5]

(१) समग्राणामवयवानां निर्माणम् । (२) मध्यरचनासमये । (३) प्रकृष्टवस्तुनः । (४) भाण्डागारः । (५) अतिशयेन लघु ॥५६॥

हील० धातुर्भाण्डागारः क्षयं प्राप्तः तत एव मध्यं किं कृशमभूत् ॥५६॥

हीसुं० १यदङ्गयष्टीबहलीभविष्णुरोचिष्णुरोचिश्चयनिर्झरिण्याः ।
२प्रादुर्भवन्ती ३त्रिवलीविलासिकल्लोलमालेव विभाति ४मध्ये ॥५७॥

---

1. इति नाभिः हील० । 2. तपस्यतः शम्भुदिधक्षयाङ्घ्रिकनिष्ठया स्पृष्टभुवः स्मरस्या । हीमु० । 3. पुनर्नि० हील० । 4. तपोवेदिरिव क्रशिष्ठा हीमु० । 5. इति मध्यम् हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) यस्यास्तनूलतायां नि(नी)रन्ध्रीभवनशीलस्तथा शोभनशीलो यः कान्तिनिकरः स एव नदी तस्याः । (२) प्रकटीभवन्ति । (३) सङ्कोचलक्षणा त्रिवल्य एवं विलसनशीला तरङ्गश्रेणीव । (४) मध्ये । उदरे । "मध्येन सा वेदिविलग्नमध्या वलित्रयं चारुबभार बाला" इति कुमारसम्भवे । मध्येनोदरेणेति तद्वृत्तिः ॥५७॥

हील० यदङ्गयष्ट्याः प्रचुरः शोभनो यो रुचिराशिः स एव नदी, तस्या उत्पन्ना कल्लोलश्रेणीरिव मध्ये त्रिवली भाति ॥५७॥

हीसुं० [1][१]कीर्त्त्या च [२]वाचा च [३]कचैर्जिताभि[१]र्जह्नो[२]र्विधे[३]श्चांशुमतः सुताभिः ।
[४]मध्ये [५]समेत्य त्रिवलीच्छलेन [६]प्रसत्तिपात्रीक्रियते कि[७]मेषा ॥५८॥

(१) कीर्त्त्या जह्नुसुता गङ्गा । (२) वचोविलासेन विधिसुता सरस्वती नदी । (३) केशरचनाभिः अंशुमतः सूर्यस्य सुता यमुना । (४) उदरे । (५) समागत्य । (६) प्रसादस्थानम् । (७) देवी ॥५८॥

हील०→ चण्डी सपत्नी प्रबला ममास्ते ज्यायानजो वेदजडः पतिर्मे ।
भर्त्रा वियोगो हरिणा ममापि दुःखं जहीदं तिसृणामपीति ॥५८॥←
वक्तुं जगत्कल्पितकल्पवल्लि ! जह्नोर्विधेश्चांशुमतः सुताभिः ।
मध्ये समेत्य त्रिवलीछलेन प्रसादपात्रीक्रियते किमेषा ॥५९॥ युग्मम् ।

हील० मे-गङ्गायाः सपत्नी चण्डी, पुनर्मे-सरस्वत्याः पतिर्वैदिकमूर्खः पशुर्वृद्धः, मे-यमुनायाः कृष्णेन वियोगोऽस्ति । हे वाञ्छितकल्पलते ! अस्माकं दुःखं जहिहि, इति वक्तुं गङ्गासरस्वतीयमुनाभिरेषा सुरी प्रसन्ना क्रियते । इत्युत्प्रेक्षा ॥५८-५९॥

हीसुं० [१]अध्यारुरुक्षोर्हृ[२]दधित्यकां[2] [३]यद्वपुर्गृहस्य स्मरमेदिनीन्दोः ।
[४]सौवर्णसोपानपरम्परेव [५]मध्ये विरेजे त्रिवली [६]त्रिदश्याः ॥५९॥

(१) अध्यारोढुमिच्छोः । (२) हृदयरूपामूर्ध्वभूमिकाम् । (३) देवीशरीरूपसौधस्य । (४) स्वर्णनिर्मितसोपानपङ्क्तिः । (५) उदरे । (६) देव्याः ॥५९॥

हील० देव्यास्त्रिवली रेजे । उत्प्रेक्ष्यते । कायगृहे स्थितस्य, पुनर्हृदि अध्यारोढुमिच्छोः स्मरस्य सोपानपङ्क्तिरिव ॥*६०॥

हीसुं० जगत्त्रयीस्त्रैणजयार्जितायाः श्वैत्येन कीर्तेरनया विजित्य ।
बन्दीकृता निर्ज्झरिणी सुराणामिव त्रिवेणी त्रिवली चकास्ति ॥६०॥[3]

(१) त्रैलोक्यस्त्रीगणस्य विजयेन स्वीकृतायाः । (२) उज्ज्वलतया । (३) देव्या । (४) निगृह्य । (५) रक्षिता । (६) गङ्गा । (७) त्रिप्रवाहा । "प्रवाहः पुनरोघः स्याद्वेणीधारा रयश्च

1. वक्तुं जगत्कल्पित कल्पवल्ली जह्नो० हीमु० । →← एतदन्तर्गतः पाठस्तस्य टीका च हीसुं प्रतौ नास्ति । 2. ०त्यकायां वपुर्गृ० हीमु० । 3. इति त्रिवली हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सः" इति हैम्याम् ॥६०॥

हील० जगत्र०। त्रिवली भाति । उत्प्रेक्ष्यते । स्वकीर्तेः श्वेतत्वेन जिता तिस्रो वेण्यः प्रवाहा यस्यास्तादृशी गङ्गेवागता ॥६१॥

हीसुं० [१]स्तनान्तरीपाङ्कवपुःप्रसर्प्पज्जयोतिःस्रवन्तीसलिलप्ररूढा ।
[२]लोमावली [३]शैवलवल्लीव रराज [४]राजीव विलोचनायाः ॥६१॥

(१) कुचावेवान्तर्जले तटौ द्वीपावुत्सङ्गे यस्य तादृशे शरीरस्य विस्तरत्कान्तिरूपनदीजले उद्‌गता। (२) रोमराजी । (३) शैवालमाला । (४) पद्मदृशो देव्याः ॥६१॥

हील० स्तनावेव द्वीपे क्रोडे यस्य तादृशानि कायस्य कान्तिजलानि तेषूद्‌गता ॥६२॥

हीसुं० [१]विनिद्रनीलोत्पलकेसरश्रीः [२]स्वःसुभ्रुवो राजति रोमराजी ।
किं [३]तुङ्गवक्षोजकलिन्दशृङ्गिशृङ्गान्तरोदीत कलिन्दकन्या ॥६२॥

(१) विकसितेन्दीवरकिञ्जल्कानामिव शोभा यस्याः । (२) देव्याः । (३) अत्युच्चौ कुचौ एव कलिन्दनाम्नः शैलस्य शिखरे तयोरन्तराले प्रकटीभूता यमुना । "उदीतमातङ्कितवानशङ्कते"-ति नैषधे ॥६२॥

हील० उत्तुङ्गस्तनावेव शृङ्गे यत्र तादृशो यः कलिन्दशृङ्गी तत्शृङ्गयोर्मध्ये उद्गता यमुना ॥६३॥

हीसुं० स्मरद्वीपस्यै[१]णमदाभिरामवक्षोजविन्ध्याचलसन्निधाने ।
[२]नाभीहृदाभ्यर्णविभासिनी यल्लोमावली [३]केलिकृते [४]वनीव ॥६३॥

(१) कस्तूरीविलेपन मनोज्ञस्तनरूपविन्ध्याद्रिसमीपे । (२) नाभीहृदपार्श्वशोभनशीला । "नाभीमथैष शलथया समोनु (?)" इति नैषधे । (३) क्रीडार्थम् । (४) उद्यानम् । "स्ववनी प्रवदत्पिकापि का" इति नैषधे ॥६३॥

हील० मृगाणां मदेन कस्तूर्या क्रीडाभिर्वा रम्ये गिरिनिकटे लोमावली कामगजस्य वनीव ॥६४॥

हीसुं० [१]निजाक्षिलक्ष्मीहसितैणशावकश्रेण्या व्यभाल्लोमलता [२]त्रिदश्याः ।
[३]मध्यं कृशं [४]वर्धयितुं किम[५]स्या [६]वयःश्रिया नील[७]मदायि [८]सूत्रम् ॥६४॥[1]

(१) स्वकीयनयनशोभापराभूतमृगबालाबालकमालिकया । (२) देव्याः (३) उदरम् (४) पुष्टं कर्तुम् । (५) देव्याः । (६) यौवनलक्ष्म्या । (७) दवरिका । (८) दत्ता ॥६४॥

हील० देव्या लोमलता व्यभात् । उत्प्रेक्ष्यते । यौवनलक्ष्म्या किञ्चिदुदरं वर्द्धयितुं नीलं सूत्रं दत्तम् ॥६५॥

हीसुं० यस्याः स्तनौ संस्फुरतः स्म [१]चित्तनिवासिमीनाङ्कमहीधनस्य ।
[२]विलासवत्योरिव शातकुम्भसन्दृब्धलीलालयतुङ्गशृङ्गौ ॥६५॥

1. इति रोमावली हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) हृदये वसनशीलस्मरराजस्य । (२) रतिप्रीत्योः स्त्रियोः । (३) स्वर्णनिर्मितगृहोन्नत-शिखरे । शृङ्गशब्दः पुंक्लीबलिङ्गयोः ॥६५॥

हील० यस्या देव्याः स्तनौ भातः स्म । उत्प्रेक्ष्यते । चित्तराजधानीमाश्रितस्य कामभूपतेः पत्न्यो रतिप्रीत्योः सुवर्णेन घटितौ क्रीडामन्दिरयोस्तुङ्गशृङ्गौ उन्नते शिखरे ॥६६॥

हीसुं० [1]त[2]न्निर्वृतेः स्थान[3]मुरोजयुग्मं जागर्ति [4]गीर्वाणमृगीदृशोऽस्याः ।
[5]प्रोद्यन्महानन्दरसा [6]य[7]दस्मि[8]न्मुक्ता दृशो नो[9]पनमन्ति [10]भूयः ॥६६॥

(१) तस्मात्कारणात् । (२) सुखस्य मोक्षस्य च । (३) स्तनद्वन्द्वम् । (४) शासनदेव्याः । (५) प्रकटीभवन्नतिशायी प्रमोदः मोक्षश्च तस्य तत्र वा रागः स्वादो वा येषाम् (यासाम्) । (६) यस्मात्कारणात् । (७) स्तनद्वये । (८) निक्षिप्ताः । मुक्तिं प्राप्ता यः (याः) । (९) आगच्छन्ति । (१०) पश्चात् ॥६६॥

हील० तत्तस्मात्कारणादेतस्याः [मुक्तेः ?] मोक्षस्य सुखस्य वा स्थानमस्ति । यत् जातामितानन्दा दृष्टेऽ-स्मिन्प्रेषिताः पश्चान्नागच्छन्ति । मुक्तात्मानः कामुकदृष्टयश्च पश्चान्नायान्त्येव ॥६७॥

हीसुं० [1]मित्रे गतेऽ[2]स्तं [3]वियुनक्ति [4]राजन् ! रात्रिः [5]कलत्रं तव [6]नः [7]कुलानि ।
इतीव दुःखं [8]गदितुं [9]प्रपन्नौ [10]यद्वक्त्रचन्द्रं [1]कुचचक्रवाकौ ॥६७॥

(१) सूर्ये सुहृदि च । (२) परद्वीपं मृत्युं च । (३) वियोजयति । (४) हे नृप ! हे चन्द्र ! वा । (५) भवत्कान्ता । (६) अस्माकम् । (७) गोत्राणि । (८) कथयितुम् । (९) प्राप्तौ । (१०) देवीवदनशशिनम् ॥६७॥

हील० **मित्रे०** । सूर्ये बान्धवे वा गते सति हे राजन् ! तव स्त्री अस्माकं कुलानि वियोजयति, इति वक्तुं यन्मुखचन्द्रश्रितौ चक्रवाकौ ॥*६८॥

हीसुं० [1]प्रोत्तुङ्गपीनस्तनवैभवेन ययाभिभूतौ [2]सुरकुम्भिकुम्भौ ।
[3]ऊहे सहेते [4]श्रियमामुमे[5]तत्साधारि(र)णीम[6]ङ्कुशकीलनानि ॥६८॥

(१) अत्युन्नतपुष्टकुचशोभया । (२) ऐरावणशिरःपिण्डौ । (३) वितर्क्कयामि । (४) शोभाम् । (५) स्तनद्वन्द्वतुल्याम् । "साधारणीं गिरमुषर्बुधनैषधाभ्या"मिति नैषधे । (६) अङ्कुशानां ताडनानि प्रहाराः ॥६८॥

हील० यत्कुचपराभूतौ गजकुम्भौ अङ्कुशताडनं सहेत । इत्यूहे, अहं मन्ये ॥६९॥

हीसुं० [1]प्रसूनमालाभि[2]रलङ्कृताभ्यां [3]स्वःसुभ्रुवोऽ[4]भासि [5]पयोधराभ्याम् ।
[6]प्रस्थातुकामस्य जगज्जयाय [7]श्रेयोनिपाभ्यामिव [8]मीनकेतोः ॥६९॥

(१) कुसुमहारैः । (२) शोभिताभ्याम् । (३) शासनदेव्याः । (४) शुशुभे । (५)

1. किम् चक्र० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्तनाभ्याम् । (६) चलितुमनसः । (७) कल्याणकुम्भाभ्याम् । (८) कामस्य ॥६९॥

हील० देवीस्तनाभ्यां शोभितम् । उत्प्रेक्ष्यते । जगज्जयार्थं प्रस्थितस्य स्मरस्य मङ्गलघटाभ्याम् ॥७०॥

हीसुं० कुम्भीन्द्रकुम्भौ [१]कुचभूयमूहेऽ[२]नुभूय [३]यस्याः [४]सुखिनावभूताम् ।
[५]सुव्यक्तमुक्ताफलमालिकानां [६]सौभाग्यमाभ्यादि(मि)ह लभ्यते [७]यत् ॥७०॥

(१) स्तनभावम् । (२) सम्प्राप्य । (३) देव्याः । (४) सातवन्तौ । ''प्रियामुखीभूय सुखी सुधांशु' रिति नैषधे । प्रकटं दृश्यमानानां मौक्तिकानां पङ्क्तीनाम् । (६) सुभगतां सौन्दर्यम् । (७) यत्करणात् । (८) स्तनाभ्याम् ॥७०॥

हील० ऐरावणकुम्भौ कुचत्वं प्राप्य सुखिनौ जातौ । यतोऽत्र मुक्ताफलसौभाग्यं प्रत्यक्षतो लब्धम् ॥७१॥

हीसुं० [१]प्रसूनतारावलिशालितायां [२]वेणीतमाया[३]मुदिते [४]मुखेन्दौ ।
यन्मा[५]द्यतस्त[६]त्कुचचक्रवाकौ [७]श्रीसूनुसौराज्यविजृम्भितं तत् ॥७१॥

(१) पुष्पाण्येव तारकपङ्क्तिभिः शोभितायाम् । (२) कबरीरूपरात्रौ । (३) उद्गते । (४) वदनचन्द्रे । (५) मदं प्रु(प्रा)प्नुवतः । (६) देवीस्तनरथाङ्गौ । (७) मदनराजस्य शोभा-राज्यविलसितम् ॥७१॥

हील० प्रसू० । पुष्पान्ये(ण्ये)व नक्षत्राणि तैः कलितायां वेणीरूपरात्रौ मुखचन्द्रे उदिते कुचावेव चक्रवाकौ यत्प्रमुदितमनसौ संयुक्तौ स्तस्तत्कामभूपप्रतापः । यदा सुराज्यं स्यात्तदा केषामपि दुःखातङ्कौ न स्तः ॥७२॥

हीसुं० [१]पत्रावलीव्याजवती [२]यदीयवक्षोजदम्भर्षभनामकूटे ।
[३]विजित्य [४]विश्वं विजयप्रशस्ति[५]र्लिपीकृता [६]श्रीसुतचक्रिणेव ॥७२॥[1]

(१) पत्रवल्ल्य एव कपटं यस्यां । (२) प्रशस्ते स्तनच्छद्म यस्य तादृशे ऋषभकूटे । क्षुल्ल-हिमवन्निकटस्थाने षट्खण्डविजयविधायिचक्रिणः स्वनामलिखनस्थाने । (३) त्रिभुवनम् । (४) स्वाज्ञापालनपरं विधाय । (५) लिखिता । (६) स्मरसार्वभौमेन ॥७२॥

हील० यस्याः स्तनलक्षणे ऋषभकूटे [प]त्रलतादम्भाद्विजयप्रशस्तिः कन्दर्पचक्रिणा विश्वं विजित्य लिखिता ॥७३॥

हीसुं० [१]यया [२]स्ववक्षोरुहयोर्जितेन [३]तुङ्गश्रिया [४]रोहणभूधरेण ।
[2][५]उपायनानीव कृतानि [६]लक्ष्मीपुष्पाणि [७]पाण्योर्नखरच्छलेन ॥७३॥

(१) देव्या । (२) निजस्तनयोः (३) उच्चत्वश्रिया । (४) रत्नाचलेन । (५) ढौकनानि । (६) रक्तमणयः । (७) करनखदम्भात् ॥७३॥

हील० यया स्तनौन्नत्यशोभया जितेन रोहणाद्रिणा करे नखच्छलेन महार्घ्यरक्तरत्नानि दत्तानि ॥*७४॥

1. इति स्तनौ हील०। 2. दत्तानि दण्डे किमुदात्तलक्ष्मी० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]स्वयं [२]विनिर्मापयितुं जयं [३]स्वशोभापराभावुकयन्त्रखानाम् ।
[४]राजानम[५]भ्यर्थयते [६]स्वकान्तमु[७]पान्तयाता किमु तारकाली ॥७४॥[1]

(१) आत्मना । (२) कारयितुम् । (३) निजलक्ष्मीपराभवनशीलदेवीकरकामाङ्कुशानाम् । (४) चन्द्रं नृपं च । (५) याचते । (६) निजभर्तारम् । (६) समीपे समेता ॥७४॥

हील० तारली राजानं-चन्द्रं भूपं च याचतीव । यथा वयं नखजयं कुर्मस्तथा कुरु ॥७५॥

हीसुं० [2]वने [१]स्व[२]मद्धु(द्ध)ध्य [३]शिखासु [४]भूमीरुहां तपोऽतप्यत य[५]न्निरन्नम् ।
यदङ्गुलीभूयमिव प्रवालैः पचेलिमैस्तैः सुकृतैरवापे ॥७५॥

(१) आत्मानम् । (२) ऊर्ध्वं बद्ध्वा । (३) शाखासु । (४) वृक्षाणाम् । (५) निराहारम् । (६) देवीअ(व्य)ङ्गुलीत्वम् । (७) परिपाकं प्राप्तैः । (८) पुण्यैः । (९) प्राप्तम् ॥७५॥

हील० पल्लवैः शाखान्ते आत्मानमूर्ध्वं बद्ध्वाशनरहितं यत्तपस्तप्तं तैरुदयावलिकायामागतैः पुण्यैर्यदङ्गुलीभावो वाप्तः ॥७७॥

हीसुं० [2] [१]सुपर्व्वपारिप्लवलोचनायाः [२]श्रियं दधौ धौरणिरङ्गुलीनाम् ।
[४]विजृम्भमाणारुणपाणिपङ्करुहे [५]प्ररूढा [६]दलमालिकेव ॥७६॥[3]

(१) चपलनेत्राया देवाङ्गनायाः । (२) शोभाम् । (३) श्रेणिः । (४) विकचरक्तकरनामकमले । (५) उद्गता । (६) पर्णश्रेणिः ॥७६॥

हील० अङ्गुल्यः शोभते । उत्प्रेक्ष्यते । करकोकनदे उद्गता पत्रङ्क्तिः ॥७८॥

हीसुं० [2][१]प्रसूनधन्वा निजदेहदाहे [२]निध्याय दग्धा[३]न्विशिखान[४]शेषान् ।
[५]कामाङ्कुशालीकुरुविन्दपुङ्खान्य[६]दङ्गुलीस्ता[७]न[८]थ किं चकार ॥७७॥

(१) स्मरः । (२) दृष्ट्वा । (३) बाणान् । (४) समस्तान्पञ्चापि । (५) अरुणनखश्रेणि-रूपहिङ्गुलपुङ्खान् । (६) देवीकरशाखाः । (७) तान्बाणान् । (८) पुनः ॥७७ ॥

हील० स्मरो बाणान्दग्धान् दृष्ट्वा नखा एव कुरुविन्दस्य हिङ्गुलस्य रत्नस्य वा पुङ्खा येषां तादृशानङ्गुलीरूपा-न्बाणांश्चकार ॥७६॥

हीसुं० [१]अजय्ययत्पाणिपयोरुहाभ्यां सहा[२]हवे [३]संस्रवदस्रपूरैः ।
[४]शोणीभवद्भिः कमलैर[५]वापेऽ[६]रुणाम्बुजख्यातिरिव [७]क्षमायाम् ॥७८॥

(१) जेतुमशक्याभ्यां देवीकरकमलाभ्याम् । (२) सङ्ग्रामे । (३) गलद्रुधिरनिकरैः । (४) अरुणैर्जायमानैः । (५) प्राप्ता । (६) रक्तकमलानीति प्रसिद्धिः । (७) भूमौ ॥७८॥

---

1. इति पाणिनखाः हील० । 2. हीलप्रतौ हीमु० च यथासङ्ख्यमेतेषां ७५-७६-७७ तमश्लोकानामेषोऽनुक्रमः ७७-७८-७६, ७६-७७-७५ । 3. इति कराङ्गुल्यः हील०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० यत्करकमलाभ्यां सह सङ्‌ग्रामे प्रहारोद्भूतरक्तै रक्तीभूतैः कमलैः कोकनदख्यातिराप्तेव ॥७९॥

हीसुं० [1]इयं [१]मृणाली [२]जडसङ्गमौज्झ्य [३]निजाङ्गजेना[४]नुगताम्बुजेन ।
[५]एत्याश्रिता किं [६]विबुधाम्बुजाक्षीं [७]यद्दोर्लताशालिशया [८]व्यलासीत् ॥७९॥

(१) कमलनालम् । मृणालशब्दस्त्रिलिङ्गः । (२) मूर्खाणां डलयोरैक्याज्जलानां च गमं त्यक्त्वा । (३) स्वपुत्रेण । स्वोत्पन्नत्वात् । (४) सहिता पद्मेन । (५) आगत्य । (६) पण्डितां स्त्रियं सुराङ्गनां च । (७) देवीभुजयष्टिशोभनशीलपाणिः । (८) शुशुभे ॥७९॥

हील० रम्यकरा दोर्लता भाति । उत्प्रेक्ष्यते । जलं मूर्खं वा त्यक्त्वाम्बुजयुक्ता मृणाली कमलनालम् ॥८२॥

हीसुं० [१]आबालमु[२]द्यद्वलयः [३]शिखाश्चा[४]ङ्गुल्यः पुनर्यत्र नखाः [५]सुमानि ।
[६]ज्योतिर्मरन्दानि करद्रुमोऽ[७]स्या [८]यूनां मनोभृङ्गगणं [९]धिनोति ॥८०॥

(१) स्थानकम् । (२) दीप्यमानकटकः । (३) शाखाः । (४) करशाखाः । (५) पुष्पाणि । (६) कान्तिरूपमधूनि येषु । (७) देव्याः । (८) तरुणानाम् । (९) प्रीणयति ॥८०॥

हील० यत्र दीप्यमानो वलयः आलवालः, पुनर्यत्राङ्गुल्यः शाखाः, यत्र नखाः पुष्पाणि, पुनर्यत्र कान्तयो मकरन्दास्तादृशोऽस्या हस्ततरुस्तरुणानां मनोभ्रमरौघं प्रीणयति । 'धिवि प्रीणने' इदित्वान्नुम् । 'धिन्विकृण्वोरश्च' आभ्यामुप्रत्ययः स्यादकारान्तादेशश्च स्यात्कर्त्तरि सार्वधातुके । 'उ'प्रत्ययस्याशित्वादलोपः । अलोपस्य स्थानित्वान्नोपधागुणः । धिनोतीति सिद्धम् ॥८०॥

हीसुं० [१]मृणालिकाभि[२]र्जलदुर्गभाग्भिरपि [३]स्वजैत्रीं [४]प्रविभाव्य [५]बाहाम् ।
[६]स्वसून(नु)पद्मः [७]प्रहितः किमे[८]तदुपास्तये [९]पाणिरराजदस्याः ॥८१॥[2]

(१) कमलनालैः । (२) पानीयरूपं विषमस्थानं भजतीति । (३) आत्मनो जयनशीलाम् । (४) दृष्ट्वा । (५) भुजाम् । (६) स्वस्याङ्गजातं कमलम् । (७) प्रेषितः । (८) देवीभुजायाः सेवाकृते । (९) शोभते स्म । (१०) देव्याः ॥८१॥

हील० जलकोट्टमध्यस्थाभिष्क(ः क)मलनालिकाभिः स्वासां जैत्रीं बाहां दृष्ट्वा स्वपुत्रपद्मः प्रेषितः ॥८१॥

हील०→बभौ भुजाभ्यां मखभुग्मृगाक्षी दग्धायुधस्येव कृते स्मरस्य ।
रसालवल्लीमयकार्मुकाभ्यामभ्यर्थनादात्मभुवा कृताभ्याम् ॥८३॥

देवी भुजाभ्यां बभौ । उत्प्रेक्ष्यते । धात्रा स्मरार्थं रसालस्य चापाभ्यां कृताभ्याम् ॥८३॥

हील० समुच्चरच्चन्द्ररुचीचयाम्भा पार्श्वद्वयोद्भूतभुजा मृणाली ।
जम्बूनदीवोच्चकुचान्तरीपा या भाति दृग्भृङ्गमुखारविन्दा ॥८४॥ इति भुजा ॥←

हील० प्रादुर्भवन्ति कनककान्त्यौघ एवाम्भांसि यस्याम् । पुनर्भुजा मृणालीवती । पुनरुच्चौ कुचावेव द्वीपे

1. हीलप्रतौ हीमु० च यथासङ्ख्यमेतेषां ७९-८०-८१ तमश्लोकानामेषोऽनुक्रमः ८२-८०-८१, ८१-७९-८० । 2. इति हस्तः हील०। →← एतदन्तर्गतः पाठो हीसुंप्रतौ नास्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यत्र तादृशी । पुनर्दृग्भृङ्गाञ्चितं मुखकमलं यस्यां सा । अत एव जम्बूनदीव या भाति ॥८४॥

हीसुं० [१]भुजान्तरानुत्तरराजधान्या [२]अभ्यर्णभूमौ [३]रतिजानिभर्तुः ।
किमु [४]स्फुरच्चन्दनचारिमश्रीक्रीडाद्रिकूटौ [५]लसत[६]स्तदंसौ ॥८२॥

(१) हृदयरूपाया राजधान्याः (२) समीपस्थाने । (३) स्मरराजस्य । (४) प्रकटीभवन्ती श्रीखण्डस्य मनोज्ञत्वलक्ष्मी ययोस्तादृशे क्रीडाकृते शैलशिखरे । (५) शोभेते । (६) देवीस्कन्धौ ॥८२॥

हील० तस्याः स्कन्धौ भातः । उत्प्रेक्ष्यते । हृदयरूपराजधानीनिकटे कामस्य चन्दनस्य विलेपनेन वृक्षेण कलितौ क्रीडापर्वतस्य कूटौ शिखरे ॥८५॥

हीसुं० [१]स्वःसुभ्रुवः [२]प्रेक्ष्य [३]पयोधरौ [४]स्वसंस्पर्द्धिनौ [५]तुङ्गिमविभ्रमेण ।
जयाय [६]तद्युद्धविधित्सयेव [७]कुम्भौ समेतौ स्फुरतस्तदंसौ ॥८३॥[1]

(१) देव्याः । (२) दृष्ट्वा । (३) स्तनौ । (४) आत्मना स्पर्द्धाकारिणौ । (५) उच्चत्वलक्ष्म्या । (६) स्तनाभ्यां सार्द्धं सङ्ग्रामं कर्त्तुमिच्छया । (७) घटौ । (८) देवी स्कन्धौ ॥८३॥

हील० तस्या अंसौ स्फुरतः । उत्प्रेक्ष्यते । देव्याः स्तनौ संहर्षकरौ दृष्ट्वा जयार्थं स्वयं ताभ्यां युद्धं विधातुमिच्छया आगतौ कलशौ भात इव ॥८६॥

हीसुं० [१]अस्याः [२]सदृक्षां [३]श्रियमाश्रयन्ती नास्ति त्रिलोक्यामपि [४]कापि कान्ता ।
[५]इतीव [६]रेखात्रितयं [७]ततान [८]तत्कण्ठपीठे [९]सरसीजजन्मा ॥८४॥

(१) देव्याः । (२) तुल्याम् । (३) शोभाम् । (४) काचित्स्त्री नास्त्येव । (५) इति हेतोः । (६) रेखात्रिकम् । (७) चकार । (८) देवीकण्ठकन्दले । (९) विधाता ॥८४॥

हील० एतत्सदृक्षा कापि कान्ता लोकत्रये नास्तीति विचार्य ब्रह्मा कण्ठे रेखात्रयमकरोत् ॥८७॥

हीसुं० [2]कण्ठीकृतो य[१]ज्जलजस्त्रिदश्यास्तद्वेधसा [२]साधु विधीयते स्म ।
[३]नैसर्गिकानार्जवमात्मनिष्ठं [४]जह्याद[५]बाह्यं कथ[६]मन्य[७]थायम् ॥८५॥

(१) शङ्खः । "निवेश्य दध्मौ जलजं कुमारः" इति रघुवंशे । (२) सम्यक्कृतम् । (३) स्वाभाविकां वक्रताम् । (४) त्यजेत् । (५) आन्तरं मध्यस्थितम् । (६) अपरेण प्रकारेण । (७) शङ्खः ॥८५॥

हील० धात्रा शङ्खः कण्ठीकृतस्तत्सम्यक्कृतम् । नो चेदेष अन्तर्गतां वक्रतां कथं जह्यात् ॥८९॥

हीसुं० यत्कण्ठपीठेन [१]हठादु[२]पात्तां दृष्ट्वा[३]त्मभूषामखिला[४]स्त्रिरेखाः ।
[६]पूत्कुर्वते किं [५]विकलीभवन्तः [७]प्रत्यालयं [९]भैक्षभुजो भ(भु)जन्तः ॥८६॥[3]

---

1. इत्यंसौ हील० । 2. हीलप्रतौ हीमु०च यथासङ्ख्यमेतेषां ८५-८६-८७-तमश्लकानामेषोऽनुक्रमः ८९-९०-८८, ८८-८९-८७ । 3. इति कण्ठपीठः हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) बलात् । (२) गृहीताम् । (३) स्वस्यशोभाम् । (४) शङ्खाः । (५) भूषाग्रहणात् ग्रथिली जायमानाः । (६) पूत्कारं कुर्वन्ति । (७) गृहं गृहं प्रति । (८) भिक्षासमूहं भुजन्तीति । (९) भिक्षुकान् ॥८६॥

हील० यत्कण्ठेन शोभां गृहीतां दृष्ट्वा शङ्खा विकलाः सांन्यासिकादिकरगताः पूत्कारं कुर्वन्ति ॥९०॥

हीसुं० कण्ठश्रिया [१]स्वःकुरविन्ददत्या [1]निर्जित्य शङ्खै[२]र्निगृहीतभूषैः ।
[३]रथाङ्गपाणिं प्रति [४]पाञ्चजन्यः [५]पुत्कर्त्तुकामैः [६]प्रहितः किमेकः ॥८७॥

(१) देव्या । "स्वे हि दर्शयति कः परेण वाऽनर्घ्यदन्तकुरविन्दमालिके" इति नैषधे । (२) हठाद्गृहीतशोभैः । (३) नारायणं प्रति । (४) नामा शङ्खः । (५) रावां कर्त्तुमिच्छुभिः । (६) प्रेषितः ॥८७॥

हील० कण्ठ० । श्रीजिनशासनाधिष्ठात्र्या कण्ठशोभया जितैः शङ्खैः कृष्णं प्रति एकः शङ्खः प्रेषित इव ॥८८॥

हीसुं० [१]यूनो [२]मनोजन्मनृपस्य [३]तस्या [४]वपुर्लता[2]वासनिकेतभाजः ।
[५]शृङ्गारभूषासुषमां [६]दिदृक्षोरिवा[७]त्मदर्शः शुशुभे [८]तदास्यम् ॥८८॥

(१) तरुणस्य । (२) स्मरराजस्य । (३) देव्याः । (४) शरीरयष्टिरेव निवासार्थं गृहं भजतीति तस्य । (५) शृङ्गारार्थं भूषणानां सातिशायिशोभाम् । "विना[ऽपि ?] भूषामवधिः श्रियामसौ" इति नैषधे । भूषणानि विनापि दमयन्ती शोभानां सीमा-इति तद्वृत्तिः । (६) द्रष्टुमिच्छोः । (७) दर्प्पणः । (८) देवीवदनम् ॥८८॥

हील० तदास्यं रेजे । उत्प्रेक्ष्यते । तद्वपुःस्थस्मरस्य स्वशोभालोकनार्थं मुकुरः ॥९१॥

हीसुं० [१]ल[3]क्ष्मच्छविभ्रूयुगलीं दधानं [२]ज्योत्स्नासुधापायिचकोरचक्षुः ।
[३]उत्सङ्गसङ्गीकृततारदन्तमास्यं त्रिदश्यां [४]शशिबिम्बति स्म ॥८९॥

(१) लाञ्छनवत्कृष्णा कान्तिर्यस्यास्तादृशी भ्रुवोर्द्वयीम् । (२) चन्द्रिकां सुधां च चन्द्रिकारूपां वा सुधां पिबत इत्येवंशीलौ चकोरावेव चक्षुषी नेत्रे यत्र । (३) अङ्कसङ्गमं प्रापिताः तारा एव दशना यत्र । "प्रथममुपहृत्यार्थं तारैरखण्डिततन्दुलै"रिति नैषधे । (४) चन्द्रमण्डलमिवाचरति स्म ॥८९॥

हील० देव्या मुखं चन्द्रमिवाचरति स्म । किंभूतम् ?। लाञ्छनवद्भ्रुवं दधानम् । पुनः किंभूतम् ?। ज्योत्स्नामृतपायिनो(नौ) ये(यौ) चकोरौ तत्तुल्ये नेत्रे यत्र । पुनः किंभूतम् ?। क्रोडे स्थापिता ये तारास्तद्वद्दन्ता यत्र ॥९२॥

हीसु० [१]चिकीर्षता [२]यन्मुखमा[३]त्तसारमात्मानम[४]न्विष्य [५]चतुर्मुखेन ।
[६]गलन्मरन्दाश्रुकणाब्जराजीद्विरेफरावैरिव [७]रारटीति ॥९०॥

---

1. निर्जीयमानैर्निखिलैस्त्रिरेखैः हीमु० । 2. तायाः स निकेतभाजः हीमु० । 3. कृष्णच्छविं हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) कर्तुमिच्छता । (२) देवीवदनम् । (३) गृहीतसम्यग्मञ्जि समीचीनदलम् । (४) दृष्ट्वा । (५) धात्रा । (६) निष्पतन्मधुरूपबाष्पबिन्दुकमलमालाभृङ्गगुञ्जारवैः । (७) रोदिति पुत्कुरुते वा ॥९०॥

हील० यस्या मुखं कर्तुमिच्छता ब्रह्मणा स्वसारं गृहीतमिति ज्ञात्वा गलन्तो ये मकरन्दास्त एवाश्रुकणा यस्यां तादृशी कमलमाला । उत्प्रेक्ष्यते । द्विरेफरावैर्मधुकरगुञ्जारवै रारटीति । अतिशयेन रोदितीव पूत्कृतिं वा कुरुते इति तात्पर्यम् ॥९३॥

हीसुं० [१]यदीयचेतोवसतौ [२]वसन्तं [३]स्वमित्रपुष्पास्त्रनृपं [४]निरीक्ष्य ।
किमागतस्तं[५] मिलितुं मृगाङ्को वक्त्रं [६]च[1]कासे [७]सुरकम्बुकण्ठ्याः ॥९१॥

(१) देवीमनोगृहे । (२) तिष्ठन्तम् । (३) निजसुहृदं स्मरराजम् । (४) दृष्ट्वा । (५) स्मरम् । (६) बभासे । (७) सुराङ्गनायाः ॥९१॥

हील० यदी०। देव्या मुखं चकाशे । उत्प्रेक्ष्यते । यन्मनसि स्थितस्य कामस्य मिलनार्थमागतश्चन्द्रः ॥९४॥

हीसुं० यस्या मुखं [१]स्वर्वनितार्चितायाः [२]संवर्ध्य [३]तारातति मुक्तिकाभिः ।
[४]स्वःसिन्धुतीरे किमु [५]दिग्मृगाक्ष्यो [६][2]निर्मिच्य [७]रात्रीमणि[८]मुत्सृजन्ति ॥९२॥[3]

(१) देवीजनपूजितायाः । सेवितायाः इत्यर्थः (२) वर्द्धयित्वा । (३) तारकश्रेणय एव लघुमुक्ताफलानि तैः । "सिता वमन्त्यः खलु कीर्तिमुक्तिकाः" इति नैषधे । (४) स्वर्गङ्गातटे । (५) दिगङ्गताः । (६) न्युञ्छनं कृत्वा । (७) चन्द्रम् । "कथयति परिश्रान्तिं रात्रीतमः सह युध्वना"मिति नैषधे । (८) त्यजन्ति ॥९२॥

हील० यस्या०। दिग्वध्वस्तारामुक्ताभिर्यन्मुखं वर्द्धापयित्वा चन्द्रं न्युञ्छनं कृत्वा स्वर्गङ्गायां त्यजन्ति ॥९५॥

हीसुं० [१]अगण्यलावण्यपयस्त्रिदश्या [२]आस्यात्प्र[३]सर्प्यद्विलसत्तरङ्गैः ।
[४]मा स्ताद्बहिस्तादिति [५]निम्नभागं चक्रे [६]विरञ्चिश्चिबुकं कि[७]मन्ते ॥९३॥

(१) अमेयलवणिमजलम् । (२) मुखात् । (३) प्रसरत्स्फुरत्कल्लोलैः । तरङ्गाकारीभूतकान्तिभिः । (४) बहि र्मा निर्गच्छतु । (५) गमा(म्भी)रविभागम् । " धृत्युद्भवा यच्चिबुके चकास्ति निम्ने मनागङ्गुलियन्त्रणेवे"ति नैषधे । (६) ब्रह्मा । (७) प्र(?)मुखप्रान्ते ॥९३॥

हील० कान्तिकल्लोलैः कृत्वा देवीमुखाल्लावण्यजलं बहिर्मा यात्वितीव वेधाश्चिबुकं मुखप्रान्ते निम्नं चक्रे ॥९६॥

हील०→यदाननाम्भोरुहवाससौधे सातं वसन्त्या जलराशिपुत्र्याः ।
विलास वापीव पयोविहारं स्वैरं विधातुं चिबुकस्त्रिदश्याः ॥९७॥ इति देवीचिबुकः ।←

---

1. ०काशे हील० । 2. निर्मिच्छ्य हील०। हीसुंप्रतौ हीमु० च निर्मिच्य इति पाठो दृश्यते । हीमु० टीकायां –'मुखं वदनं निर्मिच्य नीराजयित्वा मुखस्यन्युञ्छनं कृत्वा' एवमस्ति । हैमधातुपाठे १३४५ 'मिछत् उत्क्लेशे' इत्यस्ति । 3. इति मुखम् हील० । →← एतदन्तर्गतः पाठो हीसुंप्रतौ नास्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवीचिबुको भाति । मुखारविन्दस्थाया लक्ष्म्या जलक्रीडां कर्तुं क्रीडादीर्घिकेव ॥९७॥

हीसुं० रेजेऽधरोऽ[१]स्या [२]हरिमन्थकालात्प्र[३]वासिनं [४]यन्मुखचन्द्रसू[1]नुम् ।
[५]हृल्लेखभाजा मिलितुं [६]प्रवालः [७]पयोधिना[८]ह्वातुमिव [९]प्रयुक्तः ॥९४॥

(१) देव्याः । (२) कृष्णेन मेरुणा मन्थनसमयात् आरभ्य । (३) परदेशं गमनं यातम् । (४) देवीवदनमेव चन्द्रपुत्रम् । (५) उत्कण्ठावता । (६) विद्रुमः । समुद्रोत्पन्नत्वात् । अथ च प्रकृष्ट उक्तसन्देशकथकः बालकः । (७) समुद्रेण । ताततत्वात् । (८) आकारयितुम् । (९) प्रहितः ॥९४॥

हील० रेजे०। अस्या अधरो रेजे । उत्प्रेक्ष्यते । विष्णुना यो मन्थो मन्थनं तस्य कालाद्गतं पुनरागतं चन्द्रं सुतं औत्सुक्यभाजार्णवेन मिलितुं प्रकृष्टो बालः प्रेषितः ॥*९८॥

हीसुं० [१]यदाननाङ्गीकृतविग्रहेण [२]रदच्छदाङ्गः [३]क्षणदाकरेण ।
[४]प्रियौषधेरङ्गभवः किमेष [५]प्रपाल्यते [६]वप्तृतया [७]प्रवालः ॥९५॥

(१) देवीवदनमेव स्वीकृतशरीरेण । (२) अधरकायः । (३) चन्द्रेण । (४) स्वप्रियाया औषधेः तनूभवः । चन्द्रस्यौषधीपतित्वात् प्रवालस्यौषधीजाततत्वादौषध्याः पुत्रत्वमेवोपपन्नम् । (५) लाल्यते । (६) पितृत्वेन । (७) पल्लवः प्रकर्षेण बालश्च ॥९५॥

हील० यन्मुखचन्द्रेण स्वपत्न्या औषध्या उत्पन्नत्वा[त्] रदच्छदरूपः एषः किं प्रकृष्टो बालः सुतो लाल्यते ॥९९॥

हीसुं० [१]इदंमुखीभूत[२]मवेत्य चन्द्रं बा[३]लं तदीयं [४]करचक्रवालम् ।
[५]अन्वागतं [६]प्राक्प्रणयादिवैतद्द[७]न्तच्छदः स्फूर्तिमि[८]यर्त्ति तस्याः ॥९६॥

(१) देवीवदनं जातम् । (२) ज्ञात्वा । (३) लघु । (४) कान्तिवृन्दम् । (५) पृष्ठे समेतम् । (६) चन्द्रावस्थास्नेहात् । (७) अधरः । (८) प्राप्नोति ॥९६॥

हील० एतदीयाधरो भाति । उत्प्रेक्ष्यते । एतस्या मुखरूपं जातं चन्द्रं ज्ञात्वा स्नेहात्पश्चादागतं बालकं किरणमण्डलम् । बालत्वात्किरणानामरुणत्वमपि युक्तमेवेति ॥१००॥

हीसुं० [१]यद्दन्तपत्रेण [2]विजीयमाना नष्टा प्रविष्टापि [२]पयोधिमध्ये ।
[३]रक्ताङ्कराजी हृदि कृष्णवल्ली[3] शल्यं किमद्यापि न [४]पर्यहार्षीत् ॥९७॥

(१) देव्या अधरेण । (२) समुद्रजले । (३) विद्रुममाला । (४) परिहरति स्म ॥९७॥

हील० यद्द०। यदधरेणाधरिता विद्रुमपङ्क्तिः कृष्णवल्लीरूपं शल्यं त्यजति स्म ॥*१०१॥

हीसुं० [१]बन्धूकबन्धूभवदेतदीयदंतच्छदे [२]दन्तरुचि[३]श्च[4]काशे ।
[४]निपेतुषी [५]कोकनदच्छदाङ्के [६]शरत्सुधादीधिति कौमुदीव ॥९८॥

1. पुत्रम् हीमु० । 2. रणेऽभिभूता हीसु० । 3. ०वल्लीशल्यं हील० । 4. ०कासे हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) बन्धुजीवस्य 'वपोहरिया' इति प्रसिद्धस्य तरुविशेषस्य सहोदरे जायमानो देव्या अधरे। (२) दशनद्युतिः। (३) बभौ। (४) पतिता। (५) रक्तकमलदलोत्सङ्गे। (६) घनात्यय-चन्द्रचन्द्रिकेव ॥९८॥

हील० 'विपोहरीयां' पुष्पं सदृशेऽधरे पतती(न्ती) दन्तरुचिः शुशुभे। यथा रक्तोत्पले चन्द्रज्योत्स्ना पतती(न्ती) शोभते ॥*१०२॥

हीसुं० [१]पीयूषपूर्णस्मरकेलिशोणमणीनिबद्धाधरदीर्घिकायाम्।
[२]यस्या [३]विनिद्रद्द्विजचन्द्रिकाभिराश्रीयते [४]कैरविणीवनश्रीः ॥९९॥

(१) अमृतपूरितायां कन्दर्पस्य क्रीडार्थं रक्तरत्ननिर्मितायामोष्ठरूपवाप्याम्। (२) देव्याः। (३) स्फुरद्दन्तकान्तिभिः। (४) कुमुद्वतीकाननलक्ष्मीः ॥९९॥

हील० अमृतपूर्णायां स्मरकेल्यर्थं पद्मरागनिबद्धायामधरवाप्यां दन्तकान्तिभिः कुमुदिनीवनश्रीराप्ता॥ १०३॥

हीसुं० [1][१]स्मितश्रिया [२]मिश्रितदन्तकान्तिश्च[३]कास्ति [४]गीर्व्वाणमृगेक्षणायाः।
बन्दीकृता [५]चन्द्रमसं [६]विजित्य ज्योत्स्ना[७]स्य [८]दारा वदनेन [९]विद्मः ॥१००॥[2]

(१) हसितलक्ष्म्या। (२) व्याप्त। (३) भाति। (४) शासनदेव्याः। (५) शशिनम्। (६) जित्वा। (७) चन्द्रस्य। (८) प्रिया। (९) विद्म इवार्थे ॥१००॥

हील० देव्या दन्तकान्तिः शुशुभे। उत्प्रेक्ष्यते। चन्द्रं जित्वाऽस्य दारा ज्योत्स्ना बन्दीकृता। इति वयं जानीमः ॥१०६॥

हीसुं० [१]स्वर्भाणुभीरो [२]रजनीचरिष्णोः [३]कलङ्कभाजः [४]क्षयिनः [५]स्मि(सि)तांशोः।
ज्योत्स्ना किमु[६]द्वेगवती [७]यदास्यं भेजेऽ[८]पविघ्नं [९]दशनांशुदम्भात् ॥१०१॥

(१) राहोर्भीरुकस्य। (२) निशायां चरणशीलस्य। (३) सकलङ्कस्य। (४) क्षयो-रोगः क्षीणता च। (५) चन्द्रात्। (६) खिन्ना। (७) देवीवदनम्। (८) निरन्तरायम्। (९) दन्तकान्तिमिषात्॥१०१॥

हील० चन्द्रात्खेदमाप्ता ज्योत्स्ना यदास्यं भेजे ॥१०४॥

हीसुं० [१]यस्याः [२]पृणन्नि[३]र्ज्जरदृक्चकोरान्दन्तप्रभाभिर्वदनं [४]दिदीपे।
[५]शरद्विनिद्रीकृत चन्द्रिकाभि[६]र्विभावरीणामिव सार्वभौमः ॥१०२॥

(१) देव्याः। (२) प्रीणयन्। (३) सुरनयनचकोरान्। (४) शुशुभे। (५) घनात्ययेन विकाशितकौमुदीभिः (६) रात्रिपतिः। "कन्दर्प्पेऽनल्पदर्पे विकिरति किरणान्शर्वरीसार्वभौमः" इति नाटकग्रन्थे ॥१०२॥

हील० दन्तकान्तिभिर्दृक्चकोरान्प्रीणयत् सद्वदनं दिदीपे। यथा चन्द्रः शरन्निर्मलीकृतज्योत्स्नाभिर्दीप्यते ॥१०५॥

---

1. हीलप्रतौ हीमु० च यथासङ्ख्यमतेषां १००-१०१-१०२ तमश्लोकानामेषोऽनुक्रमः १०६-१०४-१०५, १०५-१०३-१०६
2. इति सस्मितदन्तकान्तिः हील०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]मरुन्मृगाक्षीवदनाब्जदन्तै[२]स्तारेशतारैर्विजितै[३]र्विभूत्या ।
[४]आलोच्यते [५]तद्विजिगीषयेव [६]सम्भूय [७]तीरेऽ[८]म्बरनिर्झरिण्याः ॥१०३॥

(१) देव्याः वदनेन दन्तैश्च । (२) चन्द्रतारकैः । (३) श्रिया । (४) आलोचः क्रियते । (५) वैरिणो विजेतुमिच्छया । (६) एकत्र भूत्वा । (७) तटे । (८) आकाशगङ्गायाः ॥ १०३ ॥

हील० श्रीशासनसुरीदन्तैर्जितैश्चन्द्रतारैः स्वर्गङ्गातीरे सम्भूयैकत्र मिलित्वा तेषां दन्तानां पराबुभूषया आलोच्यते मन्त्र्यते । विचार इव विधीयते ॥१०७॥

हीसुं० [१]अजय्यवीर्यं मुखपद्म[२]मस्याः [३]श्रिया जयन्तं [४]स्व[५]मवेत्य [६]राज्ञा ।
[७]सन्धिं [८]विधातुं [९]प्रहिताः [1][१०]प्रधान-द्विजाः समं [११]तेन [१२]किमु[१३]ल्लसन्ति ॥ १०४ ॥

(१) जेतुमशक्यः पराक्रमो यस्य । (२) देव्या वदनकमलम् । (३) लक्ष्म्या । (४) चन्द्रात्मानम् । (५) ज्ञात्वा । (६) चन्द्रेण । (७) परस्परप्रीतिम् (८) कर्त्तुम् । (९) प्रेषिताः। (१०) प्रकृष्टा मन्त्रिणश्च द्विजा दन्ता ब्राह्मणाश्च । (११) वदनकमलेन सार्द्धम् । (१२) किमुत्प्रेक्षायाम् । (१३) भान्ति ॥१०४॥

हील० अज० । द्विजा दन्ताः शोभन्ते । उत्प्रेक्ष्यते । चन्द्रेण मुखपद्मेन सह प्रीतिं कर्तुं प्रधानद्विजाः प्रेषिताः ॥*१०८॥

हीसुं० [१]पाण्डुः[२] क्षयी [३]शून्यनभश्चरिष्णु[४]र्निरङ्गराहोर्द्विषतोर्वि(ऽपि) बिभ्यत् ।
[५]दोषाकरः [६]श्याममुखो [७]वराकोऽस्माकं पुरस्ताज्ज[८]डकस्त्वमेकः ॥१०५॥
[१]रु[2]प्यद्युतोऽ[२]क्षीणसुखा [३]मुखस्था [४]जिताहिताः [५]स्फीतगुणा [६]विशुद्धाः।
[७]नै[2]केऽ[८]भिरुपाः किमितीन्दु[९]मुद्यद्युता [१०]त्रिदश्याः प्रहसन्ति दन्ताः ॥१०६॥युग्मम्॥

(१) रोगः श्वेतश्च । (२) राजयक्ष्मा क्षीणता च । तद्युतः । (३) निर्मानुषे गगने सञ्चरणशीलः। (४) शिरोऽवशेषादपि वैरिणो राहोर्भयं प्राप्नुवत् । (५) रात्रिरपगुणश्च खनिः । (६) लक्ष्मयुतः कृष्णमुखश्च । (७) रङ्कः । (८) जडस्वरूपो मूर्खश्च ॥१०५॥

(१) रजतवद्दीप्यमानकान्तयः । (२) सर्वाङ्गीणसुखभाजः । (३) सर्वेषामग्रेस्थायुका वक्त्रवासिनश्च । (४) जितवैरिणः । (५) ख्यातगुणाः । (६) निःकलङ्काः । (७) बहवः । (८) लक्षणयुक्तरूपाः । "अभिर्वीप्सा-लक्षणयो" रित्यनेकार्थः । पण्डिताश्च । (९) प्रकटीभवत्कान्त्या । (१०) देव्याः ॥१०६॥

हील० दन्ताश्चन्द्रं हसन्ति । यतस्त्वं न भाति इति नभस्तद्वासी, अपगुणानामाकरो निशाकरो वा । पुनःकलङ्की । वयं तु मुखे सर्वेषामप्यग्रे वक्त्रे च तिष्ठन्ति, तादृशाः । पुनर्जितशत्रवः । द्वात्रिंशत्प्रमाणत्वेनानेके । पुनरभिरूपाः पण्डिताः । अतो हे जड ! त्वं कः ? ॥१०९-११०॥

1. <u>प्रधानाः</u> द्विजा० हीमु० । 2. <u>हंसद्युतो०</u> हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]आशानुरागातिशयं [२]सृजन्ती [३]प्रचेतसः [४]स्फारमरीचितारा ।
[५]समुज्जिहानद्विजराजराजिवक्त्रा स्म सन्ध्येव विभाति देवी ॥१०७॥[1]

(१) वाञ्छा दिग् च स्नेहः अनुगतरक्तिमा च उत्कर्षम् । वाञ्छामोहयोरतिशयिताम् । (२) कुर्वती । (३) प्रकृष्टचेतस उत्तमस्यापि वरुणस्य च । (४) दीप्यमानकान्तिमत्तारा कनीनिका तारका च । (५) उद्गच्छन् द्विजराजश्चन्द्रः राजदन्तश्च तेन शोभनशीलं वदनं प्रारम्भश्च यस्याः ॥ १०७॥

हील० देवी सन्ध्येव भाति । किंभूता ?। प्रकृष्टचेतसो वाञ्छायाः स्नेहस्य वा रागाधिक्यं वा वरुणदिशि रागं वा कुर्वन्ती(ती) । पुनर्दीप्रा तारे कनीनिके ज्योतींषि वा यस्याम् । पुनरुद्गतदन्तैरुदितचन्द्रेण राजते । तादृशं वक्त्रं प्रारम्भो मुखं वा यस्याः ॥१११॥

हीसुं० [१]शशी [२]सुधां प्रेक्ष्य निपीयमानां सुरैः सृजंस्त[३]त्र [४]ममत्व[५]मन्तः ।
[६]ररक्ष [७]निक्षिप्य [८]रहो [९]रसज्ञापात्र्यामिवैतां [१०]कृतयन्मुखाङ्कः ॥१०८॥

(१) चन्द्रः । (२) निजाङ्कस्थायि पीयूषं । (३) सुधायाम् । (४) मोहमूर्छाम् । (५) चित्ते । (६) गोपयति स्म । (७) संस्थाप्य । (८) एकान्तस्थायाम् । (९) रसनापात्रिकायाम् । (१०) निर्मितयद्वदनदेहश्चन्द्रः ॥१०८॥

हील० चन्द्रः सुधायां ममत्ववान् । उत्प्रेक्ष्यते । एकान्ते जी(जि)ह्वापात्रे गोपयति स्म ॥११२॥

हीसुं० [१]यस्या रसज्ञां [२]जयिनीं [३]निभाल्य [४]शोणच्छदं [५]तत्तुलनाविलासम् ।
पितामहं प्रार्थयते [६]स्वताता[७]रविन्दगेहे [८]निवसन्त[९]मूहे ॥१०९॥

(१) देव्याः (२) जयनशीलाम् । (३) दृष्ट्वा । (४) रक्तपत्रमर्थात्कमलस्य । (५) जिह्वासादृश्यलीलाम् । (६) निजजनकः विधाता च । (७) आत्मनः जन्मकर्तृत्वेन जनकीभूतं कमलम् । तस्य तदेव वा गृहं तत्र । (८) निवासं कुर्वन्तम् । (९) ऊहे विचारयामि । इवार्थे वा ॥१०९॥

हील० रक्तोत्पलपत्रं कमलस्थं पितामहं जनकजनकं धातारं वा जी(जि)ह्वासादृश्यं याचतीव । ण्यन्तत्वाद्द्विकर्मकत्वम् ॥११३॥

हीसुं० [१]स्वं [२]निष्ठितं [३]नित्यसुपर्व[४]त्पानात्पीयूषम[५]न्विष्य [६]सितत्विषेव ।
[७]प्रैषी[८]दमा[९]ना[2]ययितुं [१०]रसज्ञासुधा[3]ह्रदेऽस्या[११] [१२]द्विजराजिरा[१३]भात् ॥११०॥

(१) आत्मीयम् । (२) क्षीणम् स्वल्पावशिष्टं वा । (३) अरोहात्रं देवानां पानवशात् । (४) अमृतम् । (५) दृष्ट्वा । (६) चन्द्रेण । (७) प्रेषिता । (८) पीयूषम् । (९) आत्मार्थे ग्राहयितुम् । (१०) जिह्वारूपामृतद्रहे । (११) देव्याः । (१२) दन्तपङ्क्तिः । (१३) बभौ ॥११०॥

1. इति दन्ताः हील० । 2. ०नापयितुं हीमु० । 3. ०ह्रदो० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० दन्तपङ्क्तिप्रभात् । उत्प्रेक्ष्यते । पीयूषं क्षीणं दृष्ट्वा चन्द्रेण तदेवानाययितुं जी(जि)ह्वाहृदे ब्राह्मणश्रेणिः प्रेषिता ॥११४॥

हीसुं० जाने [1]यदास्यं [2]सरसी सुधाया [3]विजृम्भिजिह्वारुणपद्मपत्रम् ।
[4]श्रेणीभवन्तः [5]पुलिनाऽ[6]वतंसा [7]हंसद्विजाः स्युः कथम[8]न्यथा[9]स्याम् ॥१११॥

(१) देवीमुखम् । (२) अमृततटाकः । (३) विकसनशीलं रसनैव रक्तकमलदलं यत्र । (४) पङ्क्त्या तिष्ठन्तः । (५) जलोज्झितप्रदेशे तटे च । (६) शेखरीभूताः । (७) हंसवदुज्ज्वलादन्ता हंसपक्षिणो वा । (८) अन्येन प्रकारेण । (९) सुधासरस्याम् ॥ १११॥

हील० जाने य० । अहमेवं मन्ये-यदास्यं पीयूषसरसी । अन्यथा तटशेखरीभूताः हंसपक्षिणो वा हंसवदुज्ज्वला दन्ताः कथं भवेयुः ॥११५॥

हीसुं० [1]वर्द्धिष्णुदेवीहृदयानुरागवारांनिधे[2]र्विद्रुमकन्दलीव ।
[3]कंठत्रिरेखेण मुखे गृहीता पुपोष भूषां [4]रसना[5]दसीया ॥११२॥[1]

(१) वर्धनशीलो यो देव्या मनसि । हृदयं-मनो वक्षश्च । रागस्य एव समुद्रस्तस्य । (२) प्रवालनवाङ्कुरः । "कन्दली तूपरागेऽपि कलापे च नवाङ्कुरे । मृगजातिप्रभेदे चे"ति लिङ्गानुशासनचूर्णौ । (३) कण्ठरूपशङ्खेन । (४) देवीसम्बन्धिनी । (५) जिह्वा ॥११२॥

हील० जी(जि)ह्वा भाति । उत्प्रेक्ष्यते । स्नेहार्णवाद्विद्रुमकन्दली कण्ठशङ्खेन मुखे गृहीता ॥११६॥

हीसुं० [1]जडीभवन्ती [2]रिपुनिर्ज्जये [3]यद्वाचा जिता [4]ह्रीविधुरा [5]विपञ्ची ।
[6]यियासया [7]शैवलिनीशपारे तुम्बद्वयं किं [8]बिभराम्बभूव ॥११३॥

(१) प्रतिकर्त्तुमशक्नुवन्तीत्यर्थः । (२) वैरिपराभवनाय । (३) देवीवाण्या । (४) लज्जाव्याकुला । (५) वीणा । (६) गन्तुमिच्छया । (७) समुद्रस्य परे तीरे । (८) धृतवती ॥११३॥

हील० यद्वाण्या जिता स्वास्यं दर्शयितुमशक्नुवन्ती वीणार्णवपारे गन्तुम् । उत्प्रेक्ष्यते । तुम्बे बिभर्ति स्म ॥ ११७॥

हीसुं० [1]स्र(श्र)वःसुधायै [2]जगतां [3]यदीयवाचे पिकेन [4]स्पृहयालुनेव ।
[5]अभ्यस्यते [6]भै[2]क्ष्यभुजा [7]तरुभ्योऽ[8]निशं वने पञ्चमगीति[9]रुच्चैः ॥११४॥

(१) कर्णयोरमृतभूतायै । पीयूषतोषक(?)सदृशायै । (२) जगज्जनानाम् । (३) देवीगिरे । (४) इच्छनशीलेन । (५) अभ्यासः क्रियते । (६) भिक्षासमूहाहारेण । (७) वृक्षेभ्यः सकाशात् । (८) निरन्तरम् । (९) बाढस्वरेण ॥११४॥

हील० श्रवः० । कर्णामृतरूपायै वाण्यै वाञ्छता । अतो वृक्षेभ्यो मञ्जरीकलिकादिभुजा कोकिलेन

1. इति रसना हील० । 2. भैक्ष. हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चमध्वनिरुद्घोष्यते ॥११८॥

हीसुं० [2]स्वैरैकसारं [1]परवादिनीभ्यः [3]सङ्गृह्य जाने [4]जलजासनेन ।
[5]विधीयते स्म [6]ध्वनितं त्रिदश्यास्ता[7]भ्योऽ[8]तिरिच्येत न चेत्कुतस्तत् ॥११५॥

(१) सप्ततन्त्रीकवीणाभ्यः । (२) खड्गादिसप्तस्वराणामद्वैतसारम् । (३) आपूर्य । (४) विधात्रा । (५) कृतम् । (६) देव्या वाग् । (७) स[र्व?]वीणाभ्यः । (८) अधिकीभवेत् ॥११५॥

हील० वीणाभ्यो ध्वनिं गृहीत्वा धात्रा देवीस्वरो विहितः । न चेत्ताभ्योऽधिकत्वं कथमिति अहं जाने ॥११९॥

हीसुं० यद्वाक्पुरस्तादिव पाण्डुराभिर्विलीयते स्म त्रपया सुधाभिः ।
सितोपलाभिश्च तपस्विनीभिस्तृणं किमादाय मुखेन तस्थे ॥११६॥[1]

यद्वाचमद्वैतमाधुर्यां निजजित्वरीं च वीक्ष्य लज्जयेव सुधा विलीयगता पाण्डुरा च जाता शर्क्कराभिरपि तथैव वक्त्रे तृणं गृहीत्वा स्थितः ॥११६॥

हील० यद्वाचा जितममृतं द्रवीभूतम् । पुनः सिताभिर्मुखे तृणं दत्तम् ॥१२०॥

हीसुं० [1]स्वप्रीतिरत्योरि[2]दमोष्ठधाम्नोः [3]सापत्न्यतः [4]संस्थितिवादभाजोः ।
स्मरस्त[5]दर्द्धे [6]विबभाज [7]सीमां रेखामिषात्किं [8]विनिनीषुरा[9]जिम् ॥११७॥[2]

(१) आत्मनः प्रीतिरतिनामपत्न्योः । (२) देव्या अधर एव धाम गृहं ययोः । (३) सपत्नीत्वेन । (४) स्थानस्य विवादकारिण्योः । (५) तयोरद्र्धे । तत्स्थानकयोर्मध्ये । (६) विभागीकृतवान् । (७) अवधिः । (८) निवारयितुमिच्छुः । (९) परस्परकलहम् ॥११७॥

हील० स्वप्री०। रतिप्रीत्योः सपत्न्यो रणं विनेतुमिच्छुः कामः सीमां विभागीकृतवान् ॥१२१॥

हीसुं० त[1]त्साधु [2]मन्ये मलयानिलेन [3]यदेतदीयस्व(श्व)सिती बभूवे ।
[4]सर्वर्त्तुपुष्पोद्भव [5]सौरभस्य सौभाग्यमाप्नोति [6]किमन्यथासौ[7] ॥११८॥

(१) समीचीनम् । (२) विचारयामि । (३) देवीसम्बन्धिस्वा(श्वा)सेन जातम् । (४) षट् ऋतुकुसुमसञ्जातामोदस्य सुरभिताया वा । (५) चारुताम् । (६) केन प्रकारेण । (७) मलयानिलः ॥११८॥

हील० तदहं सम्यग्जाने ॥१२२॥

हीसुं० [1]निमीलनोन्मीलनदूषितेभ्यो नित्यं दधद्भ्यो [2]मधुपानुषङ्गम् ।
[3]निर्वेदवान्प[4]द्मकुमुद्वनेभ्यः स्थितः किमा[5]मोद [6]इदंमुखाब्जे ॥११९॥

(१) सङ्कोचविकाशाभ्यां पीडितेभ्यः । (२) मद्यपा भ्रमराश्च तैः सङ्गं कुर्वद्भ्यः । (३)

---

1. इति नासा (वाणी) हील० । 2. इत्यधरोष्ठमध्यरेखा हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उद्वेगकलितः । (४) कमलकैरवकाननेभ्यः । (५) परिमलः । (६) अस्या देव्या वदनकमले ॥११९॥

हील० सङ्कोचविकाशाभ्यां दूषितेभ्यो मद्यपैर्भ्रमरैर्वा प्रसङ्गवद्भ्यः सर्वकमलेभ्यः खेदवान्परिमलोऽदोमुख स्थितः ॥१२३॥

हीसुं० [१]विश्राणयित्वेव [२]पुरा [३]स्वसार सौरभ्यमेत[४]द्वदनाम्बुजाय ।
[५]शोभा सहस्रांश [६]इतः [७]पयोजपरम्पराभि[८]र्ग्रहयांबभूवे ॥१२०॥[1]

(१) दत्वा । (२) पूर्वम् । (३) आत्मनः सारभूतां सुरभिताम् । (४) अस्या वक्त्रपद्माय । (५) देवीवदनस्य शोभानां सहस्रसङ्ख्याकः भागः । (६) देवीमुखकमलात् । (७) पद्मपङ्क्तिभिः । (८) गृहीतः ॥१२०॥

हील० विश्रा० । अस्या मुखकमलाय स्वसौरभ्यं दत्वा । उत्प्रेक्ष्यते । कमलैरितो देवीवदनाच्छोभाया दशशतसङ्ख्योंऽशो भागो गृहीतः ॥१२४॥

हीसुं० [१]व्यर्थीकृतां [२]शक्ति[३]मवेत्य [४]पूषद्विषा [५]विरक्तेर्नि[६]जहेतिहातुः ।
[७]तूणीरमादाय [८]मनोभवस्य [९]विरञ्चिना[११]स्या [१०]व्यरचीव [१२]नासा ॥१२१॥

(१) निष्फलीकृताम् । (२) स्वबलम् । (३) ज्ञात्वा । (४) शम्भुना । (५) वैराग्यात् । (६) निजप्रहरणानि त्यजनशीलस्य । शीले 'तृन्', 'ओहाक् त्यागे' इत्यस्य होनं शीलो हाता, तस्य हातुः । (७) निषङ्गम् । (८)स्मरस्य । (९) विधात्रा । (१०) कृतम् । (११) देव्याः । (१२) नासिका ॥१२१॥

हील० ईश्वरेण स्ववीर्यं व्यर्थीकृतं ज्ञात्वा विरागान्निजशस्त्रत्यजनशीलस्य कामस्य रिक्तं तूणीरं गृहीत्वा [illegible]त्रा तस्या नासा विहिता ॥१२५॥

हीसुं० [१]यन्नासिकां वीक्ष्य [२]जगन्निरीक्ष्या[३]मेतत्पुरः श्रीर्मम का [४]ह्रियेति ।
शङ्केऽनिशं [५]न्यक्कृतिकैतवेन स्वं [६]गोप्यते [७]कीरसृपाटिकाभिः ॥१२२॥

(१) देव्या नासाम् । (२) जगज्जनानां निरीक्षणयोग्याम् । (३) एतस्या देवीनासाया अग्रे । (४) लज्जयेति । (५) अधःकरणकपटात् । (६) गुप्तं क्रियते । छन्नं रक्ष्यते । (७) शुकचञ्चुभिः ॥१२२॥

हील० यन्ना०। यन्नासिकायाः पुरो मम का शोभेति व्रीडात् । अहमेवं मन्ये । नीचैष्क(: क)रणकैतवेन शुकचञ्चुभिः स्वं गोप्यते ॥१२६॥

हीसुं० [१]मुक्त्वा [२]द्विषः [३]पञ्चमुखीं प्रति [४]स्वान्पञ्चापि [५]शेषा[६]न्स्मरधन्विनाजौ ।
[७]यदङ्गवासौकसि किं [८]निषङ्गो [९]रिक्तो [१०]विमुक्तोऽ[११]जनि नासिकाऽ[१२]स्याः ॥१२३॥

(१) क्षिप्त्वा । (२) शम्भोर्वैरिणः । (३) पञ्च वक्त्राणि प्रति । (४) आत्मीयान् । (५) बाणान् । (६) मदनधानुष्केन । (७) देव्याः शरीरमेव वसनार्थं गृहं तत्र । (८) तूणी[illegible] । (९) वारव्यत्ययात् बाणरहितः । (१०) स्थापितः । (११) जाता । (१२) देव्याः ॥१२३॥

1. इति वदनपरिमलः हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० स्मरेण शम्भोः पञ्चवदनानि प्रति पञ्चबाणान् मुक्त्वा यदङ्गे रिक्तस्तूणो मुक्तो नासिका जातः ॥१२७॥

हीसुं० [१]स्वमन्दिरे [२]यद्वदनारविन्दे [३]लावण्यलक्ष्म्या [४]प्रकटीकृतेव ।
[५]भ्रूकैतवात्कज्जल[६]मुद्गिरन्ती [७]प्रदीपलेखा विललास नासा ॥१२४॥[1]

(१) निजगृहे (२) देवीवक्त्रपद्मे । (३) लवणिम्नः श्रिया । (४) उद्बोधिता । (५) श्यामां भ्रूमिषादञ्जनरेखाम् । (६) मुञ्चन्ती । सृजन्ती । (७) दीपकलिका ॥१२४॥

हील० दीपसमाना नासा भाति ॥१२८॥

हीसुं० [१]निजप्रतिद्वन्द्विविधुन्तुदस्य [२]निरीय [३]भाग्याभ्युदयेन वक्त्रात् ।
[४]पुनस्त[५]दातङ्कितचेतसेव [६]यद्गण्डभूयं विधुना[७]नुसस्त्रे ॥१२५॥

(१) स्वशत्रुराहोः । (२) निर्गत्य । (३) पुण्यपरिपाकेन । (४) द्वितीयवारमपि । (५) तस्माद्द राभीतियुक्तचित्तेन । (६) देवीगल्लभावम् । (७) अनुसृतम् ॥१२५॥

हील० राहुमुखाद्भाग्येन निर्गत्य पुनस्तद्भयादिव यत्कपोलतां श्रिता ॥१२९॥

हीसुं० [१]यदास्यतोऽ[२]भ्यर्थयितुं [३]विभूषाभरं [४]त्रियामादयितात्मदर्शौ ।
[५]तन्नित्यसेवाविधये [६]कपोलपालीद्वयीभावमिवाभजेताम् ॥१२६॥

(१) देवीमुखात् । (२) याचितुम् । (३) शोभातिशयम् । (४)चन्द्रदर्पणौ । (५) देवीमुखस्य सदा पर्युपास्तिकृते । (६) गण्डद्वन्द्वत्वम् । "कपोलपालीजनितानुबिम्बयो" रिति नैषधे ॥१२६॥

हील० यदास्यतो विभूषां याचितुम् । अत एव देवीवदनसेवार्थं चन्द्रदर्पणौ कपोलभावं प्राप्तौ ॥१३०॥

हीसुं० कपोलभित्तौ [१]मृगनाभिपङ्कैश्चित्रीकृतोऽस्या [२]मकरश्च[2]काशे ।
[३]यद्वेश्मनोऽ[४]दृश्यतनोर[५]नङ्गतयात्मयोनेरिव [६]लक्ष्म [७]लक्ष्यम् ॥१२७॥

(१) कस्तूरी द्रवैः (२) मच्छ्य(त्स्य)विशेषः । "कपोलपत्रान्मकरात्सकेतु" रिति नैषधे । (३) देवीरूपगृहस्य । (४) न नयननिरीक्षणीयशरीरस्य । (५) कायरहितत्त्वेन स्मरस्य । (६) केतनं चिह्नम् । (७) दृश्यम् ॥१२७॥

हील० कपोले कस्तूर्या कृतो मगर इति लोकप्रसिद्धः । स शुशुभे । उत्प्रेक्ष्यते । अनङ्गत्वेनादृश्यस्य स्मरस्य दृग्दृष्टं चिह्नम् ॥१३१॥

हीसुं० [१]हिरण्यगर्भैः [२]प्रणयन्सुरीं तां [३]विद्मोऽरविन्दं वदनीचकार ।
[४]मरन्दलुभ्यन्नयनद्विरेफौ न चेद्भवेतां कथमन्यथा[५]स्मिन् ॥१२८॥[3]

(१) धाता । (२) कुर्वन् । (३) जानीम इवार्थो वा । (४) मकरन्देषु लोलुपौ भवन्तौ नेत्रे एव भृङ्गौ । (५) वदनपद्मे ॥१२८॥

हील० ब्रह्मणा कमलेन मुखं कृतम् । इदं नो चेदस्मिन्नेत्रे इव भ्रमरौ कथं भवेताम् ॥१३२॥

1. इति नासिका हील० । 2. ०कासे हीमु० । 3. इति कपोलः हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]स्फुरन्महोगोचरिताखिलाशौ [२]भूपाविवास्या भवतः स्म नेत्रे ।[1]
[३]अधारिषातां कथमा[४]तपत्रे [५]पक्ष्मोपधे [६]मूर्द्धनि चेन्न [७]ताभ्याम् ॥१२९॥

(१) दीप्यमानद्युतिभिर्लक्षीकृत समग्रदिशौ । तेजसां सर्वत्र व्यापित्वात् । पक्षे- प्रसरत्प्रतापैर्विषयी[कृ]तसमस्तहरितौ । (२) राजानौ । (३) धृते । (४) छत्रे । (५) नेत्ररोमच्छलात् । (६) मस्तके । (७) नेत्राभ्याम् ॥१२९॥

हील० दीप्रेण महसा तेजसा प्रतापेन वा दृष्टा दिशो याभ्यां तौ(ते) नेत्रौ(नेत्रे) भूपाविव जातौ । अन्यथा नेत्ररोमदम्भाच्छत्रे कथं धृते ॥१३३॥★

हीसुं० [१]असूयया [२]स्वीयपराभविष्णुं दृशं यदीयां [३]प्रविभाव्य भृङ्गाः ।
स्पर्द्धां [४]न दध्मोऽ[५]थ वयं कदाचिदितीव चक्रुः कज[६]कोशपानम् ॥१३०॥

(१) ईर्ष्यया । (२) निजस्य पराभवनशीलाम् । (३) दृष्ट्वा । (४) न वदामः । (५) अद्यतः प्रारभ्य । (६) शपथम् ॥१३०॥

हील० असू० । पराभविष्णुं यद्दृष्टिं दृष्ट्वा भ्रमराः कोशपानं चक्रुः ॥१३४॥

हीसुं० [१]सारैर्दलैः शासनदेवतायाः [२]प्रणीय नेत्रे किमु [३]पद्मयोनिः ।
[४]शेषैरशेषैर्दलिकैर[५]कार्षीत्पुनश्चकोरा[६]म्बुजखञ्जरीटान् ॥१३१॥

(१) विशिष्टैर्वस्तुभिः । (२) कृत्वा । (३) धाता । (४) अवशिष्टैः । (५) कृतवान् । (६) कमलखञ्जनान् ॥१३१॥

हील० धाता सारदलैर्नेत्रे निष्पाद्य शेषैर्दलैश्चकोरादींश्चकार ॥१३५॥

हीसुं० [१]जेया त्रिलोक्येव [२]शरैस्त्रिभिस्त[३]त्शेषा [४]द्विकाण्डी [५]किमिति स्मरेण ।
[६]त्यक्ता[७]थ सा [८]पद्मभुवा [९]कृतार्थीकृतेव देव्या नयने [१०]प्रणीय ॥१३२॥

(१) जेतुं योग्या । (२) त्रिसङ्ख्यैरेव बाणैः । (३) अवशिष्टा उद्धृता । (४) बाणद्वयी । (५) किमिति न किञ्चित्कार्या इति हेतोः । (६) उज्झिता । (७) पश्चात्मदनत्यजनानन्तरम् । (८) धात्रा । (८) सफलीकृता । (१०) कृत्वा ॥१३२॥

हील० त्रिभिः शरैस्त्रिलोकी एव जेया । ततो द्वयोः काण्डयोर्बाणयोः समाहारो द्विकाण्डी स्मरेणोज्झिता सती धात्रा देवीनेत्रे निष्पाद्य सत्या कृता ॥१३६॥

हीसुं० [१]श्रिया [२]सुधाभु[२]क्परमाणुमध्या-चक्षुर्विभूषामनुकर्त्तुकामैः ।
[३]गुप्तं क्वचित्प्रा[४]वृषि [५]खञ्जरीटैराराध्यते मन्त्र इवा[६]मदत्तः ॥१३३॥

(१) स्वशोभया । (२) देवाङ्गनानयनविभवम् । "अध्यापयामः परमाणुमध्या" इति नैषधे । (३) छन्नम् । (४) वर्षाकाले । (५) खञ्जनपक्षिभिः । (६) इष्टविश्राणितः ॥१३३॥

हील० शोभया चक्षुःसदृशो भवितुं खञ्जरीटैर्मन्त्र आराध्यते ॥१३७॥

1. नेत्रौ हीमु० । 2. ०धाभाक्पर० हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० चन्द्राच्चकोरोऽ[१]मृतपानदम्भाद्या[२]नस्थितो [३]गन्धवहात्कुरङ्गः ।
[४]पितामहात्प[५]ङ्कजमा[६]सनस्थं [७]यदक्षिलक्ष्मीमिव [८]मार्गयन्ति ॥१३४॥

(१) सुधापानार्थागमनमिषात् । (२) वाहने स्थितः । (३) पृषदश्वो वायुस्तथा-"कर्त्तुं शशाङ्काभिमुखं न भैम्यां मृगं दृगम्भोरुहनिर्जितं यत् । अस्या विवाहाय ययौ विदर्भांस्तद्वाहनस्तेन न गन्धवाह" इति नैषधे । वातात् । (४) विधातुः । (५) कमलम् । (६) विष्टरः पीठमासनम् । सरोरुहासनत्वात् । (७) देवीनयनश्रियम् । (८) याचन्ति ॥१३४॥

हील० चन्द्राच्चकोरो यच्चक्षुषः शोभां याचतीव । पुनर्वाहनत्वेन स्थितो मृगो वायोर्मार्गयति । पुनरासनरूपं पङ्कजं ब्रह्मणो याचति ॥१३८॥

हीसुं० [१]स्मितं [1]निशाह्नोरपि [२]नित्यरङ्गद्भृङ्गाङ्कितं स्याद्यपि पुण्डरीकम् ।
[३]प्रस्यन्दमानान्तरतारि[२]कायास्ततोऽनुकु[४]र्यात्त्रिदिशीदृश[५]स्तत् ॥१३५॥[3]

(१) विकसितम् । "स्मितं दिवा निश्यपि" इत्यपि सूत्रपाठः । (२) अविरहितभ्रमद्भ्रमर-कलितम् । (३) चलन्ती विचाले कनीनिका यस्याः । (४) देवीनयनस्य । (५) श्वेतकमलम् ॥१३५॥

हील० यदि पुण्डरीकं सदा विकसितं, उत च भृङ्गाङ्कितं भवेत्ततो भ्रमत्कनीनिका एतस्या दृशमनुकुर्यात ॥*१३९॥

हीसुं० [१]प्रीत्या च रत्या सह [२]मीनकेतो[३]रन्दोलनादोहदपूरणाय ।
विनिर्म्मिते [४]नाभिभुवेव लीलादोले तदीये [५]स्त्र(श्र)वसी विभातः ॥१३६॥

(१) प्रीतिरतिनाम्न्यौ स्मरपत्न्यौ ताभ्यां सार्द्धम् । (२) स्मरस्य । (३) प्रेङ्खोलनस्पृहापरिपूर्त्तये । "दोहदोऽपि च चलद्वीचीचयैः पूर्यते" इति हंसाष्टके । (४) विधिना । (५) कर्ण्णौ ॥१३६॥

हील० तस्याः कर्णौ भातः । उत्प्रेक्ष्यते । स्वपत्नीभ्यां सह स्मरस्य दोलनेच्छापूर्त्तये धात्रा केलिप्रेङ्खोले विहिते ॥१४०॥

हीसुं० [१]मोघीकृताशेषशरं [२]गिरीशं [३]प्रत्यर्थिनं [४]पाशयितुं [५]कथञ्चित् ।
[६]अधारि पाशो [७]विषमायुधेन [८]यद्वेश्मनेव [९]श्रवणच्छलेन ॥१३७॥

(१) विफलीकृतसमग्रबाणम् । (२) ईश्वरम् । (३) शत्रुम् । (४) पाशयन्त्रितं कर्त्तुम् । (५) केनापि प्रकारेण । (६) धृतः । (७) मदनेन । (८) देवीशरीरवासिना । (९) कर्ण्णकपटात् ॥१३७॥

हील० मोघी०। या देवी एव वेश्म यस्य तादृशेन स्मरेणेशं पाशयितुं श्रोत्रदम्भात् । उत्प्रेक्ष्यते । पाशो धृतः ॥१४१॥

हीसुं० [१]धृतैकपाशेन [२]पयोधिधाम्ना [३]स्वाङ्कप्रभुत्वेन किमात्मयोनिः ॥
[४]स्पर्द्धां दधानः [५]स्त्र(श्र)वसी त्रिदश्याः पाशद्वयीमा[६]कलयांचकार ॥१३८॥[4]

---

1. दिने निश्यपि हीमु० । 2. ०कां तत्तनोतु कुर्याद्दृशमेतदीयाम् हीमु० । 3. इति लोचनम् हील० । 4. इति कर्णौ हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) अङ्गीकृत एक एव बन्धनग्रन्थिर्येन । (२) वरुणेन । (३) स्वस्याङ्कश्चिह्नं मकरो यादोऽपरनामा तस्य स्वामित्वेन । "यादः पतिपाशिमेघनादा" इति हेमचन्द्रवचनात् । (४) स्पर्द्धां-स्वस्य तस्य च मकरप्रभुत्वे तुल्ये स्पर्द्धाम् । (५) कर्णौ । (६) दधारः ।

हील० देव्याः श्रोत्रे भातः । उत्प्रेक्ष्यते । मकरपतित्वेन कृत्वा वरुणेन सह स्पर्द्धया सङ्कल्पयोनिः पाशद्वयं दधार ॥१४२॥

हीसुं० [१]स्वपृष्ठलग्नागतकेशकायस्वर्भाणुमा[२]लोक्य [३]जिनाधिदेव्याः ।
[४]त्रायस्व नौ [५]वक्तुमिती[६]न्दुभानू [७]श्रुत्योर्वि[८]लग्नाविव कुण्डलाङ्गौ ॥[1] १३९॥[2]

(१) आत्मनोः सूर्याचन्द्रमसयोः पश्चाद्विलग्न एवागतो यः केशपाश शरीरः स्वर्भाणुः राहुस्तम् । (२) दृष्ट्वा । (३) त्रैलोक्यनाथस्याधिष्ठात्री देवी तस्याः (४) अचिन्त्यसामर्थ्यात् हे देवि ! त्वं नौ-आवयोः प्रबलशत्रोः सकाशात् रक्ष-जीवितदानं देहीति । (५) कथयितुम् । (६) चन्द्रसूर्यौ । (७) कर्णयोः (८) अन्यावपि वक्तुमिच्छू श्रवणयोर्वि[ल]गतः ॥१३९॥

हील० शासनाधिष्ठात्र्याः केशरूपं बाहुं दृष्ट्वा नौ आवयोस्त्रायस्वेति वक्तुं चन्द्रभानू कुण्डलरूपेण शरणं श्रितौ ॥१४४॥

हीसुं० [१]श्रिया [२]भ्यभूवन्त मया समग्रा [३]नवद्वयद्वीपमहीमहेलाः ।
इतीव वक्तुं जगतः स्म धत्ते सुरी[४]स्त्र(श्र)वःसङ्गिनवाङ्कयुग्मम् ॥१४०॥[3]

(१) लक्ष्म्या । (२) पराभूताः । (३) अष्टादशद्वीपानां महीसमुत्पन्नवनिताः । "नवद्वयद्वीप-पृथग्जयश्रिया"मिति नैषधे । (४) श्रवणयुगलसङ्गतनवाङ्कद्वन्द्वम् । "कर्णान्तरुत्कीर्ण-गभीरलेखः किं तस्य सङ्ख्यैव नवा नवाङ्क" इति नैषधे ॥१४०॥

हील० मयाष्टादशद्वीपाङ्गनाः अभिभूताः । इति वक्तुं या देवी श्रोत्रयोर्नवसङ्ख्याकद्वयं धत्ते ॥१४३॥

हीसुं० नीलोत्पले कर्ण्णयुगे चकासांबभूवतुः [१]स्त्रैणमणेः सुराणाम् ।
[२]युयुत्सुनी [३]तन्नव(य)नोत्पलाभ्यामिव [४]प्रतिस्पर्धितया[५]भ्युपेते ॥१४१॥

(१) सुराणां स्त्रीणां समूहे रत्नभूतायाः । (२) योद्धुमिच्छुनी । (३) देवीविलोचनकमलाभ्याम् । (४) मिथः स्पर्द्धनशीलतया । (५) आगते ॥१४१॥

हील० कर्णयुगस्थे नीलोत्पले भातः स्म । उत्प्रेक्ष्यते । तन्नेत्रे एवोत्पले ताभ्यां सह योद्धुकामे इवागते ॥१४५॥

हीसुं० [१]अभ्यस्यतास्याः [२]स्त्र(श्र)वसी मनोभूधनुर्धरेणेव धृते [३]शरव्ये ।
न चेद्वेतां कथम[४]न्तरालेऽ[५]नयो[६]र्विनीले कमले [६]कलम्बौ ॥१४२॥[4]

(१) अभ्यासं कुर्वतः । (२) देवीश्रवणौ । (३) वेध्ये । (४) मध्ये । (५) शरव्ययोः । (६) बाणौ । (७) नीलोत्पलौ(ले) । "कर्णयोः कुण्डले नीलोत्पले च" । नैषधे दमयन्ती-शृङ्गाराधिकारे दृश्यते ततोऽत्रापि ॥१४२॥

---

1. हीलप्रतौ हीमु० यथासंख्यमेतयोः १३९-१४०तमश्लोकयोरेषोऽनुक्रमः १४४-१४३, १४३-१४२ । 2. इति कर्णान्तर्गतनवाङ्कः हील० । 3. इति कुण्डले हील० । 4. इति कर्णयोरुत्पले हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० अस्याः श्रवसी । उत्प्रेक्ष्यते । अभ्यासं कुर्वता कामधनुर्द्धरेण वेध्ये मण्डिते एव । चेन्न तर्हि अनयोर्मध्ये कजबाणौ कथं वर्त्तेते ॥१४६॥

हीसुं० कटाक्षबाणा[१]न्प्रगुणा[२]न्प्रणीय [३]स्वःसुभ्रुवो भ्रूः [४]कुटिलीभवन्ती ।
धनुर्लता [५]श्रीसुतधन्विनेव [६]प्रसाधिताभात्त्रिजगज्जयाय ॥१४३॥

(१) सज्जान् । (२) विधाय । (३) देव्याः । (४) वक्रा जायमाना । (५) मदनधानुष्केन । (६) सज्जीकृता ॥१४३॥

हील० देवीभ्रूर्भाति । उत्प्रेक्ष्यते । कटाक्षबाणान्सज्जान् कृत्वा कामेन जगज्जयार्थं धनुः प्रगुणीकृतम् ॥१४७॥

हीसुं० [१]उज्जृम्भवक्त्राम्बुजमन्दिराया [२]लीलाप्रवालोऽयमिवे[३]न्दिरायाः ।
[४]उप्ता [५]तया वा [६]फलिनीव [७]भालाजिरे विरेजे [८]सुरसुभ्रुवो भ्रूः ॥१४४॥

(१) देव्याः विकसितवदनकमलवसतेः । (२) क्रीडाकृते पल्लवः । (३) लक्ष्म्याः । (४) प्ररोपिता । (५) श्रिया । (६) प्रियङ्गुलता । (७) ललाटरूपप्राङ्गणे । (८) देव्याः ॥१४४॥

हील० भ्रू रेजे । उत्प्रेक्ष्यते । यन्मुखस्थलक्ष्म्यास्तमालसालपल्लवः । पुनस्तया भालाङ्गणे रोपिता प्रियङ्गुलता ॥१४८॥

हीसुं० [१]मिथो [२]मुनीन्द्रेण [३]मृधे [४]मनोभूभूमीपति[५]र्जर्जरिताङ्गयष्टिः ।
[६]सुपर्वसुभ्रूभ्रुवमा[७]श्मगर्भ्यष्टीमिवा[८]लम्बकृते [९]ततान ॥१४५॥

(१) परस्परम् । (२) <u>हीरविजयसूरि</u>शक्रेण । अपरवर्णनसमये मा वर्णनीयनायको विस्मृतः स्यादिति तदन्तराले मुनीन्द्रपदोपादानम् । यथा नैषधेऽपि कुण्डिनपुरवर्णनाधिकारे - "पयसा नैषधशीलशीतल"मिति । (३) सङ्ग्रामे । (४) स्मरनृपः । (५) भग्नास्थिपुञ्जा वपुर्लता यस्य । (६) देवीभ्रुवम् । (७) मरकतमणिमयदण्डम् । (८) शरीराधारकृते । (९) चकार ॥१४५॥

हील० **श्रीहीरविजयसूरिणा** सह युद्धे जर्जरीभूतां भ्रूरूपाम् । उत्प्रेक्ष्यते । आधारार्थं मरकतमयं दण्डं कामः कृतवान् ॥१४९॥

हीसुं० [१]नीलारविन्देन [२]पुरा [३]प्रणीय दृशं त्रिदश्याः [४]सरसीजजन्मा ।
[५]किञ्जल्कवृन्दैर्व[६]दने [1]तदीये [७]प्रणीतवान्भ्रूलतिकामि[८]वास्याः ॥१४६॥

(१) कुवलयेन । (२) पूर्वम् । प्रथमम् । (३) कृत्वा । (४) विधाता । (५) तत्कुवलयकेसरनिकरैः । (६) देवीवदने । (७) चकार । (८) देव्याः ॥१४६॥

हील० धाता नीलकमलेन नेत्रे कृत्वा पश्चात्केसरैर्भ्रूलतामकरोत् ॥१५०॥

---

1. <u>तदीयैः</u> हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [१]संस्पर्द्धिभावं दधता [२]स्वलक्ष्म्या [३]खण्डेन [४]चण्डेतरकान्तिनेव ।
जग्राह [५]योद्धुं [६]त्रिदशीललाटं [७]भ्रूयुग्मकायां [८]करवालयष्टिम् ॥१४७॥[1]

(१) स्पर्द्धनशीलताम् । (२) निजश्रिया । (३) अर्द्धेन । (४) शीतकान्तिना । चन्द्रेणेत्यर्थः । (५) युद्धं विधातुम् । (६) देवीभालम् । (७) कर्त्तृभ्रूद्वन्द्वरूपाम् । (८) खड्गलताम् ॥१४७॥

हील० संस्प० । स्वशोभया स्पर्द्धावताऽर्द्धचन्द्रेण सह योद्धुम् । उत्प्रेक्ष्यते । त्रिदश्या भालं भ्रूयुग्ममेव कायः शरीरं यस्यास्तादृशीं निशितनिस्त्रिंशलतां ग्रहयांबभूव ॥१५१॥

हीसुं० स्मरं [१]रतिप्रीतिनितम्बिनीभ्यां [२]सहा[४]भिषेक्तुं [३]भुवनाधिपत्ये ।
[५]यद्भालदम्भाज्ज[६]लजासनेन [७]मन्ये [८]प्रणि[२]न्ये [९]कलधौतपट्टः ॥१४८॥

(१) रतिप्रीतिसंज्ञाभ्यां प्रियाभ्याम् । (२) समम् । (३) त्रैलोक्यराज्ये । (४) अभिषेकं कर्त्तुम् । (५) देवीललाटच्छलात् । (६) ब्रह्मणा । (७) अहमेवं जाने । (८) कृतः । (९) स्वर्णपट्टकः ॥१४८॥

हील० रतिप्रीतिभ्यां सह श्रीनन्दनं त्रैलोक्यराज्ये अभिषेक्तुं, अभिषेकं कर्त्तुम् । अहमेवं मन्ये यल्ललाटछद्मता वेधसा काञ्चनपट्टको विनिर्मित इव ॥१५२॥

हीसुं० त्रैलोक्यमा[१]क्रम्य [२]पराक्रमेण [३]सुखं निषन्न(ण्ण)स्य झषध्वजस्य ।
[४]व्यधत्त [५]हेम्नः फलकं विधाताऽ[६]वष्टम्भनायेव [७]तदीयभालम् ॥१४९॥

(१) पराभूय । (२) बलेन । (३) सुखेनोपविष्टस्य । (४) चकार । (५) स्वर्णस्य । (६) पृष्ठिदानाय । (७) देवीसम्बन्धिललाटम् ॥१४९॥

हील० तदीयभालं भाति । उत्प्रेक्ष्यते । मीनकेतोः पृष्ठप्रदानार्थं हेमफलकम् ॥१५३॥

हीसुं० [१]अधृष्यम[२]न्विष्य यदीय भालं [३]द्वेष्यं [४]नि[३]जं(ज)स्पर्द्धितया [५]जिगीषत् ।
[६]अर्द्धामृतांशुः [७]प्रपलाय्य [८]पूषद्विषो जटाजूट इव प्रविष्टः ॥१५०॥

(१) अनाकलनीयम् । (२) दृष्ट्वा । (३) वैरिणम् । (४) स्वस्य स्पद्र्धनशीलत्वेन । (५) जेतुमिच्छत् । (६) अद्र्धचन्द्रः । (७) नंष्ट्वा । (८) ईश्वरस्य ॥१५०॥

हील० अधृष्य० । यस्या भालं जेतुमिच्छत्दृष्ट्वादर्धचन्द्रो नंष्ट्वा शर्वजटायां प्रविष्ट इव ॥*१५४॥

हीसुं० [१]अद्वैतलक्ष्मीकम[२]वेक्ष्य यस्या भालं [३]तदीयश्रियमी[४]हमानः ।
[५]विश्वम्भरस्येव [६]पदे [७]लगित्वा [८]तां [९]मार्गयत्य[१०]र्भ इवादर्धचन्द्रः ॥१५१॥

(१) असाधारणशोभाभासुरम् । (२) दृष्ट्वा । (३) भालसम्बन्धिशोभाम् । (४) काङ्क्षन् ।

---

1. इति भ्रुवोर्द्वयम् हील० । 2. ०णिन्यै हीमु० । 3. निजं प्रति स्पर्धितया जिगीषत् हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(५) जगत ईप्सितदानेन पोषकस्य कृष्णास्य । (६) चरणे । (७) विष्णुपदे विलग्य । (८) भालश्रियम् । (९) याचति । (१०) बालक इव ॥१५१॥

हील० बालश्चन्द्रस्तद्भालशोभां दृष्ट्वा विष्णुपदे विलग्य तां मार्गयतीव ॥१५५॥

हीसुं० [१]यद्भाललक्ष्म्या[२]धरितोऽर्द्धचन्द्रस्त[३]त्साम्यमिच्छन्व[४]रुणालयस्थाम् ।
अभीष्टदां [५]कामदुघां [६]प्रतीचीमस्तच्छलाद्याति किमा[७]रिरात्सुः ॥१५२॥[1]

(१) देवी ललाटलक्ष्म्या । (२) धिक्कृतः । (३) देवीभालशोभासादृश्यम् । (४) वरुणगृहवासिनीम् । (५) कामधेनुम्। "ऋतोः कृते जाग्रति वेत्ति कः कवि प्रभोरपां वेश्मनि कामधेनवः" इति नैषधे । (६) पश्चिमदिश्या(शा)म् । (७) आराद्धुमिच्छुः ॥१५२॥

हील० अर्धचन्द्रोऽस्तच्छलात्प्रतीचीं याति । उत्प्रेक्ष्यते । वरुणगृहवासिनीं कामधेनुमाराधयितुमिच्छुः ॥१५६॥

हीसुं० [१]यदाननश्रीजितम[२]ब्जबन्धोः पद्मं [३]करक्रोड इवै[४]त्य बन्धोः ।
[५]निर्वेद[६]मावेदयते स्वमेतत्पुरो भ्रमद्भृ[७]ङ्गगणक्वणेन ॥१५३॥

(१) देवीवदनलक्ष्मीपरिभूतम् । (२) सूर्यस्य । (३) हस्तोत्सङ्गम् । (४) आगत्य । (५) पराभवोद्भूतखेदम् । (६) कथयति । (७) भ्रमरगुञ्जितेन ॥१५३॥

हील० मुखश्रिया जितं पद्मं मित्रस्य सूर्यस्य स्वं दुःखं वक्ति[स्म] ॥१५७॥

हीसुं० [१]वक्त्रं त्रिदश्या [२]विजितात्मदर्शनिशामणिं प्रेक्ष्य [३]हिरण्यगर्भः ।
सृष्टिं [४]सिसृक्षुः किं[५]मदोऽनुरूपां [६]विनिर्मिमीतेऽ[७]म्बुजहस्तलेखम् ॥१५४॥

(१) मुखम् । (२) शोभाभिभूतदर्पणपार्वणेन्दुम् । (३) धाता । (४) कर्त्तुमिच्छुः । (५) अस्य देवीवदनस्यानुरूपां तुल्याम् । "अदःसमित्संमुखवैरियौवतत्रुटद्भुजा कम्बुमृणालहारिणी" इति नैषधे । (६) करोति । (७) कमलानां हस्तलेखम् । 'हस्तोलक' इति प्रसिद्धः ॥१५४॥

हील० जितम(मु)कुर चन्द्रं मुखं दृष्ट्वा विधिस्तत्सदृशरूपं शिक्षितुम् । किमुत्प्रेक्ष्यते । कमलैर्हस्तलेखम् । लोकोक्त्या 'हथोलो' । अकरोत् ॥१५८॥

हीसुं० मन्ये [१]कुमुद्बन्धु[२]रिदंमृगाङ्कमुखीमुखीभूय [३]सुखीबभूव ।
[४]नियन्त्र्य य[५]त्तेन नमः [६]स्वदस्युं [७]प्राक्षेपि पृष्ठे [८]स्फुटकेशकायः ॥१५५॥[2]

(१) चन्द्रः । (२) इयं चासौ मृगाङ्कमुखी च । तस्या मुखं भूत्वा । "इदं नृपप्रार्थिभिरुज्झितोऽर्थिभि"रिति नैषधे । (३) निश्चिन्तो जातः । (४) बद्ध्वा । (५) यस्मात्कारणात् । (६) राहुः निजशत्रुः । (७) प्रक्षिप्तः । (८) प्रकटं कुन्तलरूपवपुर्यस्य ॥ १५५॥

---

1. इति दे[वीभालम्] हील० । 2. इति वदनम् हील० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हील० [चन्द्र] एतस्या मुखरूपो भूत्वा सुखी जातः । यद्यस्मात्तेन बद्ध्वा राहुः पृष्ठभागे स्वरिपुत्वात्प्रक्षिप्तः । बद्ध्वा क्षिप्तः ॥१५९॥

हीसुं० [1]अहो [2]महीयान्म[3]हिमा [4]सुपर्व्वसारङ्गचक्षुश्चिकुरच्छटायाः ।
निर्जित्य यस्मात्प[5]शुनापि पश्चा[6]दचीकर[7]द्या [8]चमरान्प्र[9]तीपान् ॥१५६॥

(१) अहो इत्याश्चर्ये । यथा नैषधे – "अहो अहोभिर्महिमा हिमागमे" इति । (२) अतिशायी । (३) माहात्म्यम् । (४) देवीकुन्तलकलापस्य ।" तटान्तविश्रान्तरङ्गमच्छटे"ति नैषधे । छटा श्रे(श्रो)णीति तद्वृत्तिः । (५) चमरगवा कर्त्ता(र्त्र्या) । तिर्यङ्मात्रः पशुरुच्यते । तया नैषधेऽपि"पशुनाप्यपुरस्कृतेन तत्तुलनामिच्छतु चामरेण कः" । (६) कारयति स्म । (७) या देवी । (८) कचच्छटाः । (९) स्वस्पर्द्धिनः ॥१५६॥

हील० [अहो०। देवीकेश]पाशस्य महान्महिमा विद्यते । यदसौ देवी पशूनां पृष्ठभागे चमरान् बध्नाति स्म ॥१६०॥

हीसुं० स्पर्द्धां विधत्ते [1]सुमनःसुकेशीकेशच्छटाभिर्यदसौ [2]कलापः ।
[3]अनौचितीयं तमितीव [4]केकी [5]जहाति कोपादपि [6]पक्षभूतम् ॥१५७॥

(१) शासनसुराङ्गनाकेशश्रेणिभिः । (२) केकिपिच्छम् । (३) न योग्यता । "सानौचिती वेतसि नश्चकास्तु" इति नैषधे । (४) मयूरः । (५) त्यजति । (६) पक्षः सहायः । पिच्छम् । "पक्षो मासार्द्धे पिच्छे विरोधे देहाङ्गे सहाये राजकुञ्जरे" इत्यनेकार्थः ॥१५७॥

हील० असौ कलापः देव्याः केशपाशेन सह स्पर्द्धां धत्ते । इदमनुचितम् । इति क्रुधा पक्षः-सहायष्पि(: पि)च्छं च तत्समानमपि केकी त्यजति ॥१६१॥

हील०→श्रीस्पर्द्धया यच्चिकुरान्विजेतुं व्यवस्यमानान्स्वमवेत्य बर्हः ।
त्रासात्प्रणश्यन्निव नीलकण्ठः पृष्ठे प्रविष्टः शरणाभिलाषी ॥१६२॥इति केशपाशः॥←
कलापो मयूरं शरणीचकार ॥१६२॥

हीसुं० [1]सीमन्तदण्डः [2]सुरपद्मदृष्टे रु[3]न्मादयामास मनांसि [4]यूनाम् ।
[5]सहावरोधश्चरतः स्मरस्य [6]व्यक्तीभवन्ती [7]पदवी किमे[8]षा ॥१५८॥

(१) केशेषु वर्त्मदण्डाकृतित्वाद्दण्डः । (२) देव्याः । (३) उन्मादश्चित्तविप्लवस्तद्युक्तानि करोति । (४) तरुणानाम् (५) स्त्रीभिः सार्द्धम् । अवरोधशब्देनात्र पत्नीग्रहणम् । यथा नैषधे स्त्रीवर्णने-"स्मरावरोधभ्रममावहन्ती"ति । (६) प्रकटा जायमाना । (७) जनसञ्चारेणामार्गोऽपि मार्गः स्यात् । (८) एषा प्रत्यक्षलक्ष्यमाना(णा) सीमन्तरूपा ॥ १५८ ॥

हील० सीमन्तदण्डो वयस्थानां मनांसि उन्मादयामास । उत्प्रेक्ष्यते । अन्तःपुरेण सह सञ्चरतः स्मरस्य स्फुटो मार्गः । यतो घनजलसञ्चारेण मार्गः स्यादिति ॥१६३॥

→← एतदन्तर्गतः पाठो हीसुंप्रतौ नास्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हीसुं० [1]प्रेक्ष्य [2]स्वदाहे [3]ज्वलितास्त्रमालां [4]जेयं कथं [1]विश्वम[5]थो मयेति ।
[6]पितामहोऽ[7]दान्मदनस्य तस्याः[8] सीमन्तदण्डं [9]विमनायितस्य ॥१५९॥

(१) दृष्ट्वा । (२) शम्भुना स्वस्य भस्मीकरणानन्तरे । (३) भस्मीभूतां प्रहरणश्रेणीम् । (४) जेतुं शक्यम् । (५) प्रहरणानि विना । (६) स्वजनकजनको विधाता च । (७) दत्तवान् । (८) देवीसीमन्तरूपं दण्डरत्नम् । (८) विरुद्धमनस्कीभवतः । "चिराय तस्थे विमनाअ(य)मानया" इति नैषधे ॥१५९॥

हील० ज्वलितास्त्रेण मया जगत्कथं जेयमिति विमनस्कीभूतस्य स्मरस्य ब्रह्मा पौत्रप्रेम्णा दण्डरत्नं दत्तवान् ॥१६४॥

हीसु० सिन्दूरपूरप्रचितेन तस्याः सीमन्तदण्डेन शिरोरुहाली ।
विद्युद्विलासेन पयःप्रपूर्णः(र्ण)पयोमुचां पङ्क्तिरिव व्यराजत् ॥१६०॥[2]

(१) पूरशब्दो लक्षणया समूहवाची । (२) व्याप्तेन । (३) केशश्रेणी । (४) तडिद्वितानेन । (५) सलिलसम्पूरितमेघानाम् । (६) मालिकेव ॥१६०॥

हील० सिन्दूरपूरितेन सीमन्तदण्डेन कचच्छटा भाति स्म । यथोन्नतजीमूतपङ्क्तिर्विद्युद्विजृम्भितेन विराजते ॥१६५॥

हीसुं० [1]प्रफुल्लमल्लीकुसुमावनद्धयत्केशपाशः [2]स्फुरयाम्बभूव ।
[3]अपूजि पुष्पैरिव [4]चामरादिद्विषज्जयस्यावसरे [5]दिगीशैः ॥१६१॥

(१) विकचमल्लिकापुष्पग्रथितवेणी । (२) भ्राजते । (३) कुसुमैरर्चिता । (४) चामरकलापप्रमुखवैरिविजयप्रस्तावे । (५) दिक्पतिभिः ॥१६१॥

हील० प्रफु०। मल्लीपुष्परचितः केशपाशो भाति । उत्प्रेक्ष्यते । चामरादिजये कृते सति दिक्पालैः पुष्पैः पूजितः ॥१६६॥

हीसुं० [1]सन्दर्भितान्तर्मुचकुन्दमल्लीकचच्छटायाः कपटादमुष्याः ।
[2]वक्त्रेन्दुना [3]मैत्र्यविधित्सयेव [4]ताराङ्किते[5]यं कुहुरा[6]जगाम ॥१६२॥[3]

(१) ग्रथिता अन्तर्मध्ये कुन्दमल्लिका अर्थात्तत्कुसुमानि यस्यां तादृश्यां केशश्रेणीमिषात् । (२) देवीवदनचन्द्रेण सार्द्धम् । (३) सखितायाः कर्त्तुमिच्छया । (४) ग्रहनक्षत्रतारकल(क)लिता । (५) अमावासीव(स्या) । (६) समेता ॥१६२॥

हील० मुचकुन्दमल्लीकुसुमकलितकेशपाशमिषात्कुहुः । उत्प्रेक्ष्यते । मुखेन्दुना सह मैत्र्यं कर्त्तुमागता ॥ १६७॥

हीसुं० [1]वेणीकृपाणा [2]भुजकर्णपाशा नासा[3]निषङ्गा [4]नयनाशुगा च ।
भ्रूकार्मुका [5]चारुनितम्बचक्रा [6]स्मरास्त्रशालेव सुरी च[4]काशे ॥१६३॥

(१) कबरीरूपखड्गा । (२) बाहू कर्णौ च पाशा यस्याम् । (३) तूणीरः । (४) नेत्रबाणा

---

1. विश्वमिदं हीमु० । 2. इति सीमन्तः हील० । 3. इति केशपाशे कुसुमरचना हील०। 4. ०कासे हीमु० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धनुः (५) विशिष्टं नितम्ब एव रथाङ्गं यस्याम् । (६) मदननृपस्यायुधगृहम् ॥१६३॥

हील० भुजौ कर्णौ पाशौ यस्यां तादृशी कामस्य शस्त्रशालेव सुरी शुशुभे ॥★१६८॥

हील०→ **विभूषणैः स्वर्णमणीप्रणीतैर्वसन्तलक्ष्मीरिव नैकपुष्पैः ।**
विदिद्युते सा मलयानिलैरिवामोदैर्दिशः सौरभयन्त्यहर्निशम् ॥१६९॥←

काञ्चनरत्नघटिताभरणैः सा भाति । यथा वसन्तो विविधपुष्पैः शोभते । किंकुर्वन्ती(ती)?। स्वाभाविक-कायसुरभिताभिर्दिशः सौरभयन्ती । यथा दाक्षिणात्यवायुभिर्दिशः सुगन्धीकरोति ॥१६९॥

हील०→ **दिव्यैर्दुकूलाभरणैर्विभूषिता सम्पूरयन्ती जगतामपीहितम् ।**
आकृष्य भाग्येन विभोर्मरुल्लता नीता पुरस्तादिव देवता बभौ ॥१७०॥←

देवता बभौ । उत्प्रेक्ष्यते । सूरीन्द्रभाग्येनाकृष्य आनीता कल्पवल्ली ॥१७०॥

हीसुं० **[१]निखिलदिविषदो(द्यो)षालेखाकुमुद्वनकौमुदी,**
[२]श्रिततनुलता [३]तद्भाग्यश्रीरिवा[४]मरसुन्दरी ।
[५]नखरशिखरादारभ्येति क्रमा[६]च्चिकुरावधि,
[७]प्रथितसुषमा[मा]श्लिष्यन्ती पुरः शुशुभे प्रभोः ॥१६४॥

इति पं. देवविमलगणिविरचिते हीरसौभाग्य(सुन्दर)नाम्नि महाकाव्ये शासनदेवता समागमन-तत्सर्वाङ्गवर्णनो नामाष्टमसर्गः ॥ ग्रन्थाग्रं ॥२२५॥

(१) समस्तसुरवनितापङ्क्तिकैरवकाननेन आह्लादचन्द्रचन्द्रिका। (२) अङ्गीकृता शरीरयष्टिर्यया । (३) तस्य सूरीन्द्रस्य भाग्यलक्ष्मीरिव । (४) शासनदेवता । (५) चरणनखाग्रात् । (६) केशपाशं यावत् । (७) त्रिजगद्विख्यातां सातिशायिनीं शोभामाश्रयन्ती ॥१६४॥

इत्यष्टमः सर्गः ॥ ग्रन्थाग्रं ॥३२५॥

हील० सकलस्वर्गाङ्गनानां लेखा श्रेणी सैव पङ्कजवनं तत्र चन्द्रज्योत्स्ना सदृशी पुनः सूरीशभाग्यलक्ष्मी-[रिव चरणनखा]दारभ्य केशपाशान्तं यावत्सातिशयशोभां पुष्यन्ती सा शासनामरसुन्दरी सूरिपुरः शुशुभे इति ॥१७१॥

हील०→ **यं प्रासूत शिवाह्वासाधुमघवा सौभाग्यदेवी पुनः**
पुत्रं कोविद सिंहसी(सिं)हविमलान्तेवासिनामग्रिमम् ।
तद्ब्राह्मीक्रमसेविदेवविमलव्यावर्णिते हीरयुक्-
सौभाग्याभिधहीरसूरिचरिते सर्गोऽजनिष्टाष्टमः ॥१७२॥←

इति श्रीपं.सी(सिं)हविमलगणिशिष्यपं.देवविमलगणिविरचिते हीरसौभाग्यनाम्नि महाकाव्ये ध्यान-शास: देवतागम-[देवी: ?]सर्वाङ्गवर्णनो **नामाष्टमः सर्गः** ॥

→← एतदन्तर्गतः पाठो हीसुंप्रतौ नास्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट-१

(भूमिका)

(पण्डित श्री देवविमलगणिना पोताना स्वहस्ते खरडारूपे लखायेली 'हीरसुन्दर'- महाकाव्यनी प्रति उकेलीने अत्रे रजू करी छे. प्रति कुल छ पत्रनी छे. बनता प्रयत्ने सम्पूर्ण सर्ग-पाठान्तरो साथे उकेलवा प्रयत्न कर्यो छे. मूळ श्लोको व्यवस्थित अने सुघड होई उकेली शकाया छे. ते श्लोकोना ज पाठान्तरो तरीके हांसियामां चारे बाजु लखाण छे. प्रतिना पत्रनी जमणी बाजुना हांसियाना अक्षरो कपायेला होवाथी तेनी नकल थई शकी नथी. ते सिवाय पण ज्यां सम्पूर्ण स्पष्टता थई नथी त्यां जग्या खाली राखीने अथवा प्रश्नचिह्न मूकीने जेवुं ऊकल्युं तेवुं मूक्युं छे. अमारी पासे प्रतिनी झेरोक्षमात्र छे. पण मूळ प्रति तपासतां आथी पण वधु सारुं परिणाम नीपजे तेवी शक्यता छे.

पाठान्तरोमां कर्त्ताए नंबर आप्या छे. पण ते मूळ श्लोकोनी साथे बंधबेसता आवता नथी. घणा बधा श्लोको, कोनां पाठान्तर छे ? ते निश्चित थई शक्युं नथी. कदाच एकज वात ने सविस्तर कहेवा माटे श्लोको बनाव्या होय एवुं समजाय छे.

प्रतिना पत्र ३/२ सुधी पाठान्तरोमां ६४थी आगळ सुधी अंको आप्या छे. वच्चे क्यांक-क्यांक घणा श्लोकोमां १-२, एवा पण अंको आप्या छे. पछी पत्र ३/२ थी आगळ १ थी ३६ अने १ थी २२ एम सळंग श्लोकांक आप्या छे. ए श्लोकोमां पण घणां मूळ श्लोकोनां पाठान्तर तरीके मेळवी शकाया छे. शेष तो अर्थ विस्तार होय एम ज समजाय छे.

मूळ श्लोकोमां शब्दो उपर पण क्यांक-क्यांक कर्त्ताए टिप्पण करी छे. ते, ए ज पत्रमां टिप्पणरूपे मूकी छे.

प्रथम सर्ग पूर्ण थया बाद १८ पङ्क्ति मां १ थी २३ श्लोको छे. तेनो छंद बदलाय छे तेथी अने आ पुस्तकमां मुद्रित हीरसुन्दरना द्वितीयसर्गना छंद अने एना श्लोकोमां समानता छे तेथी घणे भागे ते बीजा सर्गनो अंश होवानुं समजी शकाय छे.

हीरसौभाग्य-मुद्रित, हीरसुन्दर, हीरसौभाग्य उपरनी लघु टीका अने खरडारूप आ प्रत-आ चारनी समानता तथा तरतमतानी एक तालिका बीजा विभागमां मूकवानो अत्यारे ख्याल छे.)

ईडरसत्कहीरसुन्दरकाव्यप्रतिगतवाचना

श्रेयांसि पुष्णातु स पार्श्वदेवो विश्वत्रयीकल्पितकल्पशाखी ।
पिण्डीभवद्यस्य विभासते स्म यशःप्रतापद्वयमिन्दुभानू ॥१॥

[१]उदीतपीयूषमयूखलेखे-वाजीह्वदद्या कविदृक्चकोरान् ।
तमस्तिरस्कारकरीं सुरीं तां नमस्कृतेर्गोचरयामि वाचम् ॥२॥

यद्दृष्टिपातादपि मन्दमौलि-र्विशेषवित्शेखरतामवाप्य ।
गुरुं सुराणामधरीकरोति [२]मयि प्रसन्ना गुरवो भवन्तु ॥३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[४]क्व वृत्तमेतन्मुनिमेदिनीन्दोः क्व शेमुखी(षी) वा तनुगोचरा मे ।
[५]मोहादिवाहं निखिलाभ्रवीथीं प्रमातुमीहेऽङ्गुलिमण्डलेन ॥४॥

योऽमन्दगन्धैरिव गन्धसारो दिशो यशोभिः सुरभीकरोति ।
तस्यैष काव्यं प्रथयामि नाथी-[५]देवीतनूजन्मयतिक्षितीन्दोः ॥५॥

[६]क्रीडन्मरुन्नागरनागयुग्मै-रिव त्रिलोकी सुषमां दधानः ।
इलातलालङ्कृतिरस्ति जम्बू-द्वीपो महीमण्डलमध्यवर्त्ती ॥६॥

[७]यं स्तो(स्तौ)ति रङ्गद्गजवाहिनीकं कुमुद्वतीकान्तसितातपत्रम् ।
गभीररावैरिह सार्वभौमं वैतालिकालीव पयोधिवेला ॥७॥

[८]द्वीपश्रियाः श्वेतमरीचिचण्ड-रोचिर्द्वयीमण्डलकुण्डलायाः ।
स्म द्योतते तारकताहार-स्तनान्तरे रत्नमिवामराद्रिः ॥८॥

[९]अन्तः प्रतिच्छायिततारमुक्ता-मणीमरीचिस्फुरदिन्द्रचापा ।
[१०]काञ्चीपदे द्वीपमहीन्दिरायाः सौवर्णकाञ्चीव चकास्ति सालः ॥९॥

[११]पुन्नागनारंगरसालसाल-निष्पातिपौष्पप्रसरत्प्रवाहः ।
द्वीपेन्दिराया इव रत्नसानुः खेलायितुं पद्मभुवा व्यधायि ॥१०॥

ज्योतींषि यस्मिन्सुरराजशैलं प्रदक्षिणप्रक्रमणं नयन्ति ।
सुवृत्तकल्याणमयः क्षमाभृ-त्सुस्थो महात्मायमितीव बुद्धेः ॥११॥

[१२]प्रदक्षिणीभूतवतां ग्रहाणां वृन्दानि वृन्दारकसानुमन्तम् ।
व्याजेन जाने प्रसरत्कराणा-मभ्यर्थयन्ते तपनीयजातम् ॥१२॥

जागर्ति तस्मिन्भरताभिधानं क्षेत्रक्षितिश्रीतिलकायमानम् ।
उच्चित्य सारं विधिनेव जम्बू-द्वीपस्य निक्षिप्तमिहैकदेशे ॥१३॥

[१३]वैताढ्यशैलेन विभक्तमन्त-र्विद्योतते भारतभूमिपीठम् ।
सीमन्तदण्डेन यथा सुकेशी-कैश्यं यमीरङ्गितरङ्गदेश्यम् ॥१४॥

वैताढ्यभूमीध्रविभक्तभाग-द्वयस्य दम्भादिव भारतस्य ।
[१४]द्वीपावनीपालमुपेत्य लक्ष्म्या स्वर्नागलोकौ विजितौ भजेते ॥१५॥

क्रीडारसादुत्तरलीभवन्त्या यद्भारताम्भोनिधिनन्दनायाः ।
[१५]स्त्रस्तं शिरस्तः सितमुत्तरीय-मिवास्ति विस्तारिनभःश्रवन्ती ॥१६॥

तस्मिन् श्रिया [1]स्वर्गसमृद्धिगर्वं निर्वासयन्गूर्जरनीवृदास्ते ।
रन्तुं रमायाः पुरुषोत्तमेन लीलालयोऽम्भोजभुवेव सृष्टः ॥१७॥

[१६]स्फुरन्मणीकर्मविनिर्मितान्त-र्निकेतना यत्र बभुर्नगर्यः ।
अनै(ने)करूपैरमरावती य-मुपेयुषी कौतुकिनीव भूमौ ॥१८॥

[१७]यत्राबभुर्भूललनाललाट-ललामलीलायितकेलिशैलाः ।
इवेयिवान्देशदिदृक्षुरिन्द्र-शैलः स्वमूर्त्तीर्बहुधा विधाय ॥१९॥

1. स्वःसदनस्य इति टि०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१८]अशेषदेशेषु विशेषितश्री-र्यो मञ्झिमानं वहते स्म देशः ।
ज्योतिः समुद्यत्परिवेषरेखं मुक्ताकलापेष्विव मध्यरत्नम् ॥२०॥

यत्राभितश्चन्दनपत्रभङ्गि-समुल्लसद्गन्धफलीविलासि ।
शैलद्वयं शेखरचुम्बिजम्बु-क्षितिस्तनद्वन्द्वमिव व्यराजन् ॥२१॥

[१९]यत्रोन्मदिष्णुद्विपदानवारि-सिक्तद्रुमः सानुमदन्ववायः ।
इयत्तया मातुमिवान्तरिक्ष-मुत्तुङ्गशृङ्गैरवगाहते स्म ॥२२॥

[२०]क्षताहितोर्व्वीधरवाहिनीकाः कासालिवालव्यजनोपवीज्याः ।
माकन्ददम्भादिह सानुमन्तो भूभृत्स्मयाच्छत्रमिवावहन्ते ॥२३॥

[२१]विद्युन्मणीमण्डलमण्डिताङ्का कादम्बिनीकैतवतः स्वमौलौ ।
पटीव भिन्ना जनिका विनीला यत्राद्रिलक्ष्म्या कलयाम्बभूवे ॥२४॥

निरावलम्बाम्बरवीङ्ख्यासौ श्रान्तः स्थितोऽम्भोद इवाद्रिशृङ्गम् ।
मरन्दलुभ्यन्मधुपौघघोषा न मेरवो मेचकयाम्बभूवुः ॥२५॥

यत्रोन्नमद्वारिदवर्मिताङ्गाः [२२]शिखाकरोपात्ततडित्कृपाणाः ।
स्वशात्रवं गोत्रभिदं निहन्तुं मन्ये व्यवस्यन्ति धराधरेन्द्राः ॥२६॥

[२३]श्रान्तातिवाहाद्विगतावलम्बे-ऽम्बरेम्बरद्वीपवती चिरेण ।
भूमीमिवाभ्येति झरज्झराम्भो-दम्भान्नभस्तो नगवर्त्मनेह ॥२७॥

मन्दारकुन्दागुरुगन्धसार-राजीविराजद्गिरिराजलक्ष्मीः ।
यस्मिन्निभेनेव झरज्झराणां मुक्ताकलापं कलयाञ्चकार ॥२८॥

यस्मिन्समाक्रम्य समुद्रकाञ्ची-चक्रं झरन्निर्ज्झरवारिधाराम् ।
कुन्देन्दुकादम्बकदम्बकान्तां भूमीभृतः कीर्त्तिमिवोद्वहन्ति ॥२९॥

प्रचण्डचण्डद्युतिदीप्तिताम्य-त्तनूभिरुर्व्वीधरधोरणीभिः ।
यस्मिन्झरन्निर्ज्झरवारिधारो-पधेरिव स्वं स्नपयाम्बभूवे ॥३०॥

स्फुरद्विभूतिर्द्विजराज[1]राजद्-दुर्गाङ्क[2]सुस्वाम्युदयत्प्रमोदः ।
अहीनभूषो वृषभप्रचारो हिरण्यरेता इव [3]दिद्युते यः ॥३१॥

स्वकन्दरद्वारिविहारिहारि-मृगेन्द्रमन्द्रध्वनितेन शैलाः ।
इतीव गर्वात्ककुदं गिरीणां हुङ्काररावं प्रणयन्ति यत्र ॥३२॥

न्यक्षक्षमाभृद्विजयोद्यतस्य सवाहिनीकस्य महीधरस्य ।
कुत्रापि झात्कारिझरप्रवाहै-र्भाङ्कारिभेरी निनदैरिवासे ॥३३॥

क्वचिद्बभे बन्धुरभिल्लपल्ली किरातधात्रीशकृशोदरीभिः ।
कौतुहलाद्भूतलमागताभिः खेलायितुं कुण्डलिनीभिरूहे ॥३४॥

---

1. ०शाली इति टि० । 2. ०तः केलिचलत्कुमारः [?] इति टि० । 3. यो बभासे इति टि० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भिल्लाधिपातां परमाणुमध्या अध्यासत क्वापि परां विभूषाम् ।
गारुन्मतोदात्तमरीचिरुच्याः सङ्केतगेहा इव मीनकेतोः ॥३५॥

लक्ष्मीः क्वचित्पुञ्जितपामरीभिः शुभ्राम्बराभिर्बिभराम्बभूवे ।
ज्योत्स्नावदातीकृतकज्जलोर्व्वी-धरस्य शङ्के शिखरावलीभिः ॥३६॥

क्वचिच्चकासे शबराङ्गनाभि-र्मुक्तासरश्रेणिपरिस्कृ(ष्कृ)ताभिः ।
नक्षत्रताराग्रहसङ्ग्रहाभिः कुहूभिरूहेऽङ्गपरिग्रहाभिः ॥३७॥

कुत्रापि कर्णीकृतदन्तपत्रा बभुः शबर्यः श्रितमञ्जुगुञ्जाः ।
मिलद्बलाकाजलबालिकाङ्का इवोन्नमन्मेदुरमेघमालाः ॥३८॥ इति

[२४]नीलोत्पलश्यामलितान्तरालै-र्यस्मिन्विरेजे सरसीसमूहैः ।
बिभ्यद्भिरेतैरिव सैंहिकेयात् भूमौ दशश्वेतहयैरुपेतम् ॥३९॥

[२५]शशाङ्कदेश्यैः स्मयमानकोशैः सहस्रपत्रैः शुशुभे सरस्सु ।
नन्दीसरःश्रीजयिनामिवैतैः [२६]सरो नृपाणां विशदातपत्रैः ॥४०॥

[२७]मरन्दलुभ्यन्मधुपानुषङ्गै - र्हैमारविन्दैः कमला ललम्बे ।
महेन्द्रनीलाङ्कितभूषणानां गणैरिवामुष्य तडागलक्ष्म्याः ।४१॥

[२८]उत्तालतालं करतालिकाभि-र्गीति र्जगे क्वापि कुटुम्बिनीभिः ।
श्रीनन्दनक्षोणिपुरन्दरस्य जगज्जयोपार्ज्जित कीर्त्तिरूहे ॥४२॥

[२९]क्वचिच्चुकूजे कलमानदद्भिः फलादनैः [1]कर्णसुधायमानम् ।
बालैः प्रभिन्नाञ्जनिकाविनील - केदारलक्ष्म्या इव केलिलोलैः ॥४३॥

[३०]क्वचिद्विनीला विललास यस्मिन् - केदारभूर्भूधरयुग्मसीम्नि ।
उत्तुङ्गपीनस्तनसन्निधाने महीन्दिराया इव रोमराजी ॥४४॥

[३१]उन्मादिकादम्बकदम्बकेन कैदारिकेन स्फुयाम्बभूवे ।
अन्तर्मिलन्मौक्तिकमालिनेव नीलोत्तरीयेन महीरमायाः ॥४५॥

[३२]गोपालबालाभिरखेलि लीलाहल्लीसखं यत्र सुखं सखीभिः ।
गीर्ति सृजन्तीभिरनन्यजन्म-महीहिमांशोरिव नर्तकीभिः ॥४६॥

[३३]कुत्रापिदम्यैनुगम्यमाना गोधुग्गणैर्द्रोणदुघा निकुञ्जम् ।
यस्मिन्ननीयन्त वनं सुराणां मरुत्कुमारैरिव कामगावः ॥४७॥

[३४]कुत्रापि दम्यैरनुगम्यमाना मरुत्कुमारैरिव गोपबालैः ।
गवां गणाः कामदुघोपमेयाः यस्मिन्ननीयन्त वनप्रदेशम् ॥४७॥ पाठान्तरम् ॥

[३५]सुधासुधासिन्धुसुधांशुलक्ष्मी-मुषां मिषाद्यत्सुरभीभराणाम् ।
इवाल्पशेषैः सुकृतैः सुराणां स्वःसौरभेयीभिरिहावतीर्ण्णम् ॥४८॥

1. श्रोत्र० इति टि० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[36]यस्मिन्नृणां क्रीडितुमागतानां हंसस्वनैः स्वागतवादिनीभिः ।
आदाय पद्मानि तरङ्गहस्तैः सरिद्भिरर्थः किमु कल्प्यते स्म ॥४९॥
[37]कुरङ्गनाभीकृतपत्रभङ्गै-र्निस्तन्द्रसान्द्रद्विजचन्द्रिकाङ्कैः ।
क्रीडन्महेलावदनारविन्दैर्जज्ञे श्रवन्ती शतचन्द्रितेव ॥५०॥
खेलायितुं यत्र विलासभाजा-माजग्मुषां चन्द्रमुखीसखीनाम् ।
चक्राङ्गचक्रध्वनितेन जाने स्म शैवलिन्यः सममाह्वयन्ति ॥५१॥
[38]निभाल्य फुल्लद्दलपुण्डरीकं मध्ये प्रवाहं शशभृद्भ्रमेण ।
ज्योत्स्नाप्रियैर्यत्र विमुग्धचित्तै-रभ्राम्यताभ्यर्ण इवामृतार्थम् ॥५२॥
[39]श्रेणीभवन्ती कलहंसमाला लीलायते यत्र सरित्प्रवाहे ।
निर्द्धूतमुक्ताफलमालिकेयं श्रिया श्रवन्त्या इव पर्यधायि ॥५३॥
[40]उज्जृम्भिजाम्बूनदपद्मनिर्य-न्मरन्दनिःस्यन्दपिशङ्गिताङ्गम् ।
पयोधरद्वन्द्वमिव श्रवन्ती श्रिया रथाङ्गद्वयमाबभासे ॥५४॥
स्ववल्लभं वारिनिधिं व्रजन्त्याः कूलङ्कषायाः कलहंसशब्दैः ।
रणज्झणन्नूपुरझाङ्कृतीनां ध्वानैरिवाभूयत यत्र देशे ॥५५॥
[41]अशोभि यस्मिन्स्मितहेमपुष्पै-र्मधुव्रतव्रातनिपीतपौष्पैः ।
गाङ्गेयगेहैरिव रन्तुमेतैर्वसन्तकान्तेन निकुञ्जलक्ष्म्याः ॥५६॥
[42]दन्ध्वन्यमानद्विजराजिराव-तूर्यां स्फुरत्कुड्मलकोटिहेतिम् ।
यस्मिन्जगज्जेतुमनन्यजन्मा ससज्ज सेनामिव चूतपङ्क्तिम् ॥५७॥
[43]सर्वर्त्तुभिर्यत्र पुरोपकण्ठ-क्रीडावनान्तर्वसतिर्वितेने ।
यद्भाविनं हीरकुमारराजं सम्भूय सुश्रूषयितुं किमेतैः ॥५८॥
प्रेङ्खोलितैर्यत्र जलेन स्वर्गैः सुधांशुदेशीयविकाशिकासैः ।
श्रिया निकुञ्जस्य वसन्तकान्तः प्रकीर्णकौघैरुपवीज्यते स्म ॥५९॥
केलीवने यत्र पिकद्विरेफध्वानोपधेः पुष्पधनुर्वसन्तौ ।
विनिर्मिमाते स्म मिथः प्रवृत्तिं मृत्युञ्जयं जेतुमिव प्रतीपम् ॥६०॥
[44]भृङ्गेक्षणाश्चन्दनपत्रभङ्गा-बिम्बाधराः कोकिलबालरावाः ।
मत्तेभयाना इव गन्धवाहै-र्यस्मिन्नसेव्यन्त निकुञ्जलक्ष्म्यः ॥६१॥
[45]वसन्तभर्त्रा सह संसृजन्त्या वनश्रिया यत्र मुदं वहन्त्याः ।
कुन्दद्रुमाणां कलिकाकलापै-र्दन्तैरिवैतैः प्रकटीबभूवे ॥६२॥
[46]यस्मिन्विभान्ति स्म विलासदोलाः स्मितावनीजन्मशिखाप्रणद्धाः ।
समं रतिप्रीतिनितम्बिनीभ्यां ससज्जिरे रन्तुमिव स्मरेण ॥६३॥
[47]अगायि यस्मिन्मधुरं निकुञ्जे प्रसूनलुभ्यन्मधुपावलीभिः ।
वसन्तकान्तप्रथमानुषङ्गे वनश्रिया मङ्गलगर्भगीतिः ॥६४॥
[48]पुष्पायु[धो]र्व्वीतलशीतलांशोः सम्प्रस्थितस्येव जगद्विजेतुम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अदुन्दुभीयन्त पिकाङ्गनानां यस्मिन्स्वनाः पञ्चमगीतिगर्भाः ॥६५॥
पदे पदे यत्र रसालमाला निभाल्य कूजत्कलकण्ठबालाः ।
स्मरावनीन्दुस्तृणवत्त्रिलोकी-मजीगणन्निस्तुलशस्त्रलाभात् ॥६६॥ इति ।
[४९]प्रह्लादनाह्वा नगरी चकास्ति हिरण्मया तत्र हरेः पुरीव ।
श्रीगूर्जरक्षोणिपुरन्दरस्य माणिक्यगर्भेव कुनाभिकुम्भी ॥६७॥
भर्त्ता मरुत्वान्मम कौशिकश्च गोत्रस्य हन्तेति जुगुप्समाना ।
मिषादमुष्याः परिहृत्य नाकं पुरी किमागादिह पौरुहूती ॥६८॥
[५०]यस्यां मणीकर्मविनिर्मिताना-मभ्रंलिहानां गृहधारणीनाम् ।
मध्यंदिने शृङ्गगणाङ्गणेषु मार्त्तण्डबिम्बं कलशायते स्म ॥६९॥
[५१]छायापथोऽभ्रंलिहमन्दिराणां दण्डायते [illegible] शिखान्तरेषु ।
ध्वजायते सिद्धधुनी ध्वनन्त्यो-ऽप्यकिङ्किणीयन्त तदीयहंस्यः ॥७०॥
[५२]अखेलि खे यद्गृहशृङ्गवात-वेल्लत्पताकापटपल्लवौघैः ।
यद्दर्शिभिर्विष्णुपदीप्रवाहैः सहस्त्रकायैः कुतुकादिवासे ॥७१॥
यद्वर्णनाकर्णनतद्दिदृक्षा - रत्नाकुलीभूतहृदार्णवेन ।
अस्थायि यस्यां परिखामिषेण, जाने लघूभूतवता समेत्य ॥७२॥
[५३]रोमाञ्चिता वीचिचयेन मीनैः, स्मितेक्षणा दर्दुररावचाटुः ।
विलासिभिर्वारविलासिनीव, प्रभञ्जनैर्यत्परिखा न्यषेवि ॥७३॥
[५४]चिराशनायाकुलितं कुरङ्गं, सुधात्त्वचा चारयितुं नभस्तः ।
उपान्तसंरूढविनीलनीले, बिम्बच्छलाद्यत्सलिलेऽवतेरे ॥७४॥
[५५]उदस्तहस्ते पवनावधूत-वीचिच्छलाद्(त्) खातिकयेव यस्याः ।
एतत्पुरस्ते कियती विभूति-र्वस्वोकसारेति विगीयते स्म ॥७५॥
[५६]मातङ्गिनी पुष्पकरम्बिताङ्गी, कृतानुषङ्गा मधुपैरितीव ।
विगानधूत्यै कुरुते वनश्री-र्बिम्बेन दी(दि)व्यं परिखाप्रवाहे ॥
[५७]आरामलक्ष्मीरभिसारिकेव, सालेन यूना सह संसिसृक्षुः ।
बिम्बोपधेः शासनहारिकां स्वां, चिकीर्षुरागात्परिखामिवैषा ॥७७॥
[५८]यद्वप्रनानामणिराजिनिर्य-ज्ज्योतिःप्ररोहैर्दिवि संचरद्भिः ।
प्रपञ्च्यते स्म प्रसरत्पयोदं, विनाऽपि सङ्क्रन्दनचापचक्रम् ॥७८॥
वहन् हरिं यद्वरणः स लक्ष्मीं, कपाटपक्षोऽथ सुवर्णकायः ।
विगाहमानो गगनं कथं न, लभेत तार्क्ष्येन(ण) सदृक्षभावम् ॥७९॥
प्रियं ब्रुवाणा जनतारवेण, सारङ्गनाभीसुरभीभवन्तम् ।
गजेन्द्रयानां वरणो युवेव, पुरीमहेलां परिरभ्य तस्थौ ॥८०॥
जगत्त्रयीसंभवशस्तवस्तु-विस्तारसम्पूरितमध्यदेशैः ।
यत्रापणैः कुत्रितयापणानां श्रेणी सगोत्रैरिव भूयते स्म ॥८१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[५९]बाह्लीककालागुरुगन्धसार-कर्पूरपारीमृगनाभी(भि)गन्धैः ।
आशा अवास्यन्त यदीयहट्टै-र्यशःप्रसारैरिव सज्जनानाम् ॥८२॥
गभीररावैर्व्यवहारभाजां, घनोपलाङ्कैः स्फटिकावलीभिः ।
अन्तर्निबद्धारुणरत्नविद्यु-द्विलम्बिमुक्तालतिकाबलाकैः ॥८३॥
इतस्ततो निष्पतबिन्दुकान्त-कान्ति प्रतानाङ्कुरवारिधारैः ।
महेन्द्रनीलोपलबद्धहट्टैः, पयोदवृन्दैरिव यत्र जज्ञे ॥८४॥ युग्मम् ॥
स्वर्लोकभूलोकभुजङ्गलोक-पुरीः पराभिभूय(पराभूय) यया विभूत्या ।
मौलौ जयाङ्का इव तुङ्गगेहे, शृङ्गप्रणद्धां कुटका ध्रियन्ते ॥८५॥
परस्परेरेण(परेण) प्रतिबिं(बिम्बि)ताभि-र्यस्यां मणीमन्दिरमण्डलीभिः ।
रहस्यवृतिः स्थितभित्तिगर्भ्भ-जनस्वनेनेव वितन्यते स्म ॥८६॥
यदालयैर्हेलितहेलिमालै-रभ्रंलिहैनि(र्नि)द्दलिताङ्ककारैः ।
मन्ये मणीलोचनमालिकाभि-र्विजेतुमालोक्यत नाकलोकः ॥८७॥
श्रिया जयन्त्या जगदङ्ककारान्, यया स्म याचे शवशीभवन्त्या ।
स्वसौधशुद्धध्वजधोरणीभिः, प्रहस्यते पूरिव पौरुहूती ॥८८॥
[६०]कुत्राऽपि चन्द्रोपलचन्द्रब[1]द्ध - सौधोपधेः केलिशुकक्कणेन ।
सुरद्विषं हन्तुमिवद्विषन्त-मालोच्यते [2]चन्द्रनभोमणीभ्याम् ॥८९॥
[६१]स्वशात्रवाद्गोत्रभिदो भयार्तै-र्हिमाद्रिहेमाद्रिमुखैर्गिरीन्द्रैः ।
लघूभवद्भिर्भवनच्छलेन, यस्मिन् शरण्ये शरणीबभूवे ॥९०॥
सादृश्यसंस्पर्धितयाऽवलेपात्, कपोतहुङ्कारगिरेव यस्याम् ।
परस्परं विग्रहमादधानैः, शोणाश्मगेहैररुणीबभूवे ॥९१॥
गाङ्गेयगारुत्मतपद्मराग-सन्दर्भगर्भ्भालयमालिकाभिः ।
भूकान्तकान्तेन सहानुषङ्गे, पुरीश्रिया क्लृप्त इवाङ्गरागः ॥९२॥
卐 विलासवापीजलकेलिलोल-विलासिनीनां पटलच्छलेन ।
प्रादुर्बभूवुः पुरकौतुकानि, दृग्गोचरीकर्तुमिवाम्बुदेव्यः ॥९३॥
विद्योतिताऽशेषदिगन्तराभि-र्मणीमयीभिर्भवनावलीभिः ।
धिक्कारितध्वान्तमिवाङ्कदम्भा-दुवास राज्ञः शरणार्थमङ्के ॥९४॥
*नीलाश्मवेश्मप्रतिबिम्बमन्त-र्दधद्भिरेतत् तपनीयगेहैः ।
रामेण नीलं [3]वहता दुकूलं, श्रिया समालम्ब्यत तुल्यभावः ॥९५॥
वृन्दारकालीभिरलङ्कृताया, असूययेवामरराजपुर्याः ।
तृणीकृतश्रीतनयावनीप-रूपानसौ धारयति स्म मर्त्त्यान् ॥९६॥
प्रभापराभावुकवैभवायाः, यस्याः स्वपुर्याश्च परस्परेण ।

---

1. ०कुम्भनिकेतयोश्चन्दनभोमणीभ्याम् । इति टि० । 2. केलिशुकक्कणेन इति टि०। 3. दधता इति टि० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तीर्णगीर्वाणगणैर्जनानां, व्याजादिवाविःक्रि(ष्क्रि)यते स्म साम्यम् ॥९७॥
लघूकृतस्वर्ललनाविलासा, विलासिनीर्यत्र निभालयित्वा ।
विहाय गेहं स्वमिवादितेयै-रिहावतीर्णं व्यवहारिदम्भात् ॥९८॥
सर्वानुवादैरिव मीनकेतो-र्लीलालसैर्यत्र विलासिवृन्दैः ।
निर्भर्त्सितैर्भूमितलं भूजङ्गै-र्मदाक्षलक्ष्यैरिव विश्यते स्म ॥९९॥
विगानितानङ्गकुरङ्गनेत्रा-श्चकासिरे यत्र गजेन्द्रयानाः ।
अमोघशक्तीर्मकरध्वजोर्व्वी-पुरन्दरस्येव जगद्विजेतुम् ॥१००॥
त्यक्त्वा श्रुतीन् कञ्चुकिनो द्विजिह्वान्, प्राणप्रियान् धौवतकैतवेन ।
पुरी किमेतद्युवकामुकीभि-रध्यास्यते नागनितम्बनीभिः ॥१०१॥
मदालसा यत्सरसीरुहाक्ष्य, श्रीमन्मनोजन्म[illegible]नः ।
इवाग्रदूत्यः परिकल्पयन्त्य-स्तदेकतानानि मनांसि यूनाम् ॥१०२॥
पदे पदे यत्पुरुषोत्तमौघान्, वीक्ष्य श्रिया चन्द्रमुखीमिषेण ।
पतिव्रतौचित्यमिवोद्वहन्त्या, स्वयं बभूवेव कुमूर्त्तिमत्या ॥१०३॥
कुमारगौरीगणपर्शुपाणि-महेश्वरादीनिदमङ्कमासान् ।
इवावमन्यस्फटिकाचलेन, प्रापेऽनुनेतुं सितसाललक्षात् ॥१०४॥
[62]निरीक्ष्य यस्यां मणिवेश्मभित्तौ च्छायां विमुग्धेन युवद्वयेन ।
निखेलता पुष्पधनुर्मतेऽपि, भ्रान्त्येव यूनोः परयोर्न्यवर्त्ति ॥१०५॥
[63]विधूदये शृङ्गशशाङ्ककान्त-निष्पातिपाथःप्रसरत्प्रवाहैः ।
निर्यज्झराः सानुमतां समूहा, यस्यां व्यडम्ब्यन्त विलाससौधैः ॥१०६॥
संज्ञानदानादिव सौधलोल-द्ध्वजोपधेः पाणिपयोरुहेण ।
वियोगवत्या वसुधायुवत्या-म्भोवाह आहूयत यत्र कान्तः ॥१०७॥
यत्कौतुकानीव दृशा निपीय, क्रीडागताभिस्त्रिदशाङ्गनाभिः ।
पाञ्चालिका नाकिभवान् निमेषे निःस्वेक्षणाभि[:] स्तिमिताभिरासे ॥१०८॥
आर्योपयामे पुनरङ्गभाजा, कौतूहलेनेव मनोभवेन ।
रत्या स्वमूर्त्तीर्बहुधा विधाय, रेमे युवद्वन्द्वनिभेन यस्याम् ॥१०९॥
नभेऽतिवाहाद्विगतावलम्ब-श्रमाकुलीभूततयानयेव ।
यत्तुङ्गगेहोपरिवज्रदण्ड-ध्वजोपधेः स्वःसरिता ललम्बे ॥११०॥
[64]दिवोबलेर्वेश्मनि यातविष्णोः, पदादिव भ्रष्टसुरेन्द्रसिन्धोः ।
ज्यौत्स्नीषु यच्चान्द्रगृहच्युताम्भो-निभादवापे पृथिवीप्रवाहैः ॥१११॥
कुत्रापि सन्दृब्धमहेन्द्रनील-निकेतनानामिह कैतवेन ।
महीमहेलामिव विप्रयुक्तां, चिरादवापे मिलितुं घनेन ॥११२॥
[65]चिरात्स्वविश्लेषवतीं धरित्रीं, पयोमुचा स्थासयितुं नभस्तः ।
प्रस्थापिता यत्र मणीसुवर्ण-प्रासाददम्भाज्जलबालिकेव ॥११३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुत्रापि जागर्त्ति पुरीतडाको-दरे प्रतिच्छायितमुद्वहन्ती ।
यद्वैभवेनेव पराभिभूता, प्रदत्तरूपा नगरी सुराणाम् ॥११४॥
शोचिर्निशुम्भिततमस्ततिसान्द्रचन्द्र-सम्बद्धसौधनिवहा अवहन् विभूषाम् ।
भक्तिप्रसन्नहरलब्धवरक्षताङ्कां, शीतांशवः किमु महीमवतीर्णवन्तः ॥१५॥
६६बालारुणज्योतिरखर्व्वगर्व्व-[1]सर्व्वङ्कषैः शोणमणीनिकेतैः ।
धरा तुरासाहमिवस्वकान्त-मुद्गीर्णरागप्रसरैर्नगर्याः ॥११५॥ इति॥
६७अस्ति स्म तस्यां महमूंदनामा, म्लेच्छावनीन्द्रः ककुदं नृपाणाम् ।
रामः पुनः शासितुमब्धिनेमी-मिवावतीर्णः कलिपीड्यमानाम् ॥११६॥
६८कृपाणगीर्व्वाणगिरीन्द्रमथ्य-मानाहवक्षीरनिधेर्भवन्त्या ।
जयश्रियाऽऽश्रीयत वारिराशि-शायीव भूचक्रशतक्रतुर्यः ॥११७॥
६९पराभिभूतैरिव कामवर्षं लीलायितैरुन्नतवारिवाहैः ।
उन्मत्तमातङ्गगणच्छलेना-नुकूल्य वे(वै)मध्यमलोकपालः ॥११८॥
७०इदं महौजः प्रसभाभिभूय-मानैरिवामुष्य विपक्षलक्षैः ।
क्षेत्रस्य वृत्तिर्वनितासहायैः स्वक्षत्रवृत्तीरपहाय भेजे ॥११९॥
७१भूमी[न्द्र]चन्द्रप्रबलप्रतापै-र्जेतुं प्रवृत्ते जगदङ्ककारान् ।
प्राकारगुप्तपरिवेषदम्भात्, बिभ्यन्निव स्वं विदधे विवश्वान्(स्वान्) ॥१२०॥
७२माद्यत्पदोदानपयःप्रवाह-जम्बालितोपान्तमहीमतङ्गाः ।
दिग्जैत्रयात्रासु जितैर्दिगीशै-र्दिग्वारणेन्द्रा उपदीकृताः किम् ॥१२१॥
७३आपूर्वापरवारिराशिपुलिनाऽलङ्कारहारोपम-
क्षोणीभृन्निकुरम्बचुम्बितपदद्वन्द्वारविन्दश्रिरम् ।
द्यां स्वर्णाचलसार्वभौम इव यो निःशेषविश्वम्भरां
शासत्शात्रवगोत्रजिद्विजयते श्रीगूर्ज्जरोर्व्वीपतिः ॥१२२॥

॥ इति सकलमहीवलयकमलालङ्कारहीर
श्रीसी(सिं)हविमलपादारविन्दद्वन्द्वभृङ्गायमान(ण)देवविमलविरचिते
हीरसुन्दरनाम्नि काव्ये प्रथमप्रारम्भे देशनगरादिवर्णनो नाम प्रथमः सर्गः ॥

टिप्पणी

१. शरत्सुधादीधितिमण्डलीव०॥२॥ पा० ।
२. भवन्तु ते मे गुरवः प्रसन्नाः ॥३॥
३. क्ववृत्तमे[त]द्व्रतिवासवस्य० ।
४. अस्मि प्रमाणीविषयीचिकीर्षु-र्मोहादहं व्योम निजाङ्गुलीभिः ॥४॥
५. देवीतनूजश्रमणाब्जबन्धोः ॥५॥
६. प्रियासहायैः सुमनःसुमुख्यै-र्लीलालसैः कुण्डलिभिर्जनैर्यः ।
त्रैलोक्यलक्ष्मीं वहतीव जम्बू-द्वीपः स भूमेरिव नाभिरस्ति ॥६॥

1. निर्व्वासि शोणाश्मगृहैर्बभासे इति टि० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. लीलायमान द्वि०[?] । यं स्तौति गम्भीर[र]वैरिवाब्धि-वेला महीन्द्रं मगधावलीव ॥७॥
८. यद्द्वीपलक्ष्म्याः सरसीजबन्धु-सुधारुचीमण्डलकुण्डलायाः ।
तारावलीमौक्तिकहाररत्न-मिवोरसि स्वःशिखरी बभासे ॥८॥
९. सङ्क्रान्तताराततिमौक्तिकाङ्का० ।
१०. काञ्चीपदे काचन मेखलेव, द्वीपश्रियोऽस्या जगती चकास्ति ॥९॥
११. पुन्नागनारङ्गलवङ्गपूग-रसालसालावलिसालमानः ।
सुवर्णशैलो विललास यस्या, द्वीपस्य लक्ष्म्या इव केलिशैलः ॥१०॥
१२. प्रदक्षिणप्रक्रमणप्रगल्भा, ग्रहा इवैते प्रसरत्करैः स्वैः ।
अभ्यर्थयन्तैर्विजना महेभ्य-मिवार्थजातं सुरसानुमन्तम् ॥११॥
१३. विभज्यमानेव विभाति तद्भाति तद्भारतभूतधात्री [?] ।
सीमन्तदण्डेन चलच्चकोर-विलोचना कुन्तलवल्ली(ल्ल)रीव ॥१४॥
१४. सुरासुराणां सदने समेत्य, द्वीपं भजेते विजिते स्वलक्ष्म्या ॥१५॥
१५. यदृच्छया यद्भरतस्य लक्ष्म्या, भूमौ नभःसिन्धुनिभादिवास्ते ॥१६॥
१६. सुस्वामिभाजो विबुधाभिरामा, सजिष्णवो यत्र बभुर्नगर्यः ।
धृता अनेका इव देवसद्म-संस्पदर्धया येन सुपर्वपुर्यः ॥१८॥
१७. यस्मिन्सुलोकोपमकौतुकानि लक्षा निरीक्षा क्षणलालसेव ।
सरस्वतीसिन्धुनिभादुपेत्य, स्वयं सरस्वत्यधितिष्ठति स्म ॥१९॥
१८. प्रभाप्रतिस्पर्द्धितपद्मबन्धु-श्चूडामणीवन्मणिभूषणेषु ।
आक्रान्तदिक्चक्र इवाखिलेषु वसुन्धराभर्त्तृषु चक्रवर्त्ती ॥२०॥
१९. शृङ्गे नभःसिन्धुकृतावगाहै-रियत्प्रमागोचरतां प्रणेतुम् ।
प्रगल्भमाना इव यद्गिरीन्द्रा, जगाहिरे निर्जरराजमार्गम् ॥२२॥
२०. सवाहिनीकाः सहकारहारिच्छत्राश्चलत्कासरोमगुच्छाः ।
अनिह्नुवाना धरणीधरत्व-मिवात्मनो यत्र बभुर्गिरीन्द्राः ॥१॥
२१. विद्युन्मणीमण्डनमण्डिताङ्गा, मिलद्बलाका सुसुमावनद्धा ।
गिरीन्द्रलक्ष्म्या कबरीव शृङ्गे, कादम्बिनी यत्र बिभर्त्ति शोभाम् ॥१॥
२२. तडिल्लतोपात्तनिशातशस्त्राः ॥२६॥
२३. गतावलम्बे पवमानमार्गे, श्रान्तातिवाहा त्रिदशश्रवन्ती ।
भूभागमभ्येति झरज्झराणां, दम्भाद्दिवो यन्नगवर्त्मनेव ।
क्वचिद्वपुःकञ्चुकिभिः प्रणीत-हस्तावलाम्बाः शबराम्बुजाक्ष्यः ।
नागाङ्गनानां न गृहेर्ष्ययेव, भुवा धृता नागमदाभिरामाः ॥
कुत्रापि कृष्णा जनिका विनीलाः, पल्लीषु खेलन्ति किरातबालाः ।
विन्ध्याञ्जनोर्वीधरयोरिवाधि-देव्यो धरायां कु[तु]काद् भ्रमन्त्यः ॥२॥
राज्ञी क्वचित्पुञ्जितपामरीणां, वासांसि शुभ्राणि बभौ वहन्ती ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुधारुचीचन्द्रिकयावदाता, शृङ्गावलीवाञ्जनभूधरस्य ॥१॥

२४. क्रीडत्तुरङ्गद्वीपपद्मनेत्रा, यस्मिन्सरस्यः श्रियमुद्वहन्ते ।
उच्चैःश्रवःस्वद्विरदाप्सरस्का, मन्ये वयस्यो हरिवारिराशेः ॥३९॥

२५. मुक्तायितप्रान्तविलग्नपाथः कणैर्बभे स्मेरसहस्त्रपत्रैः ॥

२६. पद्माकराणां ॥४०॥

२७. यस्मिन्विलुभ्यन्मधुपानुषङ्गै-र्हैमारविन्दैर्विकचैर्विलेसे ।
कासारलक्ष्म्या स्फुरदिन्द्रनील-मणीविमिश्राभरणैरिवैतैः ॥४१॥

२८. सृजन्ति गीतीरिह शालिगोप्यः, जगत्त्रयीनिर्जयनार्जिताभिः ।
र्जी[?] ....त्[?], कीर्त्तीरिव श्रीतनयावनीन्दोः ॥४२॥

२९. क्वचिच्चुकूजे० । केदारलक्ष्म्या इव बन्दिवृन्द-वृन्दारकैः संस्तवमुच्चरद्भिः ॥४३॥

३०. कैदारिकं क्वापि नदोपकण्ठे, शालिव्रजैर्मञ्जरितैश्चकासे ।
प्रिया इवाम्भोनिधिमेखलायाः, रोमावली नाभिसवेशदेशे ॥१॥

३१. कैदार्यमुज्जृम्भितशालिशालि, यस्मिन्नशोभिष्ट चरन्मरालैः ।
सन्दृब्धमन्तर्नवमुक्तिकाभिः क्षितिश्रिया नीलमिवान्तरीयम् ॥१॥

३२. आभीरपल्लीषु सुखं सखीभिः, सगीतहल्लीसखखेलिनीभिः ।
गोपालबालाभिरभासि यस्मिन्, स्मरावनीन्दाविव नर्त्तकीभिः ॥१॥

३३. कुत्रापि दम्यैरनुगम्यमानाः, कैलासकेलीशिखरायमाणाः ।
सुधाभुजो द्रोणदुघाश्चरन्ति, मूर्त्ता समाज्ञा इव [म]ण्डलस्य ॥१॥

३४. गोपालबालैर्दिविषत्कुमारै-रिवानुयाताः सुरभीसमूहाः ।
दिवोवशेषैः सुकृतैः सुराणा-मिवावनौ कामदुघाः समीयुः ॥१॥

३५. ब्रह्माण्डभाण्डोपरिभित्तिभाग-प्रोत्तानयानोद्भवदर्त्तिभाजः ।
स्वःसौरभेयीनिवहा इवोर्वी, चरिष्णावो यत्र विभान्ति गावः ॥१॥

३६. यूनो रिंसोपगतान्सकान्तान्, किं स्वागतं हंसरुतैः सृजन्त्यः ।
तरङ्गहस्तस्थितवारिजैर्वा, किमर्थमस्मिन्प्रणयन्ति नद्यः ॥५०॥

३७. कपोलपालीस्फुरदेणनाभी-पत्राङ्कितैश्च द्विजचन्द्रिकाङ्कैः ।
क्रीडन्मृगाक्षीवदनैः सहस्त्र-चन्द्रेव यस्मिन्नदिनी दिदीपे ॥५०॥

३८. विधोर्धिया यत्र सरित्प्रवाहे-र्लीनालिफुल्लद्दलपुण्डरीकम् ।
प्रेक्ष्याभितो मुग्धचकोरडिम्भा, भ्रमन्ति पीयूष पिपासयेव ॥५२॥

३९. मुक्तालताङ्केव निजोपकण्ठ-श्रेणीभवत्सारसमालिकाभिः ।
सि(शि)ञ्जानमञ्जीरवतीव रावैः, स्वकूलकूजत्कलहंसिकानाम् ॥५२॥

४०. भ्राम्यद्द्विरेफस्मितवारिजेन प्रफुल्ललोलन्नयनाननेव ।
रथाङ्गयुग्मेन गलन्निवाल-पयोधर[द्वन्द्वमि]वोद्वहन्ती ॥५३॥

४१. रन्तुं वसन्तेन समं प्रियेण, गाङ्गेयगेहैरिव कुञ्जलक्ष्म्याः ॥५६॥

४१. वसन्तकान्तेन निकुञ्जलक्ष्म्या, विलासहासा इव भान्ति कासाः ।
यद्वा पराभूतमरुद्वनाया-स्तस्या जयाङ्का इव रोमगुच्छाः ॥५७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४२. निश्वानरावं तुमुलैरलीनां शाखाशयालम्बित(सून)पुष्पशस्त्रा ।
स्मरस्य विश्वस्य जयाय यस्मि-न्ननीकिनी वाजनि शाखिलेखा: ॥५५॥

४३. यद्भाविनं हीरकुमारराजं स्वस्वप्रसूनादिनभोपदाभिः ।
प्रभूय शुश्रूषयितुं किमत्र सर्वर्त्तवः केलिवने वसन्ति ॥५४॥

४४. प्रसूननेत्रा कलकण्ठकण्ठी बिम्बाधरा मत्तगजेन्द्रयाना ।
भुजङ्गवेणी स्तबकस्तनी च भुक्ता वनश्रीरिह गन्धवाहैः ॥५३।

४५. स्वःकाननश्रीसखितां वहन्त्याः स्वविभ्रमैश्चैत्ररथं हसन्त्याः ।
आरामलक्ष्म्या मुचकुन्दवृन्द-दम्भादिवास्मिन्दशनाः स्फुरन्ति ॥६३॥

४६. स्मरावनीजन्मशिखावनद्धा यस्मिन्लसन्ति स्म विलासदोलाः ।
रन्तुं रतिप्रीतिनितम्बिनीभ्यां वितेनिरे चित्तभुवेव यूनाम् ॥६२॥

४७. लीलायमानाः सहकारशाखा-शिखान्तरे केलिशुकाः क्वणन्ति ।
न व्यानुषङ्गे मधुनेव भर्त्रा वनश्रिया मङ्गलगर्भगीतिः ॥६१॥

४८. यस्मिन्प्रवालप्रबलायुधानां संवर्मितानां स्मितताच्छलेन ।
महीरुहां स्वर्दु [मतुल्य ?]काना-मदुन्दु[भीयन्त] पिकाः क्व[णन्तः] ॥६४॥

४९. तत्रास्ति पौलस्त्यपुरायमाणं, प्रह्लादनं नाम पुरे प्रधानम् ।
निःशेषनृवृद्धितयोर्जितस्य, श्रीगूर्जरस्येव निधानकुम्भः ॥१॥

४९. हिरण्मयं सूरिकुलाभिरामं, विलासिरामं पुरुषोत्तमश्रि ।
श्रीनन्दनानन्दि समीक्ष्य ताक्ष्र्य-पुरं मुरारेरिव यच्चकास्ति ॥२॥
भुजङ्गमानां च सुधाशनानां, निवासयोः सारदलैर्गृहीतैः ।
व्यधायि यद्वारिजनन्दनेन, न चेत्किमाभ्यामतिरिच्यते तत् ॥३॥

५०. नानामणीकर्मविनिर्मिताना-मभ्रंलिहानामिह मन्दिराणाम् ।
महानिशायां शिखरान्तरेषु, शीतांशुबिम्बं कलशायते स्म ॥४॥

५१. दण्डायते च त्रिदशाध्वदण्डा, ध्वजायते सिद्धधुनीप्रवाहः ।
अकिङ्किणीयन्त पुनस्तदम्भो-विलासि हंस्यो मधुरं ध्वनन्त्यः ॥५॥ युग्मम् ॥

५२. अखेलि खे मारुतवेगवेल्ल-द्यद्वैजयन्ती पटपल्ल[वोघैः] ।
सह[स्त्र]कायैरिव कौतुकाद्य-द्दिदृक्षुभिर्विष्णुपदीप्रवाहैः ॥६॥

५३. रोमाञ्चिता वीचिचयैर्डुलीनां स्वनैः स चाटुः शफरैः स्मिताक्षी ।
व्यालोकि लोकैः परिखानिलेन, चलीकृता वारविलासिनीव ॥६॥

५४. अयं पयः पाययितुं किमस्या-मागान्मृगं चारयितुं च शष्पान् ।
बिम्बं विधोर्यत्परिखाजलान्त-र्व्यालोक्य लोकैरिति कल्प्यते स्म ॥७॥

५५. यद्(त्) खातिवात(तेन) लुलत्तरङ्ग-हस्तादुदस्य प्लव[न]स्वनेन ।
एतत्पुरस्ते कियती विभूति-र्वस्वोकसारामिति निन्दतीव ॥८॥

५६. मातङ्गिनी पुष्पवती च नित्यं, कृतानुषङ्गा मधुपैरितीह ।
निन्दाछिदे यत्परिखाम्भसीव, बिम्बेन दिव्यं कुरुते वनश्रीः ॥९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५७. आरामलक्ष्मीरिह पांशुलेव सालेन यूना सह संसिसृक्षुः ।
बिम्बोपधेः शासनहारिकां [स्वां], यद्(त्) खातिकां कर्त्तुमुपेयुषीव ॥१०॥
५८. यदीयवप्रेण मणीमयूखै-र्नीलीविनीले नभसि स्फुरद्भिः ।
अकाण्डमेवाम्बुधरो.....प्रपञ्च्यते.....चापचक्रम् ॥११॥
५९. यत्रापणेष्वेणमदभ्रमेण नाशा(सा)पुटे दत्तमपि द्विरेफः ।
लोकारवां गोचरमञ्जुगञ्जी- वेद स्म दण्डशताथया ध्मार्ण [?] ॥१७॥
यदद्(द्रि)कोट्यां हिमवालुकानां क्षोदेषु सिन्धोरिव वालुकासु ।
खेलन्ति मुग्धाः शिशवश्च काच-गोलैरिवानल्पतरङ्गनीलैः ॥१८॥
६१. शत्रोर्भिया गोत्रभिदो गिरीन्द्रै-र्हिमाद्रिहैमाद्रिमुखैः समेत्य ।
नानामणीहर्म्यनिभादिवास्य लघूभवद्भिः शरणं प्रपेदे ॥१९॥
६०. यच्चान्द्रचामीकरबद्धसौधो-पर्थेर्मिथो रात्रिनिशामणिभ्याम् ।
आलोच्यते हन्तुमिव द्विषन्तं सुरद्विषं केलिशुकक्वणेन ॥२०॥
[विरे]जिरे चान्द्रमवेक्ष्य बिम्ब-मम्बा विमुग्धा इह याचमानान् ।
लीलामरालेन विलुभ्य बाला-नाश्वासयन्ति स्म कथञ्चनापि ॥२१॥
वेश्मार्हगर्भाननचान्द्रकुम्भं, दृष्ट्वाऽत्र मुग्धाऽभ्रधुनीरथाङ्ग्यः ।
रुषेति विश्लेषयिताऽयमिन्दु-र्न शत्रुराघ्नन्ति किमङ्घ्रिघातैः ॥२२॥
अयं मदुत्सङ्गमृगं स्वकुक्षि-क्षिप्तं सुधामाकुरतामियाय[?] ।
समीक्ष्य यस्मिन्गृहशृङ्गसिंहं-मभ्रादभ्रे सभयो मृगाङ्कः[?] ॥२३॥
माणिक्यकुम्भं गृहतुङ्गशृङ्गे, दृष्ट्वा नभःशैवलिनी रथाङ्ग्यः ।
नित्योदयादित्यधियापि योगात्, पथां वहन्ते स्म कदापि नास्मिन् ॥२४॥
नित्योदितव्योमणीयमानै-र्यस्मिन्मणीमण्डलबद्धसौधैः ।
तिरस्कृतं सन्तमसं किमेतत्, राजाङ्कदम्भात्शरणं बभाज ॥२५॥
卐 प्रादुर्बभूवुः पुरकौतुकानि, दृग्गोचरीकर्त्तुमिवाम्बुदेव्यः ।
वापीषु केलीरसिका मृगाक्ष्यः समीक्ष्य लोकैरिति तर्क्यते यत् ॥२६॥
६२. दृष्ट्वा मणीवामगृहे विमुग्ध-युवद्वयेनात्र निजानुबिम्बम् ।
निखेलता पुष्पधनुर्मतेऽपि, न्यवर्त्ति यूनोः परयोर्धियेव ॥२७॥
६३. चन्द्रोदये मन्दिरचान्द्रशृङ्ग-निष्पातिपाथःप्रस[र]त्प्रवाहैः ।
निर्यज्झराः सानुमतां समूहा, यस्मिन्व्यडम्ब्यन्त विलाससौधैः ॥२८॥
स्ववेश्मवातूललुलत्पताका - करेण रावेण च किङ्किणीनाम् ।
स्पर्द्धोदया वोढुमिवात्मना यत्पुरीं सुरस्याह्वयतीव दृष्टम् ॥२९॥
★ अभ्यर्णसौवर्णगृहानुबिम्बं बिभ्रद्भिरत्राऽसितरत्नसौधैः ।
पीतं दुकूलं दधताऽच्युतेन संश्रीयते साम्यमिवात्मलक्ष्म्या ॥३०॥
निमेषनिःस्वैर्नयनैः सुरीभि-र्विभावयन्तीभिरदः समृद्धिम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सौधेषु दन्तादिव पुत्रिकाणां रक्षातिरेकैः स्तिमितीबभूवे ॥३१॥
६४. यातस्य विष्णोर्नरकं निहन्तुं भ्रष्टा तदंह्रेर्नभसा.......... ।
ज्यौत्स्नीषु यच्चान्द्रगृहच्युताम्भो-दम्भेव भूपीठमिवोपयाताम् ॥३२॥
६५. ज्योतिःपयःपूरतरङ्गितैतन्निवासनीलाश्मशिखामिषेण ।
एतत्पथेनार्कसुता स्ववप्तुः सम्प्रस्थितोच्चैर्मिलितोत्सुकेव ॥३३॥
[1]गाङ्गो(ङ्गे)यगारुन्मतपद्मराग-चन्द्राश्मसंदृब्धगृहच्छलेन ।
स्वभूपभर्त्रा सह सङ्गरङ्गे पुरश्रिया क्लृप्त इवानुरागः ॥३४॥
६६. बालारुणज्योतिरखर्वगर्व-सर्वङ्कषैः शोणमणीनिकेतैः ।
धरातुरा साहमि नु(?) स्वकान्तं पुरश्रियोद्गीर्ण इवानुरागः ॥३५॥
भक्तिप्रसन्नाद्गिरिशादवाप्तां, गलत्कलङ्कां बहुरूपविद्याम् ।
यच्चान्द्रसद्मच्छलतः सितांशुः किं कौतुकीव प्रथयाञ्चकार ॥३६॥
यत्पौरपुंसै रतिजानिगर्व-निर्वासिभिः श्रीभिरिवाभिभूतः ।
मन्दीभवन्भूभृदधित्यकाया-मावासमालम्बत नारकारिः ॥१॥
यन्नागरैर्भर्त्सितमच्छय(त्स्य)केतु-श्रीभिः पराभूतिमयाप्यमाना।
विहस्तचित्तेव ततिः सुराणां, स्वःसार्वभौमं शरणीचकार ॥२॥
पौरश्रियं प्रेक्ष्य तदेकतानी-भूतां स्वकान्तामवलोक्य यत्र ।
लक्ष्मच्छलेनाऽपररागशीका, शङ्के शशी श्याममुखीबभूव ॥३॥
यत्पौरलोकानवलोक्य मा स्ता-त्तल्लुब्धचेता गिरिनन्दनाऽसौ ।
स्वाङ्गं तदङ्गेन तदन्यसङ्ग-शङ्कीव शम्भुर्व्यतिसीव्यते स्म ॥४॥
हराक्षिवह्नौ ज्वलदात्मयोनेः सारं गृहीत्वेव सरोजजन्मा ।
यत्पौररागो रचयाञ्चकार, न चेत्कुतस्तत्र तदीयलक्ष्मीः ॥५॥
[2]विगानितानङ्गकुरङ्गनेत्रा-श्चकासिरे मत्तचकोरनेत्राः ।
अमूरमोघा इह शक्तयः किं जगद्विजेतुं मकरध्वजस्य ॥६॥
श्री सूनुभूभर्त्तुरिवाग्रदूत्यः स्वर्वर्णिनीनां किमुतानुवादाः ।
नागाङ्ग[ना]नां किमु वा वयस्यो-ऽलङ्कुर्वते यन्नगरं मृगाक्ष्यः ॥११॥
६७. तत्रास्ति बाहादर(भूमिभानु)पाठिसाहि-सूनुर्महीन्द्रो महमून्दनामा ।
वधूर्नवोढेव दिने दिने भूः, श्रियं दधौ यत्करपीडिताऽपि ॥१२॥
६७. प्रजाप्रशास्तारमितात्मतानं, नीतेर्निकेतं तमवेक्ष्य विज्ञैः ।
स्वयं पुनः शासितुमेष विश्वं, रामोऽवतीर्णः किमिति व्यतर्कि ॥१३॥
६८. निस्त्रिंशमन्थानधनव्यमान- महाहवक्षीरतरङ्गिणीशे ।
प्रसूतया यो बलिशासतोऽब्धि-शायीव वव्रे विजयस्य लक्ष्म्या ॥१४॥
६९. पराजितैरप्रतिमैः स्वदान-लीलायितैरुन्नमदम्बुवाहैः ।

1. अयं श्लोकः ९२तमश्लोकस्य पाठान्तरोऽस्ति । 2. अयं श्लोकः १००तमश्लोकस्य पाठान्तरोऽस्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मातङ्गतुङ्गाङ्गदधैरिवेत्या-ऽनुकूल्य [वै]मध्यममलोकपालः ॥१५॥

७०. हन्तुं व्यवस्यन्तमवेत्य भूपं, द्विषद्भयात्मानमदः प्रतीपैः ।
स्वक्षत्रवृत्तीरपहाय भेजे, क्षेत्रस्य वृत्तिः कृषिकैरिवात्र ॥१६॥

७१. भूपालमौलेः प्रबलप्रतापे, जेतुं प्रवृत्ते जगदङ्ककारान् ।
भयेन भानुः परिवेषवज्र-प्राकारगुप्तं कृतवानिव स्वम् ॥१७॥

७२. यत्प्रावृषेण्याम्बुदमञ्जुगर्जि-गजा व्यराजन्त सदानधाराः ।
दिग्जैत्रयात्रासु जितैर्दिगीशै-र्डुढौकिरे दिग्द्विरदा इवास्य ॥१८॥

७३ विकचविटपिवल्ली छन्नल्लीलागिरीन्द्रा, गलितनिलयमालाप्यात्मना राजधानी ।
यदरिधरणिपालैः वप्रकान्तारचारै-र्गिरिगहनमहा वाश्रीयते निर्विशेषम् ॥१९॥

७३. यस्य द्वेषिनिषूदनव्रतजुषस्त्रासाद् द्विषद्भूभुजां
सन्तानस्य कलिन्दभूधरगुहालीनस्य लोलदृशाम् ।
अश्रान्तां नतमेचकीकृतगलद्बाष्पाम्बुपूरैरिवा-
विर्भूता प्रस[र]द्भिरङ्करुहिणीप्राणेशितुर्नन्दना ॥२०॥

७३. यत्त्रासातिशयेन कान[न]चराः प्रत्यर्थिपृथ्वीभुजा
निद्रां येषु नितम्बिनीभुजलतां प्रेक्ष्यात्मकण्ठस्थिताम् ।
यत्पाशस्य धियेव मुग्धमनसो हाहारवव्याकुला-
स्तद्भ्रूवल्लिनिभालनाद्धनुरपि व्याशङ्क्य मूर्च्छामगुः ॥२१॥

७३. सुत्रामाम्बुधिधामदिग्गिरिकुचद्वन्द्वावनीश्रीधवः
क्ष्माभृद्भालविशेषकापिलनखज्योतिःपदाम्भोरुहः ।
क्षोणीपालशिरोवतंसितलसत्पादारविन्दद्वय-
द्योस्वर्णाचल सार्वभौम इव यो निःशेषविश्वम्भरां
शासत्शात्रवगोत्रभिद्विजयते श्रीगूर्जरोर्वीश्वरः ॥२२॥

[द्वितीयः सर्गः ?]

कुमुदस्मिता षट्पदपङ्क्तिकुन्तला, स्मिता(तो)त्पलाक्षी कजकुड्मलस्तना ।
प्रियेव केलीसमये सहंसका, तरङ्गहस्तैः सरिदालिलिङ्गत ॥१॥
सकाकतुण्डैणमदद्रवाङ्कितो-रसोपरिक्षालनतः कदापि नौ ।
सुतामिवार्कस्य विहारगेहिनीं विनिर्मिमाते जलकेलिशालिनौ ॥२॥
स्मितारविन्दोदयदिन्दुमण्डली-धियेन यूनो प्रमदोन्मिषन्मुखे ।
विमुग्धचित्ता स्म नयन्ति चुम्बन-क्रियां द्विरेफांश्च चकोरशावकाः ॥३॥
प्रफुल्लकिङ्केलिरसालमल्लिका-कदम्बजम्बूनिकुरम्बचुम्बिते ।
अलीव साकं प्रियया स निष्कुटं कदापि रेमे श्रितसूनशीलनः ॥४॥
कदापि लीला कलधौतभूधरे समं स चिक्रीड कुरङ्गनेत्रया ।
मृगाङ्कमौलिः स्फटिकावनीधरे, शतक्रतोर्नन्दनयेव भूभृताम् ॥५॥
....कदापि निद्रां परिरभ्य तस्थुषी ।
....॥६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निष्पादितं यत्तनुजन्मनः कृते गजेन्द्रयानस्य शतक्रतोरिव ।
प्रमथ्य दुग्धाम्बुधिमभ्रमूप्रियं परं पुनः कं स जितेव कर्षितम् ॥७॥
विजित्य लक्ष्म्याखिलदिग्गजानिवा-मितैर्जयाङ्कैश्च(व?)रैर्विराजितम् ।
किमस्तसन्ध्या परसौ(शौ)र्यभास्वतां, स्वमूर्ध्नि सिन्दूररुचिं च बिभ्रतम् ॥८॥
मदाम्बुभिः षड्रसभोजनैरिव स्वगण्डयोर्दाननिकेतयोरिव ।
मधुव्रतानामिव मार्गगामिनां, सृजन्तमद्वैत मुदं वदान्यवत् ॥९॥
जलं करं प्रणव (?) निर्गतं शरद्-विभावरीवल्लभबिम्बमध्यतः ।
महीतलेऽभ्यागतया कथञ्चना-वतिष्ठमानं किमु वा सुधारसम् ॥१०॥
सृजन्तमुच्चैः स्वकरं मदोदया, कुलाद्रिसान्द्रप्रतिनादमेदुरैः ।
ध्वनिप्रतिस्पर्द्धितयात्मगर्जितै - रुषावगायन्तमिवाम्बुदान्वयम् ॥११॥
कुतूह[ले]नैव महीविहारिणं, महीधरं कैर[व]बन्धुधारिणः ।
शरत्सुधांशोरिव पिण्डितं महः, किमेतयोर्भाग्यनभोमणेरहः ॥१२॥ आदि सप्तभिः कुलकम् ॥
अमोचितं स्वप्नमवेक्ष्य संलये विलोचनाम्भोरुहमुद्रणानया ।
पयोरुहिण्येव पुलोमशा सना-वनीधरे वारिजबान्धवोदयम् ॥१३॥
असौ प्रसुप्ता सुखनिद्रयाङ्गना, समीक्ष्य स्वप्नं तमवाप संमदम् ।
यथा परब्रह्म समीररुन्धनै-र्निबद्धवीरासनयोगिमण्डली ॥१४॥
गभीरताबन्धुरितोपकाननं स्मितप्रसूनव्रजराजितान्तरात् ।
स्वहंसतूली शयनोदरादसौ क्षणादुदस्तात्करिणीव सैकतात् ॥१५॥
मरालबालेव विलासगामिनी क्षितौ क्षिपन्ती [पद]पद्मयामलम् ।
नितम्बिनी मन्थरमन्थरं ततो ययौ समुद्दिश्य पतिं पतिव्रता ॥१६॥
क्षणादथोर्वीवलयोर्वसीमणी-विभूषणप्रोषितरोदसीतमाः ।
असौ पुरस्तात्प्रकटीबभूवुषी प्रियस्य मूर्त्तेव कुलाधिदेवता ॥१७॥
तया क्रमादिभ्यविभावरीवरो विनिद्रणागोचरतामवापितः ।
वचोविलासैररुणांशुभिर्यथा-रविन्दविन्दं दिवसाननश्रिया ॥१८॥
सुमध्वजोर्वीधरजैत्रशस्त्रया, रहस्यवत्स्वप्न उदात्त नेत्रया ।
विनिद्रतां लोचनयोर्वितन्वते, न्यवेदि तस्मै व्यवहारिभास्वते ॥१९॥
गिरं सुधापामिव जामिमुद्रतां, सुधासमुद्रादिदमाननाद्विधोः ।
निपीयकर्णैः पुटकैरिवान्तरा स कूणिताक्षः परमां मुदं दधौ ॥२०॥
किमावयोरेष फलं प्रदास्यति स्वपाणिसिक्तस्मयमानशालिवत् ।
इदं निगद्य प्रमदाद् वसुन्धरा-प्सरा अनाध्यायमवासयन्मुखे ॥२१॥
द्विजावलीचन्द्रिकयानुविद्धया स्मितश्रिया सेवितसृक्वदेशया ।
भुजान्तराभोगविलासमौक्तिका-वलीसरश्रेणिमिवोपचिन्वता ॥२२॥
निगद्यते स्म व्यवहारिणा क्षणं, विमृश्य तेनाथ विलोललोचना ।
रथाङ्गनाम्नेव रथाङ्गबान्धवो-दये रथा[ङ्गी] स्वसमीपमीयुषी ॥२३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट - २

हीरसुन्दरकाव्यसत्कपद्यानां अकाराद्यनुक्रमः ॥

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
अ		
अखण्डचण्डेतरधाममण्डला०	२	६७
अगण्यनैपुण्यमुखान्नियन्त्र्य०	८	१५
अगण्यलावण्यतरङ्गचङ्गिमा०	२	४६
अगण्यलावण्यपयस्त्रिदश्या०	८	९३
अङ्काच्युताया रभसेन बाल्या०	७	५०
अङ्गजाभिलषणोद्भवकोपा०	५	१८१
अङ्गनाङ्गपरिरम्भहसन्ती०	५	६१
अङ्गराग इव सद्गुरुशिक्षा०	५	६९
अजय्ययत्पाणिपयोरुहाभ्यां०	८	७८
अजय्यवीर्यं निजनिर्जयायो०	१	१३३
अजय्यवीर्यं मुखपद्ममस्याः०	८	१०४
अजय्यवीर्यं मृडमन्यहेतिभि०	२	४७
अजिह्मता सुह्मनृपैबिले बिले०	२	१०७
अतिस्मरैस्तत्तनुकामनीयकैः०	२	९
अथ तत्पुरि देवसीत्यभूद्०	६	३८
अथ तत्र समर्थनामभृद्०	६	११६
अथ दक्षिणोदेशतो महा०	६	६६
अथ देवगिरावगम्यता०	६	४७
अथ नारदनाम्नि पत्तने०	६	७२
अथ पृथुकपुरोगः संमदेन व्रतीन्दो०	६	१८०
अथ भावडसूनुसूरिराड्०	६	१३४
अथ व्यधत्त प्रणिधानमिच्छन्०	७	४
अथ शिल्पिचणैरचीकरत्०	६	१०२
अथ साधुसुधाशनाधिपः०	६	९४
अथ सूरिपुरन्दरान्तिके०	६	१
अथाविरासीद्द्विशिशीतकान्तेः०	८	८
अथैष वेलातटतः समं भटै०	२	११०
अथोददीप्यन्त नभःपदव्यां०	७	५५
अथो दधे चण्डकरे प्रयाते०	७	६६
अथो निशिथे द्विजराजराजज्०	८	१
अथो पुरासन्भरते वृषाङ्क०	४	१
अथो मिथः प्रीतिपरीतदम्पती०	२	५६
अदसीयविलासवत्यभू०	६	४१
अद्रिजार्द्धघटनाङ्कितमूर्त्या०	५	१८२
अद्वैतलक्ष्मीकमवेक्ष्य यस्या०	८	१५१
अधिगत्य ततः श्रुतं व्रति०	६	३
अधिपौ निखिलक्षमाभृतां०	६	१३३
अधृष्यमन्विष्य यदीयभालं०	८	१५०
अध्याप्य तेन विधिवत्सकलाः स विद्या०	३	७८
अध्यारुरुक्षोर्हृदधित्यकां यद्०	८	५९
अनक्षिलक्ष्यीभवति स भास्वान्०	७	२४
अनया निजरूपसम्पदा०	६	४४
अनयेत्थमभण्यत प्रभु०	६	८९
अनिशं वरिवस्यितस्य तत्०	६	८४
अनीदृशीं व्योमणेर्दिनश्री०	७	४१
अनेकपस्वप्ननिरीक्षणात्प्रिये०	२	८१
अनेन गोष्ठीमनुतिष्ठतात्म०	३	१३२
अन्तःस्फुरन्मौक्तिकरत्नराजी०	१	१५
अन्ययार्द्धरचितात्मकलापा०	५	१७२
अपास्यति स्माढ्यसुतां सरागां	४	५८
अपि तत्र कमाख्यनैगमो०	६	१५०
अपि पार्श्वजिनान्तरिक्षका०	६	१८
अभजन्त यतिव्रजा विभुं०	६	१२९
अभ्यस्यतास्याः श्रवसी मनोभू०	८	१४२
अभ्युद्गतैर्मुखखनेरिव वज्ररत्नै०	३	९६
अभ्रे मनाक्सन्तमसैः प्रदोषः०	७	४३
अमन्दगन्धैरिव गन्धसारो०	१	५
अमन्दानन्दसन्दोह०	६	१४८
अमुनाऽध्ययने समापिते०	६	५८
अमुष्य नाभेयजिनावनीनभो०	२	९५
अमूदृशाम्भोजदृशा स्म भूयते०	२	२०

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
अमोचि तं स्वप्नमवेक्ष्य संलये०	२	७०
अम्बरे विरुरुचे सुधारुचे०	७	८२
अम्भोधिमध्येऽधितबिम्बमम्भो०	७	२१
अयं जयं यतः कर्त्ता०	६	१७०
अयमेव हि हीरवाचको०	६	९१
अरिष्टकेतुं नवभोगसङ्गिनं०	२	२
अर्कांशुसम्पर्कचयार्ककान्तो०	१	१०९
अर्जितानि गरुडस्य च गत्या०	५	१३८
अर्थिव्रजेन मिलितुं स्वककामुकेन०	३	५३
अलकायितपूःपरम्पराः०	६	१३७
अलंचकार प्रभवप्रभुस्तत्०	४	१९
अलम्भिदम्भोलिशयेभशालिनी०	२	५
अलम्भि याम्यां दिशि येन काली०	४	१२६
अवधार्य तदाग्रहं हिता०	६	१००
अवधेरनुभावतो गुणै०	६	८८
अवापितो गोचरतां स मागधै०	२	१०८
अशीतिरस्मिन्नधिकाश्चतुर्भि०	१	७८
अशेषदेशेषु विशेषितश्री०	१	२४
अश्यमितास्यं कमलातिदानै०	१	१३०
अश्रोत्रैः श्रोतुकामै- भुजगपरिवृढैर्यज्जगद्गीतकीर्ति	४	१४१
असमान महा दिनेशवन्०	६	५
असाराद्देहिनां देहात्०	६	१८१
असूयया स्वीयपराभविष्णुं०	८	१३०
असौ जयन्ती जलजं स्वपाणिना०	२	५५
असौ प्रकाम प्रमदं ददानया०	२	११७
अस्ति कश्चन न कस्यचनापि०	५	२४
अस्तु वामनिशमभ्युपगम्यो०	५	१११
अस्मात्ततः प्रादुरभूत्तपाख्या०	४	११०
अस्याः कलत्रं हरिजित्वरं यत्०	८	४८
अस्याः सदृक्षां श्रियमाश्रयन्ती०	८	८४
अहिता अमुना पराहता०	६	३७
अहो महीयान्महिमा सुपर्व०	८	१५६

आ	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
आकण्ठमम्भस्सु निमज्य काम०	७	६८
आगतेऽह्नि सुहृदीव तदुक्ते०	५	९४
आगमं गणधरस्य कुमारो०	५	६
आगन्तुकस्योदयशृङ्गिशृङ्गा०	७	५८
आगामुकं कामुकमक्षिलक्ष्यं०	७	३८
आचाम्लकैर्द्वादशहायनान्ते०	४	१०९
आजगाम विहरन्स धरित्र्यां०	५	१
आजन्म यद्विधुरिवेष उदेति कीर्त्ति०	३	३७
आज्ञां यस्य निधाय मूर्द्धनि मुदा शीर्षमिवासप्रभोः०	४	१४४
आत्मकामितमुखानिव मूर्त्तान्०	५	९२
आत्मफेनहरिचन्दनसान्द्र०	५	१३५
आत्मनामिव वतंसविधित्सा०	५	५
आदर्शिकाघानि मिथो मृधेषु०	८	३८
आनन्दमेदुरितमानसपद्मचक्षु०	३	५८
आनन्दाद्वयवादमेदुरमना मध्ये सखीनामिति०	२	१४०
आप्लाविते किं सुरसिन्धुसुभ्रुवः०	७	८८
आबालमुग्धद्वलयः शिखाश्चा०	८	८०
आमुष्मिकामैहिकवत्समीहां०	१	८२
अमोदमम्बुरुहिणीव विजृम्भमाणा०	३	३०
आरुरोह जितजिष्णुहयं तं०	५	१३९
आवर्त्तविभ्राजितरङ्गितान्त०	८	५१
आवासविस्मेरमहीरुहाणां०	७	२५
आशानुरागातिशयं सृजन्ती०	८	१०७
आसाद्य तत्प्रसववेश्म समं सगोत्रै०	३	४७
आसीत्ततः श्रीनरसिंहसूरिः०	४	८२
आसीत्सुधर्मा गणभृत्सु तेषु०	४	११
आसीदसौ कलियुगे युगबाहुरस्मि०	३	४०
आस्वादयन्लवणिमामृतमेतदास्या०	३	४९
आस्वादितस्वादुमृणालकाण्डा०	७	९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
इ		
इक्ष्वाकुवंश इव नाभिमहीमघोना०	३	७०
इक्ष्वाकुवंशाम्बुधिशीतभासां०	४	२
इच्छता हृदि महोदयलक्ष्मी०	५	३८
इतः श्रिया निर्जित विश्वयौवते०	२	१३३
इति प्रणीय श्रुतिगोचरं वचः०	२	८३
इत्थं गुरुं स्वं विमनायमान०	४	७२
इदंपदीभूय भवान्तरेऽपि०	८	२०
इदं पुरा सारदलैः प्रणीय०	१	६८
इदंमुखीभूतमवेत्य चन्द्रं०	८	९६
इदं वदन्त्यामरविन्दचक्षुषः०	२	१२१
इदं विमृश्येयमजूहवन्मुदा०	२	८९
इदमीयमहामहेक्षणो०	६	१०५
इदमेव दिनं जगत्पते०	६	११०
इन्द्रियाण्यनिशमुत्पथगानि०	५	७४
इन्द्रवारणमिवेयमसारा०	५	१५
इयत्तयानन्तमपि प्रमातुं०	१	५३
इयं मृणाली जडसङ्गमौज्झ्य०	८	७९
इवेक्षुडिम्भान्क्षितिरक्षिणो महौ०	२	१०६
इह जीवत आदिमप्रभो०	६	२०
इह नीवृति नारदाभिदा०	६	१४०
इह शंकरभूमिभृत्सुखं०	६	१६
उ		
उज्जृम्भवक्त्राम्बुजमन्दिराया०	८	१४४
उज्झांचकारैष महेभ्यकन्या०	४	१६
उत्ततार तुरगात्स कुमारो०	५	२०५
उत्तालतालं करतालिकाभिः०	१	५९
उत्तुङ्गतारङ्गशिखावलम्बि०	७	१८
उत्तुङ्गभावमथ वर्त्तुलतां दधान०	३	८५
उद्दामदुर्गतिपुरेऽर्गलतां गमी य०	३	१०५
उद्धृत्य कण्टकगणान्किमु वारिजन्म०	३	१०२
उद्वेगभावं स्वमिवापकर्त्तुं०	१	७७
उन्मज्जलधरादिव जामे०	५	४१
उपगतमिहान्यस्माद्द्वीपात्प्रगेऽधिपतिं		
त्विषा०	२	१३९
उपचक्रमिरे महामहा०	६	११७
उपप्लवो मन्त्रमयोपसर्ग०	४	२९
उपमातुमिवामरावर्ती०	६	१४१
उपवीतमुरास्थलान्तरे०	६	५२
उमोपयामे पुनरात्तजन्म०	८	४९
ऊ		
ऊर्ज्जस्वलत्वं कलयन्कलौ यो०	१	४१
ए		
एकातपत्रमिह यत्तनुजो विधाता०	३	५
एकादशासन्गणधारिधुर्याः०	४	६
एकांशवानपि कलौ शिशुनामुनाह०	३	४१
एतज्जगज्जित्वरलक्ष्मिवीक्षा०	१	११४
एतत्कलत्रस्य हरेः कलत्र०	८	४७
एतदालपितमात्मभगिन्याः०	५	८६
एतदीयवदनामृतभासा०	५	१२१
एतद्गुणाभिनवगानविधानपूर्व०	३	४२
एतद्यशःक्षीरधिनीरपूरै०	४	२५
एतया ध्वनिनिरस्तविपञ्च्या०	५	८८
एनं हिरण्यमणिभूषणभूषिताङ्ग०	३	६३
एवमुक्तवति हीरकुमारे०	५	३१
क		
कंसारेरिव रुक्मिण्या०	६	१६४
कजपाणितमो द्विषज्जगन्०	६	१२७
कटाक्षबाणान्प्रगुणान्प्रणीय०	८	१४३
कण्ठश्रिया स्वःकुरविन्ददत्या०	८	८७
कण्ठीकृतो यज्जलजस्त्रिदश्या०	८	८५
कथञ्चनाऽभ्यर्थनया मुदुत्वं०	८	२६
कथं लभेतास्य तुलां सुरद्रु०	४	१०
कथानुषङ्गेषु मिथः सखीजनो०	२	९३
कदाचिदम्भोरुहिणीव निद्रया०	२	६५
कदाचिदिभ्यः कलधौतभूधरे०	२	६४
कदापि मन्दार इव स्मितद्रुमे०	२	६३
कदाप्यदर्शि तत्पत्न्या०	६	१५९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
कपालिमित्रं त्रिशिराः कुबेरः०	१	७१
कपोतपालीतटसन्निविष्टा०	७	३३
कपोलपालीमृगनाभिपत्र०	१	४६
कपोलभित्तौ मृगनाभिपङ्कै०	८	१२७
कपोलयुग्मेन मरुद्युवत्या०	८	३७
कमनः कमनात्प्रसेदुषः	६	४०
कमलान्मधुपानुषङ्गिनः०	६	४२
कम्रेण वप्रेण वसुप्रभेण०	१	९८
करट्यभिधपार्श्वनायको०	६	२१
करवीरगृहत्वमुग्रतां०	६	१५२
करीन्द्रहस्तात्कदलीप्रकाण्डतो०	२	४८
करेणु कुम्भस्तनि ! पश्य दीप्यते०	२	१२५
कर्मसन्ततितिरोहितभावः	५	८३
कलङ्कवानिन्दुरथाभ्युदेता०	७	१६
कलभो यूथनाथेन०	५	२१३
कलयन्प्रतिभामनुत्तरा०	६	५५
कल्पद्रुमाङ्कुरमिवामशैलभूमी०	३	१
कल्लोलिकारुण्यरसान्वितस्य०	४	६५
कवित्वनिष्कं कषितुं कवीनां०	१	४
कविना च बुधेन सन्निधि०	६	७०
काचन व्यधितकाञ्चनकाञ्ची०	५	१६७
काचनातिरभसान्मृगनाभी०	५	१६५
काचिच्चकोरनयना व्यवहारिसूनो०	३	६२
काचिदर्भकमपास्य धयन्तं०	५	१७३
काचिदीक्षणरसेन बबन्धो०	५	१५८
काचिद्दृशा विकचचम्पकसूनशाली०	३	६४
कादम्बिनीव सलिलैः सुरेशैलशृङ्गं०	३	१३०
कान्ते निमग्नेऽम्बुनिधौ प्रणश्य०	७	६३
कापि मौक्तिकलतां स्वकटीरे०	५	१६८
कापि वीक्षणरसत्वरमाणा०	५	१५९
काप्यलक्तकधियोत्सुकिताङ्गी०	५	१७६
कामद्विपेश इवोद्भवितायमेत०	३	११५
कामनीयकमशेषममुष्या०	५	१९८
कार्कश्यसंहतिलघूकृतहस्तिहस्ता०	३	१११

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
कार्यकाल इतरोऽपि नरेणा०	५	२६
कालं कियन्तमुदयान्तरितं तपस्या०	३	१२८
कालागुरुद्रवकरम्बितगन्धधूली०	३	१५
किं वर्ण्यते वर्ण्यगुणस्य चौर्य०	४	२०
किमग्रदूत्यो मदनावनीन्दोः०	२	१२६
किमपास्य जिनांह्रिसेवया०	६	१५९
किमभ्यर्थयमानाना०	६	१६१
किमावयोरेष फलं प्रदास्यति०	२	७७
किमिच्छता पाशयितुं जगत्त्रयी०	२	२४
कियद्विहायः कियती क्षितिर्वा०	७	५३
कियम्भणीवल्लभविप्रयुक्तां०	७	२८
कीर्त्या च वाचा च कचैर्जिताभिः०	८	५८
कीलतैकललितं कलयन्ती०	५	४०
कुंराह्वयस्य हरति स्म मनो मनोज्ञं०	३	६९
कुक्षिम्भरि क्षोणिनभः पदव्यो०	७	५६
कुण्डले कलयती प्रतिबिम्बे०	५	११६
कुतुकाद्बहुरूपिणं स्मरं०	६	१४५
कुतूहलेनेव महीविहारिणं०	२	६९
कुत्राणि दम्यैरनुगम्यमानाः०	१	६०
कुनयनान्नयता विनम्रता०	६	१३०
कुन्दकुड्मलजयं सृजतेवा०	५	६७
कुबेर इत्यात्मजनावमाननां०	२	३
कुमुत्स्मिता षट्पदपङ्क्तिकुन्तला०	२	५८
कुम्भीन्द्रकुम्भो कुचभूयमूहे०	८	७०
कुर्वन्निवासं गवि गौरवश्री०	४	९९
कुलाद्रिवार्द्धिप्रतिनादमेदुरी	६	१९०
कुशेशयादर्शसुधांशुजित्वरे०	२	३१
कुशेशयामोदिनि ! वीक्ष्यतामसौ०	२	१२४
कृत्वा विलासमवनीवलये यथेच्छं०	३	१२४
कृत्वोर्ध्वदेहिकमसौ विधिना विधिज्ञो	३	१२५
कृशाङ्गि ! राजन्यपयातवैभवे०	२	१३०
केचिदुच्चमणिपीठनिषण्णं०	५	९५
केशोच्चयः स्फुरति तस्य स नीलकण्ठ०	३	८३
कैदारिकं क्वापि समञ्जरीकं०	१	५८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
कैदार्यमुज्जृम्भितशालि यस्मि०	१	५७
कोडाईत्यस्य कान्ताभू०	६	१५३
कोरण्टके वीरजिनेन्द्रमूर्ति०	४	६७
कौतुकाद्भुवमुपेत्य वसन्तीं०	५	१९४
क्रीडत्तुरङ्गद्वीपपद्मनेत्रा:०	१	९२
क्रीडन् जयन्त इव यज्ञभुजां कुमारैः ०	३	१२२
क्रीडितुं रतिपतेरिव गेहा:०	५	६३
क्वचिज्जगत्साक्षिणमेक्ष्य यातं०	७	४८
क्विचित्पुरं प्रत्यफलत्तदयको०	१	७०
क्वचिदिन्दुमणी मिथो मिलद्०	६	२७
क्वचिदिन्द्रमणीनिकेतन०	६	२८
क्षणादथोर्वीवलयोर्वसी मणी०	२	७४
क्षयात्सुधायाश्चिरकालपानात्०	७	७५
क्षात्रियैरिव सुतैर्युवराजो०	५	१५३
क्षीरकण्ठः कृतोत्कण्ठ:०	६	१६९
ख		
खञ्जनाम्बुजचकोरमुखारीन्०	५	११२
खण्डेन चण्डद्युतिमण्डलेन०	७	२०
ग		
गगनात्मरसेन्दुहायने०	६	१०७
गङ्गावज्जलजन्मबन्धुतनया स्वः-कुम्भिवत्कुञ्जरो०	७	९०
गणपुङ्गवमन्त्रमन्वहं०	६	८२
गणपूर्वगिरौ महोदयि०	६	१२५
गणाधिराजे प्रणिधानदुग्ध०	७	१३
गणितं ह्यनुरागिरागवन्०	६	६३
गणिनन्दिमहेऽप्सरो गणै ०	६	१२९
गणीन्दुना पट्टरमा गणीन्दुः	४	१४
गते गवां स्वामिनि नाभ्युदीते०	७	५२
गन्तुं ततः स्पृहयता प्रति पत्तनं स्व०	३	१२६
गन्धसिन्धुरराजस्य०	६	१६६
गभीरताधःकृतवार्द्धिनेवो०	१	२९
गभीरिमाणं दधतः सपल्लव०	२	७२
गभीरिम्णा पाथोनिधिरिव महिम्ना परमरु०	४	१३७

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
गाङ्गेयगारुत्मतपद्मराग०	१	११७
गाधा व्याधाद्याम्बरचुम्बिरङ्गात्०	७	८
गायनैरयमगायि समेतैः०	५	१४८
गावः क्वचिद्भ्रान्ति सुधामुधाकृत्०	१	६१
गिराथ नेमेररविन्दनाभि०	१	३५
गिरिराज इव क्षमाधरो०	६	६
गुरु नन्दिमहेऽङ्गनासखै०	६	१२०
घ		
घूकैरर्कमिव द्विषद्भिरुदये हन्तुं परैः प्रेषितं०	४	१२२
घोषणास्य यशसामिव भेरी०	५	१४९
च		
चकोरिके चन्द्रकले लवङ्गिके०	२	९१
चक्रस्य चक्रवदुदित्वरदीप्रदीप्ति०	३	४३
चक्रीव रत्नानि चतुर्दशापि०	४	३४
चण्डी सपत्नी प्रबला ममास्ते०	८	५८
चत्वार एतत्तनुजा विनेया०	४	६१
चन्द्रचन्दनशिरोरुहशय्या०	५	६२
चन्द्राच्चकोरोऽमृतपानदम्भाद्०	८	१३४
चन्द्राननेऽमन्दमरन्दबाष्पा०	२	१३८
चन्द्रार्कचक्रद्वयभृत्प्रभूत०	१	१३
चन्द्रावतीशस्य नृपस्य नेत्रे०	४	९८
चन्द्राश्मवेश्मस्मितमुद्वहन्ती०	१	१०२
चन्द्रोदये चन्दिरकान्तगर्भ०	१	१११
चमूध्वनिः प्राग्गिरिकन्दरोदरे०	२	१०३
चमूभिरुर्वीन्द्र इवामरीभि०	४	७३
चलेति विश्वे वचनीयता श्रुतेः	२	१५
चान्द्रीं द्वितीयेव कलां जनाय०	८	९
चापल्यकेलिकलिते असिताशयेय०	३	९२
चिकीर्षता यन्मुखमात्तसार०	८	९०
चित्रामिवेन्दुरनवद्यतमां स विद्यां०	३	७९
चिरं विनोदैर्दिननायकेना०	७	५७
चूडामणिस्त्रिभुवनस्य यदेष भावी०	३	६५
चूतप्ररोहायुधकिंशुकार्ध०	१	८५

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
चूर्णैः प्रपूर्णा किमु मौक्तिकानां०	७	८७
चूलक्रियामहमयाङ्गभवस्य तस्य०	३	७२
चैत्येन चूडामणिनेव शीर्षं०	१	३०
चैत्येऽश्मगर्भाङ्कसिताश्मकुम्भं०	१	१०८
छ		
छायां तनोरिव न लङ्घयतापि वाचं०	३	७६
ज		
जगज्जनावाङ्मनसावगाहिना०	२	७
जगत्त्रयीजन्मजुषां मृगीदृशां०	२	१७
जगत्त्रयी स्त्रैणजयार्जिताया:०	८	६०
जगत्पुनानः सुमनःस्रवन्ती०	४	१०५
जङ्घे यदीये प्रणयन्प्रयत्नात्०	८	३६
जडीभवन्ती रिपुनिर्जये यद्०	८	११३
जन्तुरेष इह जामिकलत्र०	५	५५
जन्मिनामयमकृत्रिममित्रं०	५	२७
जन्मोत्सवं विदधता तनयस्य तेन०	३	५१
जम्बालयद्भिर्जलदैरिवोर्वी०	१	१३२
जम्भद्विषत्कुम्भिपराभविन्या०	८	२९
जयन्तवज्जम्भनिशुम्भभामिनी०	२	८२
जयविमल इदं तन्नामधेयं विधिज्ञो०	६	१८३
जलकेलिगलद्विलेपनी०	६	३३
जहिरे मिहिरौजसा मही०	६	९६
जहे महेलया निद्रा०	६	१६३
जहेऽम्बरं सायमशीतभासा०	७	१५
जानुस्पृशौ शिशुभुजौ विनियन्त्रणाय०	३	१०७
जाने यदास्यं सरसी सुधाया०	८	१११
जितस्मरान्पौरजनान्निपीय०	१	१२२
जिनवद्गणधारिणः पदं०	६	१२२
जिनावनीन्दोः किल धर्मकर्मणो०	२	९६
जिनेशितुः शासनदेवताया:०	८	१६
जीवितं कुशशिखास्यमिवाम्भः०	५	५३
जृम्भणादाननं काश०	६	१६२
जृम्भमाणजलजद्वितयीवां०	५	६४
जेया त्रिलोक्येव शरैस्त्रिभिस्तत्०	८	१३२

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
जैनार्चाश्रमणाद्यभावभणनाम्भः– प्लाव्यमानात्मनां०	४	१३४
जैमनीयमनुजा इव दैवे०	५	७३
ज्ञायन्ते वसुधासुधाकरगृहा गर्जारवैः कुम्भिनां०	७	९२
ज्योतिस्तरङ्गीकृतयन्त्रिकेत०	१	११६
ड		
डिम्भलम्भितविडम्बनभाजा०	५	४६
त		
तं जङ्गमं त्रिदशसालमिव स्वपुण्य०	३	१२९
तं पारियानिकमसावधिरुह्य भूमी०	३	१२७
तं साक्षिणं प्रणयवान् स्वगुरुं प्रणीय०	३	७७
ततं वचो यस्य घनं पदाङ्ग०	२	१६
ततोऽजनि श्रीजयदेवसूरि०	४	७९
ततो जरा येन यदूद्वहानां०	१	३६
ततो नमंसितुं सूरिं०	६	१७७
ततो वयस्योऽन्तिकमागता मधु०	२	९०
ततोऽस्य सङ्ख्यातिगपट्टपङ्क्तिभिः	२	११९
तत्कर्णयोर्मणिविनिर्मित कर्णपूर०	३	६६
तत्कलाकुशलमानववर्ग०	५	९८
तत्क्वेव वार्त्ता मम राजहंसान्०	८	४२
तत्पट्टपङ्केरुहमानसौका:०	४	८७
तत्साधु मन्ये मलयानिलेन०	८	११८
तत्सुमानि सुरवैभवलम्भः	५	३४
तत्र तद्व्रतमहोपनतानां०	५	१४३
तत्र भावयति नः पुलकोद्यत्०	५	१४०
तत्र सस्यभरगौरवभाग्भिः	५	१९७
तत्राऽपि च स्फूर्त्तिमियर्त्यपूर्वां०	१	४२
तत्राऽस्ति भूमान्महमुन्दनामा०	१	१२७
तत्रैकदेशे वपुषीव वक्त्रः०	१	६६
तथा चतुर्विंशतितीर्थकृद्दृहं०	२	११४
तथा तवाप्यस्तु यथा त्रियामे०	७	६१
तथा प्रथन्तां कथका यथा कथा०	२	९२
तदाननेन्दोरमृतोर्म्मिमालिनो०	२	७८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
तद्दिदृक्षुरपराङ्गनयष्ट्या०	५	१६४
तदीयपट्टाम्बरभानुमाली०	४	७४
तदुपान्तभुवं व्यभूषयत्०	६	५०
तद्गजादिभरभारमसह्यं०	५	१५६
तद्गवेषणरसोत्सुकचेता०	५	१७१
तद्दक्षिणार्धे सुरगेहगर्व्वं०	१	२३
तद्दोहदप्रकरपूर्त्तिविधौ सुपर्व०	३	११
तद्यशोधरणिभर्त्तुरितोऽन्य०	५	१९२
तद्वचो विरचितं सहजेन०	५	४५
तद्विभावनरसव्यवसाया०	५	१६६
तद्विभूषणमणीनिकुरम्बैः०	५	१२९
तद्विलोकनरसस्तिमितानो०	५	१५७
तनूजन्माननज्योत्स्ना०	६	१६८
तनूभवत्तारकतारभूषणा०	२	१३१
तनूलतागाधतरङ्गितप्रभा०	२	४२
तन्निर्वृतेः स्थानमुरोजयुग्मं०	८	६६
तपसः सितपञ्चमीदिने०	६	७४
तमःसपत्नः श्रितशम्भुशीलनः०	२	४
तमःस्तोमप्राये कुनयनगणैर्दारुणतमे०	४	१३६
तमस्विनीशेऽस्तमिते प्रकाशतां०	२	१३२
तमोगणालिङ्गिनभोङ्गणश्रीः०	७	४५
तमोभरोर्वीधरभेदवज्रि०	४	५०
तया क्रमादिभ्यविभावरी वरो०	२	७५
तयोः पदे श्रीमुनिचन्द्रसूरि०	४	१०२
तरुणी तपनात्मजन्मनो०	६	७
तस्मिन्पदं प्रविदधे गुणधोरणीभि०	३	११९
तस्य लोचनपथे पृथुकेन्द्र०	५	१३
तस्य वीचिभिरिवामर सिन्धो०	५	७९
तस्य स्फुरद्द्युतिपयः परिपूर्णबाहुः०	३	१०६
तस्याङ्गजास्य शशिदर्शनतोऽम्बुराशे०	३	४८
तस्यानुजो गजगतेः शतकोटिपाणे०	३	१२३
तस्या भवल्लवणिमातिशयः स कोऽपि०	३	८१
तस्यार्भ शक्र इव चित्रशिखण्डिसूनो०	३	७५
तस्याः सुतो रविरिवाम्बुजपाणि विश्व०	३	९

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
तां निपीय मुनिवासववाचं०	५	३६
ताण्डवं व्यरचि वारवधूभि०	५	१५१
ताभ्यां पुनः स्थापितमुज्जयन्ते०	१	३४
तिलकं हरितामसौ हरिद्०	६	११
तीर्थनाथमिव चैत्यतरोस्तत्०	५	२०४
तीर्थाधिभर्तुर्मतदेवताया०	८	४५
तीर्थानि तीर्थाधिपपावितानि०	१	४४
तूर्णमस्ति यदि तत्र यियासा०	५	२१
तेनाथ मुक्तं गिरिनारिशृङ्गे०	१	३३
तेनापि सोमतिलकाभिध सूरिरात्म०	४	१२०
तेपे तपो भूधरगह्वरान्त०	७	५४
त्यक्तपूर्ववपुषा निजयोषा०	५	१८३
त्यक्ताश्रवः कञ्चुकिकामुकाभिः०	१	१२४
त्यक्त्वावतीर्ण्णां पुरुषं०	६	१५६
त्यक्त्वाशेषकुपाक्षिकांश्च कुदृशः किंपाकभूमीरुहा०	४	१३२
त्रिजगद्विजयोद्यतस्य यद्०	६	१३८
त्रिजगन्नयनामृताञ्जनं०	६	११३
त्रिदिवोज्जयिनीं पुरीं तदाजनि०	६	७९
त्रिनेत्रनेत्रानलभस्मितात्म०	२	३४
त्रिशलातनुजन्मशासना०	६	१०६
त्रैलोक्यमाक्रम्य पराक्रमेण०	८	१४९
त्वदीयवाणीतपनास्तमुद्रिता०	२	१२६
त्वद्वधूमुखसुधांशुसुधायाः०	५	५१
त्वया स्वकीर्त्या सुमनस्तरङ्गिणी०	२	४४
द		
दंशादहेर्ग्राहितकाष्ठभार०	४	११८
दत्वाधिपत्यं निखिलाचलानां०	७	७०
दम्भोलिभूषणभरोद्भवदंशुचाप०	३	२३
दर्पणेष्विव गवेषयति स्वं०	५	१२७
दर्शयन्त्यपर पद्ममुखी तं०	५	१७७
दशामवास्यन्ति यदन्तिमामिमे०	२	१०२
दस्रयोः किमयमन्यतमोऽस्मिन्०	५	१८४
दिगन्तवासं किमपास्य काश्यपी०	२	११८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
दिग्वाससो येन विजित्य वादे०	४	८४
दिद्युते मणिकरम्बितयास्ये०	५	१०७
दिशां चतुर्णामयमर्णवावधी०	२	१०९
दिशि बिभ्रति यत्र भूभृतः०	६	२३
दीप्यते किमधिकं सुषमा नो०	५	१२८
दुग्धाम्भोनिधि निर्ज्जरा इव नराः सर्वेऽपि संजज्ञिरे०	७	९३
दुन्दुभिध्वनितिभिर्जयशब्दं०	५	१५२
दुर्भिक्षके पायसमेक्ष्य लक्ष०	४	६०
दुर्भिक्षवर्षेषु सुभिक्षभूमी०	४	५३
दृक्कर्णवेणी कलकण्ठकण्ठी०	१	९५
दृग्दानदासीकृतदेववन्या०	१	९१
दृग्दोषखण्डनकृते भ्रमरं तदीये०	३	९१
दृशां यदूरुद्वितयीं प्रतीपा०	८	४१
दृष्ट्वा पतिं रतं रत्यां०	६	१५५
देवेन्द्रकर्णाभरणीभवद्भिः०	४	१११
देशनां शमवतां शतमन्युः०	५	१४
देशे पुनस्तत्र समस्ति शङ्खे०	१	३१
दैत्यमर्त्यमरुतां विजये त्वं०	५	१८६
दोषामुखेन द्विषतेव वार्द्धौ०	७	३२
दोषोदयोदीततमःप्रपञ्च०	४	१००
द्युसदामिव मेदिनीरुहौ०	६	११४
द्रविणार्प्पणहृष्टमानसाद्०	६	५६
द्रवीभवद्भूरिसिताभ्रचन्दन०	२	४३
द्वात्रिंशताजनि रदैरपि लक्षणानि०	३	१०१
द्वात्रिंशदाशावसनैरभेद्यो०	४	१०८
द्वारं स्वसिद्धेरिव सूरिराजो०	७	५
द्विजाधिपत्यं मुख एव मुख्यतो०	२	२८
द्विजावलीचन्द्रिकयानुविद्धया०	२	७९
द्वीपे परस्मिन्नितरोऽपि कश्चिद्०	७	२३
द्वे महोदयपुरस्य पदव्यौ०	५	२०
द्वेषिणामिव गणाः क्षितिमानं०	५	७२
ध		
धर्म एव मनुजैरिह मन्त्र०	५	३५
धर्ममार्हतमतो जनिमन्तो०	५	१९
धर्मोपदेशच्छलतः स्वपाणि०	४	३५
धवः सुधाधामसगोत्रवक्त्रये०	२	८४
धात्री।भः प्रेमपात्रीभिः०	६	१७१
धात्र्योदितां प्रथमतः पृथुकप्रकाण्डः०	३	७१
धारिणीसुत इवाद्य सुधर्म०	५	३९
धिया जयंश्चित्रशिखण्डिसूनुं०	४	७०
धुनीधवं येन गभीरनिःस्वनै०	२	१२
धृतैकपाशेन पयोधिधाम्ना०	८	१३८
ध्यातुर्वरं श्रीश्रुतदेवतेव०	४	५५
ध्यानस्थितं शासननिर्ज्जरी सा०	८	७
ध्यानानुभावेन ततो निशीथे०	८	५
न		
नक्तं नलिन्यादिमगुल्मनाम०	४	४०
नखोल्लसत्पल्लवशालमानै०	८	२३
नगरे नगरन्ध्रकृद्यतो०	६	२९
नभःपरीरम्भणलोलुभैर्यद्०	१	९९
नभःश्रियास्तारकमौक्तिकस्रजः०	२	१२७
नभोङ्गणान्निर्जरहस्तमुक्ता०	५	२११
नभोङ्गणे सान्द्रित सान्ध्यरागै०	७	३६
नभोङ्गसारङ्गदृशां रतीश०	७	५९
नवोदयं हीरकुमारचन्द्रं०	१	४५
नाभीभवेन तदुदाहरणैः कृतैः किं०	३	८०
नारकादिगतयोऽत्र चतस्र०	५	१६
नार्हती व्रतविधौ तव तेना०	५	७७
निःशेषभूवलयकुण्डलिवेश्मनाकि०	३	१०३
निःस्वादिवैश्वर्यमनाप्य झंझू०	१	४०
निखिलदिविषद्योषा-लेखाकुमुद्वनकौमुदी०	८	१६४
निगद्यते स्म व्यवहारिणा क्षणं०	२	८०
निजगाद गुरुर्गभीरिमा०	६	८७
निजधैर्यवदान्यता श्रिया०	६	१३२
निजप्रतिद्वन्द्विविधुन्तुदस्य०	८	१२५
निजाक्षिलक्ष्मीहसितैणशाव०	८	६४

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
निजाक्षिलक्ष्मीहसिताब्जखञ्जने०	२	१२८
निजाङ्गनोद्गीतयदीयकीर्त्ति०	४	११२
निजास्यदासीकृतशारदोदय०	२	१२९
नित्यातिवाहाद्विगतावलम्बा०	१	५६
निपातुकेन द्विजकान्तिमिश्रित०	२	२६
निमीलनोन्मीलनदूषितेभ्यो०	८	११९
निम्नगेव परिसर्प्पति निम्नं०	५	५७
निरधामि मुहूर्त्तमान्मना०	६	१०१
निरमापयदस्य पूर्वजो०	६	८१
निरित्वरीभिर्मधुपीभिरुल्लस०	२	१३४
निरीक्ष्य लक्ष्मीं निजभर्तृमातरं०	२	४५
निर्गतायुरखिलद्रविणास्ते०	५	१८
निर्जितेन यशसा सितभासा०	५	१३१
निर्जीयते स्म क्वचनापि नायं०	४	१०४
निर्मृष्टनि:शेषनिषद्वराया०	७	१०
निर्यत्सुरास्त्राशनि भूषणानि०	८	१३
निशानने श्रीसुतकान्तमत्तै०	७	३९
निश्चिकाय वचनैरथ तैस्तै:०	५	५९
निश्चिकाय विनयानतकाय०	५	३७
निष्कुहान्तरितविष्किरवार०	५	२०२
निष्पतन्मदविलोलकपोला०	५	१४४
निस्तीर्य दोहदभवार्त्तिमथैणचक्षु०	३	१३
निस्त्रिंशमन्थानगमथ्यमान०	१	१२९
नीरदोऽवनिभृतामिव तापं०	५	१९१
नीराजयन्तीष्विव चित्रभानु०	१	११
नीलारविन्दनयना कमलावदाता०	३	१७
नीलारविन्देन पुरा प्रणीय०	८	१४६
नीलांशुकाकलितबालककामपाल०	३	६१
नीलोत्पले कर्णयुगे चकासां०	८	१८१
नूपुरं निजभुजे रभसेना०	५	१७०
नृत्यच्चन्द्रकिचक्रमुन्मदनदद्वप्पी-हबालाकुलं०	६	१९२
नृपोऽयमाद्योऽजनि सङ्घनायक:०	२	११६
नेत्रामृताञ्जनमसौ जगतां यदस्या०	३	६७
न्यक्षरुक्षनिकरेषु गुरुत्वं०	५	१९९
न्यगदन्निति ते पुरो गुरो०	६	९८
प		
पक्षद्वयं भिन्नतमोभरेण०	४	४५
पङ्क्तिप्ररूढै: प्रचलत्पतङ्ग०	१	९०
पञ्चाशुगान्य: समितीर्विधाय०	४	४७
पटीष्ववोद्दामकलामकौघा०	७	१२
पट्टश्रियास्य मुनिसुन्दरसूरिशक्रे०	४	१२३
पट्टिकाऽर्भकविभो: कनकस्य०	५	१०६
पट्टेऽथ तस्यार्यमहागिरिश्चा०	४	३६
पठता सह धर्मसागर०	६	४८
पठति स्म स धर्म्मसागर:०	६	५४
पण्याङ्गनायाष्कि: किलकिञ्चितानि०	४	३२
पत्यौ गवां क्वापि गतेऽस्य	७	४२
पत्रान्तराजज्जलबिन्दुवृन्दै:०	१	९४
पदपद्मविलासलालस०	६	९०
पदप्रदानावसरे समीक्ष्य०	४	७१
पदं मयेदं प्रददे शिरस्सु०	८	२४
पदमस्य हृदि व्यतन्तनीद्	६	६२
पदमाप्यत पण्डिताह्वयम्०	६	७३
पदारविन्दोन्नतताभिरात्मन:०	२	५१
पदे तदीये विबुधप्रभेण०	४	८६
पदे पदे यत्पुरकौतुकानि०	३	१३३
पद्मावतीप्राणपति: प्रसूना०	१	३९
पद्मिनीप्रियतमो दिवसादौ०	५	१४२
पयोधिपुत्रीतनयावनीपते०	२	९८
पयोधिरोध:स्थलरोधिभिर्विभो:०	२	१०५
परशासनशास्त्रमालिका०	६	४६
पराजितद्वीपततिप्रतीष्ट०	१	१९
परानवाप्यान्निजवासपत्तना०	२	३९
परान्पर: कोटिजिनालयानयम्०	२	११५
पराबुभूषोर्गिरिशं स्मरस्य०	८	५५
परिशीलितशीललालया०	६	१३१
पर्यङ्कबन्ध: स विभोर्व्रतश्री०	८	२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
पशोरिवोर्व्यीदिवगोचरस्य०	७	४९
पश्यन्तु वैदुष्यममुष्य जम्बू०	४	१८
पाणिना विरुरुचे पविरोचि०	५	१२४
पाण्डुः क्षयीशून्यनभश्चरिष्णु०	८	१०५
पातालभूतलसुरालयलोककोटी०	३	५४
पातुमप्रभु कुमारविभूषाम्०	५	१६२
पादारविन्दयुगलोपरिलम्बिनीनाम्०	३	६८
पारे गिरां वृत्तमिदं क्व सूरेः०	१	६
पिकपञ्चमकूजितक्वणा०	६	११२
पिकाश्च कूजुः सहकारकुञ्जे०	७	३४
पितामहस्य व्रतिराट् चरित्रै०	७	७३
पित्रोर्मनोरथगणान्कुटजावनीजा०	३	५७
पिपासितं रोचकितं च रङ्कुम्०	१	९७
पिबतान्मुनिरेष नोऽपि मा०	६	२५
पीतादुपास्त्याधिगता गिरीशा०	१	११९
पीनस्तनद्वयममेचकितं पयोभि०	३	२२
पीयूषकान्तिमिव दुग्धपयोधिवेला०	३	३१
पीयूषपूर्णः कलधौतक्लृप्तो०	७	७४
पीयूषपूर्णस्मरकेलिशोण०	८	९९
पुत्रावतीव्याजवती यदीय०	८	७२
पुनः सृजन्त्यां मयि मुद्रणां दृशोः०	२	८८
पुपोषाऽवयवैर्वृद्धिम्०	६	१७२
पुरसङ्गजनैः प्रणोदितै०	६	४९
पुराभवन्नाभि महीहिमद्युते०	२	९४
पुरारिकंसारिपदप्रसत्ते०	७	४७
पुरि जानपदीयमानव०	६	११८
पुरि तत्र निजामसाहिना०	६	३४
पुरेऽथ तस्मिन्व्यवहारिपुङ्गवो०	२	१
पुष्पपल्लवपलानि दधाना०	५	१९६
पूज्येषु रञ्जितमना यदसौ कुमारः०	३	९९
पूरे समुद्रस्य बभस्ति बिम्बम्०	७	१९
पूर्णामृतैररुणरत्नमनोज्ञमध्या०	३	९८
पूर्वनिर्मितपरस्परतर्कैः :०	५	९२
पूर्वमेव नियमस्थितिकालात्०	५	८०
पूर्वाद्रिपाटलशिलावलये शशीव०	३	५०
पूर्वाद्रिमौलेरथ मन्दमन्दम्०	७	७७
पूर्वापराम्बुनिधिबन्धुरमेखलाया०	३	५५
पृथक् पृथक् पञ्चमुखद्विषन्मुखा०	२	३७
प्रगल्भफालैर्गगने नखैः पुन०	२	१०४
प्रजां द्विजिह्वैरिव पीड्यमानाम्०	१	१२८
प्रणिगद्य पुरो गुरोरिदम्	६	९२
प्रतिपञ्चमुखं द्विषं व्ययी०	६	३१
प्रतिभाविभवैः पठन्क्रमात्०	६	५७
प्रदेहि नः साक्षरतामबाह्याम्०	१	७५
प्रद्युम्नदेवोऽथ पदे तदीये०	४	९०
प्रद्योतनाह्वप्रभुणाप्यमुष्य०	४	६८
प्रपेदुर्षी यत्पदतां पयोज०	८	२१
प्रफुल्लकङ्केलिरसालमल्लिका०	२	६१
प्रफुल्लमल्लीकुसुमावनद्ध०	८	१६१
प्रबुबुधे प्रभुदेशनया तया०	६	१८१
प्रबोधयन्भव्यसरोजराजी०	४	६९
प्रभो प्रभावादथवा कथं न०	१	९
प्रभोरूपान्ते सममम्बया महा०	६	१८२
प्रवालमुक्तामणिमञ्जिमश्री०	४	३१
प्रवाललक्ष्मीरिव कामितद्रो०	८	१०
प्रविभाव्य भवेन भस्मित०	६	१४४
प्रससार महीविहायसोः	७	८४
प्रसादकान्ती दधती सुवर्णा	८	२८
प्रसारिशोचिर्मकरन्दसान्द्रा०	८	५२
प्रसूनतारावलिशालितायाम्०	८	७१
प्रसूनधन्वा निजदेहदाहे	८	७७
प्रसूनमालाभिरलङ्कृताभ्याम्०	८	६९
प्रस्थातुकामेन तमो जिघांसो०	७	६२
प्रह्लादनाच्चन्द्र इवाङ्गभाजा०	१	७३
प्रह्लादनाह्वनगरं पुनरप्यमुष्य०	३	४२
प्राग्दिग्मृगाक्ष्या प्रणयेन पत्यौ०	७	७६
प्राग्निर्जितश्रीरथनेमिमुख्य०	४	३३
प्राचीपयोराशीपयःप्लवान्त०	७	७९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
प्रातः साधुवृतस्त्वदापणपुरो यो याति सूरीशिता०	४	१३५
प्राप्तरूपविभवं वहते यः०	५	१७४
प्राप्य तावककरादिह दीक्षा०	५	३०
प्राबोधयत्बौद्धपुरीप्रभुं य०	४	५७
प्राबोधयद्दुःशकनैकतीव्र०	४	१४६
प्रामाण्यमस्य वहतो महतां सदस्य०	३	१०९
प्रीणाति या प्राज्ञदृशश्चकोरी०	१	२
प्रीतिर्जनेषु वृजिनेषु न तस्य जज्ञे०	५	२१४
प्रीतिवापीपयःपूर०	६	१७८
प्रीतिं सृजन्ती पुरुषोत्तमानाम्०	४	४३
प्रीत्या च रत्या सह मीनकेतो०	८	१३६
प्रेक्ष्य स्वदाहे ज्वलितास्त्रमालाम्०	८	१५९
प्रेम्णा गुणाननुगुणीकृतवेणुवीणा०	३	६
प्रेम्णा प्रणेतुमजरामरतां प्रसह्य०	३	२१
प्रोत्तुङ्गपीनस्तनवैभवेन०	८	६८
फ		
फणभृद्गवत्रिभालना०	६	१९
ब		
बन्धूकबन्धुभवदेतदीय०	८	९८
बभूवतुर्द्वौ भुवनप्रदीपौ०	४	३
बभूव नाभेयविभुः स आदिमः०	२	९७
बभूव मुख्यो वसुभूतिसूनु०	४	७
बभूवुरिक्ष्वाकुकुले सहस्रशः	२	१२०
बभे नभस्याम्बुधरायमाण०	१	८६
बभौ भुजाभ्यां मखभुग्मृगाक्षी०	८	८३
बहुना किमु तन्मनस्विनो०	६	६४
बहुना महिमाभिनन्द्यते०	६	१४९
बालसाल इव कोरकभूषा०	५	७
बालारुणज्योतिरखर्वगर्व०	१	११८
बाल्येऽपि रश्मीन्सरसीजबन्धु०	४	१२५
बाल्येऽपि हेमाद्रिरकम्पि येन०	४	५
बाह्लीककालागुरुगन्धसार०	१	१०४
बिम्बाधरे निपतिताभिरभासि यस्य०	३	९७
ब्रह्माण्डभाण्डोपरिभित्तिभाग०	१	६२
भ		
भक्तामराह्वस्तवनेन सूरि०	४	७५
भयादिमेनाथ हरस्तवेन०	४	७७
भर्ता सुराणामिव लोकपाले०	४	६२
भवति स्म विचक्षणः क्षणाद्०	६	६१
भस्मीकृतं धूर्जटिनाक्षिलक्ष्मी०	८	४४
भागीरथीव यद्ब्राह्मी०	४	१३९
भाग्यभाजि जलजन्मगृहेवा०	५	४८
भाति तत्पदरजोऽस्य ललाटे०	५	१२
भाति मुक्तमलिके रभसेना०	५	१६१
भानोर्बभौ मण्डलखण्डमब्धौ०	७	२२
भान्ति स्म यस्मिन् सुमनोभिरामा०	१	१२५
भारतीमिति निशम्य शमीन्दोः०	५	२३
भारती श्रुतियुगाञ्जलिना त्वाम्०	५	८९
भारसासहितया जितशेषः०	५	१२२
भालमण्डलममण्ड्यत राज०	५	१०८
भालस्थलप्रसृमरांशुपयःप्रवाहो०	३	८७
भावी यदेष पृथकः सुमनो निषेव्य०	३	३४
भावी यदेष वृषवज्जिनधर्मधुर्य्यः०	३	१०४
भास्वन्मयूखविजिगीषुयदङ्गजातः०	३	३८
भियाभ्रमूवल्लभवाहनारेः०	१	११०
भीतेः स्विकायाः दिवसस्य लक्ष्मीं०	७	८१
भुजान्तरानुत्तरराजधान्या०	८	८२
भुजान्तरासन्नशयारविन्दे०	८	३
भुवि मङ्गलतूर्यनिस्वनो०	६	१११
भूचरानिव विधेरनुवादान्०	५	९०
भूपीठखण्डानिव चक्रवर्ती०	४	१०३
भूमीनभोमण्डलमेदुर श्री०	७	८६
भूरुहैर्विहसितैरिव कुञ्जः	५	१३०
भूरेषा किमु चन्द्रचन्दनरसैरालिप्यते सर्वतो०	४	१४२
भूविहारिहयवाहनशस्या०	५	१४१
भूषणैः कनकरत्ननिबद्धै०	५	१२६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
भूषाशनिस्फुरितशक्रधनुः समुद्यद्०	३	१२१
भृङ्गसङ्गतवतंससरोजे०	५	११३
म		
मज्जत्ककुप्कुञ्जरबिन्दुवृन्दा०	७	३७
मणिकल्पितशिल्पकौतुक०	६	१०३
मणिकाञ्चनकल्पनन्दनै०	६	२६
मणीघृणिश्रेणिधुतान्धकारै०	१	१०१
मण्डयत्यमरमन्दिरं गुरौ०	६	१८६
मधुप्रधावन्मधुकृन्निरुद्धै०	१	९३
मनः समुत्कण्ठयतस्तनूमतां०	२	१४
मन्महे सकलशीतलभासां०	५	११५
मन्ये कुमुद्बन्धुरिदं मृगाङ्क०	८	१५५
मरन्दनिस्पन्दितमालताली०	७	२६
मरालबालेव विलासगामिनी०	२	७३
मरुतामिव पद्धतीः पुरी०	६	६७
मरुदेशमभूषयत् क्रमाद्०	६	६९
मरुद् गृहादार्यसुहस्तिमूर्त्ति०	४	३७
मरुन्मृगाक्षीवदनाब्जदन्तै०	८	१०३
मर्त्यजन्मनगरीमधिगत्य०	५	१७
मलयो बलिवेश्मवद् बभौ०	६	१३
मलयो मलयद्रुमेदुरः०	६	१२
मलयो मलयद्रुसौरभैः०	६	१४
मलीमसीभूतमशेषमभ्रमा०	७	७
महर्घ्यमाणिक्यमिवाङ्गुलीयं०	४	८३
महसां निवहे महीशितुः०	६	३६
महाव्रती कालमनोभवारि०	५	२१२
महीवियद्वीक्षणकेलिलोली०	८	१२
मा कृथाः क्वचन तत्प्रतिबन्धं०	५	३२
मागधा मधुरमङ्गलवाचः०	५	१४७
माणिक्यभूषणगणैर्न तदा कदाचि०	३	१८
माद्यसि स्मरजगज्जयिनीभिः०	५	१८५
मानमाननसरोरुहवत्यां०	५	१८९
मानवान्स्वयमसौ च्छलदर्शी०	५	७५
माननीजनमनोनयनस्वं०	५	१०३

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
माहात्म्यनम्रीकृतसर्वदेवः०	४	९६
मित्रे गतेऽस्तं वियुनक्ति राजन्०	८	६७
मिथः परिस्पर्धितया वदान्यता०	२	१०
मिथः प्रथाभिर्वचसां वचस्विनौ०	२	८५
मिथो मुनीन्द्रेण मृधे मनोभू०	८	१४५
मिथ्यामतोत्सर्पणबद्धकक्षं०	४	११३
मिलद्बलाकाम्बरमुद्वहन्ती०	७	२
मुक्तालताङ्केव निजोपकण्ठ०	१	४९
मुक्त्वा द्विषः पञ्चमुखीं प्रति स्वान्०	८	१२३
मुदमादधिरे मुमुक्षव०	६	१२४
मुदाथ नाथी शयनीयमन्दिरं०	२	८६
मुरवैरिपुरीव माधवो०	६	१४६
मुहूर्त्तमद्वैतमवेत्य हेली०	४	९४
मूर्त्तैरिव स्वस्य गुणैः प्रफुल्लत्०	४	५६
मूर्ध्नि तस्य मुकुटेन दिदीपे०	५	१०५
मृगाक्षि ! पश्यामरसिन्धु सारणी	२	१२२
मृगाक्षि ! सोपारककुल्लपाकयो०	२	११३
मृगीदृशामञ्जनमञ्जुलाभि०	६	३०
मृगीदृशो हेलितकेलतीश्रियो०	२	१९
मृगेन्द्रमध्ये मृगयस्व तारकान्०	२	१२३
मृडमूर्ध्नि निवास सौहृदान्०	६	५१
मृणालधवलान्स्कन्धे०	६	१६०
मृणालिकाभिर्जलदुर्ग्गभाग्भि०	८	८१
मेरोः शिखाग्रावसथव्यथाभि०	१	१२१
मोघीकृताशेषशरं गिरीशं०	८	१३७
मौक्तिकेन किल सोदरसर्वैः०	५	५०
य		
यं प्रासूत शिवाह्वसाधुमघवा सौभाग्यदेवी पुनः०	१	१३८
	२	१४२
	३	१३६
	४	१४९
	५	२१८
	६	१९४
	७	९५
	८	१७२

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
यं शम्भुशैलच्छविरोमगुच्छ०	१	१२
य: पञ्चमोऽभूद् गणपुङ्गवानां०	४	१२
य: शैशवादेव जहौ निजाम्बां०	४	५१
य आदिमोद्धारकरो जिनालयं०	२	११२
यच्चक्षुषा मातृमुखोऽप्यशेष०	१	३
यज्जङ्घयाऽध:करणादुदीत०	८	३२
यत्कण्ठपीठेन हठादुपात्तां०	८	८६
यत्कीर्त्तिगङ्गां प्रसृतां त्रिलोक्या०	४	३०-१४६
यत्तत्सुतोमधुरिवावनिजव्रजानां०	३	८
यत्तुङ्गतारङ्गगिरौ गिरीश०	१	२७
यत्पर्वते कल्पितसप्तभूमी०	१	२८
यत्पाणिपद्म: स पुनर्भवोऽपि०	४	८
यत्पादपङ्कजयुगाङ्गुलीभि: स्वकीय०	३	११४
यत्पादपद्मेन पराजितेन०	८	१७
यत्पादराजौ परिशुद्धपार्ष्णी०	८	२७
यत्र गीतय इवागमघोषा०	५	७०
यत्र भ्रमद्भृङ्गरसालमाला०	१	८४
यत्रार्थिनोऽर्थेशमिव प्रसार्य०	१	१७
यत्रार्हताऽऽध्मायि निजध्वजिन्या०	१	३७
यत्रोन्नमद्वारिदवर्मिताङ्गा०	१	५२
यत्रोल्लसद्गौरिमतुङ्गिमश्री०	१	१४
यदङ्गगेहेनिवसन्प्रसूना०	८	५३
यदङ्गयष्टीबहलीभविष्णु०	८	५७
यदङ्गरङ्गन्नवराजधानी०	८	४६
यदनन्यहिरण्यशीतरुग्०	६	१४३
यदाननश्रीजितमब्जबन्धो:०	८	१५३
यदाननाङ्गीकृतविग्रहेण०	८	९५
यदाननान्तर्वसते: सुधारसा०	२	२९
यदाननाम्भोरुहवाससौधे	८	९७
यदापणश्रेणिषु सान्द्रचान्द्र०	१	१०५
यदाश्रयीभूय किमर्भसूरा:०	८	१९
यदास्यतोऽभ्यर्थयितुं विभूषा०	८	१२६
यदीयचेतोवसतौ वसन्तं०	८	९१
यदीयपादौ सरलाङ्गुलीद्युता०	२	५२

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
यदीयपृष्ठे कनकत्विषि स्मित०	२	३८
यदीयमूर्त्तिर्निरमापि भक्त्या०	१	७४
यदीययात्रासु चमूसमुत्थितै०	२	९९
यदीयराजद्विभवाभिभूतया०	६	१८८
यदीयलक्ष्म्या विजितेव लङ्का०	६	१८९
यदीयवाचं विधिना विधित्सुना०	२	३०
यदीयहृत्केलिनिकेतखेलिनम्०	२	४०
यदुदीतसमीरणोन्वित:०	६	१५
यदूरुसृष्ट्यै करिणां करिभ्यो०	८	४०
यद्गमिष्यति ममार्भकभावो०	५	५८
यद्देहशृङ्गाङ्गणनद्धमारुत०	६	१८७
यद्दन्तपत्रेण विजीयमाना०	८	९७
यद्भाललक्ष्म्याऽधरितोऽर्धचन्द्र०	८	१५२
यद्भूतजङ्घायुगयोर्विवृत्सतो:०	२	४९
यद्वाक्पुरस्तादिव पाण्डुराभि०	८	११६
यद्वाचा गलराजमन्त्रिमुकुटो निर्माप्य षाण्मासिकीम्०	४	१४५
यन्नभस्वदतिपातिरयेन०	५	१३२
यन्नासिकां वीक्ष्य जगन्नरीक्ष्या०	८	१२२
यन्मूर्तिदीधितिझरेषु किमु प्ररोहा०	३	११६
यया जगज्जित्वरया श्रियांह्रि०	८	३१
यया स्ववक्षोरुहयोर्जितेन०	८	७३
यश:श्रियाध:कृतकुन्दकम्बु०	४	१५
यश्चन्द्रिकाङ्कितचतुर्द्विजराजराज०	३	८६
यश्चान्द्रचामीकरवेश्मचन्द्र०	१	१०६
य: पुष्पद: पल्लवलीलयेव०	४	५२
यस्माद्दिदीपे चरणस्य लक्ष्मी०	४	११९
यस्मिन्दिदीपे मधुदीपरूप०	१	१२०
यस्मिन्विभान्ति स्म विलासवत्य:०	१	१२३
यस्मिंश्च राजर्षियशोमरन्द०	१	६३
यस्य चान्दन उपभ्रु बभासे०	५	११०
यस्य द्वेषिनिषूदनव्रतजुष: प्रत्यर्थिपृथ्वीभुजाम्०	१	१३४
यस्य प्रशस्ययशस: श्रुतिपाशमध्य०	३	९४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
यस्य भालतलचन्दनबिन्दो०	५	१०९
यस्या: पृणन्निर्जरदृक् चकोरान्०	८	१०२
यस्या: प्रकाण्डस्फुरदग्रजङ्घा०	८	३४
यस्या: समेचकिमचूचुकचञ्चुरेण०	३	२०
यस्या: स्तनौ संस्फुरत: स्म चित्त०	८	६५
यस्या: स्फुरत्कान्तिविकाशिताशा:०	८	१८
यस्याननं चन्द्रति दन्तकान्ति०	४	८८
यस्या बभासे जघनेन रत्या०	८	४३
यस्या मुखं स्वर्वनितार्चिताया:०	८	९२
यस्या रसज्ञां जयिनीं निभाल्य०	८	१०९
यस्याऽवलग्नेन विगानितेन	८	५४
यस्योपदेशान्नृपमन्त्रिपृथ्वी०	४	११७
य: संप्रति क्षोणिपति: सपाद०	४	३९
या जहाति न कदाप्यनुषङ्गम्	५	५८
यादसां भवधुनीधवमध्ये०	५	८१
युवतीयुवराजिराजिते०	६	१४२
युवतीव युवानमङ्गजा०	६	१४७
युवसंमदकन्दलीघनै:०	६	४५
यूनो मनोजन्मनृपस्य तस्या०	८	८८
यूनो रिंसोपगतान् सकानतान्०	१	४७
यूपादधस्त: प्रतिमां जिनेन्द्रो०	४	२२
ये कर्णाभरणीबभूवुरनिशं विश्वत्रयी-जन्मिनाम्०	४	१४०
यैरवर्द्धि जिनधर्मसुरद्रु:०	५	३३
योगिनीजनितमार्युपप्लवा०	४	१२४
योगिनेव वहतात्मनि मुद्रा०	५	१२३
यो दक्षिणावर्त इव स्रवन्ती०	४	१३८
यो दृशा भुवि पुनर्दिवि फालै०	५	१३३
यो ध्वंसतेऽष्टापि दरान्नराणाम्०	१	४०
यो योगिनं पुष्पकरण्डिनीस्थम्०	४	११६
यो रामसेनाह्वपुरे व्रतीन्दु०	४	९७
यो वालुका हैमवतीप्रतीरे०	१	७
यो विजेतुमिव वारिजराजीम्०	५	७१
यौवनेऽर्जय यशोगुणलक्ष्मी:	५	४९

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
र		
रक्ताङ्कपङ्क्तिरिव कृष्णलताप्ररोह०	३	४
रक्ताङ्कपल्लवमुखान्द्विषतो जिगीषु०	३	१००
रक्ताङ्करक्तमणिपल्लवपाटलश्री०	३	९५
रघूद्वहोपक्रममब्धिमध्य०	१	६९
रज्यते स्म दशनप्रचूरेणा०	५	११९
रतिकान्तकलावहेलियत्०	६	३०
रतीशगेहेऽजनि यत्र जङ्घ्यो०	२	५०
रत्नानामिव रोहणोऽम्बुरुहिणी-प्रेयानिवज्योतिषाम्०	४	१४७
रथाङ्गनाम्नां दिवसावसाने०	७	५१
रथाङ्गलीला दधतो प्रभाम्भसि०	२	४१
रम्भा दम्भादिवामुष्या०	६	१५४
रम्भास्फुरद्वैभवयत्सुपर्व्व०	८	३९
रसालमालस्य तले विलासिना०	२	६२
राग सागर इवासि निपीतो०	५	१८८
रागसङ्गिरदनच्छदराजत्०	५	११८
रागिण: प्रणयतोऽखिललोका०	५	२००
राजत: श्रुतिपदे धृतमेकम्०	५	१६३
राजा स्वयं राजनतं सदोषो०	४	६३
राजीवराजी विजिता यदङ्घ्रै०	८	१४
रामणीयकविधेरवधेर्मे०	५	२०६
रामणीयकहृतापरचित्तम्०	५	१२५
रामायुतैस्तार्क्ष्यशतै रमाभि:०	१	७२
राशिना सुमनसामिव सर्पि:०	५	६६
राहौ पुन: सुकृतिनीव धनं प्रपन्ने०	३	२७
रुप्यद्द्युतोऽक्षीणसुखा मुखस्था०	८	१०६
रेजेऽधरोऽस्या हरिमन्थकालात्०	८	९४
रेजे स्तनाननविनीलम मञ्जुलेन०	३	१९
रेजेऽस्य पट्टे स्मररूपधेय:०	४	९३
रेणुभि: समुदडीयत रङ्गा०	५	१५५
रोमहर्षणमिषात्तदनुज्ञो०	५	८७
रोमावलीं शैवलवल्लरिभि०	१	५१
रोहिणी कमलिनीरमणाश्वान्	५	१३७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
ल		
लक्ष्मच्छविं भ्रूयुगलीं दधान०	८	८९
लक्ष्मीवतामधिपतेरनुजीविवृन्दैः०	३	४६
लक्ष्मीसागरसूरिशीलमहसालक्ष्मीरवापे ततो०	४	१२८
लग्नं गुरौशिखिनि शीलति युग्मगेहं०	३	२६
लग्नोदयेऽस्य शुभशंसिनि सार्वमौभः	३	२९
लब्धिश्रियानुसरता वसुभूतिपुत्रं०	३	३५
लावण्यनीरनयनाब्जयदीयवक्त्रं०	३	८८
लिप्ता द्रवैरिव विलीनहिरण्यराशे०	३	११८
लीलाचलद्दलगणा विगलन्मरन्द०	३	१६
लूतास्यतन्तूनवलम्ब्यवज्रा०	४	९
व		
वंश्यैः सुधाशनचिकित्सकयोरिवार्भ०	३	२५
वक्त्रं त्रिदश्या विजितात्मदर्श०	८	१५४
वक्त्रवारिजधिया समुपेतां०	५	६५
वक्षःशिलाकलितमञ्जुलजातरूपो०	३	१०८
वगाह्य शास्त्रं मनकाह्वसूनोः०	४	२३
वत्सवस्तलतया तव किञ्चि०	५	६०
वनं स्वमुद्बध्य शिखासु भूमी०	८	७५
वपुःश्रियाभर्त्सितमत्स्यकेतु०	१	७९
वर्णिनीव विरतिः कृतसङ्गा०	५	६८
वर्द्धमानः क्रमेणाथ०	६	१७४
वर्द्धिष्णुदेवीहृदयानुराग०	८	११२
वर्द्धिष्णुयत्कीर्तिसुधार्णवेन०	४	८९
वल्कलैः कलयतात्मनि भूषां०	५	२०१
वल्लभीभवति यद्भवभाजां०	५	२५
वशंवदीभूतजगत्त्रयस्य०	४	१७
वशिनोऽस्य ततो वशंवदां०	६	१२३
वसति स्म घटेद्भुवो मुनि०	६	८
वसतीरिव वल्गुविष्टरा०	६	६८
वसुन्धरायामिव वैजयन्तं०	१	३८
वहन् सुपर्वद्रुमरामणीयकं०	२	६
वाङ्मयैर्जितसुधामधुदुग्धै०	५	७६
वाङ्मयैविरचितैरिदमाद्यै०	५	५२
वाचंयमेन्द्राद्विमलादिचन्द्रात्०	४	९२
वाचस्पतेर्दिवि विधाय सुरान्विनेयान्०	३	७४
वातातिवेल्लद्ध्वजपल्लवाग्र०	१	११२
वाता वान्ति स्मितकजसरिद्वारि कल्लोलयन्तो०	२	१३७
वारिराशिरशनाविहायसोः०	७	८५
विकालवेलामनुसूत्रकण्ठा०	७	२७
विजयदानमुमुक्षुपुरन्दरः०	४	१४३
विजयदानविभुर्विटपल्लिका०	६	१८४
विजयिन इव राज्ञः श्वेतभासो विभाव्या०	७	९४
विजित्य कान्त्या जगृहे क्रुधा यदा०	२	३२
विजृम्भिजाम्बूनदपद्मनिष्पतत्०	२	५९
विज्ञातपूर्वजननीजनकप्रवृत्तेः०	३	१३१
विडम्बिताखण्डमृगाङ्कमण्डले०	२	२३
विद्याधरेन्द्रौ विनमिर्नमिश्च०	१	३२
विद्यापुरे योऽखिलशाकिनीना०	४	११५
विद्युन्मणीभूषण भूष्यमाणा०	१	५५
विद्वेषिभावमपहाय परस्परेण०	३	८९
विधिना वचसामधीश्वरी०	६	६०
विधुं द्विधाकृत्य विधिर्व्यधत्त यत्०	२	१८
विधुवद्गणपुङ्गवं नवो०	६	९९
विधेर्नियोगेन निजास्तपश्यान्०	७	१४
विधोर्धिया मन्दमरन्दलीन०	१	४८
विनिद्रनीलोत्पलकेसरश्रीः०	८	६२
विनोदमेवं सृजतोरहर्निशं०	२	६५
विन्ध्यं निपीताब्धिरिव व्रतीन्द्रो०	४	४९
विन्ध्योपलान्तरमिव द्विरदेन्द्रबाल०	३	५९
विपिनानि पदे पदे मुदं०	६	२४
विपुलां विपुलाहवाहता०	६	१४८
विबुधावथ राजपूर्वको	६	७६
विभवैः सह माधवादयः	६	२२
विभाति यत्रोपवनं विनिद्रत्०	१	८१
विभाति यद्भ्रूयुगभासिनासिका०	२	२२

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
विभ्राजिसन्ध्याभ्रपरम्पराभि०	७	४४
विभूतिभाक्कालभिदङ्कदुर्ग०	१	६५
विभूषणैः स्वर्णमणीप्रणीतै०	८	१६९
विभूषामद्वैतामकलयदथानन्दविमल०	४	१३१
वियोगवत्योषधियोषया यदा०	२	२५
विलसत्यथ मेदपाटका०	६	१३५
विलासिबालव्यजनाधृतात०	८	२५
विलीयमानैस्तुहिनावनीभृन्०	७	८९
विविधाभरणप्रभाङ्कुर०	६	१७
विश्राणयित्वेन पुरा स्वसार०	८	१२०
विश्वं विशन्तीं द्विषतीमुषां स्वां०	५	१०१
विश्वत्रयीश्रुतिपुटैकवतंसिकाना०	३	३६
विश्वनेत्रमिव मोहमहीन्द्र०	५	१०१
विश्वावनीधर ८ शीलीमुख ५ पूष १ संख्ये (१५८३)	३	२८
विश्वैकधन्वी शरसान्नृपोऽसौ०	१	१३१
विषयेऽप्यखिले तदा पुरी०	६	८३
विष्णोर्निहन्तुं नरकं गतस्यौ०	१	११५
विहरन् सह वाचकेन्दुना०	६	७८
वृत्तं विभोर्भाषितुमप्रभुर्यद्०	१	८
वृत्रशात्रवतुरङ्गममुख्या०	५	१३६
वृषभध्वजगोधिलोचना०	६	४३
वेणीकृपाणा भुजकर्णपाशा०	८	१६३
वैताढ्यशैलेन विभज्यमाना०	१	२१
वैताढ्यशैलो विपुलां द्विफालां०	१	२०
वैभुख्यभाग् यो विषयात् कुरङ्ग०	४	६६
व्यमोचि नामुष्य कदाचिदन्तिकं०	२	१३
व्यर्थीकृतां शक्तिमवेत्य पूष०	८	१२१
व्यलीलसत्पाटलिमा पदाम्बुज०	२	५४
व्यालवल्लिदलखण्डनजन्मा०	५	११७
व्याहतामितमधुस्पृहयद्भिः०	५	३
व्रतिनामिव तथ्यभाषिणा०	६	९७
व्रतिवारिधिनेमिनायकाः०	६	१०८
व्रतिशीतरुचः कदाचन०	६	८५

श	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
शत्रुञ्जयाद्रेस्तलहट्टिकायाम्०	१	२६
शमनस्य मृगीदृशो दिशो०	६	१०
शय्यंभवोऽभूषयदस्य पट्टम्०	४	२१
शशाङ्कबिम्बं कुलिशाङ्गणान्त०	१	१०७
शशी सुधां प्रेक्ष्य निपीयमानाम्०	८	१०८
शाखाप्रशाखाभिरमुष्य वृद्धि०	४	९५
शाखाविशेषोन्मिषतप्रसूनान्०	१	८९
शारिकाशुकशिखण्डिकपोती०	५	१९५
शावः शुभैरवयवैः सवितुः प्रयत्ना०	३	७३
शिरसीव शिवस्य जाह्नवी०	६	५९
शिलीमुखाश्लेषिसरोरुहेव०	१	५०
शिववाङ्मयवार्द्धिपारगो०	६	५३
शिश्रिये विजयादानमुनीन्द्रः०	५	२०३
शिष्यार्थनानिर्मितसंस्तवस्या०	४	११४
शुक्तीरसोद्भवमिवाम्बु घनावलीव	३	३
शुद्धक्रियामुद्धरतोऽस्य भाविनी०	४	१३३
शुद्धां क्रियां विदधतामधिभूर्यदेष०	३	१४
शुश्रूषयासनतयानिशमाप्रसादा०	३	११३
शृङ्गारयोनिमिव नीरजनाभपत्नी०	३	३२
शैशवे मदनमोहमहेभान्०	५	७८
शौण्डीर्य चङ्क्रमणवारिमदानलीला०	३	७
श्यामीकृतानि कुदृशामपकीर्तिपङ्कै०	३	३३
श्रमणद्युमणी मणीव तौ०	६	११५
श्रमणधरणीभर्तुः पादारविन्द० निषेवना०	५	२१६
श्रुवःसुधायै जगतां यदीय०	८	११४
श्रितनागसगन्धसारभू०	६	१३९
श्रियं स पार्श्वाधिपतिः प्रदिश्यात्०	१	१
श्रियमाश्रयते स्म वाचक०	६	७७
श्रियाभ्यभूयन्त मया समग्रा०	८	१४०
श्रिया सुधाभुक्परमाणुमध्या०	८	१३३
श्रियेव निर्जित्य समग्रदिग्गजान्०	२	६६
श्री इन्द्रदिन्नव्रतिसार्वभौम०	४	४४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
श्रीचन्द्रसूरेरथ चन्द्रगच्छ०	४	६४
श्रीदिन्नसूरिर्गुणभूरिरस्मात्०	४	४६
श्रीनन्दनं हीरकुमाररूपं०	१	८३
श्रीमज्जगच्चन्द्र इदंपदश्री०	४	१०७
श्रीमज्जिनाधीशमताधिदेव्या०	८	३३
श्रीमत्सुहस्तिप्रतिवासवस्य०	४	४२
श्रीमद्यशोभद्रगणावनीन्द्रः०	४	१०१
श्रीमन्महेभ्यपुरुहूतपयोरुहाक्षी०	३	२
श्रीमन्मुनिनिशारत्नं०	६	१७९
श्रीमानतुङ्गः करणेन भक्ता०	४	७६
श्रीमानदेवेन पुनः स्वकीर्ति०	४	९१
श्रीवज्रसेनोऽथ तदीयपट्टं०	४	५९
श्रीवत्सरामाङ्गजकम्बुताक्ष्यं०	१	११३
श्री विक्रमः सूरिपुरन्दरोऽभूत्०	४	८१
श्रीसूरिमन्त्रं विजने व्रतीन्द्रोः०	८	४
श्रीस्तम्भतीर्थं पुटभेदनं च०	१	६४
श्रीस्थूलभद्रेण निजान्ववाय०	४	३०
श्रीस्पर्द्धया यच्चिकुरान्विजेतुं०	८	१६२
श्रीहीरवीक्षोत्सुकिता इवान्त०	१	८७
श्रुतमत्रगणेन्दुनाऽमुना०	६	२
श्रोत्रपत्रयुगमाश्रितवत्या०	५	११४
ष		
षड् ६ ग्रहे ९ षु ५ शशि १–संख्यमितेऽब्दे	५	२०७
स		
संयमं विजयदानमुनीन्दो०	५	२०८
संयमश्रियमवाप्य कुमारः०	५	२०९
संयमाध्यवसितिप्रथमान०	५	१२०
संयमाय समियाय कुमारः०	५	१९३
संसृज्य रज्यद्दयितेन पत्नी०	७	६७
संसृतेर्मतिमतां वर तस्याः०	५	८५
संसृते व्रतरमानिरतोऽसौ०	५	१८७
संसृतौ सुखमशेषममुष्यां	५	८४
संस्थापितो निजपदे प्रभुणाथ तेन०	४	१२१
संस्पर्द्धिभावं दधता स्वलक्ष्म्या०	८	१४७
संहर्षरोषात्स्वजिघांसुमेतत्०	४	२७
सकाकतुण्डैणमदद्रवाङ्कितो०	२	५७
सकुङ्कुमैतद्वदनेन निर्जितं०	२	३६
सक्तः श्रुतौ शिशुशशी यदसावितीव०	३	९०
सङ्क्रान्तवेणी ग्रथितप्रसून्०	८	५०
स चक्रिणां भारतभूमिभामिनी०	२	१११
सचिवः पुनरस्य भूभुजो०	६	८०
स चुचुम्ब पदाम्बुजं गुरो०	६	७१
सज्ञातिलोचनचकोरनिपीयमानै०	३	५६
सञ्चारि निर्दण्डमिवातपत्रं०	७	८०
स तत्सतीर्थ्योऽजनि भद्रबाहु०	४	२८
स तदीयगिरं निपीय तां०	६	९३
सद्ध्याननागेश्वररश्मिसाम्य०	४	७८
सन्ततोपाचितकर्मगणस्या०	५	८२
सन्दर्भितान्तर्मुचकुन्दभल्ली०	८	१६२
सन्ध्यारुचीकुङ्कुमपङ्क्तिलाङ्क०	१	१६
स पतिव्रतयेव वल्लभो०	६	१२८
सप्तच्छदान्स्पर्द्धितदानगन्धान्०	१	८८
स प्राक्चङ्क्रमणैः पित्रो०	६	१७३
सफलीकुरु किङ्किरीमिव०	६	८६
स बभाज समाजमात्मना०	६	९५
समाप्य कामान्मरुतां स्वदारुतां०	२	८
समं यदास्येन मृधे महौजसा०	२	३३
समयेऽथ तया रत्या०	६	१६७
स मानदेवोऽजनि तस्य पट्टे०	४	८५
समीरे निहतारि निष्पतद्०	६	३५
समुच्चरच्चन्द्ररुचीचयाम्भा०	८	८४
समुल्लसाऽभ्रपथेऽथ सन्ध्या०	७	३५
स मुहूर्तदिने गुरुः समं०	६	१०४
सम्पिप्रती कामितमुत्सुकाना०	७	६
सम्पूरयन्कीर्त्ति नभोनदीभि०	४	२४
सम्पूर्णपीयुषमयूखबिम्बे०	७	७२
सम्भूतिपूर्वो विजयो गुरुस्तत्०	४	२६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
सरस्वतीशालिलसज्जिनश्री०	४	१३
सरितो दिशि यत्र निम्नगे०	६	२५
सरोजिनीकोशकुचौ नीपङय०	७	२९
सर्वाङ्गसृष्टिं सृजतस्तदीयां०	८	५६
सवाडवे श्री पुरुषोत्तमाङ्के०	१	६७
सवाहिनीका: स्मितनूतचूत०	१	५४
स विचार्य विचारज्ञो०	६	१६५
सविधे: सगुरो: सगौरवं०	६	६५
सवेशकेश्यायितकूलिनीशो०	१	१८
स सार्वभौमो ध्वजदण्डशेखरी०	२	१०१
सहैव देहेन समग्रसङ्गं०	४	५४
साङ्गजे प्रबलमोहमहीन्द्रे०	५	१५०
सा दोहदोदयकृशीकृततत्प्रपूर्ति०	३	१२
सान्द्रद्रुमोल्लासिनि पूर्वशैल०	७	६९
सान्द्रचन्द्रनिकुरम्बकरम्बी०	५	९९
सान्द्रीभवत्तनुविभाभरनिर्झरिण्यां०	३	११०
सान्ध्यराग इव जीवितमास्ते०	५	२२
सा पूर्णचन्द्रवदना प्रसवोन्मुखत्वं०	३	२४
साम्प्रतं कथममुष्य जडेना०	५	९६
साम्प्रतं तदिह शैशवशेष०	५	१८०
साम्प्रतं भगिनि तेन मुनीन्दो०	५	४३
साम्प्रतं व्यतिकरस्तव कोऽयं०	५	४७
साम्प्रतीनयुगजन्तुपवित्री०	५	२
सारङ्गनाभी सुरभेरमुष्या०	८	३५
सारैर्दलैः शासनदेवताया:०	८	१३१
सालोऽदसीय: ससनातनश्री:०	१	१००
सिद्धार्थभूकान्तसुतो जिनाना०	४	४
सिद्ध्यध्वानं प्रतिष्ठासु०	६	१७६
सिन्दूरपूरप्रचितेन तस्या:०	८	१६०
सीमन्तदण्ड: सुरपद्मदृष्टे:०	८	१५८
सुकृतं प्रविधाय सत्क्रिया०	६	११९
सुखं शयाना निशि निद्रियाऽङ्गना०	२	७१
सुखं स्वकीये शयने निषेदुषी०	२	८७
सुत्रामाम्बुधिधामदिग्गिरिकुच–		

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
द्वन्द्वाब्धिनेमीधव:०	१	१३५
सुधान्धसामध्वनि सान्ध्यरागो०	७	४६
सुपर्वपारिप्लवलोचनाया:०	८	७६
सुपर्वभिर्भोगिभिरङ्गिसङ्गै०	१	१०
सुपात्रसस्नेहगुणाग्रवृत्ति भृत्०	२	११
सुभ्रुवामिह महे जगृहे किं०	५	१७८
सुमतिसाधुरभूदथ तत्पदे०	४	१२९
सुमध्वजोर्वीधरजैत्रशस्त्रया०	२	७६
सुरमन्दिरजित्वरश्रिया०	६	१३६
सुरयौवतजैत्रकान्तिय०	६	३९
सुरायुधभ्रूलतिकात्मनि०	७	३
सुरेन्द्रदिग्भूधरमूर्ध्नि बिम्ब०	७	७१
सुस्वामिभाजो विबुधाभिरामा०	१	२५
सुहृदेव समेत्य शोभिते०	६	७५
सूनसङ्गतशिलीमुखलेखा०	५	१०४
सूनोर्जनिं निगदतामुनगव्रजानां०	३	४५
सूनोर्जनेरुपनतेरिव सेवधीना०	३	४४
सूनोर्जनेर्महमसौ विभवानुरूपं०	३	५२
सूरिभर्त्तुरमृतादपि वाचो०	५	४२
सूरिराजचरणाम्बुजयुग्मे०	५	११
सूरिवक्त्रविधुवीक्षणजन्मा०	५	१०
सूरिवासवसमागमस्फुरत्०	६	१९१
सूरिशक्रपरिषत्कृतभूषै०	५	४
सूरिसिन्धुरपुर: स कुमारो०	५	२९
सूरीन्द्रानन्दयति स्म तस्मिन्०	७	१
सूरीन्दो: सन्निधौ श्रीमान्०	५	२१५
सूरीन्द्रहीरविजय: प्रतिपद्य पट्ट०	६	१८५
सूरीश्वर: सिंहगिरि: क्रमेण०	४	४८
सूरेस्ततोऽजायत रत्नशेखर:०	४	१२७
सृजन्तमुच्चैः स्वकरं मदोदया०	२	६८
सृष्टिं सिसृक्षो: सुदृशां बभूव०	८	११
सेतुबन्धमिव संसृतिसिन्धो०	५	४४
सोऽनवद्यास्ततो विद्या:०	६	१७५
सोमप्रभ: श्रीमणिरत्नसूरी०	४	१०६

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
सोमादिमः सुन्दरसूरिर्सिहः०	१	८०
सौन्दर्यपाथः प्लवपादपद्मा०	८	२२
सौरभं सुमनसां समुदायो०	५	१००
सौरभेण मलयद्रुरिवात्मा०	५	५६
स्कन्धोपधेः ककुदढोकनकं विधाय०	३	११७
स्खलति स्म न कुत्रचिद्वचो०	६	४
स्तनान्तरीपाङ्कवपुःप्रसर्प्य०	८	६१
स्थाणोः शिरोनिवसनानशनाम्बुपानं०	३	९३
स्थाने गतस्य त्रिदिवं स्ववस्तु०	४	४१
स्पर्द्धयार्कतुरगान्स्वजिगीषून्०	५	१३४
स्पर्द्धयेव दिवा दम्भा०	६	१५७
स्पर्द्धां विधत्ते सुमनःसुकेशी०	८	१५७
स्पर्द्धोदयादिव मिथः प्रवयं सृजद्भिः०	३	८२
स्पर्द्धोदयात्रिजविवृद्धिकृतौ यदूरू०	३	११२
स्फाटिकावनिषु वेश्मनि यान्त्या०	५	१७५
स्फुरत्प्रभातैलकरम्बितान्तरे०	२	५३
स्फुरत्प्रभापूगतरङ्गचङ्गतां०	२	३५
स्फुरन्महोगोचरिताखिलाशौ०	८	१२९
स्मरं रतिप्रीतिनितम्बिनीभ्यां०	८	१४८
स्मरद्विपस्यैणमदाभिराम०	८	६३
स्मरविष्टपजैत्रशस्त्रित०	६	९
स्मितं निशाह्वोरपि नित्यरङ्गद्०	८	१३५
स्मितश्रिया मिश्रितदन्तकान्ति०	८	१००
स्मितारविन्दोदयदिन्दु विभ्रमा०	२	६०
स्मितेषु पद्मेषु मुखेष्विवास्या०	७	११
स्मेरत्कैरवशङ्कया कुवलयान्यु-त्तंसयत्यङ्गना०	७	९१
स्यन्दनान्मणिहिरण्यवरेण्य०	५	९
स्यन्दनैः स्यदविगानितवातै०	५	१४५
स्वं क्षणात्क्षयमवेक्ष्य सृजद्भि०	५	१०२
स्वं निष्ठितं नित्यसुपर्वपानात्०	८	११०
स्वःकामिनीकीर्तितकीर्तिदेवा०	४	८०
स्वःकूलिनीकूलविलासिनीनां०	७	६४
स्वः कूलिनीजलविलोलनक्लृप्तकेलिः०	३	३९

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
स्वःसानुमन्तमधिरोढुमथात्मदर्शी०	३	१०
स्वःसुभ्रुवः प्रेक्ष्य पयोधरौ स्व०	८	८३
स्वकान्त वक्त्रामृतकान्तिदर्शनात्०	२	२७
स्वकामिनीकैरविणीतनूभवे०	२	२१
स्वकारितेशाचलरुचैत्ये०	१	३९
स्वक्षारतां सूनुकलङ्कितां च०	१	४३
स्वचोक्षभावेन जिता जिनेन०	१	७६
स्वच्छन्दकेलीतरलीभवन्त्या०	१	२२
स्वजिद्ययानेन विगानितः सन्०	८	३०
स्वध्यानलोपभवकोपपिनाकिजाग्र०	३	८४
स्वपदाभिककुम्भसम्भवं०	६	३२
स्वपृष्ठलग्नागतकेशकाय०	८	१३९
स्वमन्दिरे यद्वदनारविन्दे०	८	१२४
स्वयं विनिर्मापयितुं जयं स्वशोभा०	८	७४
स्वयमेव शिवं गमी परा०	६	१२६
स्वरागिणीमञ्जनकुम्भिकुम्भ०	७	१७
स्वरैकसारं परवादिनीभ्यः०	८	११५
स्वर्गं गता क्रतुभुजां प्रभवामि तृप्त्यै०	७	८३
स्वर्जिष्णुपुर्याः परिखाप्रवङ्ग०	१	९६
स्वर्णजालकविमानगतानाम्०	५	१९०
स्वर्णपलययनपल्लविताङ्गाः०	५	१४६
स्वर्णरूप्यमणिमौक्तिकदानै०	५	९३
स्वर्णाद्रिशृङ्ग इव चन्द्रिकयाऽनुविद्धम्०	३	६०
स्वर्दण्डदण्डं दधता तमिस्र०	७	६०
स्वर्भाणुभीतेः शरणीकृतेन०	७	७८
स्वर्भाणुभीरो रजनीचरिष्णोः०	८	१०१
स्वर्यौवतांह्रिप्रतिकर्म्मसज्ज०	७	४०
स्वर्व्यालवेश्मावनिवास्तुशस्त०	१	१०३
स्वविष्टरं कम्प्रमवेक्ष्य बिम्ब०	८	६
स्वस्पर्द्धिनः शरभवप्रमुखानशेषा०	३	१२०
स्वां निष्ठितां प्रेक्ष्य सुधां सुधांशैः०	७	६५
स्वानुजन्मभगिनीकुलवृद्धा०	५	२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
स्वानुजादिनिखिलस्वजनेभ्यः०	५	८९
ह		
हंसपादभरितार्द्धमहासी०	५	१६०
हरिरिव गिरिकुञ्जे मानसे मानसौका०	३	१३४
हरेर्महिष्यां हरिति प्रयातवा०	२	१००
हले ! हिमाम्भःपतितं विहङ्ग०	२	१३५

	सर्गाङ्कः	श्लोकाङ्कः
हारचारिमकुचौ परया नौ०	५	१६९
हिरण्यगर्भः प्रणयन्सुरीं ताम्०	८	१२८
हीरहर्ष इति नाम तदीयम्०	५	२१०
हृदि हीर इवैष विष्टपे०	६	१०९
हेषितैर्हयगणस्य गजानाम्०	५	१५४
हैमाब्जनिर्यासपिशङ्गितैः सित०	२	१३६

*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुद्धिपत्रकम्

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धम्	शुद्धम्
८	१५	महाकाय	महाकाव्य
९	२९	विशेताओनो	विशेषताओनो
१०	१२	अपिरिचित	अपरिचित
२	टिप्पण	हीमुवद्दृश्यन्ते	हीमुवद् दृश्यन्ते
५	१४	निशावशश्चन्दः	निशावशश्चन्द्रः
६	१०	[६] चिरत्न०	'चिरत्न०
६	१९	वैताढय०	वैताढ्य०
६	२३	वैताढय०	वैताढ्य०
६	२७	वैताढय०	वैताढ्य०
८	४	**शत्रुं० ।**	**हील० शत्रुं० ।**
९	७	तात्स्थात्तद्वय०	तात्स्थ्यात्तद्व्य०
१०	१	नारायणः	नारायणः ।
१२	२३	[१]स्वयंभू०	[२]स्वयंभू०
१६	२१	**गाव० ।**	**हील० गाव० ।**
१६	टिप्पण	१, २, ३	1, 2, 3
१६	टिप्पण	०यैरिवावतीर्ण	०यैरिवावतीर्णा
१९	१४	(द्द)	(६)
१९	२१	पृथकवर्णनम्	पृथक् वर्णनम्
२०	२७	चतुराशीति०	चतुरशीति०
२१	२२	वास्तुगृहं	वास्तु गृहं
२२	१३	कुर्वन्त्यः	कुर्वन्त्यः(र्वत्यः)
२५	श्लोक ९६-९७-९८मां दृष्टिदोषना कारणे हीलटीकानो क्रम बदलाई गयो छे. त्यां श्लोक ९६मां **हील टीका** ९९, श्लोक ९७मां **हील टीका** १०० अने श्लोक ९८ मां **हीलटीका** ९८ समझवी.		
२७	४	उज्जवल०	उज्ज्वल०
२७	२३	वालकासु	वालुकासु
२७	२७	जेतुम(श)क्यः	जेतुम[श]क्यः
२८	४	हारकरचित०	हीरकरचित०
२८	१०	क्रुधेर्ति	क्रुधेति
२८	२७	कुर्वतः	कुर्वन्तः
२९	१२	०ध्वजयल्लवाग्र०	०ध्वजपल्लवाग्र०
३०	२९	तद्धत्तिः	तद्वृत्तिः
३१	१३	रूपाहङ्कार	रूपाहङ्कारं
३५	२७	ब्राम्या	ब्राह्म्या
३९	टिप्पण	जनुः परंप्रपे०	जनुः परं प्रपे०
४०	४	॥१६॥[4]	॥१६॥[3]
४१	१२	यशासि	यशांसि
४१	१५	०मवायिते	०मवापिते
४१	२४	०सद्भ्रूयुगल०	०सद्भ्रूयुगल०
४२	४	पूर्ण चन्द्रबिम्बं	पूर्णचन्द्रबिम्बं
४२	१५	वियोगवत्योषधि०[4]	वियोग[4]वत्योषधि०
४४	५	दशा	दृशा
४५	२४	०वारापत्तना०	०वासपत्तना०
४६	१५	०शरी(र)यष्टेः	०शरी[र]यष्टेः
४६	२८	वली(वि)लिप्य	वली[वि]लिप्य
४८	९	०युगयोयद्वैराज्यं	०युगयोर्यद्द्वैराज्यं
४८	२२	गजगमतया	गजगमनया
४८	२३	पानीय	पानीये
४९	७	भिन्नतमः समूहाः	भिन्नतमःसमूहाः
४९	२२	पुनर्लक्ष्मी	पुनर्लक्ष्मीं
५३	२६	दष्ट्वा	दृष्ट्वा
५५	१८	उर्वसी सदृशा	उर्वसीसदृशा
५७	१९	तादशौ	तादृशौ
५८	९	कुर्वन्त्याम्	कुर्वन्त्याम्(र्वत्याम्)
५८	२०	०न्तिक[4]मागता	०न्तिक[3]मागता
५८	२२	(भृङ्ग्म्यः)	(भृङ्ग्यः)
६१	२७	गूह्यालिङ्ग्य	०गूह्यालिङ्ग्य
६४	१५	॥११४॥	॥★११४॥
६५	२४	०रसङ्ख्यश्रेणि०	०रसङ्ख्यश्रेणि०
६५	२७	सङ्ख्यामति०	सङ्ख्यामति०
७२	१५	विज्ञततितिजिनेन्द्र०	विज्ञततिर्जिनेन्द्र०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धम्	शुद्धम्
७५	१०	पल्लवैनिवडा	पल्लवैनिबिडा	१३५	२७	०विद्यात्रीणां	०विधात्रीणां
७६	२७	क्रीडागता०	[3]क्रीडागता०	१३६	१३	शतपङ्क्ता(श)०	शतपङ्क्ता[श]०
७७	१	समेत सुरैः	समेतसुरैः	१३७	१९	परपक्षियैः	परपक्षीयै :
८०	१	(गो)त्रशैलाः	[गो]त्रशैलाः	१३९	१७	(द्राक्षा)	[द्राक्षा]
८०	२५	चन्द्ररवदना	चन्द्रवदना	१४०	५	विभर्त्ति	बिभर्त्ति
८३	१	**आ० ।**	**हील० आ० ।**	१४३	१०	विर्श्वनिर्माण०	विश्वनिर्माण०
८७	१५	दान दया पूजा	दान-दया-पूजा०	१५४	८	[2]तन्निकेतन०	[1]तन्निकेतन०
८९	२०	कर्त्तुमिच्छरिव	कर्त्तुमिच्छुरिव	१५४	१४	विजयसिंहमहोभ्या०	विजयसिंहमहेभ्या०
९१	१३	मनोज्ञां	मनोज्ञाम् ।				
९१	२०	०कोरकितने	०कोरकितेन	१५४	टिप्पण	2.	1.
९४	१३	तमीप्रिय तमः	तमीप्रियतमः	१५६	२७	श्लाध्यते	श्लाघ्यते
९५	१५	०श्चतुः सङ्ख्या०	०श्चतुःसङ्ख्या०	१५७	१	श्लाध्यते	श्लाघ्यते
९६	२	द्विपेषु	द्वीपेषु	१६१	७	ससार०	संसार०
९६	८	कर्णयोर्न वेति	कर्णयोर्नवेति	१६३	२०	निः सरद०	निःसरद०
१००	१८	सहमुद्रया	सह मुद्रया	१६४	१	मीनसद्दशां माद्दशां	मीनसदृशां माद्दशां
१०१	११	शोभितांङ्गाः	शोभिताङ्गाः	१६६	६	स्वरुपाणि	स्वरूपाणि
१०४	५	॥११९॥	॥★११९॥	१६८	१	०घुसृण०	०घुसृण०
१०६	६	०द्वीपविमानमिव	०द्वीपं विमानमिव	१७०	२०	०बन्धूकेन	०बन्धू(दू)केन
१०९	१७	तमः-पङ्कं	तमःपङ्कं	१७२	२	निः सरन्बहि०	निःसरन्बहि०
१०९	टिप्पण	०पवाये	०ववाये	१७२	४	हृदयान्निः सरन्राग	हृदयान्निःसरन्राग
११३	टिप्पण	त्रिदिवानायाः	त्रिदिवाङ्गनायाः	१७२	२०	जलकणनिकर.	जलकणनिकरः
११४	२५	"ङ्ग्राम०	"सङ्ग्राम०	१७३	२६	चितं	चित्तं
११६	१४	०र्जित श्रीरथ०	०र्जितश्रीरथ	१७५	१५	०रहङ्कृतिभृतां	०रहङ्कृतिभृतां
११९	२६	दिन्नसूरि	दिन्नसूरिं	१७७	६	**तत्र० भुवि० ।**	**तत्र० भूवि० ।**
१२१	२४	०षणा'क्षणेषु	०षणाक्षणेषु	१७७	१०	सहस्त्रमयूखैः	सहस्त्रमयूखैः
१२२	टिप्पण	इति वज्रसेनः४	इति वज्रसेनः १४	१७७	१५	वहैं	वहैः
१२३	६	सौदर्य०	सोदर्य०	१७८	२०	भेरीभाङ्कृति०	भेरीभाङ्कृति०
१२६	१	दृष्ट्वा ? किं स्त्रीयुक्तोऽसौ,	दृष्ट्वा, किं स्त्रीयुक्तोऽसौ ?	१७९	१४	पुनर्न फेरी	पुनर्नफेरी
				१९१	४	दातृणां	दातॄणां
१२८	२०	येनाभिभूत(:)	येनाभिभूत[:]	१९४	६	सृज	सृज
१३४	८	यावन्निरतं[न्तरं]	यावन्निरतं(न्तरं)	१९४	७	०दिवाम'न्दान्दं	०दिवाम'न्दानन्दं
१३५	२५	चतुः षष्टि०	चतुःषष्टि०	१९५	१९	०सूरिन्द्रात्	०सूरीन्द्रात्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धम्	शुद्धम्
१९६	४	वाचस्यतिरिव	वाचस्पतिरिव	२१३	२६	उक्ता	उक्त्वा
१९६	टिप्पण	पढनगुणवत्त्वम्	पठनगुणवत्त्वम्	२१४	२०	साधुनां	साधूनां
१९७	१	०विनोद विभ्रमात्	०विनोदविभ्रमात्	२१५	१३	सूरिपदार्प्पर्णा०	सूरिपदार्प्पणा०
१९७	२३	क्रीडितुम	क्रीडितुम्	२१६	१	श्रीसुरिणा	श्रीसूरिणा
१९८	२	धुर्जटि०	धूर्जटि०	२१६	१	श्लोघ्योत्सवः	श्लाघ्योत्सवः
१९८	९	रसयुक्तोभूत०	रसयुक्तीभूत०	२१७	१	मूतिमन्त०	मूर्त्तिमन्त०
१९९	१३	दक्षिणास्यां	दक्षिणस्यां	२१७	१५	ना परस्येति	नाऽपरस्येति
१९९	१६	फणि	फणी	२१७	२७	हीविजयसूरिभ्यः	हीरविजयसूरिभ्यः
१९९	२१	प्रतिवर्ष यमुयेत्व	प्रतिवर्षं यमुपेत्य	२१८	११	यशः सुमनो०	यशःसुमनो०
१९९	२२	तनुमतां	तनूमतां	२२०	१४	श्री सूरीश०	श्रीसूरीश०
१९९	२६	०भक्तपुरषपात्र०	०भक्तपुरुषपात्र०	२२०	२५	मूकवदा०	घूकवदा०
२००	६	यत्रोत्तुङ्गशृङ्ग	यत्रोत्तुङ्गशृङ्गा	२२१	४	प्रापयितुम	प्रापयितुम्
२००	१५	दक्षिणदिस्थायुक०	दक्षिणदिक्-स्थायुक०	२२२	२३	किम ?	किम् ?
				२२४	५	०श्चन्दन वृक्ष०	श्चन्दनवृक्ष०
२०१	१४	तद्वृतिः	तद्वृत्तिः	२२४	१६	नन्दनसूता०	नन्दनसुता०
२०४	४	नराणाम	नराणाम्	२२५	२४	शरीरनिः सर०	शरीरनिःसर०
२०४	५	स्त्रीरभूत	स्त्रीरभूत्	२२६	१४	त्वक्त्वा	त्यक्त्वा
२०४	१६	लभ्भितया	लम्भितया	२२६	२२	तत	तत्
२०४	२४	देवदेवाविव	देवीदेवाविव	२२७	२०	०चुडामणि०	०चूडामणि०
२०५	१०	गम	गम्	२२९	२७	निर्त्तितम्	नर्त्तितम्
२०५	१२	पढितुं	पठितुं	२३०	१८	शरीरङ्गोपाङ्गैः	शरीराङ्गोपाङ्गैः
२०५	१४	पढता	पठता	२३०	२६	वर्षन	वर्षन्
२०५	२५	द्रष्टिमिच्छया	द्रष्टुमिच्छया	२३१	१०	मुर्खपुंसां	मूर्खपुंसां
२०६	२०	०भागिनेयो	०भागिनेयौ	२३३	८	प्रत्तवान	प्रत्तवान्
२०७	४	चन्तामणि०	चिन्तामणि०	२३७	१५	०सूरीष्टसिद्धये	०सूरिष्टिसिद्धयै
२०८	२५	व्रतीशीता	व्रतीशिता	२३८	६	०निः शेष०	०निःशेष०
२१०	९	सुगमम	सुगमम्	२४५	७	०सन्धाभ्र०	०सन्ध्याभ्र०
२१०	२२	वाचकाह्वयम	वाचकाह्वयम्	२४६	३	शोभाप्सते	शोभाप्यते
२११	६	शिवपूर्यां	शिवपुर्यां	२५०	१३	निजपरिवृढं	निजपरिवृढं
२११	१०	पूर्रो	पुरीं	२५०	१४	नयननिः सर०	नयनिःसरः०
२१२	२९	सुरिसिन्धुर०	सुरसिन्धुर०	२५१	२	मुखेपुषत्पा०	मुखेऽपुषत्पा०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धम्	शुद्धम्
२५२	२६	०मृत कुम्भः	०मृतकुम्भः
२५३	६	०चल शिखरात्	०चलशिखरात्
२५३	१२	०तस्मा-दस्ताचल०	०तस्मादस्ताचल०
२५३	२१	पश्चिम समुद्रे	पश्चिमसमुद्रे
२५४	२०	०दीधिति दीधिति०	०दीधितिदीधिति०
२५५	४	।।८३।।	।।८६।।
२५५	१९	पत्न्य	पत्न्या
२५६	१	०श्रेणीशशाङ्का०	०श्रेणी शशाङ्का०
२५७	२२	शिवाह्वसाधु०	शिवाह्वसाधु०
२५७	टिप्पण	हीसुंप्रतो	हीसुंप्रतौ
२६०	२२	निः सरन्ती०	निःसरन्ती०
२६१	टिप्पण	०सवार्रङ्गवर्णनम्	०सर्वाङ्गवर्णनम्
२६३	१५	०व्यजना ³धृतात	०व्यजना³धृतात०
२६४	१२	०क्षरैरूपमो०	०क्षरैरुपमो०
२६४	१३	शब्दालङ्कारार्थलङ्काररूपः	०शब्दालङ्कारार्थालङ्काररूपः
२६७	टिप्पण	3. दृश्याः	3. ०दश्याः
२६८	३	र्हतोर्गुप्तगृहं	हेतोर्गुप्तगृहं
२७०	२	विकचऽकमलं	विकचकमलं
२७०	टिप्पण	स्मरस्या	स्मरस्य
२७२	१०	०रोदीत कलिन्द०	०रोदीतकलिन्द०
२७३	२५	अङ्कशताडनं	अङ्कुशताडनं
२७३	२६	०रलङ्कताभ्यां	०रलङ्कृताभ्यां
२७४	१२	शोभ ा-	शोभन-
२७८	४	पुत्कर्त्तुकामैः	पूत्कर्त्तुकामैः
२७८	१५	उत्प्रक्ष्यते	उत्प्रेक्ष्यते
२७९	३	पुत्कुरुते	पूत्कुरुते
२८२	१९	नैश्के०	नैके०
२८३	२४	०त्पानात्पी०	०पानात्पी०
२८५	२०	०पुष्पोद्भव 'सौरभस्य	०पुष्पोद्भवसौरभस्य
२८६	१	उेद्वेगकलितः	उद्वेगकलितः
२८६	८	सहस्त्रसङ्ख्याकः	सहस्रसङ्ख्याकः
२८७	१०	तस्माद्द रार्भीति०	तस्माद् राहोर्भीति०
२९०	९	दष्ट्वा	दृष्ट्वा
२९३	२२	कुमुब्दन्धु०	कुमुद्बन्धु०
२९४	६	०विश्रान्तरङ्गम०	०विश्रान्ततुरङ्गम०
२९४	७	तया	तथा
२९६	२३	शिवाह्वासाधु०	शिवाह्वसाधु०
२९६	२४	कोविद सिंह०	कोविदसिंह०

*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

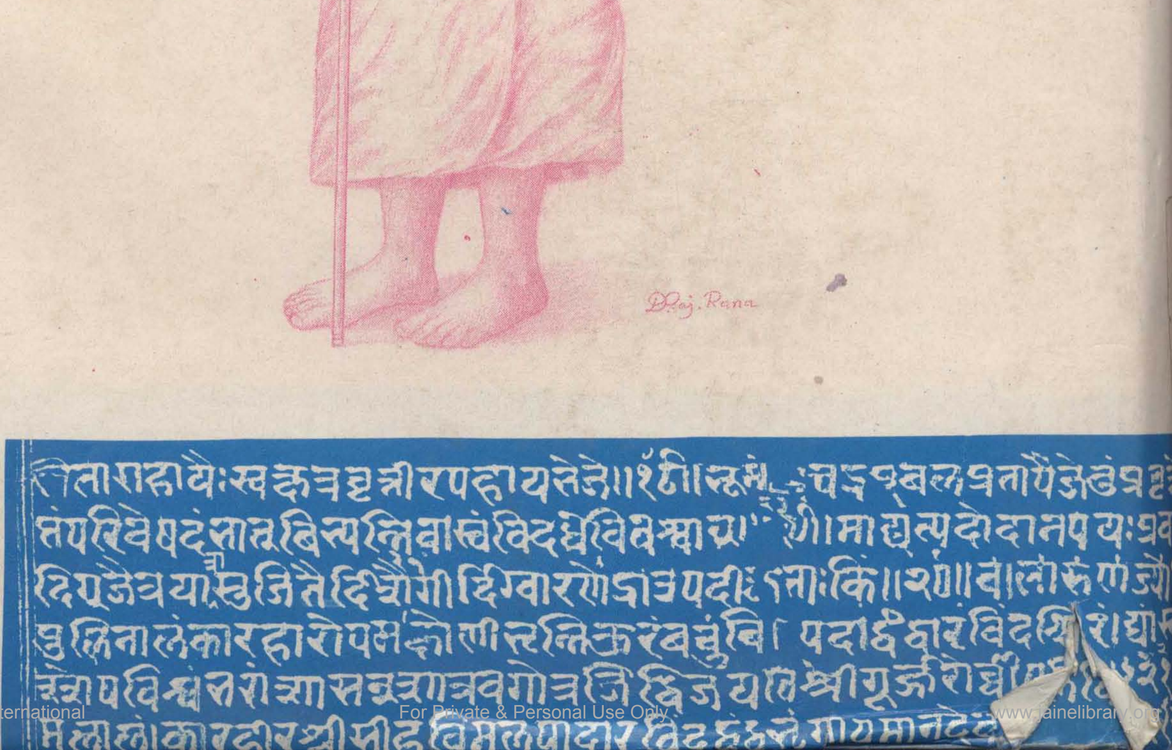

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org